थे और उनकी सुगन्ध से वह सारा अरण्य महक रहा था। वृक्षों पर कोमल हरी पत्तियाँ दीख रही थीं। फल देने वाले वृक्षों पर पक्षियों के झुण्ड के झुण्ड आनन्द में मस्त होकर कल-कल शब्द करते हुए इतस्ततः परिभ्रमण कर रहे थे। भ्रमरोंके झुण्ड गुञ्जारव करते हुए एक पुष्पसे दूसरे पुष्प पर बैठ कर परागका प्राशन करने में मग्न हो गये थे। इसी समय सहसा रानी मायावती के उदरमें पीड़ा उत्पन्न हुई जिससे उसे तथा उसके साथियों को वहीं ठहर जाना पड़ा। रानीको प्रसव-वेदना हो रही है यह देख कर सारी मण्डली चिन्ताक्रान्त होगई और दास-दासियों में बड़ी खलबली मच गई। एक प्रचण्ड वृक्ष के तले दासियों ने पर्ण-शय्या तैय्यार की और आसपास कनात बाँधकर रानीको प्रसूत होने के लिये उस पर लिटा दिया। थोड़ीही देरमे प्रसूत होकर उसे एक पुत्ररत्न होगया। यही शाक्यकुलके दीपक महात्मा गौतम बुद्ध थे।

जिनके लिये इतने व्रत और यज्ञ किये गये थे, उन राजपुत्र का जन्म अपनी राजधानी में अथवा आंजोली-राज सुप्रबुद्ध की नगरी मे न होकर एक निविड़ वनमें होना बड़ी विचित्र बात है! [illegible] व्रत और उपोषण करने से तथा मार्ग की थकावट के कारण रानी की प्रकृति बहुत खराब हो गई थी। म्याने में बैठकर वह अपने नूतन बालक के साथ पति के यहाँ वापिस लौट गई। पुत्रके मुख का दर्शन करतेही शुद्धोधन राजाको वर्णनातीत आनन्द हुआ। सारी नगरीमें आनन्दके उत्सव मनाये जाने लगे। राजा

ने अनेक प्रकार के दान-धर्म्म किए। बालक का नाम सिद्धार्थ रक्खा गया। रानी मायावती की बीमारी दिन प्रति दिन बढ़ती गई और अन्तमें उसी मे उसका शरीर छूट गया। मायादेवीकी मृत्यु के पश्चात् सिद्धार्थ की सौतेलो माता महाप्रजापति अथवा गौतमी उसका पालन-पोषण करने लगी। उस बालक पर राजा अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रेम करने लगे। वह लड़का अब दिन प्रति दिन बढ़ता गया। उपनयन-विधि आदि हो चुकने पर राजाने गौतमको विश्वामित्र नामक एक विद्वान् ब्राह्मणके यहाँ विद्योपार्जन करने के लिये भेजा। गौतम इतने बुद्धिमान् थे कि गुरुका बतलाया पाठ उन्हें उसी समय कण्ठ हो जाया करता था। वे बड़े विचारशील थे। इसलिये गुरुजी जो कुछ बतलाते थे, उसे वे उसी समय समझ जाया करते थे। अपने सहपाठियों से वे सर्वदा प्रेमपूर्वक बर्ताव किया करते थे। जब वे किसी को विपत्ति में देखते, तो पहले उसकी सहायता किया करते थे। वे अपने गुरु तथा अपनी गुरु-पत्नी के कामोंको बड़ी सहानुभूति के साथ करते थे। इन गुणों से आप सबको प्रिय हो गये थे। मैं राजपुत्र, श्रीमान्, सत्ताधारी और सबसे श्रेष्ठ हूँ ; इस अहं-भाव से प्रेरित होकर उन्होंने कभी भी अपने अभ्यास की ओर दुर्लक्ष नहीं किया और न किसी का मान-खण्डन किया। गुरुके घर अपने पुत्र का आचरण देखने के लिए एक बार राजा शुद्धो-धन और रानी प्रजापति स्वयं गये थे। वहाँ अपने पुत्र का आचरण देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। गुरु के घर विद्या

पढ़ चुकने पर राजा ने उन्हें घोड़े पर बैठना, निशाना मारना, तलवार और भाला चलाना, लड़ाई लड़ना इत्यादि वीरोचित शिक्षा देने का प्रबन्ध किया। उसी प्रकार उसने अपने बेटे को शासन-सम्बन्धी ज्ञान देने की भी व्यवस्था की।

राजा की बड़ी इच्छा थी कि उनका पुत्र अच्छी तरह राज्य का शासन करे, कई राजाओं को जीत अपने राज्य का विस्तार बढ़ाकर सार्वभौम चक्रवर्ती राजा होवे। पर गौतम का राज्य-शासन-सम्बन्धी बातों की ओर तनिक भी ध्यान न रहता था। राज्य-विलासों का उपभोग लेने में उन्हें सुख न मालूम होता था। उन्हें इन सब सुखोपभोगों की बिल्कुल इच्छा न थी। दीन और दुःखित लोगों को देखकर उनका अन्तःकरण टूक-टूक हो जाता था। गरीब लोगों को इतना कष्ट सहन करने पर भी पेट-भर अन्न तक नहीं मिलता और धनवान् लोग भोग और विलासमें मस्त होकर आनन्द से अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इस विषमताको देखकर उनका हृदय दुःखसे विदीर्ण हो जाता था। वे सदा विचारों मे ग्रस्त दीख पड़ते थे। विलासों का उपयोग लेने में उन्हें बड़ी घृणा मालूम होती थी। राजा को अच्छी तरह मालूम हो चुका था कि उसका पुत्र संसार से विरक्त होकर उसका त्याग कर देगा। इसलिये राजाने अपने पुत्र के लिए तीन विलास-मन्दिर निर्माण कराये और उनमें अनेक प्रकार की मनोरञ्जक सामग्री इकट्ठी की।

एक समय की बात है कि सिद्धार्थ अपने विलास-मन्दिर के

उद्यानमे विचार-निमग्न बैठे थे। आकाशमे श्वेत रङ्गके हंसोंकी एक जमात उड़ती हुई एक ओर को जा रही थी। इसी समय किसी का बाण लगने से उसमें का एक हंस दुःख से विह्वल होकर धरती पर गौतमके सामनेही गिर पड़ा। उसका शरीर रक्तमय हो गया था। गौतमने उस हंस को उठा लिया और पासही के हौज़से पानी लेकर उसका सारा शरीर धोकर स्वच्छ किया और उसके आघातों मे सावधानी से पट्टियाँ बाँध दीं। इसी समय उसका चचेरा 'भाई देवदत्त वहाँ आ पहुंचा और गौतम से बोला, 'भाई साहब इस पक्षीको मैंने मारा है, यह मेरा शिकार है। इसलिए मैं इसका स्वामी हूं। कृपाकर आप इसे छोड़ दीजिए।' सिद्धार्थ ने उस पक्षी को देने से इन्कार किया। फिर क्या था? दोनोंमें लड़ाई छिड़ गई। बात यहाँ तक पहुंच गई कि वे दोनों आपसमें कुछ भी निर्णय न कर सके और उन्हें आपस का झगड़ा तय करने के लिए न्यायाधीश के यहाँ जाना पड़ा। न्यायाधीश ने दोनों राजपुत्रों की बातों को ध्यान-पूर्वक श्रवण कर यह निर्णय किया कि जिसने उस पक्षीकी रक्षा की है और जो उसके घावोंको ठीक कर उसे जीव-दान देगा वही उसका स्वामी है। और उसीका उसपर विशेष स्वत्त्व है।

एक दिन राजाज्ञा लेकर सिद्धार्थ नगर मे घूमने के लिए निकले। रास्ते में किसी बूढ़े भिखारी को देखकर उनके मन मे उदासी छा गई। मनुष्य की वृद्धावस्था कितनी दुःखमय है यह सोचकर आपकी उदासी और भी बढ़ गई। आगे चल

कर उनकी दृष्टि एक शव पर पड़ी। वे उस मृतक शवके पीछे-पीछे चले गये और श्मशान-भूमि में उस मुर्दे की दहन-क्रिया भी देखी। मनुष्य की इस तरह अन्तिम दशा देखकर उनका हृदय शोक से व्याकुल हो गया। और इन सब बातों के विचार करने में आप मग्न हो गये।

एक बार सिद्धार्थ शहरमें हवा-खोरी के लिए निकले। उस समय ख़ूब कड़ी धूप थी। चलते-चलते वे एक खेतके पास जा पहुँचे। वहाँ आपने उतनी दुपहरी में एक किसान को कड़ी मिहनत उठाते हुए देखा। इस तरहके दीन कृषकों से कर लेकर उस पर राजा तथा सर्दार यथेष्ट चैन करते हैं। यह देख कर आपको बहुत बुरा मालूम हुआ। आगे चलकर आप एक सरोवरके किनारे बैठ गये। वहाँ आपने एक मछलीको कीड़ा पकड़ते हुए देखा। थोड़ी देरमें उसी मछली को एक बड़ी मछली खा गई। वहीं पास एक बगुला बैठा था, वह उस बड़ी मछली पर अचानक टूट पड़ा और बात की बातमें उसे हड़प कर गया। आकाशमें उड़ते हुए उसी बगुलेके पीछे एक और पक्षी लग गया। सारांश यह है कि उनको उस जगह यह बात दीख पड़ी कि प्रबल प्राणी निर्बल प्राणियों पर किस तरह अत्याचार करते हैं।

इनको तथा इन्हीं की नाईं दूसरी बातों को देख कर राजपुत्र सिद्धार्थ के मनमें वैराग्य छा गया। उनकी इस विरक्त दशा को देखकर राजा को बड़ा कष्ट हुआ करता था। अपने पुत्र के

मन का वैराग्य दूर करने के हेतु राजा ने आपका व्याह कर देने का मनसूबा बाँधा। फिर एक मङ्गलोत्सव की तैयारी कर उसमें अनेक राजकुमारियों को बुलवा भेजा और कुमारियों को राजकुमार से आभूषण वितरण करानेका प्रबन्ध किया। राजा ने अपने मन्त्रियों से कह दिया था कि तुम लोग सावधानी से इस बात की जाँच करना कि किस राजकुमारी पर सिद्धार्थ मोहित होता है। इस तरह महात्मा गौतम ने सब कुमारियोंको भूषण वितरण किये। पर उस समय उन के मुखपर मोहकी तनिक भी झलक न दीख पड़ी। उस समय उनकी मुद्रा बड़ी प्रशान्त थी। अन्तमें सुप्रबुद्ध राजा की कन्या, यशोधरा मण्डप में पधारी। उस सुन्दरीके मुखचन्द्र की ओर सारी सभा टकटकी बाँधकर देखने लगी। राज-पुत्र भी उसपर मोहित हो गये। वे उसकी ओर बड़ी उत्सुकता से देख रहे थे कि इतनेमें वह कुमारी उनके समीप आई। पर इस समय उसे पारितोषिक देनेके लिए उनके पास कुछ भी न था। इसलिए आपने अपने गलेका हारही उसे अर्पण कर दिया। सारी सभा ताड़ गई कि इस बालिका पर राजकुमार मोहित होगये हैं। वह उत्सव सम्पूर्ण हो चुकने पर राजा शुद्धोधन ने सुप्रबुद्ध राजाके पास अपना मंत्री भेज कर गौतम के लिए यशोधरा की माँग भेजी। परन्तु राजाने क्षत्रिय-धर्म्मका अनुसरण कर अपनी पुत्री का विवाह करनेके अभिप्राय से स्वयंवर रचनेका निश्चय किया। उस स्वयंवरमें गौतमको भी निमंत्रण दिया था।

स्वयंवरमें अनेक राजपुत्र उपस्थित हुए। उनमें गौतम भी थे। इस अवसर पर सुप्रवुद्ध राजाने वर-पक्षके लिए उन्मत्त घोड़ों पर चढ़कर भाला चलाना, बाण छोड़ना, तलवार फिराना, प्रतिस्पर्धी से भिड़ना, शत्रुसे अपनी रक्षा करना इत्यादि अनेक प्रकारके वीरोचित खेलोंका प्रवन्ध किया था। इस परीक्षामें गौतम अच्छी तरहसे उत्तीर्ण होगये। इसलिए यशोधरा ने आप के कण्ठमे जयमाला पहराई। इसके वाद शीघ्रही बड़ी धूम-धामके साथ उन दोनों का व्याह हो गया। विवाह होने पर कुछ वर्षों तक महात्मा गौतम संसार-सुखका अनुभव करते रहे। यशोधरा पर आपका असीम प्रेम था। कुछ दिनोतक संसारके नूतन सुखमें उनका मन वँध गया था। इतना होनेपर भी जव-जव वे लोगों की सच्ची दशा देखते तव-तव वे विचार में निमग्न हो जाया करते थे। ज्योंही वे किसी की दीनावस्थाका अवलोकन करते त्योंही उनका मन दुःख से व्याकुल हो उठता और उन्हें अपने सुखका ज्ञान होने लगता था। वे इस विचारमें डूव जाया करते थे कि दया-शील परमात्मा ने सभी मनुष्योंको सुखी क्यों नहीं वनाया। अपने विलास-मन्दिरके ऊँचे प्रासादपर चढ़कर वे लोगोंकी दशाको देखा करते थे। सिद्धार्थ की उदासीनता देख कर यशोधरा और शुद्धोधन को परम दुःख होता था।

एक दिन महात्मा सिद्धार्थ अपनी वाटिका में विचार-मग्न वैठे हुए थे। इसी समय काषाय-वस्त्र धारण किये हुए एक यती उसी मार्गसे जा रहा था। सिद्धार्थ ने उसे अपने पास बुला-

कर पूछा, "महाराज आप कौन हैं? और किधर जा रहे हैं?" यतीने उत्तर दिया, "राजपुत्र, मैंने संसारका त्याग कर संन्यास धारण किया है। मुझे यह विश्वास हो चुका है कि सत्य-ज्ञान के सिवा किसीमें भी पूर्ण शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। जगत्का अज्ञान और विपत्ति देखकर मुझे खेद हो रहा है। ये लोग मोक्ष-मार्गका कुछ भी विचार नहीं करते। जो लोग मुझसे सहानुभूति-पूर्वक कुछ पूछते हैं, उन्हें मैं सन्मार्ग का उपदेश करता हूँ।"

इस प्रकार सिद्धार्थ और यतीकी बहुत देरतक बात-चीत हो चुकने पर यती आगे चला गया। जब से वह गया, तबसे सिद्धार्थ के मनमें अशान्ति फैल गई। आपने ऐहिक विषयोंकी ओर ध्यान देना छोड़ दिया। वे अपने विलास-मन्दिर के उपवनमें विचार-मग्न बैठ कर दिनके कई घण्टे बिता देते थे। यशोधरा को पुत्ररत्न हुआ था, इसलिए वह सदैव राज-महल के प्रसव-गृहमें रहा करती थी। जब गौतम उसके पास जाते तब वह उन्हें अपने पास बिठाल लेती थी और उनसे नाना प्रकार का वार्त्तालाप कर उनका मनोरञ्जन किया करती थी। "आपकी उदासीनताको देखकर मुझे दुःख होता है। आपके पास विपुल धन तथा ऐश्वर्य्य है। ईश्वरकी कृपासे अब आप एक पुत्रके पिता भी हो चुके हैं। अब आपको और किस वस्तु की आवश्यकता है? सच मानिए, सभी बातें आपके अनुकूल हैं। आप जैसा भाग्यशाली राजपुत्र इस संसार में और कौन है?" इस भांति अनेक

प्रकारसे वह आपका मन आकर्षण किया करती थी। पर गौतम की वृत्ति किसी योगीके समान नितान्त अचल रहा करती थी।

एक दिन रातको गौतमने छन्द नामक सारथीको अपना कंथक नामक घोड़ा सज्जित करनेके लिए कहा। आधी रातका समय था। सारे राज-प्रासादमें शान्ति व्याप रही थी और बाहर निर्मल चाँदनी छिटक रही थी। दास और दासियाँ पूर्णतया नींदके वशीभूत हो चुकी थीं। महलमें एक छोटासा दीपक टिमटिमा रहा था। उसके प्रकाशमें यशोधरा और उसके सुकुमार नन्हें बच्चे का चेहरा स्पष्ट दिखाई पड़ता था। वस्त्र इत्यादि पहन कर गौतम अपनी भार्य्याके कमरेमें आये और एक बार अपनी प्रिय पत्नी तथा प्यारे बच्चेकी ओर प्रेम-पूर्ण दृष्टिसे देखने लगे। उन्हें देखकर आपके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहने लगे। वे तनिक पीछे हटे। परन्तु मनका निश्चय पुन: दृढ़ करके आपने फिर एक बार अपनी पत्नी तथा पुत्रकी ओर देखा और राजमहल के बाहर प्रस्थान किया। बाहर उनके लिए छन्दने घोड़ा सुसज्जित करके रखाही था। गौतम उस घोड़े पर बैठ गये। एड़ लगातेही वह सुन्दर जानवर हवासे बातें करने लगा। छन्द भी एक घोड़ेपर सवार हो उनके पीछे-पीछे चल दिया।

चन्द्रमाका पूर्ण प्रकाश होनेके कारण उन्हें मार्ग स्पष्ट दिखाई दे रहा था। दिनका उदय होनेतक उन्होंने अपने घोड़ेको खूब दौड़ाया। ज्योंही सूर्य्यनारायण ने क्षितिजपर आगमन किया त्योंही गौतम भार्गयाश्रम नामक तपोवन में जा पहुँचे। वहाँ

अनमा-नदीके तटपर उनकी और छन्दकी भेंट हुई। गौतम को देखकर छन्दकी आँखें डबडबा आईं। उसने राजपुत्रके चरणों पर अपना मस्तक रख दिया और उनसे घर लौट चलनेके लिए बड़ा आग्रह किया। परन्तु सिद्धार्थने कहा, "प्यारे छन्द, मोक्षका सच्चा मार्ग ढूँढ़ने के लिए और अपनी आत्मा को चिर-शान्ति प्राप्त करानेके लिए, मैंने संसारका त्याग किया है और जब तक मैं इस प्रकारका कोई मार्ग न खोज लूँगा तब तक कपिलवस्तु नगरी में पैर भी न रक्खूँगा, यह मेरा दृढ़ निश्चय है। इस बातको ध्यानमें रखकर कि ऐहिक जीवन, संगति और सुख क्षणभङ्गुर हैं, मेरे पिता तथा मेरी स्त्री दोनोंको वृथा शोक न करना चाहिये।" इतना कहकर आपने अपने आभूषण और कपड़े छन्द को सौंप दिये। कन्थक पर हस्त-स्पर्श कर उसे धन्यवाद दिया। छन्दका समाधान कर उसे वहाँसे शीघ्र चले जानेकी प्रार्थना की। आपनें एक सादा वस्त्र परिधान कर निविड़ अरण्यमें प्रवेश किया। राज-पुत्रकी ओर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखता हुआ छन्द कुछ समय तक स्तब्ध खड़ा रहा और जब गौतम उसकी दृष्टिके परे निकल गये तब उसनें भी अपने गृहको प्रस्थान किया। कपिलवस्तु नगरी को लौट आनेपर छन्दने सब लोगोंको दुःख-सागरमें डूबा हुआ देखा। राजा शुद्धोधन और यशोधराके नेत्रोंसे आँसुओंकी नदियाँ बह रहीं थीं। उन्होंने अन्न-जल त्याग दिया था, जिससे उनके शरीर म्लान और तेजहीन हो गये थे। मन्त्रिमण्डल तथा पुरवासियोंने उनका अनेक प्रकारसे समाधान करने की बड़ी चेष्टा

की। पर उसका कुछ भी परिणाम न हुआ। छन्दनें बड़े दुःख से राजाको सिद्धार्थ का समाचार कह सुनाया। उसे सुनकर राजाका दुःख और भी अधिक बढ़ गया। उनका हृदय शोकसे विह्वल हो उठा। राजाने अपने कुलगुरु तथा कुशल मन्त्रीजनों को बहुतसी सामग्री देकर उनसे गौतम को घर लौटा लानेकी प्रार्थना की। यह मण्डली उस घने जंगल में गई और वहाँ उन्होंने सिद्धार्थ की बड़ी खोज की। तब उन्हें वे एक वृक्षके नीचे ध्यानस्थ बैठे हुए दीख पड़े। उन्होंने आपसे कहा कि आपके लिए आपकी धर्म्म-पत्नी यशोधरा और आपके पिता राजा शुद्धोधन बहुत शोक कर रहे हैं। इस प्रकारकी और भी अनेक बातें कहकर उन्होंने आपका मन अपनी ओर आकर्षित करना चाहा। पर उनकी सारी चेष्टाएँ निष्फल हुईं। गौतमने कहा, "सत्य-धर्म्म के तत्त्वोंकी खोज करनेका मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया है और उन्हें ढूँढ़ने के लिए मैं रात-दिन प्रयत्न कर रहा हूँ। यदि इस कार्य्यमें मुझे सफलता प्राप्त होगई तो ठीकही है। अन्यथा, मैं अग्नि से दहकते हुए अङ्गारोंको भक्षणकर अपना प्राणविसर्जन कर दूँगा। परन्तु जब तक मैं उन तत्त्वोंका पता न लगा लूँगा, तबतक मैं कपिल-वस्तु नगरी में अपना मुँह न दिखाऊँगा।" आपके इस निश्चयात्मक भाषणको सुनकर सब लोग भौंचकसे रह गये और कपिलवस्तु को लौट आनेपर उन्होंने शुद्धोधन को सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

उस वनमें बोधिसत्वको कन्द-मूल-फल भक्षण करनेवाले

तथा स्वयं बोये हुए अनाजपर अपना निर्वाह करनेवाले कई मुनिजन और साधु पुरुष दीख पड़े। आपने नदी-प्रवाह में, सूर्य्य-प्रकाश में, अथवा अग्नि-वलयमें बैठकर तपश्चर्य्या करने वाले कई साधु पुरुषोंको देखा। उसी प्रकार पहाड़ोंकी भयंकर कन्दराओं में बैठकर तपश्चर्य्या करनेवाले कई साधु आपके दृष्टि-पथमें आये। उन सबका एक मात्र उद्देश यही था कि मृत्युके उपरान्त उन्हें सुखकी प्राप्ति हो। स्नान, सन्ध्या, होम, हवन इत्यादि करने वाले तपस्वियोंको और देह-दण्डनादि हठ-योग कर मोक्षकी इच्छा करनेवाले यतियोंको भी आपने देखा। आपने वेदान्तवादी, सांख्य-मतवादी इत्यादि लोगोंसे भी भेट की। उनके धर्म्म-तत्त्वोंका मननपूर्व्वक अध्ययन करके आपने उन लोगोंसे वाद-विवाद भी किया। जङ्गलमें रहते हुए आपका यही क्रम रहा करता था, कि जहाँ ऋषियों किम्वा तपस्वियों की जमघट रहती वहाँ वे जाते, उनसे मिलजुल कर, उनसे संभाषण कर, उनके मतोंको पूर्ण रीतिसे समझकर, उनपर विचार करते। फिर कुछ दिनोंतक उन लोगोंकी नाई स्वयं अपना आचरण रखकर देखते थे कि आपके मनपर उसका क्या परिणाम होता है। इसके बाद वे अपनी शंकाओंको निर्भयता से उनके सामने उपस्थित करते थे। यदि वे आपकी शंकाओंका निवारण करनेमें असमर्थता प्रकट करते तो वे उनकी कृति तथा आचारोंको सदोष ठहराते थे। उनके मतों तथा उद्देशोंमें दोष बतलाकर वे दूसरे मतका अभ्यास किया करते थे।

इस प्रकार अनेक धर्म्म-तत्त्वोंका शोधन करते हुए वे लग-भग पाँच-छः वर्षों तक भटकते रहे। इस प्रवास में आपको यह दीख पड़ा कि प्रचलित धर्म्मपर विश्वास, पूर्वपरम्परा पर विश्वास, रूढ़ि और आचार-विचार पर अन्धविश्वास रखकर, अपने आचारका सुधार करनेवाले मनुष्योंकीही संख्या अधिक है। आपको अच्छी तरह मालूम होगया कि कोई भी इस बातका ज़रा भी विचार नहीं करता कि प्रचलित धर्म्ममें सत्यका कितना अंश है, उसमें ग्राह्य क्या है, त्याज्य क्या है। आपने बड़ी सहानुभूतिके साथ और अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टिसे सारे धर्म्म-मतोंका आकलन करना आरम्भ किया। जिन-जिन मुनिजनोंसे आपकी मुलाक़ात हुई उन-उनसे आपने जो कुछ आपको सीखना था, सब सीख लिया। कभी-कभी कंदमूलपर और कभी-कभी गाँवोंमें भीख माँगकर वे अपनी उपजीविका चलाया करते थे। धर्म्मकी चिन्ता में उनका मन सदैव डूबा रहा करता था। एकान्त में रहकर वे सदैव ध्यान-धारण किया करते थे।

एकबार भूखों रहकर आपने अपनी देह को ख़ूब कष्ट दिया था। यहाँ तक कि आसनसे उठने तककी आपमें ताक़त न बची थी। वे बिल्कुल मरणासन्न होगये थे। उनकी इस दीन दशाको देखकर एक गड़रियेके लड़केने उनके मुँहमें बकरीके थन से निचोड़कर कुछ दूध डाल दिया। इससे उनको ज़रा ताक़त आगई और क्षुधासे अत्यन्तही पीड़ित होनेके कारण वे उस गड़रिये से और दूध माँगने लगे। परन्तु वह लड़का बोला,

"मुनिवर्य्य, मैं शूद्र हीन-जाति हूँ। इसलिए मेरा छुआ हुआ दूध आपके किसी काम का न रहेगा। इसीलिए बिना स्पर्श कियेही मैंने बकरीका थन आपके मुँह में निचोड़ दिया था। मेरे पास दूधसे भरा हुआ घड़ा मौजूद है। पर वह आपके क्यों कर काम आसकता है?" बोधिसत्वने कहा, "बाबा, जब मनुष्य जन्म लेता है उस समय उसमें उच्च और नीचका कोई भेद नहीं होता। जो सदाचारी है, वह उच्च है और जो दुराचारी है, वह नीच है। तू दयावान् है इसलिए मैं तुझे उच्च समझता हूँ।" इसी समय कुछ वेश्याएँ उस वनसे सितार बजाती और गाती हुई जा रही थीं। वे आपसमें कह रही थीं कि सितारको न बहुत ऊँची लगाओ; और न बहुत नीचीही। परन्तु उसे मध्यम लगाकर बजाओ जिससे मधुर-मधुर आवाज़ निकले। इन शब्दोंको शाक्य-मुनिने आकाश-वाणीही समझा। आपने उन पर विचार कर यह निश्चित्त किया कि शरीर को न तो विषयों से बिलकुल ग्रसितही रखना चाहिए और न उसे प्राणान्तकष्टही देना चाहिए। मनुष्यको चाहिये कि वह मध्य-मार्गको स्वीकार करे—यानी शरीर की रक्षाकर अपना ध्येय साधे। उस दिनसे आपने उपोषण इत्यादि से देहको कष्ट पहुँचाना बिलकुल छोड़ दिया।

धर्म्म-तत्त्वों का चिंतन करते समय महात्मा गौतम एक विशाल अश्वत्थ-वृक्षके नीचे बैठे थे। और आपने सत्य-धर्म्मको ढूँढ़े बिना वहाँसे न हटनेका दृढ़ निश्चय कर लिया था। इस तरह रात-दिन आसन पर बैठे हुए आपने धर्म्म-चिंतन में बहुत

समय बिता दिया। उन्हें प्रचलित धर्म्ममें बड़ी न्यूनता मालूम होती थी और उससे आपके मनको शान्ति प्राप्त न होती थी। इसी तरह विचार-निमग्न रहते हुए, अन्तमें, उन्हें सत्य-धर्म्मकी प्रतीति होगई, जिससे फिर आपको बड़ा आनन्द हुआ। उन्हें जिस बातकी चिन्ता लगी हुई थी, वह अब सहसा जाती रही और आपका हृदय प्रकाशित हो उठा। वहाँसे वे बड़ी प्रसन्नता से चल दिये। जिस वृक्षके नीचे उन्हें यह दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ था उसे बोधिद्रुम कहते हैं। वह बुद्धगया में है। इसी समय से गौतम 'बुद्ध' अथवा ज्ञानवान् कहलाने लगे।

जब आपको यह मालूम हो चुका कि धर्म्माचरणके लिये देह-दण्डन और गृहत्यागकी आवश्यकता नहीं है, उस समय से आपने उनका निषेध करना शुरू कर दिया। आपने अपने सत्य-धर्म्मका प्रसार कर लोगोंका उद्धार करने और उसके लिए तन, मन, धनसे आमरण प्रयत्न करते रहनेका निश्चय कर लिया। वे जिन-जिन तपस्वियों और ऋषियोंके यहाँ पहले गये थे उन्हींके पास वे पहले गये, और उनपर अपने धर्म्म-तत्त्वोंको समझाकर प्रकट किया। इस कार्य्य में उन्हें वाद-विवाद भी करना पड़ता था। वे बड़ी कुशलता से वाद-विवाद किया करते थे। यहाँ तक कि अपने प्रतिपक्षियोंको अच्छी तरह समझा कर वे उनके मनको अपनी ओर आकृष्ट कर लिया करते थे।

इस तरह आपने अपने साठ शिष्य बना लिये और उन्हें धर्म्मका उपदेश किया। धर्म्मके गहन विषयके ज्ञानको लोगोंमें

सुगमता से फैलानेकी इच्छा से आपने व्यावहारिक भाषामें उपदेश करनेकी प्रथा जारी कर दी। पहले आपने इन साठ शिष्योंका एक संघ निर्माण कर उन्हें अपने धर्म्म का अच्छी तरहसे उपदेश किया और लोगोंमे सत्य-धर्म्मका प्रचार करनेके लिए उन्हें देश-देशान्तरों में भेजा। वे स्वयं लोगोंको उपदेश करते हुए गाँव-गाँवमें घूमा करते थे।

बड़े-बड़े लोग उनका दर्शन करने आया करते और अत्यन्त आदरसे उनका उपदेश सुना करते थे। वे स्वयं बौद्धधर्म्मको स्वीकार करते और दूसरोंको भी उस धर्म्मका स्वीकार करनेके लिए बाध्य करते थे। कभी दृष्टान्तरूप कथाएँ कह कर, कभी वाद-विवाद कर, कभी सरल भाषा में और कभी व्यावहारिक उदाहरण देकर वे अपना उपदेश दिया करते थे। वे हमेशा अपने शिष्यों और मोक्ष की इच्छा करनेवाले लोगोंसे घिरे रहते थे। उनका वर्ताव, उनका वैराग्य, अप्रतिम था। उनके शिष्य-समुदायमें अनेक जाति और दर्जे के लोग शामिल थे। स्त्रियोंको उपदेश देकर उन्हें भी वे अपने धर्म्म में शामिल कर लिया करते थे। बड़े-बड़े प्रतापी राजा भी उनके उपदेशको आदरकी दृष्टिसे देखते थे। आपको अपनी विद्वत्ताका कभी घमंड नहीं हुआ। वे अहंकार, मोह और कामविकार इत्यादिके पंजेमे कभी न फँसे थे। मदान्ध होकर आपने किसी का कभी बुरा न चाहा था। उनके शत्रुओंने कई बार आपको नाना प्रकार के कष्ट दिये पर आपने उन्हें अपने सौजन्यसे और अपनी क्षमाशील

वृत्तिसे लज्जित किया। यद्यपि आपने-अपनी बाल्यावस्था तथा युवावस्थाको भोग और विलासोंमें व्यतीत किया था, तथापि शरीर को फटे-पुराने कपड़ोंसे ढाँप दरवाज़े-दरवाज़े भीख माँग कर अपनी उपजीविका चलानेमें तथा जंगलोंमें भूँखे घूमने में आपको ज़रा भी दुःख नहीं हुआ। आपका स्वार्थ-त्याग, आपका वैराग्य और आपका शुद्धाचरण देखकर लोगोंके मनमें आपके प्रति पूज्य-भाव उत्पन्न होता था।

मनुष्यके नाना प्रकारके दुःखोंका कारण विषयवासना है। इसलिए जबतक उनका त्याग न कर दिया जाय तबतक निर्वाण की प्राप्ति नहीं हो सकती। धर्म्म के लिए शुद्धाचरण एक ज़रूरी बात है। ईश्वर की आराधना करनेसे अथवा उसे प्रसन्न रखने से कदापि मोक्ष नहीं मिलती। पर मोक्ष प्राप्त करनेके लिए मनुष्य को विषय-वासनाओंका दमन कर शुद्ध-आचरणही रखना पड़ता है। धर्म्माचरणके लिए मनोनिग्रह की अत्यंत आवश्य-कता है। इस लिए आर्य्य-सत्य-चतुष्टय का ज्ञान पहले होना चाहिए।

(१) विपत्ति का अस्तित्त्व (५) विपत्तिका कारण (३) विषय-वासनाओंसे मुक्ति (४) और विपत्तिसे मुक्त होनेके लिए अष्टाङ्ग मार्गका अवलम्बन, इन चार आर्य्य-सत्योंको आर्य्य-सत्य-चतुष्टय कहते हैं। इन्हींसे बुद्धकी प्रथम ज्ञान-शक्ति जाग्रत हुई। आपको . . . विपत्तियोंका ज्ञान होकर निर्वाण-मार्ग सूझ पड़ा। देह . . . है; सभी जगह दुःख है। सारा संसार यातनाओंसे

भरा पड़ा है। दुःखकी जड़ क्या है और वह कहाँ है, इसको खोज करो। तृष्णा और आसक्ति दुःखकी जड़ है। दुःखरूपी पदार्थ को सुखदायी समझकर तुम व्यर्थ उसके पीछे पड़ रहे हो। सब लोग काल्पनिक सुखका उपभोग लेनेकी कोशिश कर रहे है। आसक्तिसे मनुष्य अहङ्कारमय हो जाता है, वह बिलकुल विवेक-हीन बन जाता है, वह विपत्ति की शृङ्खलामें पूरे तौरसे जकड़ जाता है। इस संसार की विविध विपत्तियोंको ढूँढ़ो, और उनके पंजे से छुटकारा पानेकी चेष्टा करो। मृगजल के पीछे दौड़ने वाले हरिनकी नाईं अन्धे बनकर सुख-प्राप्तिके लिए न दौड़ो।

अष्टाङ्ग मार्ग—(१) सत्य दृष्टि, (२) सत्य संकल्प, (३) सत्य भाषण, (४) सत्य कर्म्म, (५) सत्य जीवित कर्म्म, (६) सत्य प्रयत्न, (७) सत्य विवेक और (८) सत्य एकाग्रता। महात्मा बुद्ध इन अष्टविध मार्ग-सूत्रोंका विवेचन कर उन्हें अच्छी तरहसे लोगोंके दिलमें जमा दिया करते थे। 'आर्य्य-सत्यचतुष्टय,और 'अष्टाङ्गमार्ग' ये बुद्ध प्रणीत धर्म्म के मुख्य तत्त्व हैं। इनके सिवा आपने अपने शिष्योंको समय-समयपर और भी कई तरह के नीति-तत्त्वोंका उपदेश किया। आपने अपने धर्म्म के तत्त्वोंको किसी भी पुस्तक में लिख न रखा था। परन्तु वे उन्हें अपने शिष्योंको वारम्बार बतलाया करते थे। इन उपदेशोंको हृदयमें धारण कर उनके शिष्य लोगोंको उपदेश दिया करते थे। महात्मा बुद्ध के शिष्यों की संख्या बढ़ गई। आपने अनेक छोटे-छोटे सङ्घ निर्माण किये।

वे आठ महीने देश-देशान्तरोंमें उपदेश करते हुए घूमा करते थे और चार महीने बुद्धके पास रहकर उनसे धर्म्म-सम्बन्धी विशेष वार्त्तालाप किया करते अथवा उनसे अपनी शंकाओं का निवारण करा लिया करते थे। इस तरह वे महात्मा बुद्धका उपदेश श्रवण कर अपने ज्ञानको विशेष रीतिसे बढ़ा लिया करते थे।

महात्मा बुद्धने राजा विम्बसारको अपने धर्म्मकी दीक्षा दी। आपने अपनी प्रिय पत्नी यशोधरा और माता प्रजापति को उपदेश देकर अपने धर्म्मका अनुगामी बनाया और तभीसे स्त्रियोंको उपदेश देकर उन्हें भिक्षुकणी बनानेकी चाल निकल पड़ी। अपने चचेरे भाई देवदत्त, आनन्द और पुत्र राहुल को भी आपने अपने धर्म्ममें शामिल किया। जिस समय महात्मा बुद्ध लोगोंको उपदेश देनेके लिए कपिलवस्तु गये थे, उस समय बस्ती में वे भीख माँगते हुए घूमा करते थे। आपको भीख माँगते हुए देखकर राजा शुद्धोधन को बहुत बुरा मालूम हुआ। तब आपने अपने पिताकी सान्त्वना की और यह कह कर कि मुझे भीख माँगनीही चाहिए, आपने भीख माँगनेका अपना क्रम उसी तरह जारी रखा। इस बातसे महात्मा बुद्ध के नीति-धैर्य्यका उत्तम रीतिसे पता चलता है।

एक बार किसी ब्राह्मणने कुत्सित बुद्धि से गौतम से पूछा कि, "ब्राह्मण किसे कहना चाहिए।" इसपर बुद्धने यह जवाब दिया कि, "जो सदाचारी है, जिसने अपनी पापवासनाओंका उच्छेदन कर स्वयं पर जय प्राप्त करली है, वही ब्राह्मण है। केवल

ब्राह्मण के कुलमें जन्म लेनेसेही कोई मनुष्य ब्राह्मण नहीं हो जाता।" एक वार किसी गाँवमें महामारीने बड़ा ऊधम मचाया था। उसके मारे लोग धड़ा-धड़ मरने लगे थे। वहाँके निवासियोंकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। उन्हें अपना कर्त्तव्य तक ज्ञात न होता था। इसी अवसर पर महात्मा बुद्ध अपने ढाई सौ शिष्योंके साथ उस गाँवमें गये। और वहाँ लोगों का औषधोपचार कर उनकी बड़ी सेवा-शुश्रूषा की। अन्धों और लँगड़ों की रक्षा की। वे यह कहा करते थे कि दूसरेका हित करना धर्मका मुख्य भाग है। वे अनेक प्रकारकी तन्त्र-मन्त्र-विद्याओंका तथा भूत-भविष्य इत्यादि ज्योतिष-विद्या का हमेशा निषेध किया करते थे।

पिताकी मृत्युके समय महात्मा बुद्ध उन्हीं के यहाँ थे और आपने उस समय की लौकिक रीतिके अनुसार पिताका क्रिया-कर्म अच्छी तरहसे सम्पन्न किया। महात्मा बुद्ध अपने शिष्योंके साथ पावा नामक गाँवमें आये। वहाँ आपको चन्द नामक एक शिलपकार ने भोजनोंके लिए निमंत्रित किया। इस भोजनमें उसने सुअर के गोश्त का भी कुछ पदार्थ बनवाया था। इस पदार्थको उसने महात्मा बुद्धकी सेवा में बड़ी श्रद्धाके साथ अर्पण किया। जब महात्मा बुद्धको कोई भक्तिके साथ कुछ अर्पण करता तो वे उसको अवश्य स्वीकार कर लिया करते थे। ठीक वही हाल यहाँ भी हुआ। महात्मा बुद्ध उस पदार्थको खा तो गये पर उसे पचा न सके। वे आमाशय रोगसे पीड़ित होकर बीमार

हो गये और इसी बीमारीसे कुशी नामक गाँवके पास, ईसाके लगभग ५४३ वर्ष पहले, आपका देहावसान हो गया। महात्मा गौतम की मृत्यु का वृत्तान्त चारों ओर फैल गया। इसे सुनकर कई शिष्य वहाँ जमा हो गये। बड़े-बड़े राजा और महाराजा भी वहाँ आये। महात्मा बुद्धकी देह फूलोंसे आच्छादित की गई। चन्दन, कपूर इत्यादि सुवासित पदार्थों से एक चिता निर्माण की गई और बड़ी सज-धज के साथ आपका शरीर दहन किया गया। महात्मा गौतम बुद्ध की अस्थियाँ तथा उनकी चिता-भस्मको मुख्य-मुख्य शिष्यों और राजाओं ने आपसमें बाँट लिया और आगे चलकर उनपर बड़े-बड़े स्तूप (मन्दिर) बनवाये।

पहले यज्ञ और अन्य धर्म्म-विधियों का बड़ा प्रकाण्ड मचा हुआ था। यज्ञ मे पशुओंकी हत्याएँ हुआ करती थीं। महात्मा गौतमने इन सब अत्याचारोंका घोर विरोध किया। पहले ब्राह्मणों तथा उच्चवर्ण के लोगोंमेंही धर्म्म का ज्ञान रहा करता था। परन्तु आपने अपने धर्म्म को प्रचलित भाषा में प्रतिपादित कर सब लोगोंके लिए बिलकुल सुगम बना दिया। वे जाति-भेदके विरुद्ध थे। भिक्षुओंके संघोंका निर्माण कर उनके द्वारा स्व-धर्म्म का प्रसार करानेकी प्रथा आपही ने निकाली। स्त्रियोंकी दशा अत्यन्त शोचनीय थी, परन्तु महात्मा गौतम ने उसमे अंशतः सुधार कर दिया। वे यह कहा करते थे कि मनुष्यका श्रेष्ठत्व उसके जन्म पर निर्भर नहीं रहता, बल्कि, वह उसके आचरण से जाना जाता है। जातिभेद में आपने अनेकों प्रकारके निर्बन्ध डाले। आपने

लोगोंसे यह कहा कि मोक्ष-मार्ग के लिए नीति और सदाचारकी अत्यन्त आवश्यकता है और यही आद्य धर्म्म है। आपने मंत्र-तंत्रका निषेध किया। आपने यह प्रतिपादन किया कि स्वयं अपनी उन्नति के लिए तथा मोक्ष प्राप्त करनेके लिए देवतार्चन कर ईश्वरको प्रसन्न करना व्यर्थ है। तात्पर्य यह कि संसार में जो अनेक धर्म्मसंस्थापक हो गये हैं उनमें महात्मा गौतम बुद्धका दर्जा बहुत ऊँचा है। आपके धर्म्म-ग्रन्थोंका अध्ययन करना, उनका परिशीलन और मनन करना हमारा कर्त्तव्य है।

धम्मपद

अथवा

महात्मा बुद्ध-प्रणीत

नीति-बोध।

पहली सीढ़ी।

यमक (अथवा युग्म) वर्ग।

१। हमारी आज कल की दशा (सद्यःस्थिति) हमारे गत विचारों का (मनोभावों का) परिणाम है। वह हमारे विचारों पर अवलम्बित रहती है, वह हमारे विचारों की बनी रहती है। जिस तरह रथ खींचनेवाले बैल के पीछे रथका पहिया दौड़ता जाता है उसी तरह जो मनुष्य अपने

हृदय में कुबुद्धि धारण कर बातचीत करता है अथवा आचरण रखता है, उसके पीछे-पीछे दुःख दौड़ता जाता है।

२। हमारी साम्प्रत दशा हमारे गत विचारों का फल है। वह हमारे विचारों पर अवलम्बित रहती है। वह हमारे विचारों से बनी रहती है; मनमें शुभ हेतु अथवा सुविचार धारणकर जो मनुष्य अपना आचरण रखता है, उसके पीछे सुख छाया के समान सदैव बना रहता है।

३। उसने मेरी निर्भर्त्सना की, उसने मुझे हरा दिया, उसने मुझे लुटा दिया—इस तरह के विचारोंको जो मनुष्य अपने हृदयमें स्थान देते हैं, उनका, उस मनुष्य से जो मनमुटाव रहता है वह सदा के लिये कदापि दूर न होगा।

४। उसने मेरा अनादर किया, उसने मेरा पराभव किया, उस ने मुझे मार दिया, उसने मेरा सर्वस्व छीन लिया—इस तरह के विचारों को जो मनुष्य अपने हृदयमें धारण नहीं करते उनकी उस मनुष्य से जो अनबन रहती है, वह सदा के लिये दूर हो जाती है।

५। क्योंकि, पुराना सिद्धान्त है कि शत्रुतासे शत्रुता कदापि नष्ट नहीं होती, पर वह प्रेम से नष्ट हो जाया करती है।

६। मूर्ख लोग इस बात का तो कभी ख़याल नहीं करते कि हम सब यहीं मरनेवाले हैं। परन्तु जो लोग इस बातको समझते हैं उनके झगड़े तुरन्त मिट जाया करते हैं।

७। जो मनुष्य केवल अपनेही सुख के लिये इस संसार मे जीता है, जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों का निग्रह नहीं करता, जो भोजन करते समय नियमितता धारण नहीं करता, जो आलसी और दुर्बल है, उसको मार (काम) उसी समय इस तरह गिरा देता है, जिस तरह किसी कमज़ोर वृक्ष को प्रचण्ड झञ्झानिल नष्ट कर देता है।

८। जिस तरह शिलामय पर्वतको वायु का झकोरा नहीं गिरा सकता, उसी तरह जो मनुष्य अपनेही सुख की अपेक्षा धारण कर नहीं रहता, जिसने इन्द्रियों पर अपना पूरा अधिकार जमा लिया है, जिसका भोजन नियमित रहता है, जो श्रद्धावान् और सबल होता है उसका मार (काम और मोह) बाल भी बाँका न कर सकेगा।

९। पाप का, कामादि विकारों का, क्षालन किये बिना जो पीत वस्त्रों को (भिक्षु वेश) धारण करने की इच्छा करता है, जो नियमितता और सत्य की ओर ज़रा भी ध्यान नहीं देता, वह पीत वस्त्रों को धारण करने के लिये सर्वथा अयोग्य है।

१०। परन्तु जिसने अन्तःकरण की मलिनता को (पाप) दूर कर दिया है, जिसमें सारे सद्गुणों का पूर्ण रीति से विकाश हो चुका है, जो नियमितता और सत्य की ओर ध्यान देता है, वह पीत वस्त्रों को धारण करने के लिये बिल्कुल योग्य है।

११। जिन्हें असार वस्तु सारयुक्त जान पड़ती है और सार-युक्त निःसार मालूम होती है, वे मिथ्या दृष्टिका आश्रय लेते हैं। इसी लिये उन्हें सार (सत्य) कभी भी प्राप्त नहीं होता।

१२। जिन्हें सारवस्तु सारही मालूम होती है और असार असारही जान पड़ती है, वे सत्य वासनाओंका अनुसरण कर अपना आचरण रखते हैं। इसीलिये उन्हें सच्चा मार्ग प्राप्त होता है।

१३। जिस प्रकार अच्छी तरह न छाये गये घरमें वर्षा की बूँदों का प्रवेश हो जाता है, उसी प्रकार अविचारी मनमें वि-कारों का (अभिलाष, आसक्ति आदि का) प्रवेश हो जाता है।

१४। अच्छी तरह छाये गये मकान में जिस तरह वर्षा की बूँदें प्रवेश नहीं कर सकतीं, उसी प्रकार पूर्ण विचार-शील मनमें विकारों का (अभिलाष, आसक्ति आदि का) प्रवेश नहीं हो पाता।

१५। बुरे कामों को करनेवाला मनुष्य इस लोकमें दुख पाता है और परलोक में भी दुःख का भाजन बनता है। वह दोनों लोकोंमें क्लेश पाता है। अपने दुष्कर्म के बुरे परि-णामों को देखकर उसे शोक-दुःख होता है।

६। सदाचारी (पुण्य कर्म करने वाले) मनुष्य को इस लोकमें आनन्द होता है और परलोक में भी वह आनन्द का

उपभोग लेता है। दोनों लोकोंमें वह आनन्द-सागर में मग्न रहता है। अपने कर्म के शुद्ध फलों को अवलोकन कर उसे सन्तोष तथा आनन्द मालूम होता है।

१७। दुराचारी (पापी) मनुष्य इस लोक में दुःख पाता है और परलोक में भी। वह दोनों लोकों में क्लेशका भागी बनता है। अपने किये हुए बुरे कर्मों को देख कर उसे दुःख होता है और जिस समय वह बुरे कामों को करने में प्रवृत्त होता है, उस समय तो उसके दुःख का ठिकाना नहीं रहता।

१८। सदाचारी मनुष्य को इस लोकमें भी सुख होता है और परलोक में भी। वह दोनों लोकों में सुख का अनुभव लेता है। अपने किये हुए सत्कर्मों को देख कर उसे आनन्द होता है और उन्हें करते हुए उसे जो सुख होता है, वह पहले सुख की अपेक्षा कहीं अधिक है।

१९। अविचारी मनुष्य ने बौद्ध-शास्त्र (संहिता) का कितना भी पारायण क्यों न किया हो, परन्तु प्रमत्त होकर यदि वह अपना आचार उसके अनुसार नहीं रखता, तो उसें ठीक उसी तरह श्रमणत्व (आचार्यत्व—श्रेष्ठत्व) प्राप्त नहीं होता, जिस तरह दूसरे की गौओं को गिननेवाले चरवाहे को वे गौएं प्राप्त नहीं होतीं।

२०। जिसने राग, द्वेष और मूर्खता का त्याग कर दिया है, जिसे सत्य-ज्ञान और मन की शांति प्राप्त हुई है, जो इस

संसार की किसी भी वस्तु के सम्बन्ध में तथा परलोक के सम्बन्ध में कुछ भी चिन्ता नहीं करता, वह धर्मशील है। ऐसा धर्मशाल मनुष्य, चाहे शास्त्रों का थोड़ासा भी पाठान्तर क्यों न करे, पर वह श्रमण (आचार्य) होने के बिलकुल योग्य है।
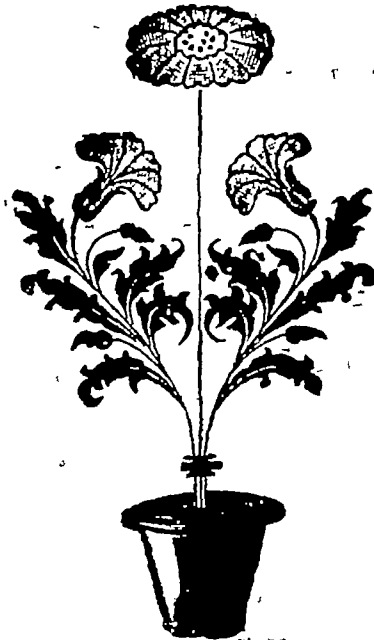
दूसरी सीढ़ी ।

अप्रमाद (दक्षता) वर्ग ।

२१ । दक्षता मोक्ष का रास्ता है । प्रमाद अथवा असावधानी मृत्यु का मार्ग है । जो दक्ष रहते हैं, वे शीघ्र नहीं मरते । जो असावधान होते हैं, वे मरे जैसेही हैं ।

२२ । इस बात को समझ कर जिन लोगों ने दक्ष रहने में ख़ूब उन्नति कर ली है, जिन लोगों ने दक्षता के अर्थ को पूरे तौर से समझ लिया है, उन्हें दक्ष रहने में आनन्द मालूम होता है, और श्रेष्ठ लोगों के (आचार्यों के) सच्चे ज्ञानमें उन्हें सुख मालूम होता है ।

२३ । इस तरह के विचारशील, अचल और स्पष्ट वृत्तिवाले विद्वान् लोगों को सर्वोत्तम सुख का देनेवाला निर्वाण प्राप्त होता है ।

२४ । जो दक्ष मनुष्य जाग्रत है, जो भूल नहीं जाता, जिसके कर्म शुद्ध हैं, जो विचारपूर्व्वक आत्मनिग्रह से अपना

आचरण रखता और धर्म्माचरण करता है, उस मनुष्य की कान्ति बढ़ जाती है।

२५। दक्षता-पूर्व्वक जागृति रख और आत्म-संयमन कर बुद्धिमान् मनुष्य अपने लिये एक ऐसा द्वीप निर्माण कर लेता है, जो किसी भी प्रकार के जलप्रलय से कदापि नष्ट नहीं हो सकता।

२६। मूर्ख लोग अहङ्कार के आधीन हो जाते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य दक्षता की एक अमूल्य रत्न की नाईं हिफ़ाज़त करता है।

२७। अहङ्कार न कर, काम-विषयादि सुखों में मस्त न रह। जो दक्ष और विचार-शील है, उसे विपुल सुख प्राप्त होता है।

२८। जिस प्रकार पर्वत की चोटी पर खड़ा हुआ मनुष्य नीचे मैदान में खड़े हुए मनुष्यों को देखता है, उसी प्रकार ज्ञानी मनुष्य, जब दक्षता को धारण कर अहङ्कार को दूर कर देता है, तब वह ज्ञानरूपी प्रासाद के शिखर से स्थिर-चित्त होकर, मूर्ख और कर्म-रत जनसमूह की ओर देखता है।

२९। जिस प्रकार अच्छा घोड़ा दौड़में दुर्बल टट्टुओं के आगे निकल जाता है, उसी प्रकार जो अविचारी लोगोंमें दक्ष है और जो निद्रित मनुष्यों मे जाग्रत रह कर बुद्धिमान् है, वह दूसरों से आगे बढ़ जाता है।

३० । दक्षता के कारण मघवन् (इन्द्र) सब देवताओं का स्वामी हुआ । लोग-बाग दक्षताकी हमेशा प्रशंसा करते हैं और असावधानता की निन्दा करते हैं ।

३१ । दक्ष रहने में जिस भिक्षु को आनन्द मालूम होता है और असावधानी तथा अविचार से जो सदा भय खाता रहता है, वह अपने सब छोटे-बड़े बन्धनों को अग्नि के समान भस्म कर डालता है ।

३२ । जिस भिक्षु को विचार में आनन्द मालूम होता है और अविचार से जो सदा डरता रहता है, उसे अपनी पहली दशा से भ्रष्ट हो जाने का डर नहीं रहता । वह निर्वाण-पद (मोक्ष) के क़रीब पहुँच जाता है ।

तीसरी सीढ़ी ।

चित्तवर्ग ।

३३ । जिस तरह लुहार बाणों को ठीक करता है, उसी प्रकार पण्डित अपने अस्थिर, चञ्चल और सम्हालने के लिये कठिन चित्त को स्थिर करता है ।

३४ । पानी से निकाल कर सूखी धरती पर डाल देने से जिस

तरह मछली पुनः अपने मूल स्थान पानी में जाने के लिये छटपटाती है, उसी तरह मार (मोह) के पंजे से छुटकारा पाने के लिये हमारा चित्त भी तड़फता है।

३५। जिसका आकलन करना कठिन है, जो चपलता से पूर्ण है और सदैव स्वच्छन्दता से विहार करने वाला है, उस मन को वशीभूत करना अच्छा है। वश किये गये मन से सुख मिलता है।

३६। बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिये कि वह अपने मनको अपने अधीन रखे। क्योंकि वह अदृश्य है और स्वच्छन्दता से विहार करने वाला है। मनको अपने अधीन रखने से सुख-प्राप्ति होती है।

३७। वायुरूपी, स्वच्छन्दता एवम् अकेले भ्रमण करनेवाले और अन्तःकरण की कन्दरा में छिप कर रहनेवाले मन को जो मनुष्य अपने वश में रखता है, वह मार (मोह) के पाशसे मुक्त हो जाता है।

३८। जिसका चित्त अस्थिर है, जो यथार्थ धर्म से अपरिचित है, जिसके मन की शान्ति का भङ्ग हो गया है, उसका ज्ञान कभी भी पूर्णत्व-दशा को न पहुँचेगा।

३९। जिस मनुष्य के विचार कलुषित नहीं हुए हैं, जिसका मन अकुलाहट से रीता है, जिसने पाप और पुण्य का

विचार करना छोड़ दिया है—ऐसा मनुष्य यदि जागृत है, तो उसे कुछ भी भय नहीं है।

४०। यह सोच कर कि यह शरीर घटके समान कड़ा है और क़िले के समान मनको मज़बूत करके मनुष्य को चाहिए कि वह अपने ज्ञान-रूपी शस्त्रसे मार पर (वासनाओं पर) चढाई करे। यदि उसपर जीत भी हासिल कर ली, तो भी उस पर सदा दृष्टि रखनी चाहिए। कभी भी असावधान न रहना चाहिये।

४१। अरेरे, थोड़े ही समयमें यह शरीर निरुपयोगी लकड़ियोंके लट्ठोंके समान तुच्छ और चेतनाहीन होकर ज़मीनपर गिर पड़ेगा।

४२। एक वैरी दूसरे वैरीका जितना नुक़सान करेगा, किम्वा शत्रु शत्रुका जितना नुक़सान करेगा, उसकी अपेक्षा कुमार्गमे रत हुआ अपना मन अधिक नुक़सान करेगा।

४३। सन्मार्ग पर चलनेवाला मन हमारा जितना कल्याण करेगा, उतना कल्याण तो हमारे मातापिता तथा दूसरे सम्बन्धी भी न करेंगे।

चौथी सीढ़ी ।
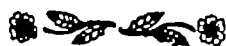
पुष्पवर्ग ।

—※—

४४ । पृथ्वी, यमलोक और देवलोकको कौन जीत सकता है ? जिस प्रकार चतुर मालाकार सुन्दर पुष्पोंको चुनता है, उसी प्रकार सदाचारका सच्चा मार्ग कौन ढूँढ़ निकालेगा ?

४५ । जो साधक है, वह पृथ्वी, यमलोक और देवलोकको जीतेगा । जिस प्रकार चतुर मनुष्य उत्तम फूलोंको खोज निकालता है, उसी तरह साधक सदाचारके सच्चे मार्गको ढूँढ़ निकालता है ।

४६ । जो इस बातको जानता है कि यह शरीर बुलबुलेके समान क्षण-भरमेंही नष्ट होनेवाला है और जो यह समझता है कि वह मृगजलके समान है, वह मारके (कामके) पुष्पशरका छेदन करेगा और उसे यमराजसे भेट होनेकी वारी न आवेगी ।

४७ । जिस तरह निद्रामें गर्क रहनेवाले ग्रामको बाढ़ बहा ले

जाती है, उसी प्रकार जो मनुष्य पुष्प चुननेमें गर्क है, उसे मृत्यु ले जाती है। *

४८। फूल चुननेमें गर्क रहनेवाले मनुष्यको, उसकी वासनाएँ तृप्त होनेके पहलेही, मृत्यु अपने हस्तगत कर लेती है।

४६। फूलको तनिक भी दुःख न देकर, उसके रङ्ग और उसकी सुगंध का ज़रा भी नाश न कर, जिस तरह भौंरा उसका पराग ले कर निकल जाता है, उसी तरह साधुओंको अपने ग्राममें रहना चाहिये।

५०। दूसरोंके दोष, बुरे काम तथा असावधानता को ढूँढ़नेकी अपेक्षा हमें प्रथम स्वयं हमारेही दुष्कर्मों और आलस्यकी ओर ध्यान देना चाहिए।

५१। जिस तरह सुन्दर और सुडौल फूल गन्ध-रहित होनेसे व्यर्थ है, उसी तरह जो अपने कथनानुसार अपना आचार नहीं रखता, उसके शब्द, कितने भी मधुर क्यों न हों, निष्फल ही हैं।

५२। परन्तु जिस तरह सुन्दर और सुडौल फूल सुगन्ध-युक्त होनेसे उत्तम है, उसी तरह जो अपनी बात पर चलता है, उसके मधुर शब्द सफल हैं।

५३। जिस तरह फूलोंके ढेरसे अनेक प्रकारकी मालाएँ बनाई

---

* सुखोंका उपभोग लेनेमें जो मनुष्य लीन हो गया है, उसकी विषय-वासनाएँ तृप्त होने के पहलेही मृत्यु उसे ले जाती है।

जा सकती हैं, उसी तरह मनुष्यको जन्म धारण करतेही खूब सत्कृत्य करना चाहिए।

५४। फूलोंकी बास वायुकी दिशाके विरुद्ध नहीं फैलती, चन्दन की भी नहीं जाती और मल्लिका (मोंगरा) की भी नहीं जाती। परन्तु जो सज्जन हैं, उनका कीर्ति-परिमल वायुकी दिशाके विरुद्ध भी बहता है। मनुष्यका अच्छापन सब जगह संचार करता है।

५५। चन्दन और गुलतेवरा, कमल और वासन्ती इन सबके सुवासोंकी अपेक्षा सद्गुणोंका सुवास अपूर्व है।

५६। चन्दन और गुलतेवराका सुवास क्षुद्र है। परन्तु जो सद्गुणी हैं, उनका सुवास इतना तेज़ होता है कि वह जहाँ देवता लोग रहते हैं वहाँ तक—उतने ऊँचे तक—पहुँचता है।

५७। जिनमें ये सद्गुण वास्तव्य करते हैं, जिनमें अविचार नहीं है, जो सत्य-ज्ञान के योगसे मुक्त होगये हैं, उनके सामने मार (काम) की बिल्कुल दाल नहीं गलती।

५८-५९ रास्ते पर फेंक दिये गये कूड़े-कचरे पर भी यदि कमल उत्पन्न होवे, तो वह जिस तरह मधुर, सुवासिक और मोहक होता है, उसी तरह कूड़े-कचरेके समान नीच और अज्ञानसे अंध हुए लोगोंमें स्वयं-प्रकाशित बुद्धका शिष्य अपने ज्ञानके योगसे शोभा पाता है।

———

पाँचवीं सीढ़ी।

बाल (मूर्ख) वर्ग ।

६० । जिसे नींद नहीं आती, उसे रात बड़ी मालूम होती है ; जो श्रमित होगया है, उसे मील बहुत लम्बा मालूम होता है ; जिसे सच्चे धर्मकी जानकारी नहीं है, उस मूर्खको संसार विकट जान पड़ता है ।

६१ । यदि किसी यात्रीको उसकी अपेक्षा अच्छा अथवा उसीके समान कोई दूसरा यात्री न मिले, तो उसे चाहिए कि वह धीरजके साथ अकेलाही अपनी यात्राको तय करे । उसके लिए ऐसा करनाही अच्छी बात है। परन्तु मूर्खकी संगति करना ठीक नहीं ।

६२ । 'ये लड़के मेरे हैं, यह धन-दौलत आदि सम्पत्ति मेरी हैं'—आदि विचारोंके मनमें हमेशा उत्पन्न होते रहनेसे मूर्खके मनमें क्लेश होता है । यदि स्वयं उसपरही उसका अधिकार नहीं है, तो फिर वह लड़कों अथवा सम्पत्ति पर क्योंकर हो सकता है ?

६३। जिस मूर्खको यह मालूम हो जाता है कि 'मैं मूर्ख हूं' वह कमसे कम उस समयके लिए तो बुद्धिमान् होता है। परन्तु जो मूर्ख अपने को बड़ा बुद्धिमान् समझता है, उसे लोग सचमुचमें मूर्ख कहते हैं।

६४। जिस तरह चम्मच को रसकी मिठास नहीं मालूम होती, उसी तरह मूर्खको, यद्यपि उसे जीवनभर तक बुद्धिमानों की संगतिका लाभ भी हुआ हो, तोभी सत्यकी जानकारी कभी नहीं होती।

६५। जिस प्रकार जिह्वाको रसकी रुचि मालूम होती है, उसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्यको, अल्प काल तक भी सत्समागम का लाभ होतेही, उसी समय सत्य की जानकारी हो जाती है।

६६। जिन मूर्खोंमें बुद्धि नहीं होती, वे स्वयं अपनेही बड़े शत्रु होते हैं। क्योंकि वे जिन दुष्कर्मोंको करते हैं, उनके कड़वे फल उन्हेंही भोगने पड़ते हैं।

६७। ऐसे कर्मका करना ठीक नहीं, जिसके लिए आगे चलकर पश्चात्ताप होता है और अन्तमें जिसका फल हमें रोते हुए भोगना पड़ता है।

६८। ऐसे कर्मका करना उचित है, जिसके लिए मनमें पश्चात्ताप नहीं होता और जिसके फलका स्वीकार करनेमें आनन्द एवं समाधान होता है।

६९। दुष्कर्मके करनेपर, जब तक उसका फल नहीं मिलता तब

तक मूर्ख मनुष्योंको अपना कर्म शहद के समान मीठा मालूम होता है। परन्तु जब वही कर्म परिपक्व हो जाता है, तब मूर्खोंको उससे दुःख होता है।

७०। यदि कोई मूर्ख यतीके समान कई महीनोंतक दर्भ की पत्तियोंमें भोजन ग्रहण करे, तौभी वह ऐसे मनुष्य की एक आना भी बराबरी नहीं कर सकता, जिसने धर्म्म का अच्छी तरहसे मनन किया है।

७१। ताज़ा दुहा हुआ दूध जिस तरह एक दम नहीं बिगड़ जाता, उसी तरह बुरे कर्म का कड़वापन उसी समय नहीं जान पड़ता। राखमें जलती हुई अग्नि के समान प्रज्ज्वलित रहकर वह मूर्ख का पीछा नहीं छोड़ता।

७२। जब बुरा कृत्य बाहर निकलता है तब वह मूर्ख के शोक का कारण होता है। उससे उसका सिर्फ़ मानखण्डन ही नहीं होता, बल्कि, वह उसका सिर फोड़ता है।

७३। मूर्ख लोगही भिक्षुओंमे अग्रस्थान की, मठमें अधिपति की, और लोगोंसे पूजा की इत्यादि वृथा कीर्तिकी अपेक्षा करें।

७४। 'यह मैंने किया है, वह मैंने किया है'—यह गृहस्थ और भिक्षुको मालूम होने दो ; 'जो कुछ उन्हें करना-धरना हो, उन्हें चाहिए कि वे उसे मेरी आज्ञानुसार करें''—यह मूर्खको सोचने दो ; इसके कारण उसकी तृष्णा और उसका अहंभाव बढ़ता रहता है।

७५। सम्पत्ति प्राप्त करनेका मार्ग एक है और निर्वाण प्राप्त करनेका मार्ग दूसरा है। जो भिक्षु बुद्धका शिष्य है, उसे यह बात मालूम हो जानेपर वह सांसारिक यशकी इच्छा न करेगा और संसार से अलिप्त रहनेका यत्न करेगा।

छठी सीढ़ी।

पण्डित वर्ग।

७६। जो तुम्हें यह बतलाता है कि सच्चा भांडार कहाँ मिलेगा, जो तुम्हें यह बतलाता है कि कौनसी वस्तु ग्रहण की जाय और कौनसी छोड़ दी जाय, उस बुद्धिमान् मनुष्यके कथन को तुम स्वीकार करो। जो लोग ऐसे मनुष्यका उपदेश सुनेंगे, उनका कल्याणही होगा, अकल्याण कभी न होगा।

७७। उसे तुम्हें डाँट-डपट करने दो, उसे उपदेश करने दो, उसे अयोग्य बातोंका निषेध करने दो। इन कारणों से वह

सज्जनोंको प्रिय होगा, परन्तु दुर्जन उसका तिरस्कार करेंगे।

७८। दुष्ट जनोंसे मित्रता मत रक्खो। नीच जनोंकी संगति न करो। सज्जनोंसे मित्रता रक्खो। जो सत्पुरुष हैं, उन्हें अपने मित्र बनाओ।

७९। जो धर्म्म के तत्त्वोंका सेवन करते हैं, वे आनन्द से तथा शान्त चित्तसे रहते हैं। आर्य्यों (श्रेष्ठों) के द्वारा उपदेशित धर्मतत्त्वों से साधुओं को निरन्तर आनन्द होता है।

८०। नल अथवा नहर के खोदने वाले लोग पानी को चाहे जहाँ ले जा सकते हैं। बाण बनाने वाले लोग (लुहार) बाणोंको चाहे जैसा नवा देते हैं; बढ़ई लकड़ीके कुंदेको नवा देते हैं; परन्तु जो पण्डित हैं, वे स्वयं अपनेको मन-चाहता स्वरूप दे देते हैं। वे अपनी वृत्तिको चाहे जिस ओर झुका देते हैं।

८१। जिस प्रकार प्रचण्ड भूधर (पर्वत) वायु के झकोरेसे नहीं डगमगाता, उसी प्रकार मतिमान् लोग निन्दा अथवा स्तुतिकी तनिक भी परवा नहीं करते।

८२। जो बुद्धिमान् हैं, वे धर्म्मश्रवणके कारण गंभीर, निर्मल और शान्त सरोवर के सदृश शान्तचित्त होते हैं।

८३। कितने भी संकट क्यों न आ पड़ें तथापि सज्जन अपने आचरण-क्रमका परित्याग नहीं करते; वे बकझक नहीं

करते तथा सुखकी इच्छा नहीं रखते। वे न तो सुखके कारण फ लते हैं और न दुःख से दुःखित होते हैं।

८४। जो मनुष्य अपने तथा परायेके लिए पुत्र, सम्पत्ति और अधिकारकी इच्छा नहीं रखता; जो अयोग्य-मार्ग-जन्य स्वोत्कर्षकी वाञ्छा नहीं रखता, वह मनुष्य सज्जन, ज्ञानी और सद्गुणी है।

८५। संसारके उस पार तक (पूज्य स्थिति को) पहुँचनेवाले लोग बहुत थोड़े हैं; परन्तु किनारेपरही इधर-उधर भटकने वाले (संसारमें व्याप्त) लोगोंकीही संख्या अमित है।

८६। धम्मका पूर्ण उपदेश प्राप्त होनेपर जो तदनुसार आचरण रखते हैं, वेही दुस्तर मृत्यु-लोक पार करनेमें भी समर्थ होंगे (निर्वाण पदको पहुँचेंगे)।

८७-८८। बुद्धिमान् मनुष्यको अज्ञान स्थितिका परित्याग कर अच्छी स्थिति (भिक्षु-वृत्ति) धारण करनी चाहिए। गृह छोड़ गृहहीन होजानेपर उसे सौख्य-हीन एकान्त वासमें भी सुख मानना चाहिए। समस्त सुखोंका त्याग कर और 'मेरा' 'मेरा' न चिल्लाते हुए उसे सर्व मानसिक व्याधियोंसे अपना छुटकारा कर लेना चाहिए।

८९। जिनके मनमें ज्ञान के (सात) तत्त्व पूर्णतया जम गये हैं, जो किसी वस्तु में आसक्त न हो, मुक्त दशामेंही निज सौख्य मानते हैं और जो अपनी सम्पूर्ण वासनाओं का

दमन कर स्वयं प्रकाशित हैं—वे इहलोकमें भी मुक्त रहते हैं।

सातवीं सीढ़ी

अर्हत् (पूज्य) वर्ग।

९० । जिसने जगत्-सम्बन्धी स्व-प्रवास पूर्ण कर लिया है, जिस ने दुःखका त्याग कर दिया है और सब बन्धनोंको तोड़ सब प्रकारसे अपनेको मुक्त कर लिया है, उसे भोक्तृत्व (दुःख) नहीं।

९१ । जिन्हें गृहमें सुख मालूम नहीं होता और जो पूर्ण विचार कर चुकने पर गृहका परित्याग करते हैं, उनका त्याग सरोवर छोड़कर चले गये हंसोंके समान है।

९२ । जिनके पास सम्पत्ति नहीं है, जो अभिमत आहार करते हैं और जिन लोगोंने अप्रतिबद्ध तथा शून्यमय निर्वाणकी जानकारी प्राप्त करली है, उनका मार्ग आकाशमें परिभ्रमण करनेवाले पक्षियोंके मार्गके समान दुराज्ञेय है।

९३। जिसकी तृष्णाएँ शान्त होगई हैं, जो विषयादि भोगोंमें निमग्न नहीं हुआ है, जिसने अप्रतिवद्ध तथा शून्यमय निर्वाणको जान लिया है, उसका मार्ग आकाशमें संचार करनेवाले पक्षियोंके मार्गके समान दुराज्ञेय है।

९४। जिसने किसी दृढ़ टेंववाले घोड़े की नाईं निजेन्द्रियोंको आवद्ध कर लिया है, जिसे अहंभाव नहीं है और जिसकी वासनाएँ लुप्त होगई हैं, ऐसे मनुष्य की देवता भी स्पर्धा करते हैं।

९५। जो मनुष्य निज कर्त्तव्य करता है, जो पृथ्वी तथा इन्द्र-वज्रके समान सहिष्णु है, वह पंकरहित सरोवर की नाईं निर्मल है। वह जन्म-मरणके आवागमनसे मुक्त रहता है।

९६। सम्यक् (सत्य) ज्ञानके द्वारा जिसने मुक्ति प्राप्त करली है, और जो इस रीतिसे स्थिरचित्त (शान्त) होगया है, उसके विचार, उसके शब्द और उसके कर्म—ये त्रिविध द्वार शान्त होते हैं।

९७। जो भोला नहीं है, जो अज (अनिर्मित) को जानता है, जिसने सब पाश तोड़ डाले हैं, जिसने सब मोहोंका नाश कर दिया है, जिसने सब प्रकारकी आशाओंका त्याग कर दिया है, वह मनुष्य सब मनुष्योंमें श्रेष्ठ है।

९८। शहरोंमें अथवा अरण्योंमें, गहरे जलमें अथवा सूखी धरती पर, जहाँ कहीं परम पूज्य (अरहंत) निवास करते हैं, वह स्थल आनन्दमय है।

९९। विरक्तोंको अरण्य आनन्ददायक मालूम होते हैं; जिस स्थानपर संसारको आनन्द नहीं होता, वहाँ विरक्तोंको आनन्द मालूम होता है। क्योंकि, वे सुखोपभोगोंकी विल्कुल अपेक्षा नहीं करते।

आठवीं सीढ़ी।

सहस्र वर्ग।

१००। हज़ारों शब्दोंसे परिप्लुत व्यर्थकी गपड़-चौदस सुनने की अपेक्षा बोध-युक्त एकही शब्द सुनना अच्छा है; क्योंकि उसके श्रवण करनेसे मनुष्यका अन्तरात्मा शान्ति को प्राप्त होता है।

१०१। सहस्रों निरर्थक शब्दोंसे भरी हुई गाथा (कविता) के श्रवण करनेकी अपेक्षा उस कविता का (धम्म गाथा) का सुनना कहीं अच्छा है, जिसका एकही शब्द श्रवण करने से मनुष्यको शान्ति-लाभ होता है।

१०२। निरर्थक शब्दोंकी सहस्रो कविताएँ मुखाग्र करनेकी अपेक्षा

धर्म्मके एकही शब्द को मुखाग्र करना अच्छा है ; क्योंकि उसके श्रवण करनेसे मनुष्योंको शान्ति प्राप्त होती है।

१०३। जो मनुष्य सहस्र बार सहस्र लोगोंको युद्धमें पछाड़ता है, उसकी अपेक्षा वह मनुष्य सब विजयी लोगोंमें श्रेष्ठ है, जो स्वयं अपने ऊपर जीत हासिल कर लेता है।

१०४-१०५। दूसरे सब लोगोंको जीत लेनेकी अपेक्षा आत्मविजय उत्तम है। जिसने स्वयं अपने ऊपर जय प्राप्त कर ली है, जो सर्वदा आत्म-संयमन करता है, उसकी जयको देवता, गन्धर्व और मार (कामदेव) कालिमा नहीं लगा सकते।

१०६। महीनों सहस्रों आहुतियाँ देकर यदि लगातार सहस्रों वर्षों तक यज्ञ किया जाय, तो इस यज्ञकी अपेक्षा उस सत्पुरुषकी क्षणभर भी सेवा करना अधिक श्रेयस्कर है, जिसका अन्तःकरण सत्यज्ञानसे पूर्ण प्रकाशमान हो चुका है।

१०७। अरण्यमें रहकर यदि सहस्र वर्षों पर्यन्त अग्नि का पूजन किया जाय और यदि सत्य-ज्ञान से पूर्ण प्रकाशित अन्तःकरण वाले सत्पुरुष की क्षण-भरही सेवा की जाय तो सहस्र सालों तक किये गये यज्ञकी अपेक्षा सत्पुरुषकी अल्प-सेवाही अधिक श्रेयस्कर है।

१०८। पुण्य की प्राप्तिके लिए इहलोकमें किसी भी प्रकार की आहुतियाँ अथवा वलिदान दिये जायँ तोभी उन सबका रत्ती-भर भी मूल्य नहीं। जो सत्य-व्रत हैं, उन्हें सम्मान देकर उनकी सेवा करना सबसे अधिक श्रेयस्कर है।

१०९। जो वृद्धोंको सदा प्रणाम करता है और उन्हें पूज्य मानता है, उसे आयुष्य, सौन्दर्य, सुख और बल ये चार वस्तुएँ विपुलता से प्राप्त होती हैं। *

११०। दुर्गुणी और विषय लोलुप मनुष्य यदि सौ वर्षतक जीवित रहे, तो उस मनुष्यकी अपेक्षा ऐसे मनुष्य का एक दिवस जीवित रहना भी अधिक अच्छा है, जो सदाचारी और विवेक-शील है।

१११। अज्ञान में इन्द्रियोंके आधीन रहकर जो मनुष्य सौ वर्षों-तक जीता है, उसकी अपेक्षा बुद्धिमान् एवम् विवेकशील मनुष्यका एक दिन जीना अधिक अच्छा है।

११२। आलसी और दुर्बल रहकर जो मनुष्य सौ वर्षोंतक जीवित रहता है, उसकी अपेक्षा ऐसे मनुष्यका एक दिन जीना ही अधिक अच्छा है, जिसने पूर्ण बल सम्पादन कर लिया है।

११३। आदि और अन्तका विचार न करते हुए जो मनुष्य सौ वर्षोंतक जीता है, उससे ऐसे मनुष्यका, जिसने यह अच्छी तरह जान लिया है कि आदि और अन्त क्या है, एकदिन जीनाही अधिक अच्छा है।

१११। शाश्वत-पद (निर्वाण) को न जानते हुए जो सौ सालोंतक जीता है, उसके जीवन की अपेक्षा ऐसे मनुष्यका एक

---

* मनु स्मृति में चार प्रकार के यश बतलाये हैं:—आयुष्य, विद्या, यश और बल।

दिनका जीवनही अधिक भला है, जिसे शाश्वत-पदकी पूर्ण जानकारी है।

११५। जिस मनुष्य को सर्वोत्तम धर्म्मकी जानकारी नहीं, वह यदि सौ वर्षों तक भी जीवन धारण करे तोभी उसके इस दीर्घ जीवनकी अपेक्षा सर्वोत्तम धर्म्मके ज्ञाताका एक दिनका जीवनही अधिक अच्छा है।

नवीं सीढ़ी।

पाप वर्ग।

११६। यदि किसीकी यह इच्छा हो कि मेरे हाथसे शीघ्रही कोई सत्कर्म होजाय तो उसे चाहिए कि वह बुरी बातोंसे अपने विचारोंको दूर रखे। यदि कोई सत्कृत्य आलस्यसे करता हो, तो उसके मनको बुरी बातोंसे आनन्द मालूम होने लगता है।

११७। यदि कोई दुराचार करे, तो वह उसे पुनः न करे। दुराचारका फल दुःख है।

११८। यदि कोई पुण्याचार करे, तो वह उसे पुनः करे ; उसके करनेमें आनन्द माने । पुण्याचरणका फल सुख है।

११९। जबतक दुष्कृत्यके फल नहीं मिलते, तबतक दुष्कृत्य के कर्त्ताको उससे सन्तोष मालूम होता है। परन्तु उसका बुरा कर्म जब परिपक्व होकर फल देता है, तब उसे मालूम होता है कि यह बुरा कर्म है।

१२०। जबतक सत्कृत्य के फल नहीं मिलते, तबतक सज्जनोंको भी बुरे दिन भोगने पड़ते हैं। परन्तु ज्योंही उसके सत्कर्म फलने लगते हैं, त्योंही उसे सुदिन प्राप्त होते हैं।

१२१। यह सोचकर कि हमें उससे (पापकर्मसे) कुछ भी उत्पात न होगा, कोई भी उसकी ओर दुर्लक्ष न करे। बूँद-बूँद पानीसे जिसतरह पानी का बर्तन भर जाता है, उसी तरह थोड़े-थोड़े पाप कर्मोंको करके मूर्ख पूर्ण पापी बन जाता है।

१२२। यह सोचकर कि पुण्यकर्मसे कुछ भी लाभ न होगा, किसी भी मनुष्यको उसकी ओर दुर्लक्ष नहीं करना चाहिए। बूँद-बूँद पानी से बर्तन भर जाता है। थोड़े-थोड़े पुण्यकर्मोंका संचय करनेसे ज्ञानी मनुष्य पुण्यशील बन जाता है।

१२३। जिस तरह वह व्यापारी, जिसके पास बहुतसा धन है, परन्तु साथी थोड़े हैं, अपने प्रवासमें धोकेका मार्ग

टालता है, अथवा जिसे अपना जीवन प्रिय है, वह जिस तरह विषको टालता है, उसी तरह मनुष्योंको दुष्कर्मों का त्याग करना चाहिए।

१२४। जिसके हाथमें घाव नहीं है, वह यदि विषको छुए तो कोई हानि नहीं ; क्योंकि जिस मनुष्यके घाव नहीं होता, उसे विषसे हानि नहीं होती। इसी प्रकार जो पापाचरण नहीं करता, उसे पाप नहीं होता।

१२५। हवामें धूल उड़ानेसे वह धूल जिस तरह उड़ानेवालेकेही मुँह पर आ गिरती है ; उसी प्रकार जो मूर्ख निरुपद्रवी, शान्त और निरपराधी मनुष्य को त्रास देता है, उसे उन दुष्कर्मों का फल स्वयंही भोगना पड़ता है।

१२६। कई एक लोग पुनर्जन्म पाते हैं, पापी नरकमें जाते हैं। जो पुण्यशील हैं, उन्हें स्वर्गप्राप्ति होती है। जो सर्व प्रकारके ऐहिक बन्धनोंसे मुक्त हैं, उन्हें निर्वाण प्राप्त होता है।

१२७। अन्तरिक्ष, समुद्र, गिरिकन्दरा और समस्त संसारमे ऐसा कहीं एक भी स्थान नहीं है, जहाँ मनुष्य अपने दुष्कर्मों से छुटकारा पा सके।

१२८। आकाश, समुद्र, गिरिकन्दरा और समस्त संसारमे ऐसा कहीं एक भी स्थान नहीं है, जहाँ मनुष्य मृत्युसे वच सकता हो।

———

दसवीं सीढ़ी।

दण्ड वर्ग ।

१२९। सब मनुष्य दण्ड से डरते हैं। सब मनुष्य मृत्यु से डरते हैं ; ध्यान मे रक्खो कि तुम भी उन्हींके समान हो और इसलिए हिंसा मत करो, और न किसीका संहार होने दो।

१३०। सब मनुष्य दण्ड से भय खाते हैं, सब मनुष्य अपने प्राण पर प्यार करते हैं ; ध्यानमें रखो कि तुम भी उनके समान हो और इसलिए वध मत करो, और न किसीका संहार कराओ।

१३१। जो मनुष्य हम लोगोंकी नाईं स्व-सुख की इच्छा रखने वाले प्राणियोंकी अपने सुखके लिए हिंसा करता है, उसे मृत्युके पश्चात् सुख न मिलेगा।

१३२। जो हम लोगोंके समानही स्व-सुख की इच्छा रखनेवाले प्राणियोंको अपने सुख के लिए क्लेश नहीं देता अथवा उनकी हिंसा नहीं करता, उसे मृत्युके वाद सुख मिलेगा।

१३३। किसीसे कठोर भाषण मत कर। जिससे तू कठोर भाषण करेगा, वह तुझे उसी प्रकारका उत्तर देगा। क्रोध-युक्त भाषण दुःखदायक होता है। दण्ड पर दण्ड प्राप्त होनेसे उसका परिणाम शरीर पर होता है।

१३४। फूटे घंटेके समान मत बोल—असंबद्ध प्रलाप मत कर, जिससे तुझे निर्वाण-पद मिल जायगा। झगड़े-झाँसेसे तुझे सदा दूर रहना चाहिए।

१३५। जिस प्रकार चरवाहा अपनी लकड़ीसे गायोंके झुण्ड को गौशालामें हाँक ले जाता है; उसी प्रकार जरा और मृत्यु जीवित्व को हाँका करते हैं (मनुष्य के आयुष्य को हरण किया करते हैं)।

१३६। मूर्ख मनुष्य जब कोई दुष्कर्म करता है, तब वह उसे मालूम नहीं होता। परन्तु आगे चल कर आग से जले हुए की नाईं वह अपने दुष्कर्मों से जलता है।

१३७। जो निरुपद्रवी और ग़रीब मनुष्योंको दुःख देता है, उसे (नीचे बतलाई गई) दस दशाओंमेंसे एक न एक दशा तत्काल प्राप्त होती है—

१३८। (१) उसे अत्यन्त दारुण दुःख होगा।

(२) उसकी हानि होगी।

(३) उसे शारीरिक घाव होगा।

(४) असहनीय वेदनाएँ होंगी अथवा बुद्धिभ्रंश होगा।

१३९। (५) अथवा उसे राजदण्ड मिलेगा।

(६) अथवा उसपर भयंकर अभियोग लगाया जायगा।

(७) उसके सम्बन्धियोंका संहार होगा, अथवा—

(८) उसके धनकी हानि होगी।

१४०। अथवा (९) बिजली के गिरनेसे उसके घर जल जायँगे, और—

(१०) मृत्युके बाद वह मूर्ख नरक में जायगा।

१४१। मनुष्यने जब तक वासनाओंका दमन नहीं कर दिया है, तब तक नग्न रहकर, जटा-जूट बढ़ाकर, मलिन रहकर, उपवास कर, देहमें भस्म पोतकर और समाधि लगाकर कभी भी उसकी चित्त-शुद्धि न होगी।

१४२। अच्छे वस्त्रोंके धारण करनेपर भी जो शान्ति धारण करता है, जो स्थिरचित्त, जितेन्द्रिय, आत्मनिग्रही और पवित्राचरणी होकर भी दूसरोंके दोष नहीं निकालता अथवा उनकी निन्दा नहीं करता, वही सच्चा ब्राह्मण, श्रमण (साधु) अथवा भिक्षु (धर्मोपदेशक) है।

१४३। जिस तरह तेज़ घोड़ेके लिए कोड़ेका काम नहीं पड़ता, उसी तरह क्या इस संसारमें इस तरहका कोई नम्र मनुष्य है, जो डाँट-डपट करनेके लिए दूसरोंको अवकाश नहीं देता?

१४४। अच्छा सिखाया हुआ घोड़ा कोड़े का स्पर्श होतेही अधिक चंचल और होशियार हो जाता है; उसी प्रकार

श्रद्धासे, सदाचार से, उत्साह से, ध्यान के योगसे और धर्मके परिशीलन से तुझे यह (शब्दप्रहारका) दुःख-वेग सहन होगा ; ज्ञान और आचारसे तू परिपूर्ण होगा।

१४५। नल किंवा नहर बनानेवाले लोग पानीको चाहे जहाँ ले जाते हैं ; बाण बनानेवाले लोग (लुहार) बाणोंको चाहे जैसा नवा देते हैं, बढ़ई लकड़ी के लठ्ठोंको नवा देते हैं। परन्तु जो बुद्धिमान् हैं, वे स्वयं अपनेको चाहे जैसा बना लेते हैं। *

ग्यारहवीं सीढ़ी।

जरा वर्ग ।

१४६। जब यह संसार निरन्तर दुःखाग्नि से भुन रहा है, त यहाँ हँसी किस तरह आ सकती है और आनन्द क्योंकर प्राप्त हो सकता है ? तुम लोग अन्धकार में पड़े हुए हो। फिर प्रकाशकी खोज क्यों नहीं करते ?

१४७। घावोंके मारे विकल हुए, व्याधिग्रस्त, अनेक चिन्ताओं से

* यह श्लोक ८० वें श्लोक के समान है।

व्याप्त और निर्बल—ऐसे इस कपड़े पहने हुए गोलेकी ओर (बूढ़ेकी ओर) देखो !

१४८। कृश हुआ, व्याधिग्रस्त और क्षणभंगुर यह शरीर—यह दुष्कर्म्मोंका समूह—नाशको प्राप्त होगा। मृत्युसे जीव नष्ट होगा।

१४६। ये सफ़ेद हड्डियाँ बरसातमे फेंक दिये गये कद्दू के समान हैं। फिर इन्हें देखने में क्या सुख है ?

१५०। हड्डियोंका क़िला बनाकर वह ख़ून और माँस से लीपा जाता है और फिर उसमें जरा और मृत्यु, गर्व और कपट वास करते हैं।

१५१। सज्जन लोग सज्जनोंसे यह कहा करते हैं कि राजाके सुन्दर रथका नाश होता है, शरीर भी नष्ट होता है ; परन्तु जो सदाचारी हैं, उनके सद्गुणोंका कभी नाश नहीं होता।

१५२। जिस मनुष्यने अल्प ज्ञान सम्पादन किया है, वह बैलकी नाईं बूढ़ा होता है। उसका शरीर बढ़ता है ; परन्तु उसका ज्ञान बिलकुलही नहीं बढ़ता।

१५३-१५४ * इस झोपड़ीके रचयिताकी खोज करते-करते उसकी

---

* ससार की विविध वासनाओं को मानों मार अथवा काम ही उत्पन्न करता है। इस कामदेव के पाश से छुटकारा पाने पर मनुष्य को सत्य ज्ञान प्राप्त होकर वह निर्वाण के निकट पहुँच जाता है। कामदेव के इस चक्कर में फँसे रहने के कारण मनुष्य को पुनर्जन्म धारण करना पड़ता है।

प्राप्ति होने तक मुझे अनेक जन्म लेने होंगे । बार-बार जन्म ग्रहण करना अत्यन्त दुःखदायक है। परन्तु, हे झोपड़ीके कर्त्ता! मैंने तुझे अब पूरा देख लिया है; यह झोपड़ी अब तू फिर न बाँधना। तेरे सब बाँस टूट गये हैं। तेरे लट्ठे टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं। मन के शाश्वत निर्वाण-पदके समीप तक पहुँच जानेसे उसकी समस्त तृष्णाएँ लुप्त हो गईं हैं।

१५५। जिन्होंने योग्य शिक्षाके अनुसार व्यवहार नहीं किया है, और जिन्होंने युवावस्थामें किसी भी धन का संचय नहीं किया है, वे मछलियोंसे रहित सरोवर के तटपर रहनेवाले क्षीण बगुलेकी नाईं मर जाते हैं।

१५६। जिन्होंने योग्य शिक्षाके अनुसार व्यवहार नहीं किया है, और जिन्होंने युवावस्थामें धनका संचय नहीं किया है, वे भंग हुए धनुषकी नाईं गत कालके लिए शोक करते हुए पड़े रहते हैं।

बारहवीं सीढ़ी।

आत्म (स्वतःसम्बन्धी) वर्ग।

१५७। यदि कोई मनुष्य स्वयं अपने ऊपर अत्यन्त प्रेम करता हो, तो उसे चाहिये कि वह चिन्ता-पूर्व्वक आत्मशोधन करता जावे। तीन * पहारोंमें (अवस्थाओंमें) से निदान एक पहारमें तो बुद्धिमान् मनुष्यको जागृत रहना चाहिये।

१५८। जो योग्य है, उसे मनुष्यको पहले स्वयं करना चाहिए और तदनन्तर वह लोगोंको उपदेश करे। ऐसा करनेसे बुद्धिमान् मनुष्यको दुःख न होगा।

१५९। मनुष्य दूसरोंको जिस तरहका आचरण रखनेका उपदेश करता है, उसी तरहका आचरण उसे स्वयं रखना चाहिए। पहले स्वतः पर अधीनता प्राप्त कर लेनेपर दूसरोंपर अधिकार प्राप्त कर लेनेमें कठिनाई नहीं पड़ती। स्वतःपर अधिकार प्राप्त कर लेना सचमुचमे बड़ी टेढ़ी खीर है—अत्यन्त दुष्कर है।

---

* तीन पहार—यानी बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था—इन तीन अवस्थाओं को तीन पहार कहा है।

१६० । मनुष्य स्वयं अपना स्वामी है, दूसरा स्वामी कौन हो सकता है? स्वतः पर स्वामित्व प्राप्त कर लेनेपर मनुष्यको ऐसा उत्तम स्वामी मिलता है कि जैसा दूसरोंको शायद ही कभी मिलता हो।

१६१ । जिस प्रकार हीरा मूल्यवान् पत्थरके टुकड़े करता है, उसी प्रकार स्वतः आचरण किया गया, स्वतः उत्पन्न किया गया और स्वतः बढ़ाया गया पाप मूर्खों को चकनाचूर कर डालता है।

१६२ । जिस प्रकार वृक्षको बिलकुल लपेट डालनेवाली लता वृक्ष को नवा देती है, उसी प्रकार जो महान् दुष्ट है, वह—जिस दशामें उसका रहना शत्रु चाहता हो—उस हीन दशा में स्वयं अपनेको डाल लेता है।

१६३ । दुष्कर्म्मों को और ऐसे कर्म्मों को करना, जो स्वयम् अपने लिए अत्यन्त अहितकारक और लांछनास्पद हैं, अत्यन्त सुगम होता है। परन्तु जो कर्म्म हितकारक और अच्छा है, उसे सम्पन्न करना बड़ा कठिन होता है।

१६४ । जो मूर्ख पूज्य (अर्हत्), श्रेष्ठ (आर्य) और सदाचारी लोगोंकी आज्ञाका तिरस्कार करता है, और असत्य मतका अवलम्बन करता है वह कत्थक * नामक बाँसके फलों की नाईं स्वयं अपने नाशका कारण बनता है।

* कत्थक—बाँस की एक जाति होती है। जब इसमें फल लगते हैं तब यह यातो मर जाता है या फलों के लिए काटा जाता है।

१६५। मनुष्य स्वयम्ही पापकर्म्म करता है, और उसकी भुगतान भी स्वयम् ही भोगता है। वह स्वयम् होकरही पाप-कर्म्मोंका त्याग करता है और स्वयम् ही अपनेको शुद्ध कर लेता है। शुद्धि और अशुद्धि ये हमारी हमेंही हैं। दूसरे को कोई भी शुद्ध नहीं कर सकता।

१६६। दूसरोंके कामके लिए—फिर वह कितना भी बड़ा क्यों न हो—हमें अपने काम को नहीं बिसार देना चाहिये। जब मनुष्यको यह मालूम हो जाता है कि हमारा कर्त्तव्य क्या है, तब उसे चाहिए कि वह अपना कर्त्तव्य करने के लिए निरन्तर सावधान रहे।

तेरहवीं सीढ़ी।

लोक वर्ग।

१६७। हीन धर्म्मका अवलम्बन मत करो। अविचारसे मत चलो। असत्य उपदेशका अनुसरण मत करो। संसार से मित्रता मत रखो।

१६८। जागृत रहो। आलसी मत रहो। नीतिधर्म्माचरण करो। जो नीतिमान् है, वह इहलोक और परलोक दोनोंमें आनन्दपूर्व्वक रहता है।

१६९। पुण्याचरणके मार्गको स्वीकार करो। पापाचरणके मार्ग को स्वीकार मत करो। जो सदाचारी है, वह इहलोक और परलोक दोनोंमें आनन्दसे रहता है।

१७०। समझ जाओ कि संसार बुलबुला अथवा मृगजलके सदृश है। जो संसारको इस प्रकार तुच्छ समझता है, उसकी ओर यमराज नहीं देखते।

१७१। आओ, और राजरथके समान चमकनेवाले संसार की ओर दृष्टि-पात करो। मूर्ख उसमें मस्त रहते हैं, परन्तु बुद्धिमान् उससे अलिप्त रहते हैं।

१७२। पहले के नशेका लोप होकर पीछेसे जो सावधान होता है—सुधमें आता है—वह मेघमण्डल से मुक्त हुए चन्द्रमा की नाईं संसारमें अपने प्रकाशको विस्तारित करता है।

१७३। जिसके पूर्व-दुष्कर्मों को भविष्यके सत्कर्म्मोंने ढाँप दिया है, वह मेघमण्डलसे मुक्त हुए चन्द्रमाके समान संसार को प्रकाशमान करता है।

१७४। जगत् अन्धकारमय हैं और यहाँ थोड़े ही लोगोंको दिखता है। जालसे छुटकारा पाये हुए पक्षियोंके समान थोड़ेही लोग इससे छुटकारा पाकर स्वर्गमें ज़ाते हैं।

१७५। हंस सूर्यके मार्गसे जाते हैं। वे अपनी अद्भुत सामर्थ्यके

योगसे नभ-मण्डलमें संचार करते हैं। जो बुद्धिमान् हैं, वे मार (कामदेव) और उसकी सेनाको जीतकर इस लोकसे मुक्त होते हैं। *

१७६। जब मनुष्य एक धर्म्माज्ञाका उल्लंघन कर, असत्यभाषण करने लगता है और परलोककी हँसी उड़ाने लगता है, तब ऐसा एक भी पाप नहीं बच रहता जिसे वह न करे।

१७७। जो कंजूस होते हैं, वे देवलोकमें कभी नहीं जाते। जो मूर्ख होते हैं, वे उदारता की कभी प्रशंसा नहीं करते। परन्तु जो मनुष्य सुज्ञ है, उसे उदारतामें बड़ा आनन्द मालूम होता है और उससे वह परलोकमें सुखी होता है।

१७८। पृथ्वी पर राज्य करना, किम्बा स्वर्गलोक का राज्य प्राप्त होना, अथवा समस्त लोकोंका स्वामित्व सम्पादन करना—इन सबकी अपेक्षा 'स्रोत आपन्न' नामक निर्वाण की पहली सीढ़ीका लाभ होना अधिक श्रेयस्कर है।

---

* मनुष्यों को नाना प्रकार के मोहपाशों में बद्ध करने वाला मार—कामदेव—है और ससार की विविध प्रकार की वासनाएँ मानों उसकी सेना है।

चौदहवीं सीढ़ी।

बुद्धवर्ग।*

—*—
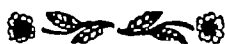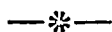
१७९। जिसकी जयपर पुनः जय प्राप्त नहीं की जा सकती, जिसकी जयका श्रेय इस संसारमें कोई भी नहीं ले सकता, ऐसे उस बुद्ध को (सिद्धको), उस त्रिकालज्ञ को, उस अगम्य को तुम किस मार्गसे आगे ले जा सकोगे?

१८०। जिस पर वासना के पाशों, किम्वा आमिषका अधिकार नहीं चलता, अथवा जिसे वे कुमार्ग की ओर नहीं झुका सकते, उस बुद्धको, उस त्रिकालज्ञ को, उस अगम्यको तुम किस मार्गसे आगे ले जा सकोगे?

१८१। जो बुद्ध (पूर्ण ज्ञानी) हैं, जो भूलके चक्करमें न पड़कर चिन्तनमें सदैव निमग्न रहते हैं, जो ज्ञान-सम्पन्न हैं और सर्व संग परित्याग कर जो शांतिसुखमें तल्लीन हैं, उनकी देवता लोग भी स्पर्धा करते हैं।

१८२। मनुष्य-जन्म दुर्लभ है, मर्त्य मानवके जीवितका संरक्षण

* जो सिद्ध किम्वा पूर्ण ज्ञानी हो गये हैं।

करना दुर्लभ है, सद्धर्मका श्रवणगोचर होना दुर्लभ है, और वुद्धका जन्म-बुद्धत्व प्राप्त होना दुर्लभ है।

१८३। सब बुद्धोंका (सिद्धोंका) यही उपदेश है कि पाप मत करो, पुण्य करो, अपने चित्तको शुद्ध करो।

१८४। वुद्धका कथन है कि सबमें महान् प्रायश्चित्त क्षमा है, दृढ़ सहनशीलताही निर्वाण है। जो दूसरोंको मारता है, वह प्रव्रजित (यती) नहीं, जो दूसरोंको मर्मभेदी वाक्य कहता है, वह श्रमण (साधु) नहीं है।

१८५। वुद्धका आदेश है कि दूसरोंपर दोष मत मढ़ो, दूसरोंको मत मारो, धर्म्माज्ञाके अनुसार निग्रहपूर्व्वक आचरण रखो, मिताहार करो, एकान्तमें सोओ और बैठो, और सदैव उच्च विचारोंमें निमग्न रहो।

१८६। सुवर्ण मुद्रिकाओं की झड़ी लग जानेपर भी लोभ की तृप्ति न होगी। वही बुद्धिमान् है, जो यह जानता है कि लोभ से, किम्वा कामसे प्राप्त हुआ सुख क्षणभंगुर और दुख-दायी है।

१८७। जिस शिष्यको (साधक को) पूर्ण ज्ञान हो चुका है, उसे स्वर्ग-सुखमें सन्तोष नहीं मालूम होता, किन्तु समस्त वासनाओंके नाश करनेमेंही उसे आनन्द मालूम होता है।

१८८। भीतिसे भयभीत होकर लोग जङ्गलोंमे, पहाड़ोंमें, झाड़ोंकी

कोहोंमें तथो पवित्र चैत्यके * तले आश्रय लेनेके लिये जाते हैं।

१८६। परन्तु वे स्थान सुरक्षित नहीं, वह आश्रय सर्वोत्तम नहीं। क्योंकि वहाँपर आश्रय लेनेसे मनुष्योंका सब दुःखोंसे छुटकारा नहीं होता।

१६०। जो मनुष्य बुद्ध, धम्मं और संघ इस त्रिसरणिका आश्रय करता है; वह (नीचे दिये गये) चार पवित्र वचनोंको पूर्णतया जानता है,—

१६१। आर्यसत्यचतुष्टय—(१) दुःख, (२) दुःखका मूल, (३) दुःखका अन्त और (४) दुःख-शमन करनेके अष्टांग मार्ग। अष्टांग मार्ग—(१) सत्य-दृष्टि, (२) सत्य-संकल्प, (३) सत्यवाचा, (४) सत्यकम्मं (५) सत्य-जीवन, (६) सत्य व्यायाम (७) सत्य-स्मृति और (८) सत्य-समाधि। ¶

१६२। जिस आश्रयके लेनेसे मनुष्य की समस्त दुःखों से मुक्तता हो सकती है, वही आश्रय सुरक्षित एवम् सर्वोत्तम है।

---

* चैत्य—अस्थि, दाँत, रक्षा इत्यादि बुद्ध-शरीर पर बाँधे गये मंदिर।

¶ आर्य-सत्य-चतुष्टय और अष्टांग-मार्ग ये दो बुद्ध-प्रणीत महान् सिद्धांत है। इन्हीं धर्मतत्त्वों का दृष्टांत होने पर बुद्धके मन को शांति प्राप्त हुई। इन्हीं मूल तत्त्वों पर आगे चल कर आपने अपना धम्मं प्रस्थापित किया। प्रथम दुःख के मूल को खोज करके निकालना चाहिये और बाद सत्य-संकल्प और सत्य आचार-विचार का अवलम्बन करना चाहिए। तभी मुक्ति किम्वा निर्वाण प्राप्त होता है।

१६३। बुद्ध-पदको पहुँचा हुआ अलौकिक पुरुष मिलना कठिन है : वह सब जगह जन्म नहीं लेता। जिस कुल में ऐसे साधु पुरुषका जन्म होता है, वह कुल धन्य है।

१६४। बुद्धका जन्म सुखकारक है, सद्धर्मका उपदेश सुख-कारक है, संघकी शान्ति सुखदायक है, जो शान्तिमय हैं उनकी भक्ति (सेवा) सुखदायक है।

१६५-१६६। जो पूज्यकी—फिर वे बुद्ध (ज्ञानी) हों, किम्बा उनके शिष्य हों—सेवा करता है, जो ऐसे मनुष्यकी सेवा करता है, जिसने अनेक प्रकारके दुष्ट कर्म्मोंपर जय प्राप्त कर ली है, जिसे निर्वाण प्राप्त हो गया है और जिसे किसी भी प्रकार का भय नहीं बच रहा है, उस मनुष्यके पुण्योंकी गिनती कोई न लगा सकेगा।

पन्द्रहवीं सीढ़ी।

सुख वर्ग।

१६७। जो हमसे द्वेषभाव रखते हैं, उनसे द्वेषभाव रखना छोड़ कर हम आनन्द में रहें। जो हमारा द्वेष करते हैं, उनसे वैर न रखकर हम आनन्द में रहें।

१६८। विषय-ग्रस्त लोगोंमें, हम विषयोंसे मुक्त होकर आनन्द-

पूर्व्वक रहें। जो व्याधि-ग्रस्त हैं उनमें, आओ, हम व्याधिमुक्त होकर आनन्दपूर्व्वक रहें।

१९९। आओ, हम अनुरक्त लोगोंमें रागहीन होकर आनन्दपूर्व्वक रहें। आसक्त लोगोंमें हम आसक्ति-विहीन होकर आनन्द से विचरें।

२००। हमारा कुछ भी नहीं है—यह कहते हुए हम आनन्दपूर्व्वक रहें। आओ, तेजसम्पन्न देवताओं के समान हम आनन्द में निमग्न रहें।

२०१। जयसे द्वेष पैदा होता है ; क्योंकि, जो जित हैं, वे दुःखी होते हैं। जिसने जयापजय दोनोंको तिलाजंली दे दी है, वह समाधान और सुखी रहता है। *

२०२। रागके समान अग्नि नहीं है। द्वेषकी नाई कलि नहीं है। इस देहकी यातनाओंके समान यातनाएँ नहीं हैं। शान्तिकी अपेक्षा अधिक सुख नहीं है।

२०३। सब रोगोंमें तृष्णा परम रोग है (जिनके कारण देह को पुनः-पुनः जन्म-मरण प्राप्त होता है, वे रोग) संस्कारका त्याग करना बड़ा कठिन है। इसका यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लेनाही निर्वाण है—वही परम सुख है। §

---

* सुख और समाधान से निद्रा लेता है।

§ स्कध सदृशं दुःख नास्ति। यानी रूप, वेदना, सज्ञा, सस्कार, विज्ञान ये पाच स्कध हैं। ये पुनर्जन्म का कारण होते हैं। भाव यह है कि इसके सिवा दूसरा जीव नहीं है। इनका नाश ही चिरशांति है।

२०४। आरोग्य बड़ी देन है और समाधान श्रेष्ठ धन है। विश्वास अति उत्तम सम्बन्धी है और निर्वाण सबसे श्रेष्ठ सुख है।

२०५। जिसने विवेक और शान्ति—इन दो रसोंका पान किया है, वही सच्चे धर्मामृतका मधुर पान करता है। भय और पातक से वह विमुक्त होता है।

२०६। आर्य्योंका (जो श्रेष्ठ हैं उनका) दर्शन शुभ होता है और उनका समागम निरन्तर सुखदायक है। यदि मनुष्य मूर्खोंका दर्शन न करेगा तो वह सचमुच सुखी होगा।

२०७। जो मूर्खोंके साथ जाता है, उसे सब मार्गोंसे दुःख होता है। ज्ञाता की सुहबतसे प्यारोंके सहवास की नाईं आनन्द होता है।

२०८। इसलिए, जिसप्रकार नक्षत्रोंके पीछे चन्द्रमा जाता है; उसी प्रकार जो चतुर, श्रीमान्, बहुश्रुत, सहनशील और कार्य-दक्ष सत्पुरुष हैं, उनके पीछे-पीछे तुम जाओ।

सोलहवीं सीढ़ी।

प्रिय वर्ग।

२०६। जो अपना जीवित-कर्त्तव्य भुलाकर, सुखके पीछे दौड़ता है और ध्यान करनेका कार्य्य छोड़कर, अभिमान के अधीन होता है, वह ध्यानमें सदैव निमग्न रहनेवाले मनुष्य से कुछ कालके बाद डाह करेगा।

२१०। यह अच्छा है किम्वा बुरा है—इस ओर मनुष्यको अधिक ध्यान न देना चाहिए। अप्रिय वस्तु का दर्शन होना और प्रिय वस्तु का दर्शन न होना दुःख का मूल है।

२११। इसलिए मनुष्य को किसी भी वस्तु पर प्रेम नहीं करना चाहिए। प्रिय वस्तु का नाश दुःख की जड़ है। जो किसीपर भी प्रीति नहीं करते किम्वा किसीका भी तिरस्कार नहीं करते, उन्हें किसी भी प्रकारका बन्धन नहीं है।

२१२। प्रिय वस्तु से दुःख उत्पन्न होता है। प्रिय वस्तु से भय उत्पन्न होता है। जो प्रेमसे विलग हो चुका; उसके पास शोक और भय कहाँसे फटकने पायँगे?

२१३। ममतासे शोक उत्पन्न होता है, ममताके कारण डर पैदा होता है। जो ममता से अलग है, उसे शोक और भय क्यों कर मालूम होंगे ?

२१४। आसक्तिके कारण शोक होता है, आसक्तिके कारण भय उत्पन्न होता है। जो आसक्ति-रहित हो चुका है; उसे शोक और भीति कहाँ की ?

२१५। कामसे शोक उत्पन्न होता है, कामसे भीति उत्पन्न होती है। जिसने कामसे छुटकारा पा लिया है, उसे न शोक है और न भय है।

२१६। तृष्णा से शोक उत्पन्न होता है, तृष्णा से भय उत्पन्न होता है। जिसने तृष्णासे छुटकारा पा लिया है, उसे शोक और भीति नहीं।

२१७। जो सद्गुणी और बुद्धिमान् है, जो न्यायी, सत्यभाषी और स्वकर्त्तव्यदक्ष है, उसपर लोग प्रीति करते हैं।

२१८। अनिर्वाच्य निर्वाणपदकी प्राप्तिके लिए जिसके मनमें इच्छा उत्पन्न होगई है, जो मनमें सन्तोष धारण करता है और जिसका मन कामसे व्याप्त नहीं हुआ है, उसे 'ऊर्ध्वस्रोत' (वासनारहित होकर-उन्नत स्थिति को प्राप्त हुआ) कहते हैं।

२१९। बहुत दूरका प्रवास करके जो मनुष्य कई दिनोंके बाद कुशलपूर्व्वक घर लौट आया है, उसे देखकर उसके सम्बन्धी, सुहृद् और ममताके लोग नमस्कार करते हैं।

२२०। जिस प्रकार सम्बन्धी अपने लौट आये हुए मित्रका आदर-सत्कार करते हैं, उसी प्रकार जिसने पुण्यकृत्य किये हैं, वह मनुष्य यह लोक छोड़कर यदि परलोकको गया, तो वहाँपर उसके सत्कृत्य उसका आदर-सत्कार करते हैं।

सत्रहवीं सीढ़ी।

क्रोध वर्ग।

२२१। मनुष्यको क्रोध छोड़ देना चाहिए, गर्वका त्याग कर देना चाहिए और सब प्रकारके पाशोंसे अपना छुटकारा कर लेना चाहिए। जो नामरूपमें आसक्ति न रखकर विरक्त है, उसे दुःख प्राप्त नहीं होता।

२२२। तेज़ चलनेवाले रथकी नाईं प्रज्ज्वलित क्रोधको जो मनुष्य सम्हालता है, उसे ही मैं सच्चा सारथी कहता हूँ। यदि इतर जन सारथी हुए भी तो वे निरे लगाम के पकड़ने वाले हैं।

२२३। मनुष्यको चाहिए कि वह प्रेमके योगसे क्रोधपर जय

प्राप्त करे, अच्छे कर्मोंसे बुरे कर्मोंका नाश करे; कृपण को दानके योगसे हरावे और असत्य बोलने-वालोंको सत्यभाषण करके जीते।

२२४। सत्य बोलना चाहिए, क्रोध न करना चाहिए, यदि किसी ने कोई अल्प याचना की, तो उसे सन्तुष्ट करना चाहिए। इन तीन सीढ़ियोंसे तुम देवताओंके समीप पहुँच जाओगे।

२२५। जो मुनिजन किसी भी प्रकारकी हिंसा नहीं करते, जो सत्पुरुष इन्द्रियोंका संयमन करते हैं, वे अटल निर्वाण पदको प्राप्त होंगे। वहाँ पहुँचनेपर उन्हें लवलेशमात्र भी दुःख न होगा।

२२६। जो निरन्तर जागृत रहकर अहोरात्र अध्ययन करते हैं, और जो निर्वाण-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं, उनके समस्त दोष नाशको प्राप्त होते हैं।

२२७। जो मौन धारण कर बैठता है, उसे लोग दोष देते हैं, जो बहुत बोलता है, उसपर भी लोग दोष मढ़ते हैं और जो मितभाषी है, वह भी दोषका भागी बनता है। सारांश यह, कि इस संसारमें कोई भी ऐसा नहीं है, जिसके माथे लोग दोष न मढ़ते हों। यह अतुलनीय कहावत आजकलकी नहीं, अत्यन्त प्राचीन है।

२२८। लोग जिसकी निरन्तर निन्दा किम्वा स्तुति करते हैं, ऐसा मनुष्य इस जगत्में न पूर्व-कालमे कभी

हुआ हैं, न भविष्यमें कभी होगा और न वर्त्तमान कालमें ही वर्त्तमान है।

२२६-२३०। जिसका आचरण दोषरहित है, जो बुद्धिमान्, ज्ञान-सम्पन्न और सद्गुणी है—और इस तरह जिसकी रोज़ प्रशंसा होती है, उसे, जंबू-नदीके स्वर्णकी नाईं, दोष मढ़नेका साहस कौन करेगा? देव और ब्राह्मण दोनों उसकी स्तुति करते हैं।

२३१। रागके अधीन मत हो। कायाका निग्रह करो। कायिक दोषोंका (पातकोंका) त्याग कर काया के साथ सदाचरण रखो।

२३२। रागमें जिह्वाको बेरोक मत होने दो। जिह्वाका निग्रह करो। वाचिक दोषोंका (पातकोंका) त्याग करो, और वाचा से पुण्याचरण करो।

२३३। मनमें रागको मत रक्खो, मनका निग्रह करो। मानसिक पापाचरणोंको छोड़कर मनसे पुण्याचरण करो।

२३४। जिन्होंने कायाका निग्रह किया है, वाचाका निग्रह किया है और मनका निग्रह किया है, वे ज्ञाता लोग सचमुचमें पूर्ण निग्रही हैं।

अट्ठारहवीं सीढ़ी।

मल वर्ग।

२३५। तुम अब पके पत्ते की नाईं होगये हो। यमदूत तुम्हारे पास आन टपके हैं; तुम मरण-द्वारके सन्निध खड़े हो और तुम्हारे पास प्रवास की बिल्कुल सामग्री नहीं है।

२३६। तुम अपनी रक्षाके लिए द्वीप तैयार करो, भरसक मिहनत करो और बुद्धिमान् बनो। अन्तर्यामके मलका नाश होकर तुम ज्योंही पापसे मुक्त हो जाओगे, त्योंही श्रेष्ठ लोगों (आर्य्यों) के स्वर्ग में तुम्हारा प्रवेश होगा।

२३७। तुम्हारा आयुष्य पूर्ण हो चुका है और तुम मृत्युके (यमके) बिल्कुल निकट आन पहुँचे हो, मार्गमें तुम्हारे लिए आरामकी जगह नहीं और तुम्हारे पास प्रवासकी सामग्री भी नहीं है।

२३८। स्वतःकी रक्षाके लिये द्वीप तैयार करो। भरसक प्रयत्न करो। तुम्हारे अन्दरका मल निकल जानेसे जहाँ तुम दोषरहित होगये, वहाँ तुम जन्म और जराके चक्करमें पुनः न फँसोगे।

२३९। जिस प्रकार सुनार चाँदीका मैल निकाल डालता है, उसी

प्रकार ज्ञाताको अपने अन्तःकरणका मैल प्रतिक्षण थोड़ा-थोड़ा निकालते जाना चाहिये।

२४०। लोहेसे उत्पन्न होनेवाला ज़ंग एक वार लोहेपर चढ़ जाने से जिस प्रकार लोहेको खा डालता है, उसी प्रकार जो सन्मार्गका उल्लंघन करता है, उसके पाप-कर्म्म उसे दुर्गतिको पहुँचा देते हैं।

२४१। ध्यानका मल (प्रार्थना का मल)- अनभ्यास—बारम्बार पाठ न करना—है। घरका मल उसकी नादुरुस्ती है। शरीर का मल आलस्य है। पहरेवालोंका मल असावधानता है।

२४२। स्त्रियोंका कलंक कुबर्ताव है। दाताका लांछन लोभ है। सब प्रकारका दुराचार इहलोक और परलोक दोनोंमें लांछनास्पद है।

२४३। परन्तु, इन सब मलोंमें अत्यन्त गन्दा मल अविद्या किम्वा अज्ञान है। हे भिक्षुओ ! तुम इस मलको धोकर निर्मल बनो।

२४४। जो निर्लज्ज, दूसरोंकी हत्या करने वाला हत्यारा, अपमान करनेवाला, साहसी और चाण्डाल है, उस काक-वृत्तिके मनुष्यको यह जीवन-यात्रा बड़ी सुगम है।

२४५। जो विनयशील, पवित्र रहनेकी ओर सदैव ध्यान देने वाला, निस्पृह, शान्त, निष्कलंक और निपुण है, उसे यह जीवन-यात्रा बड़ी कठिन है।

२४६। जो हिंसा करता है, जो असत्य-भाषण करता है, जो दूसरोंके द्वारा दिये विना उनकी वस्तुओंका अपहरण करता है, जो विदेश में जाता है—वह *

२४७। और जो मद्य सेवनमे विल्कुल चूर होता है, वह इहलोक-मेंही अपने हाथसे अपनी जड़ खोद डालता है। (स्वयं अपने हाथसेही आत्मनाश कर लेता है)।

२४८। रे मनुष्य, ध्यानमें रख कि, जिनकी वासनाएँ रोकी नहीं जातीं, वे शोचनीय स्थितिमें रहते हैं। इस बातका हमेशा ख्याल रख, जिससे तुझे लोभ और दुर्व्यसन चिरकाल दुःखमें न डालेंगे।

२४९। लोग अपनी श्रद्धा और अपने सन्तोषके अनुरूप धर्म्म करते हैं ; दूसरोंको दिये गये अन्न-जलसे जो अपने मनमें जलता-भुनता है, उसे रातदिन शान्ति नहीं।

२५०। जिस मनुष्यके मनसे इस प्रकारकी भावनाका लोप हो गया है और उसका जड़ सहित नाश होगया है, उस मनुष्य को रातदिन शान्ति प्राप्त होती है।

२५१। क्रोधके समान अग्नि नहीं, द्वेषके समान मगर (ग्राह) नहीं, मायाके समान पाश नहीं और तृष्णाके समान प्रवाह नहीं है।

२५२। दूसरोंके दोष सहजमें दीख पड़ते हैं, परन्तु स्वयं

---

* श्लोक नंबर २४६ और २४७ का संबंध एकत्र है। २४९ और २५०वें श्लोक भिक्षुओं के लिए उपदेशित हैं।

अपने दोषोंका दृष्टिगोचर होना बड़ा कठिन है। मनुष्य दूसरोंके दोषोंको भूसे की नाई छान निकालता है; परन्तु जिस तरह झूँठा जुआरी दूसरे जुआरीसे अपना झूँठा दाँव छिपाता है, उसी प्रकार मनुष्य स्वयं निजके दोषोंको संसार से छिपाता रहता है।

२५३। मनुष्य दूसरेके दोषोंको देखकर यदि हमेशा क्रोधित होने लगे, तो उसका क्रोध किम्वा मनोविकार बढ़ेगा और उसके हाथसे उसका निर्दलन न हो सकेगा।

२५४। आकाश में मार्ग नहीं, वाह्यकृति से (वेषसे) मनुष्य श्रमण (साधु) नहीं होता। जनको प्रपंचमें आनन्द होता है; जो तथागत (वुद्ध) हैं, वे प्रपंचसे मुक्त रहते हैं।

२५५। आकाशमें मार्ग नहीं। वाह्यकृतिसे मनुष्य श्रमण नहीं होता। प्राणी शाश्वत नहीं; परन्तु जो वुद्ध हैं, उन्हें संस्कारके वन्धन नहीं हैं।

उन्नीसवीं सीढ़ी।

धर्मशील वर्ग।

५६-२५७। जो मनुष्य किसी भी वातका ज़बरदस्ती से फ़ैसला करता है, वह धर्मशील (न्यायी) नहीं; जो सत्य-असत्य

की छानवोन करता है, जो विद्वान् है, जो दूसरोंके बलात्कारसे नहीं, किंतु धर्म्म और न्यायसे जनताका अगुआपन धारण करता है और जो धर्म्म-संरक्षित एवम् मतिमान् है, उसे धर्म्मशील कहते हैं।

२५८। यदि मनुष्य बहुत बोले, तो वह पण्डित नहीं कहा जा सकता; जो सहनशील है, जो किसीका तिरस्कार नहीं करता और जिसका हृदय भीतिसे रीता है उसे पण्डित कहते हैं।

२५९। बहुतसी बकझक करनेसे मनुष्य धर्म्मशील नहीं कहा जा सकता। सच्चा धर्म्मशील वही है, जो धर्म्मानुसार आचरण करता तथा धर्म्म की उपेक्षा नहीं करता है, फिर उस का धर्म्म-अध्ययन थोड़ा भी क्यों न हो।

२६०। मनुष्यके बाल सफ़ेद हो जानेसे वह बूढ़ा नहीं होता। वह यदि वयातीत भी हुआ, तो भी लोग कहते हैं कि वह बेचारा व्यर्थ बूढ़ा हुआ।

२६१। सत्यधर्म्म, सद्गुण, प्रेम, संयमन, नियमितता आदि गुणों से अलंकृत जो मनुष्य दोषरहित और ज्ञाता है, उसे ही वृद्ध कहना चाहिए।

२६२। जो मनुष्य ईर्षालु, लोभी और अप्रामाणिक है, वह चाहे कितनी भी बकझक क्यों न करे किम्वा उसका वर्ण कितना भी सुन्दर क्यों न हो, तो भी वह श्रेष्ठ किम्वा मान्य नहीं होता।

२६३। जिनके ये समस्त दोष नष्ट होगये हैं और उनका जड़ सहित नाश हो गया है और जहाँ वह द्वेषरहित तथा ज्ञानसम्पन्न होगया वहाँ उसे लोग श्रेष्ठ किम्वा सर्व-मान्य कहते हैं।

२६४। जो मनुष्य नियमोंका पालन नहीं करता और जो असत्य-भाषण करनेवाला है, वह चाहे मुण्डन भी क्यों न करावे, तो भी 'श्रमण' नहीं होता। तृष्णा और लोभके पाशोंमें जब तक मनुष्य बद्ध है, तबतक क्या उसे श्रमण कह सकते हैं ?

२६५। जो मनुष्य पापोंका, फिर वे चाहे छोटे हों किम्बा बड़े, शमन करता है, उसे श्रमण (शान्तचित्त) कहते हैं। क्योंकि, वह समस्त पापोंका शमन कर चुकता है।

२६६। दूसरोंके यहाँ जाकर भिक्षा माँगनेसे मनुष्य भिक्षु नहीं होता। जो सिर्फ़ भिक्षा माँगता है, वह भिक्षु नहीं—परन्तु भिक्षु वही है, जो सम्पूर्ण धर्म्मका अवलम्बन करता है।

२६७। जो मनुष्य पुण्य और पापसे अलिप्त रह कर ब्रह्मचर्यका पालन करता है, जो पवित्र है और जो इहलोकमें ज्ञानसे काल-क्रमण करने वाला है, वही सच्चा भिक्षु कहलाता है।

२६८-२६६। जो मूर्ख और अज्ञानी है, वह चाहे मौन भी धारण करे तोभी मुनि नहीं होता। परन्तु जो ज्ञाता तुला लेकर अच्छी बातें ग्रहण करता और बुरी बातोंका त्याग करता है, वह मुनि है ; इससे उसे मुनित्व प्राप्त होता है।

जो दोनों पक्षोंका विचार करता है, उसे उभय-लोकोंमे मुनि नाम प्राप्त होता है।

२७०। जो मनुष्य जीवित प्राणियोंको दुःख देता है, वह आर्य (श्रेष्ठ) नहीं। क्योंकि, जो समस्त प्राणियोंपर दया करता है, उसेही आर्य की संज्ञा प्राप्त होती है।

२७१-२७२। हे भिक्षो! जब तक तूने वासनाका निर्दलन नहीं किया है, तब तक व्यर्थ यह डींग मत मार कि नियम से, व्रतसे, बहुत अध्ययन से, समाधि लगानेसे किंवा अकेले सोनेसे जो नैष्कर्म्य शान्ति-सुख प्राप्त नहीं होता, और ऐहिक विषयों मे फँसे हुए मनुष्योंको जिसका कदापि अनुभव प्राप्त नहीं होता—वह सुख मुझे प्राप्त होता है।

बीसवीं सीढ़ी।

मार्ग वर्ग।

२७३। सब मार्गों में अष्टांग मार्ग श्रेष्ठ है। सत्योंमें चार श्रेष्ठ हैं;* जिसे देखनेके लिए आँखें हैं, वह मनुष्य सबमें श्रेष्ठ है।

---

* अष्टांग मार्ग और आर्य-सत्य-चतुष्टय के लिए पाठक कृपा कर १६१ नंबर का श्लोक देखें।

२७४। मनको शुद्ध करनेके लिए यही मार्ग है, इसके सिवा दूसरा मार्ग नहीं। इसी मार्गसे जाओ। ऊपर कहे हुए मार्गके सिवा अन्य मार्ग मारके (कामदेवके) पाश हैं।

२७५। इस मार्गसे जानेपर तुम अपने दुःखोंका अन्त कर सकोगे। शोक-शल्य किस प्रकार दूर किया जा सकेगा, इसकी जानकारी प्राप्त हो जानेके पश्चात् मैंने इस मार्ग का बोध किया है।

२७६। तुम्हें स्वयम् प्रयत्न करना चाहिए। तथागत (बुद्ध) सिर्फ़ उपदेशक हैं। जो सुविचारी लोग इस मार्गका अवलम्बन करते हैं, वे मारके (कामदेवके) पाशोंसे छुटकारा पा जाते हैं।

२७७। "सर्व निर्मित वस्तुएँ नाशको प्राप्त होती हैं"— जो मनुष्य ऊपर लिखे हुए इस तत्त्वको जानता है और मनमें इसका आचार करता है, वह दुःख भोगनेके लिए सहन-शील बनता है। शुद्धता प्राप्त होनेका यही मार्ग है।

२७८। "सर्व निर्मित वस्तुएँ दुःखमय और शोकमय हैं—" जो मनुष्य ऊपर लिखे हुए तत्त्व को जानता है और मनमे उसको आचरता है, वह दुःख भोगनेमें सहनशील बनता है। चित्तशुद्धिका यही मार्ग है।

२७९। "सर्व आकृतिमय वस्तुएँ असत्य हैं"—जो यह जानता है और इसको अपने मनमें आचरता है, वह दुःख भोगनेमे

सहनशील होता है। चित्तशुद्धि होनेका यही मार्ग है।

२८०। जागनेका समय हो जानेपर भी जो अपनी निद्रा नहीं छोड़ता, युवा और सुदृढ़ होते हुए भी जो आलस्य से पूर्णतया ग्रसित होगया है, जिसके निश्चय और विचार दुर्बल हैं, उस आलसी मनुष्य को ज्ञान-मार्ग कदापि प्राप्त नहीं हो सकेगा।

२८१। वाचापर अधिकार रखकर और अपने मनका आकलन करके मनुष्य कायासे कभी भी दुष्कर्म न करे। जो मनुष्य इन त्रिविध कर्म-मार्गोंसे पवित्र आचरण रखता है, उसे मुनियोंके द्वारा उपदेश किया गया मार्ग सहजही में प्राप्त होता है।

२८२। आस्था होनेसे ज्ञान की बाढ़ होती है, आस्थाके अभावमें ज्ञान क्षयको प्राप्त होता है। जब मनुष्य को ज्ञानकी वृद्धि और क्षयके इन दो मार्गोंकी जानकारी होजाय, तब उसे वही मार्ग स्वीकार करना चाहिए, जिससे ज्ञान की वृद्धि हो।

२८३। (तृष्णा का) एक ही वृक्ष न काटकर समस्त जंगलही काट डालो! यह तृष्णारूपी जंगलही धोखेका मूल है। इस जंगलके (तृष्णाके) छोटे-बड़े वृक्ष-पौधोंको काट डालने पर, हे भिक्षुओ, तुम इस जंगलसे बाहर आ जाओगे— तुम्हारी रिहाई होगी।

२८४। जब तक स्त्रियोंके प्रति आसक्ति थोड़ी भी कम नहीं हुई है,

तब तक जिस तरह दूध पीनेवाला बछड़ा अपनी मातापर अवलम्बित रहता है, उसी तरह उनका मन स्त्रियोंके प्रति बद्ध रहता है।

२८५। शरत्कालके कमलकी नाईं तुम आत्मप्रीतिको अपने हाथ से काट डालो ; शान्ति के मार्गका अवलम्बन करो। सुगतने (बुद्धने) निर्वाण-मार्ग बतला दिया है।

२८६। मूर्ख मनुष्य विचार करता है कि बरसात में मैं यहाँ रहूँगा ; गर्मी और ठंढमें भी यहीं रहूँगा। परन्तु वह अपनी मृत्यु का तनिक भी विचार नहीं करता।

२८७। रात्रिमें निद्रित ग्रामको जिस प्रकार महापूर बहा ले जाता है, उसी प्रकार लड़कों-बच्चों तथा गाय-बैल आदि पशुओंके बारेमें जिसकी ख्याति है और इन सबोंमें जिसका मन बिल्कुल गड़ गया है, उस असावधान मनुष्यको मृत्यु अचानक ले जाती है।

२८८। जहाँ मनुष्यको मृत्युने एक बार गाँठ लिया तहाँ उसे फिर पिता, पुत्र एवम् इतर स्वकीय जनोंका रत्तीभर भी उपयोग नहीं होता।

२८९। जिस बुद्धिमान् और सज्जन मनुष्य को इस तत्त्वकी जानकारी होगई है, वह शीघ्र सांसारिक बन्धनोंको काट डालता है।

इक्कीसवीं सीढ़ी।

प्रकीर्ण (विविध) वर्ग।

२६०। यदि अल्प सुखका त्याग करनेसे अधिक सुख प्राप्त होता है, तो ज्ञाता को अल्प सुखका त्याग कर अधिक सुखकी इच्छा रखनी चाहिए।

२६१। दूसरोंको दुःख देकर उससे जो कोई स्वयं अपने लिए सुख-प्राप्ति की वाञ्छा रखता है, वह द्वेष-शृंखलाओं में बद्ध होनेके कारण द्वेष से कभी भी छुटकारा नहीं पाता।

२६२। जो विहित कर्म्मों की उपेक्षा करते हैं और ऐसे कर्म्म करते हैं जो न करने चाहिएँ, उन अनियंत्रित और अविचारी मनुष्योंकी वासनाएँ निरन्तर बढ़ती रहती हैं।

२६३। परन्तु जो अपनी देहमें निरन्तर जागृत रहते हैं, अयोग्य कर्म्मों को नहीं करते और जो कर्तव्यको ध्यानपूर्व्वक करते हैं, उन बुद्धिमान् और दक्ष मनुष्योंकी वासनाओंका अन्त होता है।

२६४। सच्चा ब्राह्मण चाहे अपने माता-पिताको मार डाले, दो बलवान् राजाओंकी हत्या कर डाले और राज्यकी समस्त प्रजाका भी संहार कर डाले, तो भी उसे उसके लिए कोई दण्ड नहीं है।

२९५। सच्चा ब्राह्मण चाहे अपने माता-पिताको, दो श्रोत्रिय (वेदोंमें निष्णात) राजाओंको और इनके सिवा किसी कीर्तिमान् मनुष्य को भी मार डाले, तोभी उसे उसके लिए कोई दण्ड नहीं है। *

२९६। गौतमके (बुद्धके) शिष्य निरन्तर बिलकुल जागृत रहते हैं और उनका चित्त अहोरात्र निरन्तर बुद्ध में रमा रहता है।

२९७। गौतमके (बुद्धके) शिष्य निरन्तर विलकुल जागृत रहते हैं, और उनका चित्त अहोरात्र सदा धर्ममें रमा रहता है।

२९८। गौतमके (बुद्धके) शिष्य निरन्तर बिल्कुल जागृत रहते हैं, और उनका चित्त सर्वदा संघमें रमा रहता है।

२९९। गौतमके शिष्य निरन्तर बिल्कुल जागृत रहते हैं और उनका मन रात-दिन अपने शरीरकी विवंचना में (कायासे सदाचारार हो, दुराचार न होवे) रमा रहता है।

३००। गौतम के शिष्य निरन्तर बिल्कुल जागृत रहते हैं, और अहोरात्र सदा दयार्द्र रहने में उनके चित्त को उत्साह (उल्लास) मालूम होता है।

३०१। गौतम के शिष्य निरन्तर बिल्कुल जागृत रहते हैं, और अहोरात्र सदा ध्यानमें निमग्न रहने में उन्हें आनन्द मालूम होता है।

---

* नोट—२९५—(तात्त्विक अर्थ) जिसने व्याघ्रपचम यानी धर्म-जीवन के पाँच शत्रुओं (१) काम (२) अहङ्कार (३) हिंसा (४) आलस्य और (५) संदेहका नाश कर डाला है, उसे उसके लिये पातक नहीं।

३०२। साधु होनेके लिए संसारका त्याग करना बड़ा कठिन है। संसारमें रहकर उपभोग लेना बड़ा कठिन है। मठ में रहना औघट है और संसारमें रहना भी उसी प्रकार दुर्घट है। हमजोलियोंमें मिलजुलकर रहना दुःखदायी है और अकेला भटकनेवाला भिखारी भी दुःख से व्याप्त होगया है। अतएव कोई भी भिखारी बनकर भटकता न फिरे, जिससे उसे दुःख नहीं होगा।

३०३। जो मनुष्य श्रद्धा-युक्त, सदाचारी, यशस्वी और समृद्ध है, वह कहीं भी क्यों न जाय, सब ठौर उसका आदर होता है।

३०४। हिमाच्छादित पर्वतकी नाईं अच्छे मनुष्योंका तेज बहुत दूरतक पहुँचता है। पर जो लोग बुरे होते हैं, वे रातमें छोड़े गये बाणकी नाईं किसीके भी दृष्टि-पथ में नहीं आते।

३०५। जो सदैव इस तरह अकेला बैठता और अकेला सोता है, मानो वह अरण्य में ही वास करता हो और जिसने स्वयम् अपने पर (नीच प्रवृत्तियोंपर) जीत हासिल करली है, उसेही वासनाके दमन करनेका श्रेय प्राप्त होता है।

बाईसवीं सीढ़ी ।

निरय (नरक) वर्ग ।

३०६ । जो कुछ भी न रहते हुए कहता है कि है, वह नरक के पास पहुँचता है । उसी प्रकार, किसी कर्म्मके कर चुकनेपर भी जो यह कहता है कि इसे मैंने नहीं किया है, वह भी नरकमें जाता है । वे दोनों पाप-कर्त्ता होनेके कारण मृत्युके अनन्तर समान स्थिति में रहते है।

३०७ । जिन्होंने पीत वस्त्र (भिक्षुवेष) परिधान किये हैं, ऐसे कई लोग दुराचारी और अशोक वृत्तिके होते हैं । ये पापी लोग अपने दुष्कर्म्मों के योगसे नरकमें जाते हैं ।

३०८ । दुराचारी मनुष्य भिक्षापर उदर-भरण करनेकी अपेक्षा यदि धकधक जलनेवाली अग्नि की नाईं लाल भभूका लोहेका गोला भक्षण करे, तो अच्छा है ।

३०९ । जो अविचारी मनुष्य पर-स्त्रीकी अभिलाषा करता है, उसे चार प्रकारके फल मिलते हैं:—(१) अपयश (२) निद्रा को नाश करनेवाली चिन्ता (३) दण्ड और अन्तमें (४)-नरक ।

३१० । अपने मनमें परायी स्त्रीके बारेमें पाप-वासना मत रखो । क्योंकि इससे मनुष्य अपयश का भाजन बनता है, वह कुमार्ग (नरक) में जाता है, जो भीति से ग्रस्त हैं, उन्हें भीति-ग्रस्तोंके समागमसे अल्प सुख-प्राप्ति होती है और इसके सिवा राजा भी उन्हें कड़ी सज़ा देता है ।

३११ । कुश घास (काँस) की पत्तियोंको ठीक तौरपर न पकड़नेसे जिस तरह हाथ कट जाता है, उसी प्रकार यदि भिक्षुत्वका पालन ठीक तौरपर न किया जाय, तो वह मनुष्य को नरक में पहुँचाता है ।

३१२ । अविचार-पूर्व्वक किये हुए कृत्यसे, भंग किये गये व्रतसे और नियमपूर्व्वक आचरण करनेमें टालमटोल करनेसे तनिक भी फल-प्राप्ति नहीं होती ।

३१३ । जिस कृत्यका करना विहित है, वह अवश्य किया ज़ावे । उत्साह-पूर्व्वक उसके पीछे पड़ना चाहिए । बेफ़िक्रीसे आचरण करनेवाला प्रवासी (यति) वासनारूपी धूल-मात्र बहुत उड़ाता है ।

३१४ । दुष्कर्म्मको न करनाही अच्छा है ; क्योंकि, उससे मनुष्यको आगे चलकर पश्चात्ताप होता है । सत्कर्म्मको करना अच्छा है ; क्योंकि, उसके करनेसे मनुष्यको पश्चात्ताप नहीं होता ।

३१५ । सीमाके दुर्ग पर जिस तरह भीतर और बाहरसे संरक्षणका उत्कृष्ट प्रबन्ध किया हुआ रहता है, उसी प्रकार मनुष्यको

अपनी संरक्षा करनी चाहिए। · एक पल भी व्यर्थ न जाने देना चाहिए। जो योग्य अवसर को हाथसे निकल जाने देते हैं, वे नरक में पड़कर क्लेश पाते हैं।

३१६। जिसके लिए लजानेका कोई कारण नहीं, उसके लिए जो लज्जित होते हैं; उसी प्रकार जिसके लिए लज्जित होना चाहिए, उसके लिए जो बिलकुल नहीं लजाते; ऐसे लोग वाहियात मतोंको स्वीकार कर दुर्गतिको प्राप्त होते हैं।

३१७। जिसके लिए डरनेकी ज़रूरत नहीं, उससे जो व्यर्थ भय खाते हैं; उसी प्रकार, जिससे भय खाना योग्य है, उससे जो बिल्कुल नहीं डरते; वे असत्य मतोंको ग्रहणकर दुर्गतिको प्राप्त होते हैं।

३१८। जिसके लिए निषेध किम्बा मनाई करनेकी आवश्यकता नहीं, उसका जो निषेध करते हैं, और जो निषिद्ध किम्वा अयोग्य बातोंका निषेध नहीं करते, वे असत्य मतोंका अवलम्बन करके दुर्गतिको पहुँचते हैं।

३१९। जो यह भली भाँति जानते हैं कि अमुक वस्तुका निषेध किया है, और अमुक वस्तुका निषेध नहीं किया है, वे सत्य-मार्गको स्वीकार कर सद्गतिको प्राप्त होते हैं।
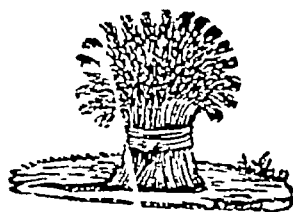
तेईसवीं सीढ़ी।

नाग (हाथी) वर्ग।

३२०। जिस प्रकार लड़ाईमें हाथी धनुष के बाणोंको सहन करता है, उसी प्रकार मैं निन्दाको शान्तिपूर्व्वक सहन करूँगा। क्योंकि, यह संसार दुष्ट स्वभाव का है।

३२१। पालतू हाथीको लड़ाईपर ले जाते हैं। पालतू हाथीपर राजा आरूढ़ होता है। जो शान्ति-पूर्व्वक निन्दा सहन करता है, वह सहनशील मनुष्य सब मनुष्योंमें श्रेष्ठ है।

३२२। पालतू सिन्ध-जातिके घोड़े उत्तम होते हैं, बड़े खीसों वाले पालतू हाथी उत्तम होते हैं, पालतू खच्चर उत्तम होते हैं; परन्तु जो अपना स्वयम् पालतू है (यानी जिसने अपनी वासनाका दमन किया है), वह इन सबकी अपेक्षा अधिक उत्तम है।

३२३। क्योंकि, इन प्राणियोंकी सहायतासे मनुष्य अत्यन्त दुर्गम स्थल—निर्वाण—को नहीं जा सकता। परन्तु उस दुर्गम स्थानपर दान्त मनुष्य (यानी जिसने अपनी सकल

वासनाओंका दमन किया है वह) अपने आत्मसंयमन के बल से जा सकता है।

३२४। जो मदोन्मत्त है, जिसके गण्डस्थल से मद चू रहा है और जिसे पकड़ना कठिन है, ऐसे धनपाल नामक हाथीको पकड़कर बाँध देनेसे वह घास भी नहीं खाता, वह अपने निविड़ वनके लिए चिन्तित रहता है।

३२५। जो मनुष्य मोटा और लोभी बन गया है, जो कुम्भकर्णी निद्राका सेवी और आलसी होगया है, वह मूर्ख जूँठनपर बढ़े हुए सुअर की नाईं पुनः-पुनः जन्म पाता है।

३२६। पहले मेरा यह मन चाहे जहाँ अपनी इच्छानुसार स्वछन्द भ्रमण करता रहता था ; परन्तु जिस तरह अंकुशधारी महावत मदोन्मत्त हाथीको रोक रखता है, उसी प्रकार अब मैं अपने मनका पूर्ण रीतिसे आकलन करूँगा।

३२७। असावधान मत रहो। अपने विचारोंपर ध्यान रखो। जिस प्रकार कीचमें फँसा हुआ हाथी अपना छुटकारा आप कर लेता है, उसी प्रकार तुम स्वयम् अपनेको कुमार्गसे बाहर निकाल लो।

३२८। यदि किसी मनुष्य को बुद्धिमान्, विचारी और सदाचारी साथी मिल जाय, तो उसे चाहिए कि वह समस्त संकटोंको सहन करता हुआ, उसके साथ बड़े आनन्द से, परन्तु विचारपूर्वक, रहे।

३२९। जिस प्रकार जीते हुए प्रान्त को पीछे छोड़कर राजा

आगे अकेला जाता है, किम्बा जिस तरह अरण्यमें मत्त गज अकेलाही भ्रमण करता है, उसी प्रकार यदि किसी मनुष्यको बुद्धिमान् एवम् सत्यशील साथी न मिले तो उसे अकेलाही रहना चाहिए।

३३० । अकेला रहना अच्छा है, परंतु मूर्खसे मित्रता रखना अच्छा नहीं। जिस तरह जंगलमें हाथी अकेला घूमता है, उस तरह मनुष्य को अकेला घूमना चाहिए। मनुष्यको चाहिए कि वह दुराचार न करे और वह थोड़ीही इच्छाएँ रखे।

३३१ । प्रसंग आनेपर मित्र सुखदायक है, किसी भी कारण से क्यों न हो, संभोग सुखदायक है, मृत्युके समय सत्कर्म्म सुखदायक है और समस्त दुःखोंका त्याग सुखदायक है।

३३२ । संसारमें मातृ-सेवा सुखदायी है, पितृ-सेवा सुखदायी है, श्रमण किम्बा ब्राह्मण की (विद्वान्की) सेवा सुखदायी है।

३३३ । वृद्धावस्था-पर्यन्त स्थिर रहनेवाला सच्छील उत्तम, एकनिष्ठ श्रद्धा उत्तम, ज्ञान-प्राप्ति उत्तम और पाप-कर्म्मोंको टालना उत्तम है।

चौबीसवीं सीढ़ी।

तृष्णा वर्ग।

३३४। अविचारी मनुष्यकी तृष्णा लताकेसमान बढ़ती जाती है। अरण्य में फलकी खोजके लिए जिस तरह लंगूर यहाँ-वहाँ कूदा-फाँदी करता है, उसी तरह अविचारी मनुष्य अनेक जन्म ग्रहण करता है।

३३५। तेज़ और विषैली तृष्णा जिस पर सब ओरसे जीत हासिल कर लेती है, उसकी भुगतान इस जगत्में मोथा नामक घासकी नाईं जल्दी-जल्दी बढ़ती है।

३३६। इस संसारमें भयंकर एवम् कठिन तृष्णापर जय प्राप्त करना बड़ी टेढ़ी खीर है। परन्तु जो ऐसी तृष्णापर जीत हासिल कर लेता है, उसके दुःख कमल-पत्रोंपर जल-विन्दुओंके समान गलकर गिर जाते हैं।

३३७। तुम लोग जो यहाँ इकट्ठे हुए हो, उनसे मैं यह हित की बात बतलाता हूँ कि,-"खस की प्राप्तिके लिए जिस तरह मनुष्य मोथा को जड़ समेत उखाड़ डालता है, उसी तरह तुम वासनाओंकी जड़ खोद डालो। ऐसा करनेपर नदी

का प्रवाह जिस तरह मोथा आदि घास को मटियामेट कर देता है; उसी प्रकार मार (काम) तुम्हें बारम्बार न चपेटेगा।"

३३८। जब तक वृक्षकी जड़ क़ायम रहती है, तब तक यदि वह काट भी डाला जाय, तोभी वह सिर्फ सुरक्षितही नहीं रहता, किन्तु पुनः हरा-भरा हो जाता है ; उसी प्रकार तुमने तृष्णाकी जड़ोंका जब तक नाश नहीं किया है, तब तक ऐहिक दुःख (यातनाएँ) पुनः-पुनः उत्पन्न होंगे।

३३९। जिसकी तृष्णा बलवान् है और वह छत्तीस दिशाओं से सुखोपभोगोंकी ओर दौड़ती है, और जिसकी वासना विषय-लुब्ध हो गई है, उस विषयान्ध मनुष्य को वे तृष्णाएँ तृणकी नाईं बहा ले जाती हैं।

३४०। इस प्रवाह की शाखाएँ चहुँ ओर बढ़ती हैं, जिससे तृष्णा रूपी लताके अंकुर फूटते हैं। यदि तुम्हें मालूम हो जाय कि वह लता बढ़ रही है, तो ज्ञानके योगसे उसकी जड़ उखाड़ डालो।

३४१। प्राणीका विषय-सुख अशोक होता हुआ विलासमय है। विषयोंमें निमग्न रहकर, जिन्हें सुखकी लालसा है, वे लोग जन्म-मरण के चक्रमें फँसे रहते हैं।

३४२। जालमें फँसे हुए खरगोशके समान तृष्णामें फँसे लोग यत्र-तत्र दौड़ते हैं ; तृष्णाके पाशोंमें बद्ध होनेके कारण वे बारम्बार अत्यन्त दुःख पाते हैं।

३४३। तृष्णामें फँसे हुए लोग जालमें फँसे हुए खरगोशकी नाईं इधर-उधर भागते हैं ; भिक्षुको चाहिए कि वह विरक्ति सम्पादन करनेके लिए भरसक मिहनत करे और उससे तृष्णाका नाश कर डाले।

३४४। *जो तृष्णासे मुक्त होकर भी पुनः तृष्णाधीन होता है और तृष्णा से निकाल डालनेपर भी जो पुनः तृष्णामें जा गिरता है, उस मनुष्यको ओर देखो ! वह मुक्त हो जाने पर भी पुनः वन्दीवास में जा गिरता है।

३४५। जो बेड़ी लोहेकी, लकड़ीकी, किम्वा सनकी वनी रहती है, उसे ज्ञानवान् मनुष्य दृढ़ वन्धन नहीं कहते ; परन्तु लड़कों-वच्चोंमें और रत्नालंकारोंमें जो दृढ़ आसक्ति होती है, वही ज़बरदस्त बेड़ी है।

३४६। जो दुर्गतिको ले जाती है, शीघ्रही कसकर जम जाती है और जो खोलनेके लिए कठिन होती है, उस शृङ्खलाको ज्ञानवान् लोग दृढ़ शृङ्खला कहते हैं। जहाँ इस वासना-रूपी शृङ्खलाको सदाके लिए तोड़ डाला, वहाँ तृष्णा और

---

* 'वन' शब्दके दो अर्थ हैं—(१) इच्छा (२) अरण्य। इसलिये इस श्लोक का दूसरा भी अर्थ होता है। वह इस प्रकार होगा—जिसने अरण्य से छुटकारा पा लिया है परतु पुनः अरण्यवासी वनता है और अरण्य से निकाल डालने पर भी जो पुनः अरण्यमें जा गिरता है, उस मनुष्यकी ओर देखो ! मुक्त होते हुए भी वह पुनः वदीवासमें जा गिरता है।

सुखोपभोगका त्याग कर मनुष्य समस्त विवंचनाओंसे मुक्त हो जाते हैं।

३४७। जिस तरह पारधी अपनेही द्वारा तैयार किये हुए जालसे नीचे गिर पड़ता है, उसी प्रकार जो लोग वासनाओंके दास बनगये हैं, वे (वासनाओंके) प्रवाहके साथ अधोगति को प्राप्त होते हैं। इन बन्धनोंको सदाके लिए तोड डालनेपर ज्ञानवान् लोग समस्त मोहोंका परित्याग कर और विरक्ति धारणकर संसारको छोड़ देते हैं।

३४८। संसारके उस पार जाते समय जो आगे है, उसका त्याग करो; जो पीछे है, उसका त्याग करो; जो बीचमें है, उसको छोड़ दो। इस तरह जहाँ तुम्हारा मन पूरे तौरसे मुक्त होगया, वहाँ तुम पुनः-पुनः जन्म-मरणके चक्कर मे न फँसोगे।

३४६। जो मनुष्य संशय से पूर्णतया ग्रस्त है, जिसकी वासनाएँ प्रबल हैं और जो सिर्फ़ सुखही की अपेक्षा करता है, उस मनुष्य की तृष्णा अधिकाधिक बढ़ती है और वह अपनी बेड़ीको अधिकाधिक कसता और मज़बूत बनाता है।

३५०। शंकाका समाधान कर लेनेमें जिसे सन्तोष मालूम होता है और विचार करके जो यह जानता है कि यह सब (शरीरका मल. वासना आदि) दुःखमय है, वही वास्तवमे काम-पाश (मारके बन्धन) को दूर करता है। केवल यही नहीं, बल्कि उसे काट डालता है।

३५१। जो पूर्णावस्था (निर्वाणके निकट) तक पहुँचकर निर्भय होगया है, जो निरिच्छ (इच्छा-रहित) और निर्दोष होगया है, जिसने संसारके समस्त काँटोंका नाश कर डाला है, उसकी यह देह (जन्म) अन्तिम है।

३५२। जिसकी वासना नष्ट होगई है और जो संगरहित होगया है, जिसे शब्द और उसके अर्थकी पूरी-पूरी जानकारी है, उसका यह जन्म अन्तिम है; उसे लोग सिद्ध पुरुष—महापुरुष—कहते हैं।

३५३। "मैंने सब जीत लिया है, मैं सर्वज्ञ हूँ, आयुष्य की सारी दशाओंमें मैं निष्कलंक हूँ, मैंने सबका त्याग कर दिया है और वासना का नाश कर देनेके कारण मैं मुक्त होगया हूँ, स्वयम् मैंही पढ़ा हूँ, अतएव किसे पढ़ाऊँ ?"

३५४। सब दानोंकी अपेक्षा धर्म्म-दान अधिक कल्याणकारक है, सब रसोंसे धर्म्म-रसकी मधुरता अधिक है, सब आनन्दों में धर्म्मसे प्राप्त होनेवाला आनन्द अधिक श्रेष्ठ है—सब दुःखोंका संहार करनेके लिए वासनाको समूल नष्ट कर डालना अत्यन्त आवश्यक है।

३५५। जो मूर्ख संसारके उस पार जानेकी इच्छा नहीं रखते, सुखोपभोग उनका नाश कर डालता है। सुखोपभोगकी लालसा रखकर मूर्ख मनुष्य वैरीकी नाईं स्वयम् अपना ही नाश कर डालता है।

३५६। घाससे खेतका नाश होता है; तृष्णासे मनुष्यका नाश

होता है ; अतएव जो मनुष्य द्वेष-रहित हैं, उन्हें दान देनेसे अधिक फलप्राप्ति होती है।

३५७। घाससे खेतका नाश होता है ; द्वेषसे मनुष्यका नाश होता है : इसलिए जो कोई द्वेषरहित है, उसे दान देनेसे बहुत फल-प्राप्ति होती है।

३५८। घास से खेतका नाश होता है ; गर्वसे मनुष्यका नाश होता है ; इसलिए जिन्हें गर्व नहीं, उन्हें दिये हुए दान से अधिक फल-प्राप्ति होती है।

३५९। घाससे खेतका नाश होता है, तृष्णासे मनुष्यका नाश होता है , इसलिए जिनकी तृष्णा नष्ट होगई है, उन्हें दान देनेसे अधिक फल-प्राप्ति होती है।

पच्चीसवीं सीढ़ी।

भिक्षु (उपदेशक) वर्ग।

३६०। आँखोंको वश करना अच्छा, कानोंको वश करना अच्छा, नाकको वश करना अच्छा और जिह्वाको वश करना अच्छा है।

३६१। देहको वश करना अच्छा, वाचाको वश करना अच्छा, मनको वश करना अच्छा और सब प्रकारसे आत्म-संयमन करना अच्छा है। जिस भिक्षु ने सब प्रकारका संयमन कर लिया है, वह सब दुःखोंसे विमुक्त है।

३६२। जो हाथ, पाँव और वाचाको वशमें रखता है, जिसने स्वयम् अपनेको पूर्णवशमें कर लिया है, जो आत्म-संतुष्ट है और जो स्थिरचित्त होकर एकान्तमें समाधान-वृत्तिसे रहता है, उसेही लोग भिक्षु कहते हैं।

३६३। जो भिक्षु मुँहको रोककर शान्ति और बुद्धिमत्ता के साथ भाषण करता है और जो धम्मका इस तरह उपदेश करता है, जिससे उसका उपदेश लोगोंके अन्तःकरणमें जम जाय, उसका भाषण मधुर है।

३६४। जो भिक्षु धम्म का विवेचन करता है, धर्ममें जिसे आनन्द प्राप्त होता है, जो धर्म के बारेमें चिन्तन करता है और धर्माज्ञानुसार जो अपना आचार रखता है, वह सत्यधर्म से कदापि नीचे नहीं गिरता।

३६५। हमें जो कुछ मिला हो, उसे तुच्छ न समझना चाहिए और यदि दूसरेको हमसे अधिक मिला हो, तो हमें उससे कभी डाह नहीं करना चाहिए। जो भिक्षु दूसरेसे जलता है, उसे कभी भी मनकी शान्ति नहीं मिलती।

३६६। थोड़ासा भी मिलनेपर जो भिक्षु उस देनको तुच्छ नहीं

समझता, उस शुद्ध आचारवाले तथा उद्योग-तत्पर भिक्षु की देवता लोग भी प्रशंसा करते हैं।

३६७। नाम और रूपसे जो अपनी स्वतःकी एकता नहीं कर लेता और जो गत कालके लिए शोक नहीं करता, उसेही सच्चा भिक्षु कहना चाहिये।

३६८। जो दयालु है और जो बुद्ध के उपदेशमें स्थिरचित्त हो गया है, उस भिक्षु की वासनाएँ विराम पाती हैं, उसे सुख होता है और उसे शान्तिका स्थान—निर्वाण—प्राप्त होता है।

३६९। हे भिक्षु, तू इस नौकाको ख़ाली करदे! रीती कर देनेपर वह अधिक वेगसे चलेगी। राग और द्वेषका पूर्ण रीति से नाश करनेपर तू निर्वाणके निकट पहुँचेगा।

३७०। पञ्चेन्द्रियोंका निर्दलन कर पाँचों पाशोंको तोड़ डाल, उन पाँचोंपर जय प्राप्त कर। इन पाँचों बन्धनोंसे जिस भिक्षु ने छुटकारा पालिया है, उसे ओघोत्तीर्ण (पूरसे बचा हुआ) कहते हैं।

३७१। हे भिक्षु, ध्यान कर। स्वेच्छाचारी (प्रमत्त) न बन। जिन वस्तुओंसे सुख-प्राप्ति होती है, उनकी ओर ध्यान न लगा। जिससे तुझे तेरी आज़ादीके लिए नरकमें लोहेका गोला न खाना पड़ेगा और उसे खाते समय जल जानेपर तुझे 'हाय बाप कैसा दुःख है!' यह चिल्लानेकी वेला न आवेगी।

३७२। ज्ञानके विना ध्यान नहीं और ध्यानके विना ज्ञान नहीं है। जिनमें ध्यान और ज्ञान दोनों हैं, वे निर्वाण तक पहुँच गये हैं।

३७३। जिस भिक्षुने शून्यमय गृहमें प्रवेश किया है,जिसका चित्त स्थिर हो गया है और जिसे धर्म्मकी स्पष्ट जानकारी होने लगी है, उसे अमानुष (अतर्क्य) आनन्द होता है।

३७४। शाश्वत निर्वाण-पदके पहचाननेवालेको जो आनन्द और जो सुख प्राप्त होता है—वह आनन्द और वह सुख उस मनुष्यको उसी समय प्राप्त हो जाता है, जिसे शरीर की उत्पत्ति और शरीर के खण्डोंके (घटकावयवोंके) नाशके बारेमें ज्ञान हो चुका है।

३७५। इन्द्रियोंपर दृष्टि रखकर समाधान रखना और धर्म्मानुसार आचरण करना, तथा ऐसे सज्जनोंसे मित्रता रखना, जिनका आचरण पवित्र है और जो आलसी नहीं हैं—यह बुद्धिमान् भिक्षुका इहलोक में आद्य कर्त्तव्य है।

३७६। परोपकारमें रत और अपने कर्त्तव्य-कर्म्मोंमें तत्पर रहनेसे उसे जो पूर्ण आनन्द होता है, उससे वह क्लेशोंका नाश कर सकता है।

३७७। हे भिक्षुओ! जिस प्रकार वासिका (वसन्ती) नामक लता मुरझाये पुष्पोंका त्याग कर देती है, उसी प्रकार मनुष्यको तृष्णा और वैरका त्याग करना चाहिए।

३७८। जिस भिक्षुकी काया, वाचा और मन ये इन्द्रियाँ प्रशान्त

होगई हैं, जो स्थिर-चित्त है और संसारके आमिषों का जिसने त्याग किया है, उसे ही 'उपशान्त' कहते हैं।

३७९। रे भिक्षो! तू स्वयम् जागृत होकर प्रयत्न करनेमें तत्पर हो, स्वयम् अपना परीक्षण कर; तेरे इस प्रकार स्वसंरक्षित और दक्ष होनेपर तू आनन्द-पूर्व्वक अपना काल व्यतीत करेगा।

३८०। क्योंकि मनुष्य स्वयम् ही अपना स्वामी है, अपना आपही तारण-कर्त्ता है, इसलिये जिस प्रकार व्यापारी उमदा घोड़े को अधीन रखता है, उस प्रकार तू स्वयम् अपनेको अपने अधिकार में रख।

३८१। जो भिक्षु आनन्द-पूर्ण होकर बुद्ध के उपदेशोंमें निश्चल-चित्त है, उसके संस्कारोंका (वासना और सौख्य-लालसा का) नाश होकर वह शान्ति-स्थान—निर्वाण—के निकट पहुँचता है।

३८२। जो भिक्षु युवावस्थामें ही बुद्धके उपदेशोंमें चित्त लगाता है, वह बादलोंसे निकले हुए चन्द्रमा की नाईं संसारको प्रकाशित करता है।

छब्बीसवीं सीढ़ी।

ब्राह्मण (अर्हत) वर्ग ।

३८३। हे ब्राह्मण ! वीरता से प्रवाहको रोककर वासनाको छोड़ दे। जब तुझे यह मालूम हो जायगा कि सर्व निर्मित सृष्टिका नाश किस तरह होता है, तब तुझे अनिर्मित सृष्टि के बारेमें ज्ञान होगा।

३८४। जो ब्राह्मण आत्म-निग्रह और ध्यान—इन दो धर्म्म-तत्त्वोंके उसपार पहुँच गया है, उसे पूर्ण ज्ञान हो जानेके कारण उसके समस्त पाशोंका नाश हो जाता है।

३८५। जिसे न यह तीर है और न वह तीर है—दोनों तीर नहीं हैं, यानी जो अन्तरिन्द्रियों और वहिरिन्द्रियोंसे मुक्त होगया है, उस निर्भय और निर्बद्ध मनुष्यकोही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

३८६। जिसने विवेकशील, निर्दोष, स्थिर, कर्त्तव्य-तत्पर और निर्विकार होकर परमार्थका साधन किया है, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

३८७। सूर्य दिनको प्रकाशित होता है, चन्द्रमा रातको उदय होता है। ज़िरहबख़्तर पहननेपर वीर पुरुष तेजस्वी

दिखता है, ध्यानस्थ होनेपर ब्राह्मण तेजःपूर्ण दिखता है। परन्तु बुद्ध अपने तेजसे अहोरात्र प्रकाशमान रहता है।

३८८। जो "धूत पाप" है (यानी जिसने अपने पापोंको दूरकर दिया है), उसे ब्राह्मण कहते हैं; जो शान्ति ग्रहण कर आचार रखता है, उसे श्रमण कहते हैं। जिसने अपना मल धो डाला है, उसे 'परिव्राजक' (संन्यासी) कहते हैं।

३८९। किसीको भी ब्राह्मण पर परिहार (प्रहार) नहीं करना चाहिए परन्तु किसीके प्रहार करनेपर ब्राह्मणको प्रहार-कर्त्तापर अपना हाथ न उठाना चाहिए। जो ब्राह्मण को मारता है, उसे धिक्कार है; परन्तु जो ब्राह्मण मारनेवालेपर अपना हाथ उठाता है, उसे कहीं अधिक धिक्कार है।

३९०। संसारसुखोपभोगोंसे जो ब्राह्मण अपने मनका आकलन करता है, उसे वह संयमन बहुत हितकारी होता है। ज्योंही दूसरोंको दुःख देनेकी हमारी बुद्धिका नाश हुआ, त्योंही हमारा दुःख आपही आप नष्ट हो जाता है।

३९१। जो काया, वाचा अथवा मनसे किसीपर रुष्ट नहीं होता, जिसने इन तीनों इन्द्रियोंको अङ्कित कर लिया है, उसे मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

३९२। जिस प्रकार ब्राह्मण यज्ञ के अग्निकी पूजा करता है, उसी प्रकार एकबार जहाँ मनुष्य को बुद्धके द्वारा उपदेशित किये गये धर्म्मकी जानकारी हो गई, तहाँ उसे उसका मनःपूर्व्वक भजन करना चाहिए।

३६३। जटा-भारके कारण, बड़े कुलमें जन्म-ग्रहण करनेके कारण, किम्वा जन्म-संस्कारके कारण मनुष्य ब्राह्मण नहीं होता ; परन्तु जो सत्याचरणी और प्रामाणिक है, वही धन्य, वही ब्राह्मण है।

३६४। रे मूर्ख ! जटाभार का क्या उपयोग है ? चर्मका क्या उपयोग है? जब तेरा अन्तर्याम मलिन है तब सिर्फ़ वाहरसे स्वच्छता रखनेसे क्या लाभ है ?

३६५। जो मलिन वस्त्रोंको ओढ़ता है, जिसकी सब नसें दिखती हैं, जो कृश हो गया है और जंगलमें अकेला रहकर ध्यान करता है, उसे मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

३६६। जन्म से किम्वा अमुक मातासे जन्मग्रहण करनेपर, मैं किसीको भी ब्राह्मण नहीं कहता। वह सचमुच उद्धत (बेमुरौवत) और श्रीमान् है। परतु जो ग़रीब और सर्व संगसे मुक्त है, उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

३६७। जिसने सारे बन्धनोंको तोड़ डाला है, जो निर्भय, निस्संग, और बन्ध-मुक्त होगया है, उसे मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

३६८। जिसने रस्सी, पाश, वंध और उससे सम्बंध रखनेवाले सब कुछ तोड़ डाले हैं और जो जागृत हो गया है, उसे ही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

३६९। अपराध न करते-हुए भी जो निंदा, वन्दिवास किम्वा दण्ड सहन करता है, क्षमाही जिसका वल और धीरज ही जिसकी सेना है; उस मनुष्यको मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

४०० । जिसका क्रोध चल बसा है, जो कर्त्तव्य-तत्पर, सदाचारी, तृष्णा-रहित और आत्म-निग्रही है और जिसकी यह शरीर-दशा अन्तिम है, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४०१ । कमल-पत्र परके पानीकी बूँदकी नाईं अथवा सूई के अग्रभाग (नोक)पर रखी हुई राईके समान, जो क्षणिक टिकनेवाले विषय-सुखमें लिप्त नहीं रहता, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४०२ । जिसे इहलोकमें यह मालूम होजाता है कि मेरे दुःखोंका अन्त हो गया है, जिसने अपना भार उतार डाला है, और जो बंधमुक्त होगया है, उसे ही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४०३ । जिसका ज्ञान अगाध है, जो विद्वान् है, जो यह जानता है कि सत्य-मार्ग कौनसा है और असत्य-मार्ग कौनसा है, और जिसने श्रेष्ठ पुरुषार्थ सिद्ध किया है, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४०४ । गृहस्थों किम्बा भिक्षुओंसे जो दूर रहता है, जो घर-घर याचना करता नहीं फिरता, जिसकी इच्छाएँ अल्प हैं, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४०५ । जो दुर्बल किम्बा बलवान्, किसीके भी रास्ते कभी नहीं जाता और जो न हिंसा स्वयम् करता है तथा न दूसरोंसे कराता है, उसेही मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

४०६ । जो सहनशील नहीं हैं, उनसे जो सहनशीलता धारण करता है ; उसे जो दोष देते हैं, उनसे जो नम्र रहता है ;

उसपर जो क्रुद्ध होते हैं, उनपर जो क्रुद्ध नहीं होता, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४०७। जिस मनुष्यके राग और द्वेष, गर्व और मत्सर सुईकी नोकपर रखी गई राईके समान गिर पड़े है, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४०८। जो ऐसा सत्य, बोधदायक और मधुर भाषण करता है, जिससे किसको भी दुःख न हो, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४०९। किसीके कोई वस्तु न देनेपर—फिर वह चाहे छोटी हो अथवा बड़ी, लम्बी हो अथवा सकरी, अच्छी हो किम्वा बुरी —जो उसे नहीं लेता, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४१०। जो इहलोक और परलोकके बारेमें आशा नहीं रखता, और वासनाओंसे छूटकर जो बंध-मुक्त होगया है, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४११। जिसमें स्वार्थ नहीं है और सत्यका ज्ञान हो जानेपर जो अमुक ऐसा और अमुक वैसा आदि शङ्काएँ नहीं करता और जो अमर स्थिति तक (निर्वाण तक) पहुँच गया है, उसेही मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

४१२। इस संसारमें भला और बुरा इन दो बन्धनोंसे जो मुक्त है, उसी प्रकार जो दुःख से, पापसे और अशुद्धता से मुक्त है, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४१३। जो चन्द्रमा की नाईं सतेज होकर पवित्र, शान्त-चित्त

और अव्यग्र है, और जिसमें दाम्भिकताका लवलेश मात्र भी नहीं है, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४१४। इस कीच-मय मार्गको, इस दुष्कर संसारको और यहाँ के अहंकार इत्यादिको जो फाँद गया है, संसारके पार होकर जो उसपार पहुँच गया है और जो विवेक-शील, निष्कपट, निस्सन्देह, निरासक्त और सन्तुष्ट है, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४१५। इहलोकमें सारी वासनाओंका त्याग करके और गृह को छोड़कर जो फिरता है और जिसकी सारी पाप-वासनाएँ शान्त होगई हैं, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४१६। सारी आशाओंको छोड़कर तथा घर-बारका त्याग करके जो फिरता है और जिसमें लोभका समूल नाश हो गया है, उसे ही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४१७। जो मनुष्योंके बन्धनोंसे मुक्त होकर, देवताओंके भी बन्धनोंसे मुक्त होगया है; सारांश, जिसने समस्त बन्धनोंसे छुटकारा पालिया है, उसे ही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४१८। जिसने वह सब छोड़ दिया है, जिससे सुख एवम् दुःख प्राप्त होता है (अर्थात् जिसने समस्त उपाधियोंसे छुटकारा पालिया है), जो विरक्त है, जो पुनर्जन्मके चक्करसे मुक्त हो गया है, और जिस वीरने सारे लोकोंपर जय प्राप्त की है, उसे ही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४१९। जिसे समस्त जगहोंपर प्राणीमात्रके होनेवाले संहार

तथा उत्पत्ति की जानकारी है और स्वयम् बन्धनों से मुक्त होकर जो सुगत (सद्गतिको पहुँचा हुआ) और बुद्ध (ज्ञानसे जिसकी अन्तर्दृष्टि दिव्य होगई है) है, उसे ही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

४२० । जिसका मार्ग देव, गन्धर्व और मानवको मालूम नहीं होता, जिसकी वासनाएँ नष्ट हो गई हैं और जो अर्हत (पूज्य) पदको प्राप्त होगया है, उसे ही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

४२१ । भूत, भविष्य तथा वर्तमान बातोंके सम्बन्ध में जो ममत्व धारण नहीं करता, जो अकिंचन बनकर इहलोकके संबंधमें आसक्ति-रहित होगया है, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

४२२ । जो हिम्मतवाला, उदार, शूर, महान्, सिद्ध, विजयी, निष्कपट और विद्यासम्पन्न है और जिसे अन्तर्ज्ञान प्राप्त है, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

४२३ । जिसे अपने पूर्व-जन्मका ज्ञान होगया है, जिसे यह मालूम है कि स्वर्ग क्या है, नरक क्या है, जिसका जन्म-ग्रहण समाप्त हो गया है और जो पूर्णज्ञानी, सिद्ध और सर्वाङ्ग-परिपूर्ण बनगया है, उसे ही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

पारिभाषिक शब्द ।

अर्हत—पूज्य, साधु ।

आर्य—श्रेष्ठ, धर्म्मशील मनुष्य ।

तथागत—गौतम बुद्ध ।

निर्वाण—मुक्ति ; आत्माकी निष्पाप, स्थिर और शान्त अवस्था ।

परिव्राजक—संन्यासी ।

बुद्ध—सिद्ध ; धर्म्म-दर्शन होजानेपर गौतम बुद्ध कहलाने लगे ।

बोधिसत्त्व—जबसे गौतम ने धर्म्म-तत्त्वों की खोज करना आरम्भ किया और जब वे उन्हें प्राप्त होगये—उस काल तक उन्हें बोधिसत्व कहते हैं ।

बोधि-वृक्ष—बोधिद्रुम, पीपलका वह वृक्ष जिसके तले महाबुद्धको धर्म्म-दर्शन प्राप्त हुआ था ।

ब्राह्मण—धर्म्मोपदेशक साधु ।

भिक्षु—भिक्षा माँगकर धर्म्मोपदेश करनेवाला साधु ।

मार—कामदेव ; काम ; वासनारूपी सेना का राजा।
मुनि—साधु, यति, मौन धारण करनेवाला।
श्रमण—मुमुक्षु ; शान्तचित्त ; निर्वाण-प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला।

शाक्य मुनि }
सुगत } —महात्मा गौतम बुद्ध।

द्रौपदी।

यह पुस्तक अभी-अभी प्रकाशित हुई है। इसमें प्रातःस्मरणीया महारानी द्रौपदीका चरित बड़ी मनोहर भाषामें लिखा गया है। सारा महाभारत छान कर द्रौपदी के जीवन की घटनाएं वर्णित हुई हैं। हिन्दू-मात्र को यह ग्रन्थ देखना चाहिये। घर-घर में इसका प्रचार होना चाहिये। सती-शिरोमणि द्रौपदीका चरित प्रत्येक कुललक्ष्मियों को पढ़ना चाहिये। बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी ग्रन्थको पढ़ कर मनोरञ्जन और शिक्षा लाभ कर सकते हैं। सारा महाभारत पढ़नेका जिन्हें समय नहीं है, उन्हें यह ग्रन्थ अवश्य पढ़ जाना चाहिये। प्रायः प्रत्येक प्रधान-प्रधान घटना इसमें आ गई है। सारी पुस्तक उपन्यास के ढंग पर लिखी गयी है और पढ़ने में ऐसा जी लगता है कि पुस्तक छोड़ते नहीं बनती। इसके सिवा पुस्तक की छपाई-सफ़ाई बड़ी ही नयनाभिराम है। चिकने काग़ज़ पर सुन्दर सुवाच्य अक्षरोंमें छापी गयी है। इसके अतिरिक्त स्थान-स्थान पर सुन्दर-सुन्दर एक दर्जन से अधिक चित्र भी दिये गये है। अवश्य पढ़िये, यह ग्रन्थ अपने ढंग का पहला है। मूल्य २॥) पृष्ठ संख्या २९० डाक महसूल पैकिंग।)

नरसिंह प्रेस की उत्तमोत्तम पुस्तकें।

दिलचस्प उपन्यास।

सम्राट् अकबर (जीवनी)	३)	लच्छमा	१)
सिराजुद्दौला	२॥)	अनाथ बालक	१)
शुक्लवसनासुन्दरी	३)	शरदकुमारी	१)
चन्द्रशेखर	१॥)	इन्दिरा	॥)
राजसिंह	१॥)	मोतीमहल	॥)
स्वर्णकमल	१॥)	बिछुड़ी हुई दुलहन	॥।)
कोहनूर	१॥)	मँझली बहू	॥)
नवीना	१।)	राधारानी	।/)
बेलून-विहार	१।)	पाप-परिणाम	॥/)
कृष्णकान्तकी विल	१)	वीर चूड़ामणि	॥)
विषवृक्ष	१)	शैलबाला	॥)
मानसिंह	१)	गल्पमाला	॥)
विलासकुमारी	१)	युगलांगुरीय	।)
लवंगलता	१)	सलीमा बेगम	।)
फूलोंका हार	१)	कलङ्क	॥।)
अभागिनी	१)	अलका मन्दिर	।)
सावित्री	१)	सुनीति	।)
रजनी	॥।)	शैव्या	।)

पता—हरिदास एण्ड कम्पनी

२०१ हरिसन रोड, कलकत्ता।

269

गुलामी का नशा

ठा० लक्ष्मणसिंह

117

"प्रताप पत्र-पुष्प" की प्रथम पुस्तक

गुलामी का नशा

(नाटक)

लेखक,

ठा० लक्ष्मणसिंह, बी० ए०, एल-एल० बी०

मुद्रक तथा प्रकाशक,

सुरेन्द्र शर्म्मा

प्रताप प्रेस, कानपुर।

प्रथम संस्करण २००० | सन् १९२४ ई० | मूल्य-सात आना

'प्रताप पत्र-पुष्प'

इस पुस्तक-माला में एक वर्ष के भीतर, कम से कम १२ पुस्तकें प्रकाशित की जायंगी। 'प्रताप पत्र-पुष्प के ग्राहक रजिस्टर में 'प्रताप' के नये और पुराने पूरे साल के जो ग्राहक अभी से नाम लिखा लेंगे, उन्हें, जब तक वे 'प्रताप' के ग्राहक बने रहेंगे, तब तक पौने मूल्य पर किताबें दी जायंगी। ग्राहक रजिस्टर में नाम लिखाने के लिए, किसी फीस के देने की आवश्यकता नहीं है। शीघ्र ही 'प्रताप पत्र-पुष्प' के ग्राहकों में नाम लिखाइये।

ये पुस्तकें शीघ्र ही प्रकाशित हो रही हैं :—

क्रान्तिकारी राजकुमार—रूस के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी प्रिंस क्रोपाटकिन का शिक्षाप्रद जीवन चरित्र।

अनादृता उर्मिला—श्रीयुत नवीन का एक काव्य-ग्रंथ।

पुस्तकें मिलने का पता :—

मैनेजर

प्रताप प्रेस, कानपुर

निवेदन ।

आज हम हिन्दी संसार के सामने 'प्रताप'—पत्र-पुष्प की प्रथम पुस्तक एक छोटे किन्तु मौलिक नाटक के रूप में रख रहे हैं। हिन्दी-साहित्य में मौलिक नाटकों का अभाव है। हम मौलिक कृतियों के अभाव से अपने नाट्य-साहित्य में इस भारी कमी का अनुभव करते हैं। यह नाटक उस असहयोग-आन्दोलन का एक जीता जागता चित्र है जिसने देश के राजनैतिक जीवन में एकदम युगांतर उत्पन्न कर दिया। नौकरशाही ने खुशामदी लोगों से मिल कर क्रिमिनल ला आदि दमनकारी कानूनों के कैसे २ जाल रचे थे, वीर और साहसी देशभक्तों द्वारा ये जाल किस निर्भीकता के साथ तोड़े गए थे, बच्चों से लेकर बूढ़ों तक के हृदय में महात्मा गांधी की कैसी विलक्षण धाक जम रही थी, इन सब बातों का वर्णन इस नाटक में विशद और मार्मिक भाषा में किया गया है। नाटक के सुयोग्य लेखक ठाकुर लक्ष्मणसिंह (बी० ए०, एल-एल० बी०) मध्यप्रदेश प्रांतीय काँग्रेस कमेटी के मंत्री हैं। वे सिद्ध-हस्त लेखक हैं। जब वे पढ़ते थे, तभी, उन्होंने 'कुली-प्रथा' नाम का प्रसिद्ध नाटक लिखा था, जो 'प्रताप' में छपा था और पुस्तकाकार निकलने पर जिसे सरकार ने ज़ब्त कर लिया था। इस नाटक की भाषा-शैली इतनी हृदयग्राही और सरल है कि साधारण पढ़े-लिखे लोग भी इसे भलीभाँति समझ सकेंगे। पुस्तक को एक बार आरम्भ से लेकर अंत तक पढ़ लेने से देश की वर्तमान दशा और युगांतरकारी असहयोग आंदोलन का रूप चित्र की तरह हृदय पर खिंच जाता है। अन्य प्रांतीय भाषाओं से अनुवादित नाटकों को रङ्ग-मञ्च पर खेलने में बड़ी असुविधा होती है। यदि यह नाटक इस कमी की कुछ भी पूर्ति कर सका तो हम इस परिश्रम को सफल समझेंगे।

प्रताप कार्य्यालय }
कानपुर }

सुरेन्द्र शर्मा

नाटक के पात्र

(पुरुष)

श्रीधर— सरकारी मिनिस्टर (मन्त्री)
रामानुज— श्रीरामनगर ज़िला कांग्रेस कमेटी के मंत्री
गोपाल— श्रीधर का नौकर
ओझा जी— एक ज्योतिषी
सर हेनरी कुक— गवर्नर
अहमद— १५ वर्ष का असहयोगी मुसलमान बालक
राय आनन्दीप्रसाद— ज़मींदार और आनरेरी मजिस्ट्रेट
मोहन— कांग्रेस कमेटी का स्वयंसेवक
सुम्मन— रायसाहब का छोटा लड़का
जेलर, वार्डर, पुलिस के सिपाही तथा यूरोपियन अफसर, पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट, काँग्रेस कमेटी के कार्यकर्ता, आदि।

[स्त्री]

शशि— श्रीधर की पत्नी
उर्मिला—शशि की सखी, रायसाहब की भानजी तथा रामानुज की प्रेमिका
मामी—रायसाहब आनन्दीप्रसाद की स्त्री तथा उर्मिला की मामी

प्रथम अंक

प्रथम दृश्य

[श्रीधर अपने कमरे में एक ऐसी कुर्सी पर बैठा है, जिसका पुरानापन मालिक की गरीबी सूचित करता है। कुर्सी के सामने टेबल है। उस पर कुछ पुस्तकें रखी हैं, जिन पर धूल जमी है, एक फटा हुआ ब्लाटिङ्गपेपर भी पडा है; गन्दी सी दावात और एक कलम भी है, जिसकी निब बहुत घिसी हुई है। पास ही एक अलमारी है, जिसके दरवाजे के शीशे टूट गये हैं, अतएव बिना दरवाज़ा खोले ही पुस्तकें निकाली और रखी जा सकती हैं। अलमारी का दरवाज़ा बन्द है और उसमें जो पुस्तकें रखी हैं वे जमी हुई नही दीखतीं। कुछ दाहिनी ओर झुकी हैं, कुछ बाईं ओर झुकी हैं और कुछ बीच ही में एक दूसरे के सहारे खड़ी हैं। कमरे में दाहिनी ओर खूटियों पर श्रीधर के कपड़े टंगे हैं,–कोट, कमीज़, फेल्ट कैप दो तीन कालर और चार नेकटाइयां। नीचे कोने में फुल-बूट, बूट और फुल स्लीपर रखे हैं। ये कपड़े और जूते खूब कीमती, साफ़ और सुथरे हैं। उन पर गर्व की एक झलक

मालूम होती है, मानो वे कमरे की ग़रीबी के भाव को दूर करने का प्रयत्न कर रहे हों। श्रीधर बाहर के दरवाजे की ओर पीठ कर के बैठा है और उसका मुंह है दाहिने दरवाजे की ओर, जहां परदा हटाए श्रीधर की पत्नी शशि खड़ी है। उसके चेहरे से मालूम होता है कि बातें कुछ तीखी सी हो रही हैं। श्रीधर कुछ लापरवाह किन्तु उदास है।]

शशि [झुँझला कर]—आखिर यह हालत कब तक रहेगी ? तुम्हारे इम्तिहान का रिज़ल्ट अभीतक नहीं आया और न जाने कब आये। आज कल करते करते तो न जाने कितने दिन बीत गए ! और नतीजा भी न जाने क्या हो !

श्रीधर [गम्भीरता से]—अब नतीजा क्या मेरे हाथ में है ? [हँसते हुए] भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है, 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन,' समझी ?

शशि—मैं श्रीकृष्ण की बात तो नहीं समझी, पर रोज़ रोज़ जो कुछ घर में होता है वह मैं ही समझती हूँ। तुम तो इस कमरे में बैठे रहते हो, बहुत हुआ तो बाहर चले गए।

श्रीधर [हँसने का प्रयत्न करके]—मैं जानता हूँ। मेरी बजाय तूने वकालत का इम्तहान दिया होता तो ज्यादा अच्छा होता।

शशि [चिढ़कर]—बड़े भैया की बातें सुनते तो यह हँसी नहीं सूझती। [उदासी से] घर में पैसे पैसे की इतनी तङ्गी है !

श्रीधर—तंगी तो ऐसी नहीं है कि इतनी उदासी के स्वर में बोला जावे। उद्गारों का यह अपव्यय अच्छा नहीं ! बड़े घर की बेटी हो, इसलिए तुम्हें यहाँ पर ज़रूरत से ज्यादा तंगी मालूम होती होगी।

शशि—बड़ा घर और छोटा घर तो मैं नहीं कहती, पर रिज़ल्ट आने के बाद भी वकालत शुरू करने में बहुत दिन लगेंगे। तबतक के लिए कहीं नौकरी ही करलो तो अच्छा हो। कहीं तलाश कर देखो न ?

श्रीधर—फिर वही बात कही ? अभी नौकरी तलाश करने में कितनी अड़चन कितनी शर्म है, यह मैं बता चुका हूं। पर तू विश्वास रख, मैंने धन कमाने का निश्चय कर लिया है, ईमानदारी से, और बेईमानी से भी।

शशि—परमात्मा तुम्हें बेईमानी से बचावें ! पर निश्चय करके बैठे रहने से क्या होता है ?

श्रीधर—(गम्भीरता से)-क्या तू सोचती है, मुझे चिंता नहीं है ? मैं स्वयं व्याकुल हूं। मैं महत्वाकाँक्षी हूं और वह महत्वाकाँक्षा मेरी व्याकुलता को और भी बढ़ा रही है। उसमें तू शान्ति देने की अपेक्षा अशान्ति ही उत्पन्न करती है।

शशि (परदे के पीछे हटती हुई)-वे रामानुज आरहे हैं।

(रामानुज भीतर आता है। वह श्रीधर का सहपाठी और बचपन से मित्र है। उसके प्रवेश करने के ढंग से और चेहरे से मालूम होता है कि श्रीधर से उसकी बहुत घनिष्टता है। परन्तु शशि बड़े घर की लड़की होने के कारण रामानुज से थोड़ा परदा करती है।)

रामानुज (प्रवेश करते ही)—क्यों भाई, कोई खबर ?

श्रीधर (मुड़कर)—आओ। अभीतक तो कोई खबर नहीं। बैठो। (पास एक कुर्सी खिसका देता है)

रामानुज (कुर्सी पर बैठ कर)-मैं तो इसी आशा से

आया था। विचित्र दशा है। उत्सुकता का कोई कारण नहीं फिर भी उत्सुकता बनी ही है।

श्रीधर-क्यों उत्सुकता क्यों, न हो ?

रामानुज—महात्मा गान्धी ने असहयोग की आवाज़ उठाई है। मुझे उनकी एक एक बात जँच गई। मैं तुमसे पहले भी कहा करता था वकालत कैसे निभेगी। उसमें बहुत बेईमानी करनी पड़ती है।

श्रीधर-मैंने तो निश्चय कर लिया है, मैं वकालत करूंगा। गरीबी में देशभक्ति नहीं होता।

रामानुज-तुम्हारी इच्छा! मुझे तो दीखता है कि गान्धी जी का आन्दोलन बढ़ेगा। काग्रेस असहयोग का प्रस्ताव अवश्य स्वीकार कर लेगी।

श्रीधर—मुझे तो आशा नहीं। काँग्रेस के अधिकांश नेता वकील हैं। [मुस्करा कर] वे असहयोग का प्रस्ताव पास होने देंगे ?

रामानुज—अकेले नेता क्या करेंगे ? जनता तो महात्मा गान्धी के पक्ष में है।

श्रीधर [टाल कर]—पर, यह बतलाओ, खाने कमाने का क्या प्रवन्ध करोगे ? कुछ सम्पत्ति तो है नहीं।

रामानुज [तुच्छता की हँसी से]—जो बी० ए० और एल० एल० बी० तक पढ़ा हो, क्या वह खाने के लिए कमा नहीं सकेगा ? पर यह कहो, जब एल० एल० बी० के खाने कमाने की बात कही जाती है तब बंगले और मोटर पर दृष्टि रहती है।

[बाहर से आवाज़ आती है] बाबूजी, तार !

[रामानुज और श्रीधर दौड़ कर दरवाज़े पर जाते हैं । श्रीधर तार लेकर फाड़ता है और पढ़ता है]

श्रीधर [प्रसन्नता से]—"बधाई तुम और रामानुज पास, मैं भी—हरीश ।"

[श्रीधर तार की रसीद पर क़लम उठा कर हस्ताक्षर कर देता है और तार वाले को एक चवन्नी देता है । तार वाला अभिवादन करके जाता है ।]

श्रीधर—रामानुज, ज़रा ठहरो, घर में खबर कर आऊं ।

[श्रीधर घर के अन्दर जाता है । रामानुज सफलता पर अत्यन्त प्रसन्न है । इतने में मोहल्ले का एक आदमी गोपाल आता है]

गोपाल—क्यों भैया, तार कैसा है ? सब कुशल तो है ?

रामानुज—श्रीधर और हम, दोनों वकालत पास होगए ।

गोपाल—चलो भैया बड़ी तक़दीर । क्यों भैया, अब श्रीधर भैया छोटे साहब तो हो सकते हैं ?

रामानुज—हाँ ।

गोपाल—और निसपिट्टर ?

रामानुज [कुतूहल-पूर्वक]—अरे इन्स्पेक्टर तो छोटे साहब से छोटा होता है ।

गोपाल [कुछ उदासी से]—और बड़े साहब भी नहीं हो सकते । वे तो अङ्गरेज़ ही होते हैं और श्रीधर भैया उतने गोरे भी तो नहीं हैं ।

रामानुज—हां ।

गोपाल [संतोष से]—चलो, छोटे साहब भी कुछ बुरे नहीं । मेरी तो बहुत दिन से साध थी कि श्रीधर भैया छोटे साहब बनें और मैं उनका चपरासी बनूं ।

रामानुज—तुम चपरासी बनना क्यों चाहते हो ?

गोपाल [बुद्धिमानी प्रकट करते हुए]—जो मज़ा चपरासी बनने में है वह मज़ा बड़े साहब बनने में भी नहीं है।

रामानुज—सो कैसे ?

गोपाल—दौरे के मुकाम पर साहब तो धीरे से कह देंगे, गोपाल नाश्ते के लिए हलुआ बनेगा। फिर सच्चा हुकुम छूटेगा गोपाल का [ज़ोर से और, हुकूमत के स्वर से] 'कोटवार, जाओ मुकद्दम से कहो, एक सेर सूजी, दो सेर शक्कर और चार सेर घी फौरन हाज़िर करो।' फिर देखो, कोटवार (चौकीदार) कैसा भागा हुआ जाता है और मुकद्दम फ़ौरन सब सामान लेकर हाज़िर होता है।

रामानुज—गोपाल तुम हलुआ बनाना जानते हो ? उसमें घी, शक्कर और सूजी तीनों बराबर बराबर रहते हैं ?

गोपाल—हाँ, साहब, घर में बराबर रहते हैं। घर में चाहे घी चौथाई ही रहे, पर दौरे में तो घी चौगुना ही रहता है।

रामानुज [आश्चर्य से]—क्यों भला ?

गोपाल—सुनो, मैंने तो आंखों से देखा है। खेरिया गांव की बात है। पुलिस के निसपिट्टर साहब अपने एक दोस्त के साथ जांच करने को आए। आते ही उन्होंने साथ के पुलिस वाले जवान को हुकुम दिया कि हलुआ तैयार कराओ। पुलिसवाले ने हलुवे के समान का हुकुम मुकद्दम को दिया।

रामनुज—यह 'मुकद्दम' कौन ?

गोपाल—मुकद्दम कौन, मालगुज़ार (ज़मींदार) होगा या सरकारी मुकद्दम रहता है न ?

रामानुज—हां, फिर ?

गोपाला—मुकद्दम ने आधा सेर सूजी, सेर भर घी और सेर भर शक्कर ला दी। यह देख निसपिट्टर साहब बड़े बिगड़े, गाली देकर बोले, 'घी बहुत कम है, और लावो।' पुलिसवाला भी घूसा उठा कर आगे बढ़ा, बोला "क्या हम लोग बार बार यहां आते हैं। कंजूस कहीं का। सीधा सामान भी नहीं दिया जाता।" बेचारा मुकद्दम गया और एक सेर घी और ले आया। उस सब का हलुआ बना।

रामानुज—और, खाने वाले कितने थे?

गोपाल—निसपिट्टर, उनके दोस्त और तीसरा पुलिस वाला

रामानुज—उन्होंने सब खा लिया?

गोपाल—सब कहां से खाते। जब हलुआ परोसा गया तो कटोरे में नीचे हलुवे का गोला रह गया और सारा कटोरा घी से भर गया।

रामानुज—फिर, उन्होंने खाया कैसे?

गोपाल—घी जमीन पर उड़ेल दिया और हलुआ खा लिया। भैया, क्या क्या सुनाऊं दौरे की नवाबी।

रामानुज—तो तुम भी इसी नवाबी के लिए चपरासी बनना चाहते हो।

[श्रीधर आता है। साथ में उसकी पत्नी भी आती है। पर गहनों की आवाज़ बंद हो जाने से मालूम होता है, वह दरवाज़े के अन्दर परदे के पीछे रुक गई है]

गोपाल [श्रीधर को देख कर प्रसन्नता से]—क्यों भैया पास हो गए! राम जी भली करी।

श्रीधर—हां, गोपाल। [रामानुज से] रामानुज, अज्ज तुम यहीं भोजन करोगे। घर में तो कोई है नहीं।

रामानुज—मां, अभी तक मामा के ही घर है।

श्रीधर [मुसकुराते हुए]—और, श्रीमती जी हैं हरीश के घर [परदा हिलता है]

रामानुज [परदे की ओर देखते हुए]—तुम्हें ऐसा कहने का कोई अधिकार नहीं।

श्रीधर—पर, उस साले ने अपनी ही ओर से बधाई भेजी। ज़रा अपने नाम के साथ उर्मी और जोड़ देता तो क्या बिगड़ जाता।

रामानुज [हँस कर]—वह अपनी बहन को परदे में रखना चाहता है।

श्रीधर [गोपाल के सामने मज़ाक न बढ़ने देने की इच्छा से] गोपाल, तू भीतर जा, बुलाया है। [गोपाल भीतर जाता है। श्रीधर उसी आनन्दी भाव में रामानुज से कहता है] पर, विवाह कब होगा ?

रामानुज—वाह, लगन भी लग चुकी। पूछते हो, कब होगा।

श्रीधर—हरीश बड़ा अच्छा है। वह तो बहुत करके इलाहाबाद में ही वकालत करेगा।

रामानुज [गंभीरता से]—सम्भव है !

[बाहर से आवाज़ आती है] बाबू जी, तार।

श्रीधर [दौड़ कर]—'कांग्रेचुलेशन्स'‡ होंगे [दरवाज़े पर तार वाले से तार लेकर लिफ़ाफ़ा फाड़ता है और उत्सुकता से मनमें पढ़ता है। उसकी प्रसन्नता एक दम उतर जाती है।]

---

‡ Cangratulations=बधाइयाँ

रामानुज [चिन्तित होकर]—कहां से आया ?

[श्रीधर रामानुज को तार देता है। रामानुज तार पढ़ता है और श्रीधर तार की रसीद पर दस्तख़त करके तार वाले को देता है। तार वाला जाता है।]

रामानुज—भाई, ख़बर तो बुरी है। पर बाबू जी तो सदा बीमार ही रहते हैं। ※ 'सीरियस इलनेस' तो उनका मामूली रोग है। तालुकेदार ठहरे। छोटी सी बीमारी भी उनके लिए 'सीरियस' (Serious—भारी) हो जाती है।

श्रीधर—सम्भव है। मैं चाहता हूँ, ऐसा ही हो।

रामानुज—उन्होंने शशि को और तुम्हें बुलाया है। उनके घर में भी तो कोई नहीं है, न लड़का, न भाई। तुम्ही अकेले जमाई (दामाद) हो। तुम्हें ज़रूर जाना चाहिए।

[श्रीधर भीतर जाने लगता है]

रामानुज [श्रीधर को रोक कर]—पर सुनो, अभी शशि 'रिज़ल्ट' (परीक्षा-फल) सुन कर प्रसन्न है। उसे यह ख़बर मत सुनाना। व्यर्थ रंग में भंग होगा। जब जाने लगो, तब कह देना।

श्रीधर [उदासी से]—नही, अभी नहीं कहूँगा। यही कहूँगा कि बाबू जी ने हम दोनों को बुलाया है—शायद हमारे नतीजे का तार पाकर।

रामानुज [उठते हुए]—ठीक है। मैं ज़रा बाहर हो आता हूँ।

श्रीधर—पर, जल्दी आना तुम्हें भोजन यहीं करना है।

※ Serious illness=गहरी बीमारी

रामानुज [जाते हुए]—ज़रूर [रामानुज जाता है। श्रीधर कमरे में अकेला रह जाता है। पहले वह परदे वाले दरवाज़े की ओर जाता है, पर फिर लौट आता है और खिड़की के पास कुर्सी खींच कर उसके हत्थे पर बैठ जाता है और स्वगत कहने लगता है]

श्रीधर—बाबू जी सीरियसली बीमार हैं। रामानुज कहता है, उनका कोई है नहीं, न बेटा और न भाई। मैं ही अकेला जमाई हूँ। सीरियसली बीमार है। [लापरवाही से] अच्छे होजावेंगे [गम्भीरता से] और अच्छे न हुए तो? बड़ा ज़बरदस्त धक्का लगेगा। वे शशि को बहुत प्यार करते हैं। बड़ा ज़बरदस्त धक्का [सिर हिलाते हुए चुप हो जाता है। धीरे धीरे उसकी उदासी मिटती जाती है और वह प्रसन्न होकर कहता है] और मैं एक दम ग़रीबी से तालुकेदारी पर जा पहुँचूँगा। [मुसकुरा कर मानो नशे में हो] बड़ा ज़बरदस्त धक्का! कहावत सच है, सौभाग्य अकेला नहीं आता।

[पटाक्षेप]

दृश्य दूसरा

[पहले दृश्य को कई महीने बीत गए हैं। कलकत्ते में कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में महात्मा गान्धी का असहयोग प्रस्ताव बहुमत से पास हो गया, और फिर नागपुर की कांग्रेस में दुहराया भी जा चुका है। साधारण परिस्थिति यह है कि अनेक नेताओं और राष्ट्रीय भाव रखने वाले लोगों ने जो कौंसिलों के लिए खड़े हुए थे, अपनी उम्मेदवारी वापिस ले ली है। विशेष परिस्थिति यह है कि श्रीधर के श्वशुर का

देहान्त हो गया है और श्रीधर ही, कोई दूसरा आदमी घर में न होने के कारण, उनकी बड़ी भारी ज़मींदारी का कर्ता बना है। श्रीधर अपनी सुसराल में ही रहता है। श्रीधर ने कर्ता हो जाने के बाद यह प्रकट किया कि इतनी बड़ी ज़मींदारी के प्रबन्ध के लिए कर्ता के नाम के साथ प्रतिष्ठा की आवश्यकता है। इस लिए वह कौंसिल के लिए उम्मेदवार खड़ा हुआ और ज़मींदारी के वोटरों पर दबाव होने के कारण बिना विरोध के चुन भी लिया गया। कौंसिल के कार्य्य के लिए श्रीधर ने प्रान्त की राजधानी में एक बढ़िया बङ्गला ले रखा है और उस पर सामने ही तख्ती लगी है:—

श्रीधर लाल, बी० ए०, एल-एल० बी०,
एम० एल० सी०

[श्रीधर अपने बंगले के बाहरी कमरे में बैठा है। कमरे की सजावट श्रीधर के ऐश्वर्य की साक्षी देती है; मखमली गद्देदार कुर्सियाँ, चमकता हुआ, बढ़िया महोगनी का टेबल और नीचे रेशमी क़ालीन, एक कोने में पैर से धौंका जाने वाला एक हारमोनियम और उसके पास की घूमने वाली कुर्सी, दाहिनी ओर के आलमारी में राजनीति और सरकार से सम्बन्ध रखने वाली सुनहले अक्षरों से चमकती हुई जिल्ददार पुस्तकें, और टेबल की बाईं ओर एक छोटे टेबल पर रेमिंगटन टाइप राइटर; उसी के पास कुर्सी पर बैठा हुआ श्रीधर कुछ टाइप कर रहा है। पास की कुर्सी पर बैठी हुई शशि तस्वीरों का अलबम देख रही है, बीच बीच में श्रीधर से बातें भी करती जाती हैं।]

शशि—तुम 'एमेलसी' क्या हो गए, टाइपिस बन गए हो, दिन भर खटखटाहट [हँसती है।] फिर वह टाइपिस क्यों नौकर कर रखा है?

श्रीधर [टाइप करना रोक कर]—महत्व के काग़ज़ात हैं, इसलिए मैं ही टाइप कर रहा हूँ।

शशि—ऐसा क्या है इन में ?

श्रीधर—बताही दूँ ? मैं 'मिनिस्टर' होने जा रहा हूँ।

शशि—'मिनिस्टर' क्या ?

श्रीधर—मन्त्री।

शशि—जैसे रामानुज हैं ?

श्रीधर—तू भी किससे तुलना करने बैठी ! रामानुज है तुच्छ ज़िला कांग्रेस कमेटी का मन्त्री, और मैं होने वाला हूँ गवर्नर।

शशि [बीच ही में]—गवर्नर कि मिस्टर ?

श्रीधर—[बीच में रोके जाने से चिढ़कर]—ख़ैर मिस्टर नहीं मिनिस्टर, गवर्नर और मिनिस्टर में कोई बहुत फ़र्क नहीं है। मैं तुझे मिनिस्टर और एक कांग्रेस कमेटी के मन्त्री के बीच का फ़र्क दिखाना चाहता था। रामानुज को मिलते हैं, सौ रुपट्टी, वह भी जमनालाल बजाज की कृपा से; और मुझे मिलने लगेंगे चार हज़ार रुपये माहवार ! प्रान्त की करोड़ों जनता के भाग्य-विधाताओं में से मैं भी एक रहूँगा।

शशि [विस्मय से]—बड़े ठाठ हैं !

श्रीधर [अधिक उत्साह से]—तू समझ नहीं सकती, मेरा गौरव कितना बढ़ जावेगा। ज़रा कल्पना तो कर ! गवर्नर साहब मुझ से बिना पूछे कोई काम नहीं करेंगे। कमिश्नर और डिप्टी कमिश्नर मुझे झुककर सलाम करेंगे। शशि, ज़रा सोच उस दिन को कि बड़े भैया की बेवकूफ़ी में आकर और तेरी ज़िद पर वह ५०) की मास्टरी करलेता, तो आज मिनि-

स्टर बनने का मौका आता? और यह मोटर! यह बँगला! यह शान! शशि?

शशि—पर हिन्दी के राष्ट्रीय-पत्र तो कौंसिल की मेम्बरी को बहुत बुरा बताते हैं।

श्रीधर—[आश्चर्य से]—तुम हिन्दी अखबारों को कहाँ से पा जाती हो।

शशि—वाह! तुम्हें नहीं मालूम? मैं बाज़ार से खरीदवा मँगाती हूँ।

श्रीधर [शान्त भाव से]—तुम अंग्रेज़ी सीखो, तब हमारे पास जो लीडर और पायोनियर, आते हैं, उन्हें पढ़ना।

[श्रीधर घंटी बजाता है]

शशि—क्यों, क्या चाहिए?

[नौकर आकर सलाम करता है]

श्रीधर—मोटर तैयार करवाओ।

नौकर—बहुत अच्छा, हुज़ूर [नौकर जाता है]

श्रीधर—नौ बजने वाले हैं, मुझे गवर्नर साहब ने मिलने को बुलाया है।

शशि [हँसी में] गवर्नर साहब से कैसे मिला करते हो?

श्रीधर [हँसकर]—अभी ठहर, मैं विज़िटिंग सूट पहन आऊं।

[श्रीधर दरवाज़े का परदा हटा कर भीतर जाता है। शशि कमरे में अकेली रह जाती है। वह कोने में रखे हुए हारमोनियम के पास जाकर उसे बजाती है और धीरे २ गाने लगती है।]

गायन

अजी विजयी प्रिय आओ, लगाओ गले, व्यथा मिटाओ,
आनन्द रंग छाओ।
स्वागतोत्सुका, यह चकोरिका, खड़ी निकल युग चुका,
अड़ी नयन पुतलिका, चन्द्र आओ॥
मूर्ति वीरता, विजय मद-रता, छिपी किधर झट बता,
छली न कर निठुरता, शीघ्र आओ॥

[श्रीधर बहुत बढ़िया पतलून, वेस्टकोट, खुले कालर का कोट पहिने और नेकटाइ लगाए हुए हाथ में हैट लेकर आता है और अङ्गरेज़ी में कहता है:—]

श्रीधर—हज़ूर, अन्दर आऊँ ?

[शशि चौंक कर पीछे देखती है और हँसती है]

श्रीधर—हमारे गवर्नर साहब इस तरह बेवक्त गाना बजाना नहीं करते।

शशि [समझ कर]—आहा ! आइए, मिनिस्टर साहब । मैं तो भूल ही गई थी।

श्रीधर—वे स्त्रीलिंग में भी नहीं बोलते। खैर, देखो हम लोग इस तरह मिला करते हैं। गवर्नर बड़ी खुशी से हाथ मिलाते हैं और हम इस प्रकार झुक कर [सलाम करने का नाट्य करता है] सलाम करते हैं।

शशि—ओहो, आदर, भक्ति और कृतज्ञता की साक्षात मूर्ति !

नौकर [दरवाज़े के पास बाहर से ही कहता है]—मोटर तैयार है, हुज़ूर।

श्रीधर—अच्छा, अब मैं जाता हूँ । [श्रीधर जाता है, दूसरे दरवाज़े से गोपाल आता है।]

गोपाल—बहूजी, ओझाजी आए हैं। आप तो बहुत देर से हैं, पर भैयाजी थे, इसलिए मैंने पिछवाड़े ही बैठा रखा था। यहाँ ले आऊँ? [गोपाल जाने लगता है]

शशि—ज़रा ठहरो तो। तुमने उनसे कुछ बातें तो की होंगी!

गोपाल—क्यों नहीं? सब कर डालीं। तुम भी कर लो। मन को सन्तोष हो जावे बड़े नामी ओझा हैं। उनके तो जोगनी सधी है। किसी के घर थोड़े ही जाते हैं। बड़े मनाने से यहाँ आए हैं।

शशि [प्रसन्नता और उत्सुकता से]—क्या! बातें क्या हुईं?

गोपाल—बहूजी, कहता तो हूँ मैंने सारी बातें पूछ लीं। पूछा कि हमारी बहूजी को लड़का कब होगा? बड़ी देर तक पत्रा खोल कर हिसाब लगाते रहे, कभी सिर हिलावें, कभी प्रसन्न हों, फिर आँख मीच ली, फिर गणना करने लगे। एक बार तो पत्रा [पटकने का नाट्य करके] पटक दिया।

शशि [अधीरता से]—आख़िर जवाब क्या दिया?

गोपाल [गर्व से]—जवाब क्या होता! मैंने साफ कह दिया था, कुछ भी हो, लड़का तो होना ही चाहिए। बोले, जोग तो आ सकता है, पर है कठिन जोग। कहते थे, शनि आड़े आ गया है।

शशि [चिंता से]—फिर?

गोपाल—फिर क्या? मैंने कहा महाराज जोगनी लगाओ, शनिको निकाल बाहर करो, लड़का तो होना ही चाहिए। बोले, होगा [शशि की चिंता दूर होती मालूम होती है] पर, साधना में खर्च बहुत लगेगा।

शशि [उत्साह के साथ]—खर्च तो देख लिया जावेगा।

गोपाल—और बहू जी, मैंने महाराज से यह भी पूछा। महाराज बड़े विद्वान हैं, उनके कंठ में सरस्वती बिराजती है।

शशि—क्या पूछा ?

गोपाल—पूछा, हमारे भैया छोटे साहब कब होंगे ?

शशि [हँस कर]—छोटे साहब ! अरे, तुम्हें नहीं मालूम है, तुम्हारे भैया तो 'मिनिस्टर' होने वाले हैं।

गोपाल [अनुत्साहित स्वर में]—'मिनिस्टर' कौन सा ओहदा होता है बहू जी ?

शशि—जानती तो मैं भी अच्छी तरह नहीं। तुम्हारे भैया कहते थे, हम लोग नहीं समझ सकते। तुम्हारे बड़े साहब और कमिश्नर भी उनको सलाम करेंगे।

गोपाल (अत्यन्त प्रसन्नता से]—तब तो बड़े साहब का चपरासी हमको सलाम किया करेगा।

शशि—इसके बारे में भी ओझा जी कुछ कहते हैं।

गोपाल—बोले, छोटे साहब तो नहीं, बहुत बड़े ओहदे पर जाने वाले हैं। [सिर हिला कर] पर...... ।

शशि—पर, क्या ?

गोपाल—पर, बिस्तर अपनी जगह से हट गया है।

शशि [हँस कर]—बिस्तर का ओहदे से क्या सम्बन्ध ?

गोपाल—समझा तो मैं भी नहीं था। पर होगा कोई ग्रह (सोच कर) वह बिस्तर वार का ?

शशि—बिरस्पती !

गोपाल—हां, वही, मुझे शुद्ध नाम नहीं आता।

पर, ओझा जी कहते थे, सीधा हो जावेगा। भेंट-पूजा में वह ताक़त है जो टेढ़े ग्रहों को भी सीधे कर देती है।

[बाहर से एक गाड़ी रुकने की आवाज़ आती है]

शशि—देखो तो कोई आया है।

गोपाल [खिड़की में से झांक कर]—हरीश बाबू की बहिन है।

शशि—अच्छा, तुम जाओ। ओझा जी को अभी दक्षिणा देकर बिदा कर दो, फिर शाम को बुलाना। तब पूजा-पाठ की बातें तय करलूँगी।

[गोपाल जाता है। उर्मिला बरंडे में आती मालूम होती है]

शशि—आओ, इस कमरे में, उर्मिला ! [शशि दरवाज़े के पास जाकर एक हाथ से परदा हटाकर थामती है। उर्मिला भीतर आती है। वह अभी १६ वर्ष की होगी किन्तु अपनी उम्र से ज़रा बड़ी मालूम होती है। हलके नीले रंग की रेशमी साड़ी पहिनी है। उसके नीचे कमीज़ कुछ गुलाबी है जो साड़ी के भीतर से बैंजनी सा दीखता है। पैर के मोज़े तो दिखाई नहीं देते परन्तु ऊँची एड़ी के पालिशदार बूट अवश्य चमक रहे हैं। हाथ में एक लपेटा हुआ कागज़ है। कमरे में घुसते ही उर्मिला की साड़ी परदे से अटक जाने के कारण सिर से खिसक कर पीठ पर गिर गई, मानो किसी नाटक का सुन्दर दृश्य खुल गया। कितना मोहक केश-कलाप ! घुंघराले और लहरियों वाले बाल ! शायद इसी लिए उसका नाम उर्मिला है। जो मांग है वह भी टेढ़ी। भौंहों ने तो स्वभावतः चढ़ कर उतरने का नाम ही नहीं लिया,

ऊपर ज़रा झुक कर पतली रेखा में अदृश्य हो गई हैं। रंग में सांवली झलक है; आंखों में संसार भर की चंचलता और हठीलापन, ओठों का कोना एक तरफ कुछ चढ़ा हुआ रहता है जिससे उन पर सदा-मुसकुराहट दीखती है और शरारत भी।]

शशि—आज कैसे कृपा हुई! क्या रास्ता भूल गई!

[शशि बैठने को कुर्सी बढ़ाती है]

उर्मिला—रास्ता तो नहीं भूली।

शशि—कहां से आ रही हो?

उर्मिला—स्कूल से, 'नान-को-आपरेशन' करके आ रही हूं।

शशि—क्या? ट्रूंट्स अधूरा रह जावेगा!

उर्मिला—पर मैं तो पूरी हो जाऊंगी।

शशि—भैया क्या कहते हैं?

उर्मिला—चिढ़ते हैं, कुढ़ते हैं, पर यहां तो [सिर हिला कर निश्चय का संकेत करती है। उर्मिला का मानो प्रत्येक अंग बोलता है।]

शशि—(अविश्वास के साथ)—करती हो नान कोआपरेशन, और यह विदेशी साड़ी पहिन कर उर्मिला बनी हो उर्वशी।

उर्मिला—यह भेष घर जाकर उतरने ही वाला है। सोचा, चलूं, आप लोगों से मिल आऊं, नहीं तो खादी पहनने पर कंपाउण्ड में घुसना मुश्किल होगा।

शशि—(कुछ हतप्रभ होकर) उर्मिला, ऐसा क्यों कहती हो!

उर्मिला (बड़े प्रेम से)—हंसी में कहा था, भौजी, बुरा लग गया?

शशि—क्या वे कौंसिल के मेम्बर होगए, इसलिए तुम समझती हो, तुमसे सम्बन्ध टूट जावेगा।

उर्मिला—नहीं भौजी (बात बदलने की इच्छा से अलबम उठाकर खोलती है और पूछती है) यह फोटो किसका है?

(शशि अब भी उदास है)

शशि—पता नहीं, किसका है? शायद गवर्नर का है

उर्मिला—(दूसरा चित्र खोलकर) यह किसका है?

शशि—देखूं? शायद यही गवर्नर का है। मालूम नहीं, ये सब अंग्रेज एक से लगते हैं। गवर्नर और कलेक्टर और बादशाह में कोई फर्क नहीं।

उर्मिला—अजी, हर अंग्रेज गवर्नर और बादशाह है। [उर्मिला हँसती है, शशि भी हँसने लगती है।]

शशि—इधर लाओ, इनमें कुछ तस्वीरें ऐसी भी हैं जिन को तुम पहिचानती हो। [शशि अलबम लेकर कुछ तस्वीरें इधर उधर पलट कर एक तस्वीर दिखाती है। उर्मिला उसकी ओर देखकर कुछ लज्जित होती है परन्तु फिर उसी को देखती रह जाती है।]

शशि—पहिचानती हो?

उर्मिला—थो...ड़ा। भैया और ये, यहां पर साथ साथ पढ़ा करते थे। पारसाल की तो बात है। श्रीधर भैया के साथ कभी कभी हमारे घर भी आया करते थे।

शशि [शरारत से शशि की नकल करके]—थो...ड़ा जानती हो, बहुत तो नहीं?

उर्मिला—थोड़े और बहुत का अन्तर तो मुझे नहीं मालूम,

पर, हां, जानती अवश्य हूँ। अब ये कहाँ, क्या करते हैं? सुनती हूँ, वकालत तो पास होगये हैं।

शशि—इन्होंने वकालत शुरू ही नहीं की। [उर्मिला प्रसन्न होती है] आज कल श्रीरामनगर में ज़िला कांग्रेस कमेटी के मन्त्री हैं। उर्मिला, तुम भी ["भी" पर ज़ोर देती हुई] 'नान-कोआपरेटर' हो गई हो।

उर्मिला—जी हां, ['जी' पर ज़ोर देती है]

शशि—छिपाती क्यों हो, मुझे तो सब मालूम है।

उर्मिला [हँसती हुई]—क्या?

शशि—इसी लिए तो तुम 'नान-कोआपरेटर' बनी हो।

उर्मिला [हँसी के स्वर में]—तब तो तुम्हें सब कुछ मालूम है!

शशि—और यह भी मालूम है कि तुम रामानुज को बहुत प्यार करती हो।

उर्मिला [हँसी के स्वर में]—बिलकुल ठीक! थोड़ी सी कसर और रह गई!

शशि—और, वे भी तुम्हें प्यार करते हैं।

उर्मिला—शाबास, बड़ी नई बात कही। अजी, उर्मिला जिसको प्यार करे फिर वह पत्थर भी हो तो महादेव बन कर उसके पीछे जंगल जंगल घूम सकता है।

शशि—परन्तु, रामायण कुछ और ही कथा कहती है।

उर्मिला—क्या?

शशि—रामानुज उर्मिलाके पीछे जंगल जंगल नहीं घूमे थे। वे तो उसे महलों में छोड़ कर भाई के पीछे जंगल जंगल घूमे थे

उर्मिला—उर्मिला की अनुमति से ।

शशि—यह तुम जानो ।

उर्मिला—क्यों, यह बात रामायण नहीं कहती ?

शशि—पर उर्मिला, वे बहुत नाराज़ हैं ।

उर्मिला—यह भी रामायण में लिखा है ?

शशि—नहीं, हँसो नहीं, मैं सच कहती हूं ।

उर्मिला—मैं मानती हूँ, नाराज़ी तो प्यार का लक्षण है ।

शशि—कहते थे, पास होने पर केवल हरीश ने बधाई दी, उर्मिला ने नहीं दी ।

उर्मिला—उर्मिला इन तुच्छ बातों पर प्रसन्न नहीं होती । उर्मिला की बधाई बहुत क़ीमती है ।

शशि—उर्मिला किसे बधाई देती है ?

[उर्मिला अपने हाथ का कागज़ शशि को देती है । शशि मन में पढ़ती है ।]

शशि—[प्रसन्न होकर,] उर्मि, ज़रा गा भी दो । आओ, मैं हारमोनियम बजाऊंगी ।

[दोनों हारमोनियम के पास जाती हैं । शशि हारमोनियम बजाती है और उर्मिला गाती है ।]

गायन

उन्हें है बधाई, बधाई, बधाई ।
जिन्हों ने है माता स्वतंत्रा बनाई ॥
बजी रण भेरी, बजी,
सजी सब सेना सजी,
भीति मरने की तजी,
कराहे मत हे घायल वीर, धीर रख, हो जा स्वस्थ शरीर,
नहीं निर्बल के लिए लड़ाई । बधाई...उन्हें है—

किन्तु वह बोला, युद्ध,
ठना है आत्मिक युद्ध,
पाशविक शक्ति विरुद्ध;
लड़ूंगा बिना किए मैं वार, मार सह यह तन दूंगा वार,
यही वीरों की एक बड़ाई। बधाई······उन्हें है—
युद्ध के बीचो बीच,
खून से भू को सींच,
सो गया आंखें मीच,
हो गया शांति सहित बलिदान, जान दे जीवन किया महान
जगत में नूतन, शक्ति जगाई, बधाई······उन्हें है—
मार ले भाई मार,
फले यह तेरा वार,
इसी से हो उद्धार,
मृत्यु बन जाय मुक्ति का द्वार, प्यार ही करे क्रूरता छार,
हार में अद्भुत विजय समाई। बधाई······उन्हें है—

शशि—उर्मिला, तुम बड़ी क्रूर हो। तुम्हारी बधाई पाने के लिए किसी को मरना पड़ता है।

उर्मिला— नहीं, मेरी बधाई पाने के लिए किसी को स्वर्ग जाना पड़ता है।

शशि—तो क्या रामानुज का वकालत का बहिष्कार करना काफी नहीं है?

उर्मिला—मैं देखती हूँ, वकालत तो बहुतों ने छोड़ दी, परन्तु उनमें फिर भी कसर है। वकालत में काफ़ी कमाई न होने के कारण भी कुछ लोगों ने वकालत का बहिष्कार किया है और राष्ट्र सेवा में भरती होकर भी वे सच्चे हृदय से राष्ट्र सेवा नहीं करना चाहते।

शशि—यह बात ठीक है। कई लोग तो केवल मान पाने के लिए ही असहयोगी बने हैं।

उर्मिला—हाँ, यह भी है।

शशि—असहयोग और कौंसिलों के बारे में उनकी और रामानुज की अकसर बातें हुआ करती थीं। पर, रामानुज तो कौंसिल के मेम्बर हो ही नहीं सकते थे।

उर्मिला—क्यों नहीं?

शशि—वे इतने धनवान नहीं हैं।

उर्मिला [चिढ़कर किन्तु हँसते हुए]—तो क्या हुआ, क्या वे किसी धनवान के जमाई नहीं बन सकते थे?

[शशि उदास हो जाती है और उर्मिला अधिक दृढ़ता से कहती है।]

पर, तुम्हें मालूम है, इस साल कौंसिल में कैसे कैसे आदमी गए हैं?

शशि [उदासी से]—मुझे नहीं मालूम।

उर्मिला—चमार और मेहतर भी। तुमने तो अखबारों में पढ़ा होगा।

शशि [नितान्त हतप्रभ होकर]—हाँ, पढ़ा तो है।

[बाहर मोटर रुकने की आवाज़ सुनाई देती है]

उर्मिला [खिड़की से झांक कर] श्रीधर भैया आए हैं।

शशि—अच्छा, मैं भीतर जाती हूँ। [उठती है]

उर्मिला [हाथ पकड़ कर]—बैठो भी। साथ में और कोई नहीं है। तुम्हारा परदा और यह हिचक अभी तक नहीं गई। कई बार श्रीधर भैया शिकायत कर चुके हैं।

[श्रीधर कमरे में आता है। उर्मिला और शशि खड़ी हो जाती हैं।]

श्रीधर [प्रसन्नता से]—बैठो, उर्मिला, बैठो।

[वे दोनों बैठ जाती हैं। श्रीधर भी कागज़ात टेबल पर पटक कर कुर्सी पर बैठ जाता है। वह अत्यन्त प्रसन्न है। उसकी आंखें, मुख, अङ्ग अङ्ग उमग रहा है]

श्रीधर [हँसते हुए]—यह पगली कब से आई है ?

उर्मिला—अभी थोड़ी ही देर हुई है। आप कहां गए थे ?

श्रीधर—कुक* ने बुलवाया था।

उर्मिला [हँसी को दबाकर, गम्भीरता से]—भैया, ब्राह्मण होकर ऐसी बातें न किया करो। आपको कुक से क्या काम ? और कुक आपको बुलायेगा कि खुद आपके पास आवेगा। मानलो, आप कुक के पास गए भी तो मोटर पर चढ़ कर ?

श्रीधर [ज़ोर से हँसकर]—पागल !, पूरी पागल !

शशि [कुछ न समझ कर]—यह कुक कौन है ?

उर्मिला—'कुक' कहते हैं खानसामा को।

शशि [आश्चर्य से]—वे मुसलमान लोग, जो साहब लोगों की रोटी बनाते हैं ?

उर्मिला—वही।

शशि [श्रीधर की ओर देखकर]—पर, कह तो गये थे कि गवर्नर के यहाँ जाता हूँ।

---

* गवर्नर का संक्षिप्त नाम।

श्रीधर—यह उर्मिला तो पागल है। मैं गवर्नर के ही पास गया था। उनका नाम है सर हेनरी कुक।

उर्मिला [शरारत से]—अब समझो ! पर भैया, गवर्नर का नाम तो आदर के साथ लेना चाहिए।

शशि [प्रसन्न होकर और उत्सुकता से]—हां, मैं तो भूल गई थी। क्या हुआ ?

श्रीधर—मैं होम मेम्बर बना दिया गया।

[उर्मिला शरारत से मुसकुराती है।]

शशि—यह होम मेंबर क्या होता है ?

उर्मिला—'होम' अंग्रेज़ी में कहते हैं घर को, और मेंबर तो तुम जानती ही हो, आदमी। होम मेंबर का मतलब हुआ, घर का आदमी, रिश्तेदार।

शशि [कुंठित होकर]—गवर्नर के रिश्तेदार !

[उर्मिला और श्रीधर जोर से हँस पड़ते हैं। यह देख शशि को क्रोध आ जाता है] मुझे यह हँसी अच्छी नहीं लगती, तुम लोग, अंग्रेज़ी पढ़ कर अपने को न जाने क्या समझ लेते हो ! मैं जाती हूं [शशि जाने लगती है।]

उर्मिला—आखिर सुन भी लो, ये क्या होकर आए हैं। [शशि बैठ जाती है] हां, भैया, बताओ।

श्रीधर [शशि की ओर देख कर]—तुम ज़रासी बात में चिढ़ जाती हो। जहां चार जन बैठते हैं हँसी मज़ाक होता ही है ! [शशि चुप रहती है]

उर्मिला—भैया, उपदेश बन्द करो। यह बताओ, तुम क्या होकर आए हो ?

श्रीधर—क्या कहूं, सब मज़ा किरकिरा हो गया। शुभ सम्बाद को सुन कर आज शशि से प्रसन्नता की पौर्णिमा प्रकट होनी चाहिए थी परन्तु वहां ग्रहण लग रहा है।

उर्मिला—ग्रहण है, पर पौर्णिमा भी है, । आप ही तो राहु बने, और ग्रहण का दोष देते हैं शशि को।

शशि—उर्मिला, चुप नहीं रहोगी!

उर्मिला—हां, भैया, हम दोनों चुप बैठते हैं, कहो।

[अब भी श्रीधर की खिन्नता दूर नहीं हुई है।]

श्रीधर—आज गवर्नर ने मुझे होम मेंबर बनाया है। अगले सोमवार को गज़ट में यह बात प्रकाशित हो जायगी।

उर्मिला—यह तो आप पहिले ही कह चुके हैं। होम मेम्बर का मतलब समझाइए।

श्रीधर—तू ही क्यों नहीं समझा देती।

उर्मिला—मैं समझाऊंगी तो भौजी और शायद आप भी नाराज़ हो जावेंगे।

श्रीधर—कह तो।

उर्मिला—[शशि की ओर देख कर]—नई सुधार योजना में होम मेंबर एक मंत्री होता है। मंत्री चुनने का सब देशों में नियम यह है कि प्रजा के ही प्रतिनिधि मंत्री चुना करते हैं। परन्तु यहाँ पर मंत्री सरकार द्वारा नियुक्त किए गए हैं। उन्हें ४०००) तक मासिक वेतन मिलता है।

शशि [प्रसन्न होकर]—तो इन्हें भी ४०००) महीना मिला करेगा?

उर्मिला—भौजी तो 'मिनिस्टरी' का मूल्य रुपयों में ही लगाती हैं।

श्रीधर—यह स्त्री है, यह क्या जाने 'मिनिस्टरी' के पूरे महत्व को।

उर्मिला—माडरेट लोग भी तो ४०००) मासिक पर बहुत प्रसन्न हुए हैं!

शशि [गर्व से]—क्यों, मैं महत्व क्यों नहीं समझती? पूरा नहीं जानती तो क्या हुआ? इतना तो जानती हूं कि अब कमिश्नर और कलेक्टर इन्हें झुक कर सलाम करेंगे और गवर्नर इनसे बिना पूछे कोई काम नहीं करेंगे। [श्रीधर की ओर देख कर] क्यों ठीक है न?

[श्रीधर उर्मिला की मुसकुराहट देख कर चुप रह जाता है।]

उर्मिला—बिलकुल ठीक! और भौजी, गवर्नर साहब जो कुछ करना चाहेंगे उसमें इन्हें [श्रीधर की ओर दिखा कर] 'हाँ' कहना पड़ेगा, और ये जो कुछ करेंगे वह गवर्नर से बिना पूछे नहीं कर सकेंगे।

शशि—इस में क्या खराबी है?

उर्मिला—खराबी कुछ नहीं। गवर्नर साहब चाहेंगे कि महात्मा गान्धी कैद कर दिए जावें तो इन्हें कहना पड़ेगा, 'जी हाँ।'

[श्रीधर चुप बैठा रहता है]

शशि—'हाँ' क्यों कहना पड़ेगा? कोई ज़बरदस्ती है?

उर्मिला—ज़बरदस्ती तो नहीं है, पर मासिक ४०००) तो हैं!

शशि—भला गान्धी को, जिनको सब पूजते हैं, कोई कैद करने की सलाह देगा?

[उर्मिला उत्तर में मुसकुराती हुई श्रीधर की ओर उँगली दिखाती है]

शशि [उत्तेजित होकर] उर्मिला, तुम्हारे साहस की भी सीमा है ! तुम क्या इनको नीच समझती हो ?

[श्रीधर अत्यन्त चिंतित दीखता है]

उर्मिला—नीच क्यों, अपने राजनतिक विरोधी को कैद करने की सलाह देना क्या नीचता है ?

शशि—महात्मा गान्धी को कैद करने की सलाह देना तो नीचता है। मुझे विश्वास है, ये तो कभी भी, उसके लिए 'हाँ' नहीं कहेंगे।

उर्मिला—तब मालूम है, इसका परिणाम क्या होगा ?

शशि—क्या होगा ?

उर्मिला—गवर्नर साहब इनसे नाराज़ हो जावेंगे। वे इन्हें मिनिस्टरी या होम-मेम्बरी से हटा सकते हैं। तब इनका ४०००) महीना मारा जाता है, और यदि ये महात्मा गान्धी को कैद नहीं करते तो इनके सुधार नष्ट होते हैं और सुधार नष्ट हुए कि ये ४०००) छिने। इसलिए गान्धी को कैद करना ही होगा।

शशि (श्रीधर से)—क्यों जी, क्या उर्मिला सच कहती है?

श्रीधर (मानों चौंक कर)—उर्मिला माडरेटों को 'नीच' समझती हैं।

उर्मिला—हाँ, भैया, क़रीब क़रीब। उनमें कुछ अवश्य अच्छे हैं।

श्रीधर—इसी तरह असहयोगियों में भी अनेक स्वार्थी हैं।

उर्मिला—पर, भैया, बातें हो रही थीं मिनिस्टरी की। असहयोगियों के ऐब ढूँढने से मिनिस्टरी थोड़े ही अच्छी हुई जाती है।

श्रीधर (कुछ उत्साह सा दिखाकर)--नहीं, उर्मिला, मैं तुझे विश्वास दिलाता हूँ, माडरेट नीच नहीं हैं जैसा तू समझती है। हम तो लोक-सेवा के उद्देश्य से और सुधारों को उपयोगी समझ कर उनसे देश को लाभ पहुँचाने के लिए कौंसिल में गए हैं।

उर्मिला—केवल यही भाव महात्मा गांधी को कैद करवाने के लिए काफी है।

श्रीधर [उत्सुकता से]—कैसे ?

उर्मिला—जब आप सुधारों को उपयोगी मानते हैं तो जो लोग सुधारों में बाधा पहुँचावेंगे उन्हें आप जेल भेजेंगे। महात्मा गांधी सुधारों के सब से बड़े बाधक हैं। इस लिए उनको कैद कर देना आपको उचित मालूम होगा।

[श्रीधर निरुत्तर सा दीखता है]

शशि—जाने भी दो इस विषय को, मैं तो थक गई।

श्रीधर [शशि की इस मौके की सहायता से प्रसन्न होकर]—अच्छा, उर्मिला, इस सम्बन्ध में हम लोग फिर कभी बातचीत करेंगे। यह न समझना कि श्रीधर तुझ पगली से हार गया।

उर्मिला—भैया, हारी तो मैं हूँ, क्योंकि आपसे यही आश्वासन ले सकी कि आप हारे नहीं, किन्तु यह न कहला सकी कि आप कौंसिल छोड़ देंगे। (शशि से) अच्छा, भौजी, जाती हूँ। भौजी, क्षमा करना, मैं यहाँ आती हूँ तो तुम्हें थोड़ा बहुत चिढ़ा ही जाती हूँ।

शशि—नहीं, उर्मिला, मुझे कुछ बुरा थोड़े ही लगता है। अब बताओ, कब आवोगी ?

उर्मिला—जब चाहो, अच्छा, बन्दे !

(उर्मिला अभिवादन करके जाती है। श्रीधर और शशि भी बरामदे तक साथ पहुँचाने आते हैं।)

पटाक्षेप।

तीसरा दृश्य

[प्रातःकाल का समय है। श्रीरामनगर में गङ्गा के घाट पर रामानुज नित्य नियम के अनुसार स्नान कर के खादी की धोती पहिने सन्ध्या कर के अभी उठा है। आसन और लोटा आचमनी इत्यादि नीचे रखे हैं। वह कभी गंगा के किनारे पर खड़ी हुई मस्जिद की ओर देखता है; कभी खिन्न मालूम होता है, कभी प्रसन्न, मानो मन में ही कुछ बोलता है, फिर ज़ोर से कहता है, मानो गङ्गा को सुना कर,—]

गङ्गा, तू यदि चाहती तो इस मस्जिद को कल ही उखाड़ कर बहा देती। परन्तु तूने वैसा न करते इस मस्जिद के आस-पास अनन्त क्रीड़ाएं करके इसको प्रसन्न ही किया है, और इससे उठने वाली सदाओं की प्रतिध्वनि उसी तत्परता से दी है जिस प्रकार तू ने 'हर हर महादेव' को प्रतिध्वनित किया है। तेरे लिए हर हर महादेव और, अल्लाहोअकबर एक हैं। परन्तु मैं जानता हूँ, इन्हीं दोनों का जय-घोष करने वालों ने एक दूसरे के गले काट कर खून की नदियाँ बहाई हैं। औरङ्ग-जेब उस दिन अत्यन्त प्रसन्न हुआ होगा जिस दिन उसने काशी विश्वनाथ का मन्दिर तोड़ कर उसके पत्थरों से मस्जिद बनवाई थी। औरङ्गजेब की उस प्रसन्नता की कीमत मुसल-मान और साथ में हिन्दू भी आजतक अपनी गुलामी से चुका रहे हैं। गङ्गा, क्या ही अच्छा होता यदि तू अपनी बाढ़

से इस मन्दिर और मस्जिद दोनों को सदा के लिए नष्ट कर देती।

[वह थोड़ी देर के लिए चुप हो जाता है फिर सिर हिलाता है मानो सोचता है कि यह असम्भव है। फिर ज़ोर से कहता है ;—]

या मन्दिर के पत्थरों से बनी हुई मस्जिद हिन्दू मुसलमानों की एकता का स्वरूप धारण कर ले और हिन्दू मुसलमान सुनें, मन्दिर के घण्टे से मस्जिद गूँजती रहती है और मस्जिद की सदा से मन्दिर गूँजता है। हिन्दू मुसलमान इस को सुनें और इसके मतलब को समझें।

[नेपथ्य में—हर हर महादेव का शोर होता है। कई लोग स्नान के लिए घाट पर आते हैं जिससे युवक का ध्यान भङ्ग हो जाता है। सब "वन्देमातरम" कह के रामानुज का अभिवादन करते हैं। उनमें से एक बातें शुरू करने के इरादे से कहता है,—]

एक—कहिए, आज तो आपको स्नान कर के लौटने में देरी हो गई।

रामानुज,—योंही समय सुहावना था; इस लिए रुक गया। जाने की तैयारी में ही था।

दूसरा—अब तो हम लोग आगए, जाने नहीं देंगे। समय सुहावना है, गायन होना चाहिए।

रामानुज—अच्छी बात है, पर क्या गाया जावे ?

तीसरा—वही गाँधी का गुणगान।

रामानुज—ठीक होने दो।

[रामानुज गाता है, साथ में अन्य सब तालियां बजाकर गाते हैं।]

गान्धी ने हम को प्रीति सिखाई।
प्रीति सिखाई भीति भगाई, नूतन स्फूर्ति जगाई॥
प्रीति वही जिसमें न घृणा हो, हो न स्वार्थ निठुराई॥
प्राणिमात्र पर पूर्ण दया हो, जन के सब जन भाई॥
शांत तथा निर्भ्रांत क्रांति की, विजयी रीति दिखाई॥
जिसकी गाथा बुद्धदेव, जिन वर, ईसा ने गाई॥
बोलो, महात्मा गान्धी की जय॥

[ऊपर की सीढ़ियों पर से आवाज़ आती है,–]
वन्देमातरम् ! अल्ला हो अकबर !
[ऊपर की ओर देखकर सब लोग एक साथ चिल्ला उठते हैं,–]
अल्ला हो अकबर !

[ऊपर एक १५ वर्ष का बालक खड़ा हुआ मुसकुरा रहा है। वह खादी का कुरता, खादी का पाजामा और खादी की तुर्की टोपी पहने है। उसका पाजामा खून से सना है और अन्दर से अभी भी खून बहता मालूम होता है। उसके साथ दो युवक और हैं। उस बालक ने आनन्द और उत्सुकता से पूछा, –]

मैं भी आऊँ ?

[रामानुज आदि सब दौड़ कर उसके पास पहुँच गए]

रामानुज [प्रेम से]—अहमद, तुम तो जेल में थे ? यह खून कैसा ?

अहमद—मुझे २५ बेंत मारे हैं।

एक—नंगा कर के और टिकटी पर बाँधकर ?

अहमद [मुसकुराते हुए]—हाँ।

दूसरा—[घृणा के साथ]—और वहाँ पर न्याय-मूर्ति मैजिस्ट्रेट बड़ी गम्भीरता से खड़ा देखता होगा ?

अहमद—जी हां।

तीसरा—ये लोग पढ़े लिखे प्रतिष्ठित और सभ्य हैं!

चौथा—क्यों, भाई, कुसूर क्या था?

अहमद—मैंने जेलर साहब के आने पर 'सरकार एक' नहीं कहा था।

एक—तुम्हें तकलीफ़ तो हुई होगी। हर हर! तुम चिल्लाए होगे!

अहमद—चिल्लाया ज़रूर था। पर चिल्लाया था (ज़ोर से) महात्मा गांधी की जय।

सब लोग [चिल्ला उठते हैं]—महात्मा गांधी की जय।

एक-इससे तो वे और भी चिढ़े होंगे।

अहमद—चिढ़े ज़रूर थे, इस लिए मैजिस्ट्रेट साहब ने कैदी के हाथ से वेंत छीन कर खुद कस कस कर मारना शुरू किया।

दूसरा—और तुम?

अहमद—मैं और भी ज़ोर से महात्मा 'गांधी की जय' कहता था, जब तक बेहोश न हो गया।

रामानुज—पर, तुम यहां कैसे आए?

अहमद—होश आने पर उन्होंने मुझे जेल के बाहर निकाल दिया और कहा, घर जाओ। मुझे पैदल जाने में तकलीफ़ होगी इस लिए तांगा भी मंगा दिया। मैंने कहा, मुझे जल्लाद की कृपा नहीं चाहिए।

सब—शाबास!

अहमद—मैं पैदल आ रहा था कि इनका (अपने साथियों को दिखा कर) तांगा मिला। इन्होंने कृपा कर अपने तांगे

पर मुझे बैठा लिया। मैं उसी पर घर जा रहा था कि यहां महात्मा गांधी का जयकार सुना तो मुझ से रहा नहीं गया और मैं इधर देखने को आ गया।

रामानुज—अच्छा, चलो, अब हम सब तुम्हें उठा कर ले चलेंगे, तकलीफ़ नहीं होने देंगे।

[सब मिल कर एक घेरा बनाते हैं और अहमद को इस ढंग से उठाते हैं जिससे उसे तकलीफ़ न हो]

सब [उठाते समय]—अल्ला हो-अकबर ! बन्देमातरम्

एक—भाई, इस तरह ले चलना है तो फिर, पूरा जुलूस ही न निकले। गायन भी होता चले।

[सब गाते हैं,—]

श्रीकृष्ण जन्मगृह से आज़ाद आ रहा है।
सच्ची स्वतन्त्रता का सम्वाद ला रहा है॥
दागी न इस पे गोली तलवार भी न मारी।
बस बेंत ही से पीटा पशुबल लगा के भारी॥
जालिम को खौफ़ यह था मर जायगा ये पूरा।
तो हौसला ज़ुलुम का रह जायगा अधूरा॥
उसके हवस थी दिल में घायल तड़प के चीखे।
वह भी हुई न पूरी यह गीत गा रहा है॥

चौथा दृश्य

[गवर्नर की कोठी के एक कमरे में गवर्नर और श्रीधर बैठे हैं।]

गवर्नर—आपने श्रीरामनगर के सब समाचार सुन लिए। देखिए न, क़ानून और शान्ति भङ्ग होने की वहां बहुत सम्भा-

चना है। असहयोगियों की इस अराजकता को रोकने के लिए अब कड़ा उपाय करना चाहिए।

श्रीधर [गम्भीरता से]—उपाय तो अवश्य होना चाहिए, परन्तु यह देख लेना चाहिए कि क्या श्री रामनगर की अवस्था वास्तव में भयङ्कर हो रही है।

गवर्नर—भयङ्कर और किसे कहते हैं! वहां का कलेक्टर तार देता है कि असहयोगी लोग गङ्गा के घाटों पर 'अल्ला हो-अकबर' चिल्लाते हैं। जिससे हिन्दुओं के पूजापाठ में विघ्न होता है। यदि यह रोका नहीं जावेगा तो पण्डे उपद्रव कर डालेंगे।

श्रीधर—है तो वास्तव में भयङ्कर अवस्था! कलेक्टर साहब इसके लिए उपाय क्या बताते हैं?

गवर्नर—वे चाहते हैं कि प्रधान असहयोगियों को जेल में बन्द करने की आज्ञा दी जावे। और, यह करना पड़ेगा।

श्रीधर [सिर हिलाकर]—कुछ न कुछ तो करना पड़ेगा।

गवर्नर—क्या आप उन्हें कैद करने के पक्ष में नहीं हैं?

श्रीधर—नहीं, मैं खिलाफ नहीं हूं।

गवर्नर—मुझे भी यही आशा थी। कलेक्टर का कहना है कि १२४ अ—का मुकदमा चलाने की इजाजत दी जावे, कम से कम कांग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी रामानुज पर।

[रामानुज का नाम सुनकर श्रीधर चौंक पड़ता है]

गवर्नर—मेरी राय तो है कि कलेक्टर को अनुमति देदी जावे।

श्रीधर [चिन्तित होकर]—पर उससे तो आन्दोलन अधिक बढ़ेगा!

गवर्नर [तुच्छता की हँसी हँसकर]—ब्रिटिश साम्राज्य के किस हिस्से में आन्दोलन नही है ? आयरलैंड, मिश्र, मेसोपोटेमियां, आज़र वैजान, ईराक़, पैलेस्टाइन, अफ्रिका, हिन्दुस्थान, लंका, बर्मा, फिजी, सब जगह आन्दोलन है, बलवा भी है, कहीं अधिक कहीं कम। ऐसी अवस्था में शासन करना हमारे लिए तो स्वाभाविक हो गया है। हमारे विरुद्ध आन्दोलन जितना बढ़ता है हमारी दृढ़ता भी उतनी ही बढ़ती है। ब्रिटिश जाति संसार भरकी सबसे अधिक दृढ़ निश्चयी जाति है, उसकी रगें लोहे की बनी हुई हैं।

श्रीधर—मैं ब्रिटिश शक्ति का लोहा मानता हूँ, किन्तु आन्दोलन, आन्दोलन ही है।

गवर्नर—अजी, यह आन्दोलन सन् सत्तावन के ग़दर से अधिक भयंकर नहीं हो सकता।

श्रीधर—नहीं, वैसा तो हम भी नहीं होने देंगे। इसी लिए तो हम असहयोगियों का साथ नहीं देते।

गवर्नर—यह मैं जानता हूं। परन्तु तटस्थ रहना भी एक प्रकार से सहायता पहुंचाना है।

श्रीधर—हम तटस्थ तो नहीं हैं। हम तो सरकार के साथ हैं।

गवर्नर—मैं मानता हूं कि आप सरकार के साथ है और सुधारों को पूर्णरूप से सफल बनाना चाहते है। परन्तु, यह भी सच है, कि जो लोग सुधारों के कट्टर शत्रु है उन्हें आप स्वच्छन्द छोड़ देना चाहते है। ये दोनों कार्य एक साथ कैसे हो सकते हैं ?

श्रीधर—पहले भी मुझ से लोगों ने इस प्रकार कहा था, पर मैंने सोचा था कि कोई बीचका मार्ग निकाल लेंगे।

गवर्नर—बीचका मार्ग निकालने की बात सोचना वास्तव में दायित्वपूर्ण राजनीतिज्ञ के ही योग्य है। परन्तु देखिये न, असहयोगियों ने अपने बलत्रे के उपदेशों और कार्यों से अवस्था ऐसी कर दी है कि सरकार के लिए अपनी शक्ति दिखाने के अलावा अन्य कोई उपाय नहीं रहा है। आप लोगों को भी अपना अस्तित्व रखना हो तो सरकार का पूरा साथ देना चाहिए। असहयोगियों ने आप लोगों के प्रति इतनी घृणा उत्पन्न करदी है कि जनता के बीच आप लोगों के लिए कोई स्थान ही नहीं।

श्रीधर—यह बात ठीक है परन्तु फिर भी हमें समाज में तो हिन्दुस्थान के ही रहना है।

गवर्नर—मैं आपकी कठिनाई का पूर्ण रूप से अनुभव करता हूँ, और मुझे यह भी मालूम हुआ है कि यह रामानुज आपका मित्र है।

श्रीधर [कुछ सहम कर]—हाँ, है तो ऐसा ही, मामूली। [कुछ देर चुप रह कर] पर राजनीति में कौन किसका मित्र! [फिर चुप रह कर] हम दोनों साथ साथ पढ़ते थे [फिर चुप रह कर] इधर तो बहुत दिनों से नहीं मिले।

गवर्नर [दृढ़ता से]—देखिए, छोटी छोटी बातें तय करने में इतना समय लग जाता है। इतना वाद-विवाद होता है तो इस मंत्रित्व से क्या लाभ, और कार्य ही कैसे चलेगा?

श्रीधर [मानो चौंक कर]—वही तो, मैं तो कहने वाला था [चुप हो जाता है]

गवर्नर—देखिए, राज्य शासन की कठिनाइयां तो आप जानते ही हैं। निर्णय शीघ्र होने चाहिए।

श्रीधर [किंकर्तव्य विमूढ़ भाव से]—जी हाँ, अच्छा, कुछ नहीं। पर हाँ, रामानुज पर १२४ अ लागू भी हो सकती है कि नहीं ?

गवर्नर—उसके भाषण की रिपोर्ट मैंने एडवोकेट जनरल को भेज दी थी। उनकी राय है कि १२४ अ लागू हो सकती है।

श्रीधर [संतोष प्रकट करते हुए] हां मेरा तात्पर्य यही था। आप अपना क़ानूनी पहलू मज़बूत कर लीजिए, कहीं ऐसा न हो कि अदालत में जाकर सरकार ही फँस जावे, और उसकी हँसी उड़े।

गवर्नर [हँसते हुए]—सरकार का क़ानूनी पहलू तो उसी दिन और सदा के लिए मज़बूत होगया जिस दिन १२४ अ की रचना हुई। शब्दों का जाल इस खूबी से बुना गया है कि उसमें सारा विश्व फँस सकता है।

श्रीधर—तब भी अदालत, अदालत ही है।

गवर्नर—उसकी चिन्ता न कीजिए। असहयोगी लोग मुक़द्दमे की पैरवी तो करते ही नहीं।

श्रीधर—कीजिए जो कुछ करना हो, हमें क्या ? हम तो सुधार सफल करना चाहते हैं। हमें तो किसी प्रकार स्वराज्य चाहिए।

गवर्नर—आपकी इस राजभक्ति पूर्ण सम्मति और स्वराज्य की चाह पर धन्यवाद।

[गवर्नर खड़े होकर श्रीधर से हाथ मिलाते हैं। श्रीधर भी खड़ा होकर हाथ मिलाता है। और जाने लगता है। वह कुछ उदास दीखता है]

गवर्नर—ज़रा सुनए [श्रीधर रुकता है] आज शामको टी पार्टी है, आइएगा।

श्रीधर—अवश्य।

[श्रीधर जाता है]

पटाक्षेप।

पाँचवाँ दृश्य

[उर्मिला अपने मामा के घर श्रीराम नगर आई है। उसके मामा बाबू आनन्दीप्रसाद पक्के सहयोगी हैं। बादशाह की पिछली वर्ष गांठ पर उन्हें 'राय साहब' की उपाधि मिली है और उससे एक वर्ष पहले वे आनरेरी मैजिस्ट्रेट बना दिए गए थे। घर में ज़मीदारी है और वे खुद वकालत करते हैं वे कौंसिल के लिए खड़े भी हुए थे परन्तु कुछ असहयोगियों ने एक नीच जाति के आदमी को उनके खिलाफ़ खड़ा करके उन्हें हरवा दिया। तबसे वे असहयोगियों से बहुत चिढ़े हुए हैं। उर्मिला उनके घर खादी के कपड़े पहिन कर आई तो उनको बहुत बुरा लगा। उर्मिला में और उनमें असहयोग पर प्रतिदिन वाद-विवाद हुआ करता है। आनन्दी प्रसाद जी का मकान सड़क पर है। उर्मिला वरंडे के कोने के कमरे में बैठी है। बाहर सड़क पर रामानुज तथा कुछ स्वयं-सेवक खादी बेचने के लिए आए हैं। वे सब राय साहब आनन्दी प्रसाद जी के मकान के सामने रुक जाते हैं।]

रामानुज—क्यों, मोहन, रुक क्यों गए? भीतर चलो।

मोहन—जानते तो हो, यह रायसाहब का मकान है।

रामानुज—तो क्या हुआ? मकान में रहने वाले सब लोग

तो राय साहब नहीं हैं। हमारा तो कर्तव्य है कि प्रत्येक घर में जाकर खादी का प्रचार करें।

मोहन—भाई, मैं इनके घर में नहीं जाऊँगा। ये असहयोग के कट्टर शत्रु हैं।

रामानुज—इसी लिए मैं अवश्य जाऊँगा। हमें तो अपने शत्रुओं को भी प्रेम से जीतना है।

मोहन—जाकर तुम्हीं प्रेम करो, मैं आगे के मकान देखता हूँ।

रामानुज—अच्छी बात है, यहां विवाद से क्या लाभ? लाओ, ज़रा अच्छे अच्छे कपड़े मुझे देदो।

[वे दोनों आपस में कपड़े छाँटते हैं। उसके बाद रामानुज राय साहव के मकान के फाटक के अन्दर जाता है और मोहन आगे के मकान की ओर बढ़ता है।]

मोहन [रामानुज की ओर हँसते हुए]—बहुत अधिक प्रेम मत करने लगना।

[रामानुज हँसते हुए सिर हिलाते हिलाते भीतर जाता है।]

रामानुज [सामने दरवान को खड़े देख कर]—राय-साहब हैं ?

दरवान [आदर से प्रणाम करके]—कहीं बाहर गए हैं। आपको क्या काम है ?

रामानुज—खादी बेचने आए हैं। राय साहव नहीं तो उनके घर में और कोई खादी लेगा, पूछ तो आओ।

दरवान [हँसते हुए]—महाराज, इहां कहां सज्जन कर बासा। हां, पर.........

रामानुज—पूछ तो देखो। [दरवान जाता है]

रामानुज [जोर से कहता है]—कहना, हाथ के कते सूत की हाथ की बुनी शुद्ध खादी है।

[भीतर से आवाज आती है]—दरवान, हम खादी लेंगे, बरंडे में बुलवाओ।

[रामानुज बरंडे में जाता है। परदा हटा कर एक युवती—उर्मिला—ड्योढ़ी पर आकर ठिठक जाती है। वह 'आइए' कहने ही वाली थी कि सिर्फ "आ" कहके उसके होंठ आश्चर्य से खुले रह जाते हैं। रामानुज उसकी ओर देखता है और विस्मित सा खड़ा रह जाता है]

दरवान—हजूर, जाता हूँ। ये चिट्ठी डालनी है।

[दरवान जाता है रामानुज और उर्मिला कुछ समय तक निस्तब्ध खड़े रहते हैं।]

रामानुज [सलज्ज मुसकुराहट से]—खादी लीजिएगा,

उर्मिला [मानो सुना ही न हो]—खादी !

रामानुज—जी हां, सब प्रकार की हैं।

उर्मिला [मुसकुरा कर]—इन सब की कीमत क्या होगी !

रामानुज—यों ही होगी करीब एक सौ रुपये।

उर्मिला [आश्चर्य से]—यह एक सौ की !

रामानुज—देखिए न, बेज़वाड़ा की भी है।

[रामानुज आगे बढ़कर उर्मिला के हाथ में खादी की साड़ी देता है। उसे संभलवाने के प्रयत्न में उसका हाथ उर्मिला के हाथ से छूजाता है। दोनों कांप उठते हैं और दोनों के हाथ से साड़ी छूटकर नीचे गिर जाती है। दोनो उसे उठाने के लिए झुकते हैं। किन्तु रामानुज का हाथ शीघ्रता के कारण खादी पर न पड़ते उर्मिला के हाथ पर पड़ जाता है।

दोनों एक दूसरे की ओर देखते हैं और रामानुज के मुंह से दबे हुए स्वर में निकल पड़ता है, "उर्मिला"]

उर्मिला [नीचे सिर किए हुए]—ओहो ! मुझे पहिचानते हो।

रामानुज—और तुम क्या भूल गईं ?

उर्मिला—मैंने तो आज जाना...

[भीतर से किसी स्त्री की आवाज़ आती है "उर्मी" !]

उर्मिला [सावधान होकर और पीछे हटकर] हां, मामी यहां हूं। देखो, यह स्वदेशी खादी बिकने आई है, यहां।

[उर्मिला की मामी आती है। वह बढ़िया रेशमी साड़ी पहिने है। वह यह कहती हुई आती है—] तुझे खादी ही सूझती है।

[किन्तु वह रामानुज को देखकर चुप हो जाती है। रामानुज उसे प्रणाम करता है]

मामी [प्रणाम करके]—आप खादी बेचने आए हैं। बैठिए न। [कुर्सी की ओर इशारा करती है। रामानुज बैठता है] हमारे घर में तो कोई खादी नहीं पहिनता। इस उर्मिला को ही खादी का शौक है।

रामानुज—आप देखिए तो महीन खादी भी है। [महीन खादी उसके हाथ में देकर] यह बेज़वाड़ा की है। कैसी अच्छी है ! कोई कह नहीं सकता कि यह हाथ का सूत है।

उर्मिला—मामी तुम खादी देखो, मैं रुपये लेकर आती हूं।

[उर्मिला जाती है। ओट में होती हुई एकबार मुड़कर पीछे देखती है और वहां से कहती है] "मामी को सब प्रकार की खादी दिखाइए" [और मुसकुरा देती है।]

रामानुज [उधर देखता है और अपनी मुसकुराहट को रोकने का प्रयत्न करके कहता है] और यह देखिए बुलंद-शहर की कैसी बढ़िया छपी है [मामी छपी हुई खादी लेकर देखती है। बाहर गाड़ी रुकने की आवाज़ सुनाई देती है और कोई भीतर आता हुआ मालूम होता है। रायसाहब आते हैं। मामी खड़ी होजाती हैं। रामानुज भी खड़ा होकर प्रणाम करता है। रायसाहब वह सब दृश्य देखकर पहले तो कुछ रुष्ट मालूम होते हैं, परन्तु फिर सौम्य हो जाते हैं।]

मामी [रायसाहब को खादी दिखाकर]—ये खादी बेचने आए हैं।

रायसाहब [रामानुज की ओर देखकर और मानों कुछ याद करके]—आप तो यहां की कांग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी हैं। आप रामानुज हैं न? मैं तो आपको अच्छी तरह जानता हूं। आपको मालूम होगा, जब आप स्कूल में पढ़ते थे तब मैंने आपको एकबार प्राइज़ * दिया था।

रामानुज—जी हां। लीजिए, कुछ खादी लीजिएगा?

रायसाहब—[मामी की ओर हाथ करके] ये लोग देखेंगे। मुझे फुरसत नहीं है।

[चलते चलते] पर आप कभी मुझ से मिलिएगा।

रामानुज—ज़रूर मिलूंगा।

[रायसाहब जाते हैं। उर्मिला आती है]

उर्मिला—मामी, कोई खादी पसंद आई?

मामी—हां, अच्छी तो हैं।

उर्मिला—तो फिर कुछ खरीद लूं?

मामी—हां, खरीद लो।

---

* इनाम.

उर्मिला—मैं तो ये सब खरीदती हूँ।

[रामानुज से] इन सब की ठीक कीमत कितनी हुई।

[रामानुज हिसाब लगाता है]

मामी—सब ?

उर्मिला—हां, मामी, दो जोड़ी साड़ियां तो भौजी को भेजूंगी और एक यह [दिखाकर] तुम्हें पहिनाऊंगी। पहिनना तो, मामा जी कुछ नहीं कहेंगे।

रामानुज—सब की कीमत ८९।-) होती है।

उर्मिला—[अपनी जेब से नोट की गड्डी में से कुछ नोट निकालकर बाकी दे देती हैं]-ये लो ९०) हैं।

[रामानुज नोट लेकर गिनने लगता है]

उर्मिला [शीघ्रता से]—आप गिनिएगा पीछे। पहिले ११ आने वापिस कर दीजिए। मामी, चलो, मामा जी बुला रहे थे।

[रामानुज जेब से पैसे निकाल कर ११ आने उर्मिला को देता है। उर्मिला हाथ में पैसे ले लेती है पर वे गिर जाते हैं। दरबान आता है]

उर्मिला—दरबान, ये पैसे गिन कर और कपड़े लेकर अंदर आओ। [उर्मिला और मामी अंदर जाती हैं। दरबान पैसे गिनता है और बाद में कपड़े उठाकर अंदर जाता है और रामानुज बाहर के लिए रवाना होता है। उर्मिला लौट-कर आती है परन्तु रामानुज को न पाकर दरवाज़ा बन्द करने के बहाने किवाड़ पकड़ कर केवल खड़ी रह जाती है, फिर रामानुज के ओट में होते ही चली जाती है। रामानुज रायसाहब के मकान से आगे बढ़ता है उसके चेहरे पर

संजीवनी स्मृति सी मुसकुरा रही है। वह कुछ आगे बढ़ा ही था कि एक पुलिस सब-इन्स्पेक्टर और चार सिपाहियों ने आकर उसे रोका]

सब-इन्स्पेक्टर [रामानुज को]—महाशय, आपके नाम वारण्ट है। मैं आपको गिरफ़्तार करता हूँ।

रामानुज—तैयार हूँ।

[सब-इन्स्पेक्टर रामानुज को वारण्ट देता है]

रामानुज [वारण्ट पढ़ कर]—१२४ अ [हँसकर] राजद्रोह।

सब-इन्स्पेक्टर—महाशय, माफ़ कीजिए। मैं मजबूर हूँ। मुझे ड्यूटी* करनी ही पड़ती है। आपको हथकड़ी लगाई जावेगी।

रामानुज [प्रसन्नता से]—वाह, शौक से लगाइये। इसमे माफ़ी की बात क्या है ?

[रामानुज हाथ आगे कर देता है। एक सिपाही रामानुज के हाथों में हथकड़ी भरता है। इतने में वहां पर आस पास से दर्शक इकट्ठे हो जाते है।

सब-इन्स्पेक्टर [घबराकर एक सिपाही से]—रामअधीन, रस्सी से कस दो।

[सिपाही रामअधीन रामानुज के हाथ पीठ वगैरह रस्सी से लपेट कर कसता है।]

एक दर्शक—देखना, जादूगर है, फिर भी निकल जावेगा।

[सब लोग हंस पड़ते हैं। सब-इन्स्पेक्टर क्रोध से पीछे मुड़ कर देखता है, परन्तु उसका चेहरा खिन्न और लज्जित है।]

सब-इन्स्पेक्टर [लोगों से]—चलो, हटो, भीड़ मत करो।

* कर्तव्य

[एक यूरोपियन अफसर तांगे पर आता है]

तांगे वाला [लोगों से]—हटो, हटो, ए हटना, बचना, भाई।

[पर भीड़ नहीं हटती। [वह यूरोपियन लोगों को कोड़े मार कर हटाते हुए रामानुज के पास आता है। उसके कोड़े मारते ही लोग चिल्ला उठते हैं "महात्मा गांधी की जय।"]

यूरोपियन अफसर [अंग्रेज़ी में रामानुज से]—उम्मेद है, आपको कोई तकलीफ़ नहीं है।

रामानुज [नम्रता से]—जी नहीं, धन्यवाद।

[मोहन दौड़ता हुआ आ पहुँचता है। वह रामानुज के चरण छूना चाहता है। यूरोपियन अफसर और सिपाही उसे रामानुज के पास नहीं जाने देते, पर वह ज़बरदस्ती घुस पड़ता है और रामानुज के चरण छूने को नीचे झुकता है। परन्तु, रामानुज उसे बीच में ही थाम कर गले से लगाता है। लोग चिल्ला उठते हैं "महात्मा गांधी की जय।"

ऊपर राय साहब के मकान की खिड़की खुलती है और उर्मिला झांकती है। एक साथ चिंता और प्रसन्नता! उत्सुकता तो उसे इतनी है कि मानो खिड़की में से कूद पड़ेगी। परन्तु वह, खिड़की से पीछे हट कर अन्दर चली जाती है।]

दर्शक [आग्रह के साथ रामानुज से]—महाराज, एक दो शब्द उपदेश के कहते जाइए।

[यूरोपियन अफ़सर सब-इन्स्पेक्टर के कान में कुछ कह के चला जाता है।]

रामानुज [सब—इन्स्पेक्टर से]—कहिए, जनाब मुझे बोलने की इजाजत है?

सब इन्सपेक्टर [घबराए हुए स्वर से]—कहिए, पर दे......देखिए, समय बहुत थोड़......थोड़ा है।

रामानुज—दोस्तो

दर्शक—इस चबूतरे पर खड़े होकर कहिए।

[सिपाही और रामानुज चबूतरे पर जाकर खड़े होते हैं]

सब दर्शक—महात्मा गांधी की जय।

रामानुज—दोस्तो, आप कुछ कहने का आग्रह करते हैं। सब-इन्सपेक्टर साहब फर्माते हैं कि समय बहुत थोड़ा है। मैं भी कहता हूँ कि समय बहुत थोड़ा है, कर गुज़रिये जो कुछ करना है। सरकार समझती है कि वह अब मुझे जेल में भेज रही है। परन्तु मैं तो अपने को पहले से ही जेल का कैदी समझता था। यह सारा हिन्दोस्तान हम हिन्दोस्तानियों के लिए जेल है, जिसमें मैं भी उसी तरह कैद हूँ जैसे मेरे भाई ये सब-इन्सपेक्टर, और मैं तो यहां तक कहूँगा कि सरकार के मिनिस्टर तक। मुझ में और इनमें फ़र्क इतना ही है कि जैसे जेल में दूसरे कैदियों से काम लेने के लिए और, हां, तंग करने के लिए भी कैदी वार्डर मुकर्रर किए जाते हैं और उन्हें ख़ास तरह की वर्दी और खास सहूलियतें दी जाती हैं वैसे ही ये सरकारी वर्दी वाले नौकर और मिनिस्टर, भी हमारे लिए कैदी वार्डर हैं। मैं अपने साथी कैदियों और इन कैदी वार्डरों से भी यह अंतिम प्रार्थना करूंगा कि भाई, कब तक, कब तक खुद कैद में रहोगे और सारे देश को क़ैद में रखोगे ?

[यूरोपियन अफसर कई सिपाही लेकर आता है। व्याख्यान बन्द हो जाता है। उसी समय राय साहब का दरबान एक फूलों की माला लेकर आता है और रामानुज

के गले में डालता है। सब लोग "बन्देमातरम्" और "अल्ला हो अकबर" चिल्ला उठते हैं। रामानुज की दृष्टि राय साहब के मकान पर पड़ती है। वहां खिड़की में उर्मिला खड़ी है। यूरोपियन अफ़सर रामानुज को तांगे में बैठाता है और पुलिस के सिपाही ताँगे को घेर लेते हैं। तांगा आगे बढ़ताहै रामानुज सब को 'बन्देमातरम्' कहता है। उसकी दृष्टि खिड़की की ओर भी है। शोर होता है "बन्देमातरम्, रामानुज की जय, महात्मा गांधी की जय, मौलाना मुहम्मद अली शौकत अली की जय, अल्ला हो अकबर" सब लोग जाते हैं। उर्मिला अभी भी टकटकी लगाए खिड़की में खड़ी है।]

[पटाक्षेप]

छठवाँ दृश्य

[राय साहब के मकान के बैठक खाने में, मामी और शशि मखमली गद्देदार सोफा पर टिकी हुई बातें कर रही हैं। कमरा बिलकुल यूरोपियन ढंग से सजा है। सामने दीवाल पर बादशाह पंचम जार्ज और महारानी मेरी का दिल्ली दरबार के समय का तैल चित्र टंगा है। ठीक उसके नीचे राय साहब का एनलार्ज्ड फोटो है जिस में वे राय-साहबी का तमगा लगाए और सर्टिफिकेट हाथ में लिए खड़े हैं। इस फोटो के एक ओर, आनरेरी मैजिस्ट्रेटी का सार्टि-फिकेट शीशे में मढ़ा हुआ टँगा है, और दूसरी ओर रायसाहबी की सनद मढ़ी हुई लटक रही है। कमरे भर में बादशाही खानदान के लोगों की तस्वीरें और स्थानीय अंग्रेज अफसरों के फोटो हैं। यूरोपियन चित्रकारों के बनाए हुए चित्र भी हैं। कमरा तरह तरह की मेजों और कुर्सियों से भरा है।

नीचे कालीन बिछा है। दरवाज़ों पर बारीक जालीदार परदे दोनों ओर बँधे हैं, और नकली मोतियों तथा काँच की बारीक नलियों की चिकें पड़ी हुई हैं। मामी ने आज वेज़वाड़ा की महीन साड़ी पहिनी है, और शशि के शरीर पर एक रंगीन बिलायती साड़ी है।]

मामी—तो, यज्ञ का मुहूर्त कब है ?

शशि—कल सात बजे।

मामी—मै तो उस यज्ञ का नाम बार बार भूल जाती हूं।

शशि—पुत्रेष्ठि यज्ञ, त्रिपुर सुन्दरी के मंदिर में होगा।

मामी—बहू, अच्छा हो, किसी तरह लड़का हो जावे। मेरा तो सुम्मन जब से गया……

[मामी अपनी आंखों के आंसू पोंछती है]

शशि [आश्चर्य से]—सुम्मन ? कब ?

मामी—मैं पहले सुम्मन की कह रही थी।

शशि [सन्तोष के साथ हंसकर]—वही तो मैंने सोचा सुम्मन को तो मैंने अभी आँगन में खेलते देखा है।

मामी—उसी की याद में हमने इसका नाम भी सुम्मन रखा है। बहुत जपतप करने के बाद यह लड़का मिला है। [उद्वेग से] पर बहू, घर के आदमी भी बड़े हठी होते हैं, जप तप के लिए राज़ी ही नहीं होते।

शशि—यही तो…

मामी—मुझे तो दो साल तक घरके देवता मनाने पड़े, तब कहीं स्वर्ग के देवता मना पाई।

मामी—खबर आ गई? कल अपने मकान के ही पास तो पकड़े गए थे।

शशि [मन में पढ़ती हुई]—हां, इसमें लिखा है और यह भी लिखा है कि गिरफ़्तारी के समय राय साहब के घर से फूलों की माला भेजी गई थी जो श्री० रामानुज को पहिनाई गई।

मामी [शीघ्रता से]—क्या, देखूं तो। माला हमारे घर से?

[शशि अखबार देती है और उँगली से वह वाक्य बताती है।]

मामी [मन में पढ़ कर]—झूठ बात! ये असहयोगी बड़े झूठे हैं। हमें बदनाम करने के लिए ऐसी बातें छापते हैं।

शशि—होगा! ज़रा लाओ तो पूरा हाल तो पढ़लूं।

शशि [मामी से अखबार लेकर पढ़ती हैं]—'श्रीयुत रामानुज—राय साहब दुर्गाप्रसाद के मकान में खादी बेचकर बाहर निकले ही थे कि पुलिस सब-इन्सपेक्टर ने उन्हें वारण्ट दिखाया।'

मामी [डर के]—यह भी छप गया? हे भगवान्! मैं पहले ही डरती थी। वे पढ़ेंगे तो क्या कहेंगे! पर यह उर्मिला नहीं मानी, ९०) की खादी खरीद ली।

शशि [मुसकुराते हुए]—उर्मिला ने खरीदी? उर्मिला कल से दिखाई नहीं दी, क्या करती है?

मामी—कल से उसकी तबियत ठीक नहीं। सिर दुखता है, अपने कमरे में होगी। तुमने सब खबर पढ़ ली। लाओ, अखबार दो, तो मैं उन्हें यह दिखाआऊं।

शशि—देती हूँ, ज़रा……

[शशि मन में शीघ्रता पूर्वक अखबार पढ़ती है]

मामी [लड़की से]—जा, उर्मिला बीबी को तो बुला ला ।

[लड़की जाती है। शशि अखबार मामी को देती है।]

मामी—वहू, बैठो, ज़रा मैं उन्हें अखबार दे आऊं।

[पान दान आगे बढ़ा कर] लो, पान खाओ। उर्मिला आती ही होगी।

[मामी जाती है। दूसरे दरवाजे से उर्मिला आती है। वह उदास है। उसके हाथ में एक अखबार है।]

शशि—आओ, उर्मिला [ज़ोर देकर] बधाई !

[उर्मिला सूखी मुसकराहट से आकर बैठती है]

उर्मिला [शून्यता से]—क्यों, किस बात की ?

शशि [व्यंग से]—बड़ी भोली।

[उर्मिला सिर को इधर उधर दबाती है]

शशि—सिर बहुत दुखता है ?

उर्मिला—हां, थोड़ा थोड़ा।

शशि—मालूम होता है, हृदय का दर्द सिर में प्रकट होता है।

उर्मिला [मुसकुरा कर]—यह तुम जानो।

शशि—मिलन, बिदा और पूजा, तीनों एक साथ ! कहो है न बधाई का मौका ?

[उर्मिला सलज्ज भाव से चुप रहती है]

शशि—यह तुम्हारी कविता सार्थक होगई। पर तुम उदास क्यों हो ?

उर्मिला [चैतन्य होकर]—नहीं तो।

शशि—और, वह फूलों की माला भी मौके से मिल गई।

[शशि प्रेम से उर्मिला के गले में हाथ डाल कर उसे गले लगाती है। इससे उर्मिला के सिर का पल्ला खिसक जाता है और उसके जूड़े में लिपटी हुई आधी माला दिखाई देती है।]

शशि—भेद खुल गया।

उर्मिला [चकित भाव से]—क्या ?

शशि [उर्मिला के जूड़े से माला खींच कर और दिखा कर]—यही, मालूम होता है, जल्दी से खींचकर जितनी हाथ आई उतनी ही जोड़ कर रामानुज के गले में डालने के लिए भिजवा दी गई थी।

उर्मिला [आग्रह से]—भौजी, यह दे दो।

शशि [हँसते हुए]—कबूल करो, तब दूँगी।

उर्मिला [नीची निगाह से]—भला, इस तरह भी कबूल कराया जाता है। [दीन वाणी से] दे दो।

[शशि माला देती है। उर्मिला उसे लेकर स्नेह से अपनी जेब में रखती है।]

शशि—उर्मी, तुमने तो सौदा भी खूब किया।

उर्मिला—मालूम होता है अखबार पढ़ लिया है। पर··· भौजी··· ।

शशि—क्या।

उर्मिला—तुम्हें बुरा नहीं लगता ?

शशि—बुरा क्यों नहीं लगता, पर प्रेमी का सङ्कट भी आनन्ददायी होता है। गिरफ्तारी की खबर एक क्षण बुरी लगी, परन्तु मैंने तो उसके विवरण में प्रेम-कहानी पढ़ी, और अब विरह विह्वला नायिका को अपने सामने प्रत्यक्ष देख रही हूँ जिससे यह कौतूहल बढ़ गया है।

उर्मिला— भौजी, इस कविता को छोड़ो। वे तो श्रीधर भैया के बड़े गहरे मित्र थे।

शशि—क्यों नहीं [गम्भीरता से] सचमुच रामानुज का गिरफ्तार होना बहुत बुरा हुआ। उन्हें आने दो।......

उर्मिला—वे कब आवेंगे?

शशि—क्या बजा है?

उर्मिला—करीब बारह बज रहे होंगे।

शशि—बस, इसी गाड़ी से आते होंगे। शायद उन्हें लेने के लिए गाड़ी गई है। मैं उनसे कहूँगी कि गवर्नर को कह के रामानुज को छुड़वा दें। यह बहुत भद्दा काम हुआ। उर्मिला, सच कहती हूँ [शर्म से सिर नीचा करके] तुम्हारे सामने मुझ से सिर ऊँचा नहीं किया जाता।

उर्मिला—भौजी, तुमने सारा अखबार पढ़ा? उसमें सरकारी कम्यूनीक (विज्ञप्ति) पढ़ा?

शशि—नहीं, अभी कहाँ पढ़ा?

उर्मिला—लो, इसे पढ़ो तो।

[उर्मिला शशि को अखबार देती है और कम्यूनीक (विज्ञप्ति) दिखाती है]

शशि [पढ़ कर]—गवर्नर ने गिरफ्तारी का हुक्म दिया है। मैं ज़रूर उनसे ज़ोर दिलवाऊँगा।

उर्मिला—पर, तुम इसका मतलब समझीं ?

शशि—क्या ?

उर्मिला [पढ़ कर सुनाती है]—"गवर्नर-इन-कौंसिल मन्त्रियों की पूर्ण सहमति से यह आज्ञा देते हैं।"

शशि—हां, इसका क्या मतलब ?

उर्मिला—श्रीधर भैया होम मेम्बर हैं न ?

शशि—हां हैं तो, और गवर्नर उनकी बहुत मानते हैं। वे कहेंगे तो रामानुज जरूर छोड़ दिये जावेंगे।

उर्मिला [चिढ़कर]—अब क्या खाक कहेंगे। कम्यूनीक में तो लिखा है कि गवर्नर ने मन्त्रियों की सलाह से गिरफ्तारी का हुक्म दिया है। इससे जाहिर है कि श्रीधर भैया ने इस गिरफ्तारी की सलाह दी थी।

शशि [अविश्वास प्रकट करती हुई]—नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। उनको आने दो, मैं पूछूँगी।

[बाहर से किसी के आने की आवाज आती है। नौकर एक ट्रङ्क भीतर लाता है।]

शशि—वे आ गए। यह उन्हीं का सामान है।

उर्मिला—मालूम होता है, कई लोग आ रहे हैं। चलो, यहाँ से चलें।

[दोनों उठकर जाती हैं।]

[पटाक्षेप।]

सातवाँ दृश्य

[रामानुज जेल की कोठरी में टहल रहा है। उसका मुकदमा अभी अदालत में दायर नहीं हुआ है। वह अपने ही कपड़े पहिने है। उसकी कोठरी अन्य कैदियों की कोठरी से अलग है। कमरे में सामने एक दरवाज़ा है जिसमें मोटे मोटे सींखचे लगे है, और पीछे की दीवार में ऊपर एक झरोखा है। उसमें भी सीखचे लगे हैं। फर्श खुदा हुआ है। टहलते हुए रामानुज का हाथ जेब से टकरा गया और कुछ खन्न से बजा।

रामानुज [जेब से नोट और पैसे निकाल कर हँसते हुए]—अभी तक मुझे फुरसत नहीं मिली। जब से जेल में आया हूँ मिलने वालों का तांता बँधा रहता है,और जब मैं अकेला रहता हूँ तो उस उर्मिला की याद में मस्त रहता हूँ, रुपये लाने के लिए जाते समय दरवाज़े के पास का उसका मुसकुराना मैं कभी नहीं भूलूँगा। उस मुसकुराहट की स्मृति मेरी सब से मूल्यवान संपत्ति है जो इस जेल की कोठरी में भी मुझे बादशाह बना रही है। उर्मिला......[उसके हाथ से पैसे गिरते हैं।] हाँ तो मैंने हिसाब अभी तक नहीं किया। [पैसे उठाता है] हिसाब करके कांग्रेस कमेटी को रुपये लौटा दूँ नही तो कोई मुफ्त में बदनाम कर देगा। [जेल का घण्टा बजता है।]

मोहन ने मानो चलते समय भविष्य वाणी कही थी—"कहीं बहुत प्रेम मत करने लगना।" पर रामानुज की तकदीर में बहुत प्रेम कहाँ ! दो धाराएँ मिलने ही वाली थीं कि वह मामी का रेतीला टीला बीच में आ गया। अब आगे भी आशा नहीं। पर उसने रुपये देकर अलग होने की कितनी जल्दी मचाई ? क्रूर ! ऐसे लोग स्वभावतः क्रूर होते हैं। परन्तु वाहरी प्रेमी की अमर आशा ! वह दरवान की माला, समझ

बैठा हूँ, उर्मिला ने ही भेजी होगी। अभी तक उसे हृदय से लगाए हूँ [माला को ऊपर उठा कर चूमता है। फिर नोट गिनना शुरू करता है। गिनते गिनते कहता है—]

यह क्या ? [एक पत्र निकलता है] पता नही किसके अक्षर है। [पत्र उलट कर आखिर में देखता है] उर्मिला ! ईश्वर मैं जेल में हूँ या स्वर्ग में ? उर्मिला का लिखा हुआ पत्र मेरी जेब में कैसे आया ? [कुछ सोच कर] भूल से नोटों के साथ आ गया होगा। देखूँ तो क्या लिखा है ? [पत्र पढ़ता है] यह तो मेरे ही लिए है।] उर्मिला भूल नहीं करती। [पत्र मन में पढ़ता है] वह बहुत प्रसन्न मालूम होता है। फिर दुबारा ज़ोर से पढ़ता है।]

प्रिय,

जल्दी में हूँ और वैसे भी समझ में नहीं आता कि तुम्हें क्या लिखूँ। मुझे न जाने किस तरह विश्वास हो गया है कि तुम मेरे अन्तर तम की एक एक प्रेरणा और भावना को जानते हो। फिर क्या लिखूँ ? खादी का धन्धा अच्छा है, इस में स्वार्थ भी है और परमार्थ भी। कभी कभी इधर भी फेरी लगा दिया करना, पर रोज़ मत आना, नहीं तो मेरे पास ख़रीदने को दाम नहीं रहेंगे।

—उर्मिला।

[वार्डर आता है।]

वार्डर—महाराज आप से कोई मिलने के लिए आता है।

रामानुज—यहाँ पर ?

वार्डर—हाँ।

रामानुज—यह तो नई बात है। वैसे तो मिलने के लिए मुझे सदा दफ्तर में जाना पड़ता है।

वार्डर—आपके साथ का सभी व्यवहार नया है। वैसे तो हर एक मुजरिम की तलाशी लेकर कपड़ों को छोड़ उसका सब सामान जमा कर लिया जाता है।
आपकी न तो तलाशी हुई, न चीज़ें ही रखाई गईं।

रामानुज—मैं भी यही सोचता था। पर आज और नई बात कौनसी हुई?

वार्डर—कोई बड़े आदमी आए होंगे।

[जेलर के साथ रायसाहब आनन्दीप्रसाद आते हैं। वार्डर बिलकुल सीधा खड़ा हो जाता है। रामानुज नोट वगैरह अपनी जेब में डालता है और रायसाहब को प्रणाम करता है।]

रायसाहब—भाई, अच्छी तरह तो हो। मुझे इस बात का दुःख है कि मैं इससे पहले नहीं आ सका।

जेलर [रायसाहब से]—मुझे इजाज़त दीजिए। दफ्तर में काम है।

रायसाहब—जी हाँ, चलिए। मैं भी इनसे बातचीत करके आता हूँ।

[जेलर चलते समय वार्डर को आने का इशारा करता है। जेलर और वार्डर दोनों जाते हैं।]

रायसाहब [रामानुज से]—भाई, कोठरी तो बड़ी गन्दी है। फ़र्श भी खुदा हुआ है। इसमें बड़ी तकलीफ़ होती होगी।

रामानुज—जेल और तकलीफ़ का तो मामूली संयोग है।

रायसाहब—नहीं, मैं जेल कमेटी का मेम्बर हूँ। मैं इस बात की डांट के शिकायत करूंगा। कोई आदमी यहाँ आता है तो क्या अपनी इज्ज़त गँवाने को आता है?

रामानुज [हँस कर]--अजी रायसाहब, गुलामों की भी कहीं इज्ज़त हुआ करती है ?

रायसाहब—नहीं, मैं इस बात को कभी नहीं सह सकता। हमारे युवक, माना कि, देशभक्ति के जोश में कुछ भला बुरा कर डालते हैं तो क्या उनके साथ ऐसा सलूक होना चाहिए ? सचमुच यह सरकार शैतान है, महात्मा गान्धी सच कहते हैं।

रामानुज—राय साहब, यह आप क्या कहते हैं ?

रायसाहब [बहुत नाराज़ होकर]—नहीं जी, मैं नहीं सह सकता इस बात को।

रामानुज—अच्छा, यह तो बताइए, यहां आने का कष्ट कैसे उठाया ?

राय साहब—हाँ, मैंने आपसे उस दिन कहा था न कि कभी मिलिएगा। पर, अफ़सोस कि आप बीच में गिरफ्तार हो गए। मैं गिरफ्तारी के बाद कलेक्टर से मिला। वह बेचारा बड़ा ही नेक आदमी है। ऐसे भलेमानस अंग्रेज़ों में बहुत कम मिलते हैं।

रामानुज—आपने व्यर्थ कष्ट उठाया। कलेक्टर क्या करता ?

राय साहब—कलेक्टर, आपकी गिरफ्तारी पर बहुत अफ़सोस ज़ाहिर करके कहता था-"मैं क्या करूँ, विवश हूँ।"

रामानुज—यही तो मैं भी कहता था। वह बेचारा क्या कर सकता है।

राय साहब—वह तो आपकी गिरफ्तारी के सख्त खिलाफ़ है। वह इस्तीफ़ा देने वाला था, पर ऊपर का दबाव पड़ने से रुक गया।

रामानुज [गम्भीरता से]—अच्छा !

राय साहब—नहीं तो !

रामानुज—तो फिर इस गिरफ्तारी में किसका हाथ है ?

[राय साहब धीरे से रामानुज के कान में कुछ कहते हैं ।]

रामानुज [चौंक कर] नहीं, राय साहब, वे तो काँग्रेस कमेटी के प्रेसिडेण्ट हैं, कभी ऐसा नहीं करेंगे ।

राय साहब—आप अभी युवक हैं और श्रद्धालु हैं, आप क्या जानें ?

रामानुज—रायसाहब, विश्वास नही होता ।

रायसाहब—अच्छा, तो बताइए-आपकी तबियत हो न बताइये । सुनिए यह बात सच है कि नही, कि आपमें और आपके सभापति में अनबन है, और वह है सिद्धान्त की । यह अनबन दूर नहीं हो सकती । आपके सभापति नेता तो बने रहना चाहते हैं, परन्तु जोखिम नही उठाना चाहते । कहिए, सच है या नहीं ?

रामानुज—कहिए तो ।

रायसाहब—मैं तो सब कुछ जानता हूँ । आपकी काँग्रेस कमेटी के सभापति पक्के राजभक्त और ज़मींदार है । जब इस प्रान्त में असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ तब कलेक्टर ने, जो यहां से चले गए हैं, उनके पिता को बुला कर कहा कि अपने लड़के को असहयोग का नेता बना कर काँग्रेस कमेटी का सभापति बनवा दो । आपके पद और प्रतिष्ठा को देखते हुए यह सरलता पूर्वक हो सकता है । आपका पुत्र सभापति की हैसियत से ऐसी चालें चलता रहेगा जिससे असहयोग का कुछ कार्य न हो पावे, पर नाम बना रहे और सरकार निश्चिन्त

रहे। इससे जनता में भी आपकी इज्जत बनी रहेगी। आपने भी धन और मोटरें देख कर उन्हें सभापति बना दिया। अब, कहिए, वे आपके कार्य में बाधक हुए हैं या नहीं ?

रामानुज—कहते, चलिए।

रायसाहब—अच्छा, सुनिए। आखिर को वह लड़का ही था, जोश में आकर सच्चा असहयोगी बनने लगा। उस समय उसकी गिरफ्तारी की चर्चा चली। आपको नहीं मालूम होगा, पर मैं जानता हूँ कि उसे बचाने के लिए कितनी कोशिश करनी पड़ी। हम लोग सफल तो हुए, पर यह अफ़वाह उड़ ही गई कि उसने माफ़ी मांग ली।

रामानुज [आश्चर्य से]—क्या सचमुच माफ़ी माँग ली थी ?

रायसाहब—और नहीं तो क्या ?

रामानुज—रायसाहब, तो हमारे देश का उद्धार कैसे होगा !

रायसाहब—कैसे होगा, यह तो परमात्मा ही जाने। परन्तु इस असहयोग में बड़े बड़े भेद भरे पड़े हैं। बड़े बड़े नेता, चुपचाप माफ़ी मांग कर बच जाते हैं।

रामानुज—रायसाहब, ऐसा न कहिए। यदि यह सच भी हो तो दोष आन्दोलन का नहीं, दोष हमारे ही भाइयों का है।

रायसाहब—बेशक। धोखे-बाज़ लोग नेता बन कर सच्चे और निरपराध देशभक्तों को फँसा देते हैं। मैं जानता हूँ, आप निरपराध हैं और विश्वासघात से फँसाये जाते हैं।

रामानुज—उसकी चिन्ता न कीजिए। निरपराधों के कष्ट ही उद्धार का कारण हुआ करते हैं।

रायसाहब--यह तो मैं मानता हूँ, पर आप ही सोचें, आप जेल जावेंगे तो बाहर कांग्रेस का कार्य कैसे चलेगा? भाई, हम लोग बूढ़े होगए। अब हम अपने पुराने रङ्ग-ढङ्ग नहीं बदल सकते, पर इसका यह मतलब नहीं कि हम में देशभक्ति नहीं है और हम सच्चे देश-भक्त को नहीं चाहते। हम किसी कारण से रायसाहबी नहीं छोड़ सकते, तो क्या हम दिल से कभी यह चाहेंगे कि कांग्रेस कमेटी नष्ट होजावे? हम लोग ऊपर से चाहे जो कहते रहें, परन्तु हृदय से तो हम यही चाहते हैं कि महात्मा गान्धी की जय हो।

रामानुज [उत्साह से]—आपका आशीर्वाद ही चाहिए, विजय परमात्मा देगा।

रायसाहब—पर, आप क्यों व्यर्थ फँस रहे हैं?

रामानुज—फँसने दीजिए; क्या उपाय है।

रायसाहब—उपाय? [प्रसन्नता से] मैं हर तरह तैयार हूँ। सिर्फ थोड़ासा अफ़सोस ज़ाहिर करना पड़ेगा।

रामानुज [चिढ़ कर] अफ़सोस! किस बात का अफ़सोस? मैंने कोई बुरा काम किया है?

राय साहब—कहता कौन है कि आपने कोई बुरा कार्य्य किया है? परन्तु, मनुष्य से गलती हो ही जाती है। उदाहरणार्थ, देखिये, अहिंसा का सिद्धान्त कितना नाजुक सिद्धान्त है। तात्त्विक दृष्टि से देखा जावे तो सिवा महात्मा गान्धी के उसे कोई दूसरा आदमी नहीं समझता। इसी लिए व्यवहार में आपभी देखते हैं कि कई असहयोगी बहुधा मन और वचन से अहिंसक नहीं रहते।

रामानुज—राय साहब!

राय साहब—ज़रा मेरी बात तो सुन लीजिए। आपही देखिए, आप व्याख्यान देते हैं; लोग जोर से तालियाँ पीटते हैं और आपभी जोश में आ जाते हैं। जोश में कही हुई बात सदा तुली हुई नहीं रहती। उसका मर्यादा से हट जाना बहुत सम्भव रहता है।

रामानुज—तर्क की दृष्टि से तो मैं स्वीकार करता हूँ, पर……।

राय साहब—[बीच में ही]—हाँ, मैं भी यही कहता था। जोश और जवानी ऐसी ही चीज़ है। फिर आप जो भाषण देते हैं, उसकी अक्षरशः रिपोर्ट तो आपके पास नहीं रहती, कि रहती है ?

रामानुज—नहीं।

राय साहब—ऐसी हालत में आप निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि आपसे कोई गलती नहीं होती। और, मनुष्य से गलती होना स्वाभाविक है। To err is human. जो मनुष्य कहता है कि मैं कभी गलती नहीं करता, वह या तो झूठा है या खुद धोखे में है, या फिर देवता है।

रामानुज—यह बात तो सच है। गलती आदमी से हो ही जाती है। परन्तु क्या मैं छूटने की गरज से इस साधारण मानवी स्वभाव के परिणाम के लिए अदालत में माफी मांगू ?

राये साहब—नहीं। अगर कोई गलती हुई हो तो कांग्रेस का कार्य्य जारी रखने की गरज से, स्वार्थ से नहीं, उस पर खेद प्रकट करना कुछ बुरा नहीं, आवश्यक है। उससे कांग्रेस का नैतिक बल बढ़ेगा।

रामानुज—पर, रायसाहब, कहा तो यह जावेगा कि मैंने माफी मांगी।

रायसाहब—अजी, कहने को तो अभी भी कुछ लोग ऐसे हैं जो आप पर कई प्रकार के दोष लगाते हैं।

रामानुज—पर मैं अपनी ओर से जान बूझ कर दोष लगाने का मौका नहीं दूँगा।

रायसाहब—मालूम होता है, आपने इस विषय पर अधिक विचार नहीं किया है।

रामानुज—विचार की आवश्यकता ही क्या है?

रायसाहब—नहीं, बिना विचारे कोई कार्य नहीं करना चाहिये। अब भी समय है। मुकदमा सात दिन तक शुरू नहीं होता। जल्दी करने की आवश्यकता नहीं। हर एक काम सोच समझ कर करना चाहिये।

[घण्टा बजता है।]

रायसाहब [घड़ी देख कर]—बहुत समय होगया। अब मैं जाता हूँ। फिर आकर मिलूँगा। खूब सोचिये। इस स्वार्थ से नहीं कि आप बदनाम हो जावेंगे किन्तु इस दृष्टि से कि आप काँग्रेस का कार्य कर सकेंगे और उसे एक कायर कोआ-परेटर के हाथ में निश्चेष्ट पड़ी रहने से बचा सकेंगे।

[जाने लगता है]

रामानुज—आपने बड़ी कृपा की। वन्दे।

रायसाहब [जाते जाते]—कुछ नहीं, कुछ नहीं। [दूर जाकर] कांग्रेस का खयाल रखना।

[पटाक्षेप]

आठवाँ दृश्य

[उर्मिला अपने कमरे में बैठी है। वह आज चिन्तित और उदास है। उसके पास 'आज' की पुरानी फाइल पड़ी है। वह कुछ गा रही है]

सांवरिया मुझे छोड़ गए, हां।
छोड़ गए, कुछ जोड़ गए, कुछ तोड़ गए, हां॥
दरशन प्यारे नयन ये, दिया करें जल दान।
कहीं पुण्य जग जाय तो, लौटें फिर यजमान॥
चरण पखारूँगी, हृदय चढ़ा लूँगी।
पूछूँगी, क्यों मुंह मोड़ गए, हाँ॥ सांवरिया०॥

हृदय भी विपरीत भावों का विचित्र सम्मिश्रण है। उनके जाने पर हृदय से बधाई भी उठती है, और उनके जाने पर हृदय से रूलाई भी उठती है। किन्तु हम युद्ध-क्षेत्र में खड़े हैं। यहां कमज़ोरी की आवश्यकता नहीं। मुझे दृढ़ता ही धारण करनी होगी।

[इतने में शशि आती है।]

शशि [शीघ्रता और प्रसन्नता से]—उर्मिला, सब ठीक होगया।

उर्मिला [उत्सुकता से]—क्या

शशि—मैंने उनसे कहा कि तुम्हारे कौंसिल में रहते हुए भी रामानुज गिरफ्तार हो जावे, यह बुरी बात है।

उर्मिला—फिर क्या हुआ ? उन्होंने तो गिरफ्तारी का समर्थन किया होगा, या उसे रोकने में अपनी असमर्थता बताई होगी।

शशि—बातें तो बहुतसी हुईं, पर अन्त में उन्हें बचन देना पड़ा कि वे रामानुज को छुड़वा देंगे।

उर्मिला—और तुम्हें विश्वास होगया ?

शशि—क्यों नहीं। अभी इधर ही आते होंगे। तुम खुद बातचीत करके जान लेना।

उर्मिला—समझ में नहीं आता कि एक बार गिरफ्तारी की सम्मति देकर अब वे कैसे छुड़ा सकते हैं।

शशि—यह तो मैं नहीं जानती। कौंसिल का काम कौंसिल वाले ही जानें। पर मैंने तो वचन ले लिया है।

उर्मिला—मैं जानती हूँ। इस समय छुड़ा लेने का एक ही उपाय है और उसके लिये प्रयत्न करने में सरकार और श्रीधर भैया का स्वार्थ है।

शशि—तो क्या मेरे कहने का उन पर ज़रा भी असर नहीं पड़ा ?

उर्मिला—नहीं, यह तो मैं नहीं कहती। परन्तु मैं सब समझ गई। [सिर हिलाती है]

[श्रीधर आता है, वह कुछ हतप्रभ सा है और उसकी आँखें नीची हैं। उर्मिला और शशि खड़ी हो जाती हैं]

उर्मिला—बन्दे, भैया।

श्रीधर—बैठो, बैठो।

[श्रीधर एक कुर्सी पर बैठ जाता है और शशि और उर्मिला भी अपनी जगह बैठती हैं।]

श्रीधर—क्या कर रही हो, उर्मिला।

उर्मिला—यह "आज" की फाइल पढ़ रही थी।

शशि—हां, अब मैं समझी। डिफेन्स तैयार कर रही थीं।

[श्रीधर उदासी के साथ मुस्कुराता है।]

उर्मिला—मैंने वकालत थोड़े ही पास की है, और वकालत भी क्या भैया के खिलाफ करूंगी।

श्रीधर [खिन्न भाव से]—क्यों, उर्मिला ऐसा क्यों कहती है?

उर्मिला—भूल गई। अब तो आप रामानुज को छुड़ाने का प्रयत्न कर रहे हैं। सुनती हूँ, वचन दे चुके हैं।

श्रीधर [हंस कर]—मालूम होता है, इसने [शशि की ओर इशारा करके] सब कुछ कह दिया है।

उर्मिला—पर, भैया, इसके पहले वचन दे आये हो गवर्नमेण्ट हाउस में। दोनों वचन कैसे निबाहोगे?

श्रीधर—उर्मिला, तू मुझे अपने ढंग से काम करने दे। विश्वास रख, मैं सब मामला ठीक कर दूंगा। तू जानती है कि मैं रामानुज का बचपन का मित्र हुँ। मेरा और उसका इतना घना संबन्ध है कि वह मुझे भाई साहब लिखा करता है।

उर्मिला—पर, मैं यह भी जानती हूँ कि आप सरकार के भी मित्र हैं।

श्रीधर—ठीक है, पर तू धीरज तो रख।

उर्मिला [मुस्कुराकर]—मैं उत्सुक ही कब थी?

शशि—तुम लोग बातें करते रहो। मैं अभी आती हूँ। मामी जी से कुछ काम है।

[शशि उठ कर जाती है परन्तु हाल के दरवाजे के पास जाकर फिर लौट आती है, और कहती है] मामा जी आगए हैं।

[शशि कमरे के दूसरे दरवाजे से चली जाती है।]

श्रीधर—राय साहब ? [उर्मिला से] अच्छा ठहरो, उर्मिला, मैं आता हूँ।

[श्रीधर हाल में जाता है। उसके चले जाने के बाद उर्मिला भी उठ कर हाल के दरवाज़े के पास जाकर खड़ी हो जाती है और परदे के पास कान लगाकर भीतर की बातें सुनती है। वह पहले मुस्कुराती है। फिर प्रसन्नता पूर्वक सिर हिलाती है, किन्तु उसकी प्रसन्नता धीरे धीरे उदासी और भय में परिणत होती जाती है। वह दरवाज़े से हट कर शीघ्रता से आकर अपनी कुर्सी पर बैठ जाती है और अखबार पढ़ने लगती है। बाद में श्रीधर आता है और एक कुर्सी पर बैठता है।]

उर्मिला—मामा, कहां गये थे ?

श्रीधर—मेरा वचन पूरा करने।

उर्मिला [उत्सुकता से]—याने ?

श्रीधर—मैंने उन्हें रामानुज से मिलने भेजा था।

उर्मिला—क्यों ? वह राय साहब हैं, जेल में उनसे मिलने जावेंगे तो सरकार नाराज़ नहीं होवेगी ?

श्रीधर—जेल के मामलों में तो सरकार मैं हूँ।

उर्मिला—हां, मैं भूल गई थी। फिर क्या हुआ ?

श्रीधर—होना क्या ? अभी प्रयत्न हो रहा है। आशा है, रामानुज छूट जावेगा।

उर्मिला [प्रसन्नता दिखाकर]—सच ? पर, कैसे ?

श्रीधर—मामूली सी बात है। किसी बात पर ज़रा अफ़सोस ज़ाहिर कर देना काफी है।

श्रीधर [हत-प्रभ होकर]--उर्मिला, अब तू ने पासा पलट दिया। [उर्मिला एकाएक हंस पड़ती है] क्षमा भी करेगी कि नहीं ?

[उर्मिला फिर गंभीर होजाती है। शशि आती है।]

शशि [हंसकर]—बड़ी गंभीर बातें होरही हैं !

श्रीधर—कुछ नहीं, उर्मिला नाराज़ है।

शशि—क्यों ?

श्रीधर--मैंने इसे कहा कि मैं चाहता हूं कि रामानुज की और इसकी........

उर्मिला--भैया, फिर वही बातें ?

शशि—शादी होजावे; यह तो उर्मिला भी चाहती है।

श्रीधर--और, यह रामानुज भी चाहता है।

उर्मिला—सरकारी कानून में तो यह बात मानी ही नहीं जाती कि कैदी की भी कोई इच्छा रहती है।

श्रीधर—बस, उर्मिला के पास एक हथियार है। वह जब चाहती है तब सरकार को उठाकर मेरे सिर पर दे मारती है; फिर चाहे शादी की ही बातें क्यों न हो रही हों।

शशि--पर, वह ठीक तो कहती है। कैदी का चाहना और न चाहना बराबर है।

श्रीधर—पर, क़ैदी स्वतंत्र भी तो होसकता है।

शशि [प्रसन्नता से]—क्यों कुछ उम्मेद है ?

श्रीधर—उम्मेद क्यों नहीं। पर, अभी पूरा राजी नहीं हुआ है। ज़रासा अफसोस ज़ाहर करना है, अपने किसी भाषण के बारे में।

शशि—बस ?

श्रीधर—बस।

शशि [उर्मिला की ओर देख कर हंसती हुई]—तो पूरा राज़ी कराना कोई बड़ी बात नहीं है। हमारी उर्मिला काफ़ी है। अजी, पूरी खुशी के लिये ज़रा सा अफ़सोस ज़ाहर करने के लिय कौन नहीं पूरा राज़ी होगा।

श्रीधर [कृतज्ञ भाव से]—शशि तूने सारी कठिनाइयां दूर कर दीं।

शशि—कैसे ?.

श्रीधर—तेरा यही मतलब था न कि उर्मिला कह दे तो वह फौरन राज़ी हो जावे।

शशि—यही।

श्रीधर—पर एक कठिनाई है।

शशि—यह कि ये दोनों जेल में कैसे मिलें ?

[उर्मिला प्रसन्न मालूम होती है]

श्रीधर—नहीं, यह तो कोई कठिन बात नही है। जेल विभाग मेरे अधीन है। यह मेरे साथ वहां जा सकती है, और चाहे तो अकेले में घंटों बातें कर सकती है।

शशि—सौभाग्य उर्मिला! [श्रीधर से] पर, कठिनाई क्या है ?

श्रीधर—यह कि रामानुज और यह शायद पहले कभी मिले नहीं हैं, इस लिए वहां अच्छी तरह बात चीत नही कर सकेंगे।

शशि—मिले क्यों नहीं हैं ?

उर्मिला—भौजी, मैं आती हूँ।

[उर्मिला उठने लगती है]

शशि [उर्मिला का हाथ पकड़ कर]—वाह, आती हूँ, बैठ भी।

[उर्मिला को बैठना पड़ता है]

श्रीधर [आश्चर्य से]—मिल चुके हैं ?

उर्मिला [प्रार्थना पूर्ण दृष्टि से]—भौजी ?

शशि [हंस कर]—कई बार।

श्रीधर—सच कहो ? [उर्मिला की ओर देख कर] उर्मिला, यह क्या कहती है ?

उर्मिला—सच तो है। आप लोग जब इलाहाबाद में पढ़ते थे तब घर पर कई वार आये गये हो।

शशि—सिर्फ नेत्रों से ही नहीं मिले, वात चीत भी हुई।

श्रीधर [अविश्वास के स्वर में]—नहीं जी।

शशि—हां, हां।

श्रीधर—क्यों, उर्मिला ?

[नौकरानी का प्रवेश]

नौकरानी—बाबू जी, आपको सरकार बुलाते हैं। कहते थे, जल्दी का काम है।

श्रीधर [खड़ा होकर शशि और उर्मिला से]—अच्छा, ठहरो, आता हूँ। उर्मिला को भागने मत देना।

[श्रीधर और नौकरानी जाते हैं]

उर्मिला [संतोप किन्तु निपेध से]—भौजी, तुम बड़ी खराब हो।

शशि—क्यों ?

उर्मिला—भैया से इस बात के कहने की क्या आवश्यकता थी।

[उर्मिला नाराज होकर दूर हट जाती है]

शशि—नाराज मत हो। गलती से मुंह से निकल गया। फिर, देखो, मैंने बताया? टालती ही रही कि नहीं?

उर्मिला—सुझाती रही, टालती रही? पर, कब टालोगी। वे फिर आकर पूछेंगे तो क्या जवाब दोगी?

शशि [सचिन्त भाव से]—मुझे तो कुछ नहीं सूझता। तुम जो बताओ, वह कह दूं। पर हो सच बात।

उर्मिला [कुछ सोच कर प्रसन्नता से]—कह देना, कई बार देखा है, स्वप्न में [शरारत से] मिली भी हूँ, बात चीत भी की है और......[शशि को नीचे झुक कर चूमती है]

[पटाक्षेप]

नवाँ दृश्य

[कांग्रेस कमेटी के दफ़्तर में मोहन और कुछ कार्य-कर्त्ता बैठे हुए बात चीत कर रहे हैं। कमरे में नेताओं के चित्र टँगे हैं जिनके बीच में प्रमुख स्थान पर भारत माता का चित्र है। उसके दोनों ओर दो स्वराज्य झण्डे हैं। जिनमें सफ़ेद, हरे और लाल रंगों की पट्टियों के बीच चर्खे की तसवीर है।]

एक—क्यों, भाई, प्रेसीडेण्ट साहब आज कल कहाँ जा छिपे हैं?

मोहन—वे अपनी-ससुराल गए हैं। उन्हें तार भेजा गया है; बाद में ज़रूरी तार भी दिया गया; पर अभी तक नहीं आये।

दूसरा—पर, उन्हें एक ज़रूरी तार और दिया जिसका किसी को पता नहीं।

मोहन—कैसा तार ?

दूसरा—उनके पिता सेठ जीतमल जी, रामानुज जी की गिरफ़्तारी के बाद ही कलेक्टर से मिलने गए थे, और वहां से लौटते समय बँगले के पास जो बड़ा तार घर मिलता है, वहां अपनी गाड़ी रोक कर उन्होंने एक तार दिया जो मालूम होता है, बंगले से ही लिख कर लाये थे।

मोहन—यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?

दूसरा—मालूम क्या, मैं तो तार घर में मौजूद था। वे बाहर ही गाड़ी पर बैठे रहे और उनका नौकर तार लेकर अन्दर गया। मैंने कौतूहलवश उस नौकर से तार लेकर पढ़ लिया।

मोहन—क्या लिखा था ?

दूसरा—Proceed immediately to Jaipur myself coming there.※

मोहन—ख़ैर, जाने दो। अब हमें तो यह कोशिश करनी चाहिये कि कांग्रेस का कार्य बराबर चलता रहे।

तीसरा—अजी इसकी चिन्ता न कीजिए। कांग्रेस का कार्य तो गंगाजल के समान है जो चलता ही रहेगा। वह प्रवाह में वह कर केवल समुद्र की ही ओर नहीं जावेगा किन्तु भक्तों की कठौती में चढ़ कर हिमालय के शिखर पर पहुँचेगा और रामेश्वर तक की सैर करेगा।

※तुरन्त जयपुर पहुंचो, मैं भी वहां पहुंचता हूं।

चौथा—यह तो मैं भी मानता हूँ। पर,मार्ग में बाधायें बहुत हैं। आपने नहीं सुना होगा, प्रेसिडेण्ट साहब के पिता ही यह अफ़वाह उड़ा रहे हैं कि रामानुज माफ़ी माँगने को तैयार है, और उन्होंने राय साहब आनन्दीप्रसाद को जेल में बुलवाया था; मिनिस्टर श्रीधर साहब उनके मित्र हैं, वे भी इसी लिए यहाँ आये हुए हैं।

मोहन—यह असम्भव है कि रामानुज माफ़ी माँगे। मैं खुद उनसे मिला हूँ। वे खूब प्रसन्न थे। उन्हें चिंता थी तो यही कि कांग्रेस का कार्य कैसे चलेगा। मैं उन्हें विश्वास दिला आया हूँ कि कांग्रेस का कार्य अच्छी तरह चलेगा।

सब—क्यों नहीं। हम सब तैयार हैं। रामानुज जी के गिरफ़्तार होजाने से तो जोश और भी बढ़ा है, और कार्य भी ज़ोरों से होगा।

एक—क्यों, भाई, सुनते हैं, मन्त्री जी के पास खादी के बिक्री के जितने रुपये पैसे गिरफ़्तारी के वक्त थे वे पुलिस वालों ने छीन लिये।

मोहन—नहीं, यह बात बिलकुल ग़लत है। वह सब रुपया मन्त्री जी के पास ही था। जेल में जब मैं उनसे मिलने गया तो उन्होंने खादी का हिसाब करके बिक्री के कुल १०९।≡)॥ दिये।

[बाहर कुछ लोगों के आने का शोर सुनाई देता है। इतने में पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट, इन्सपेक्टर और कुछ सिपाही भीतर आते हैं। कमरे के अन्दर बैठे हुए सब लोग खड़े हो जाते हैं।]

पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट—इस दफ़्तर की तलाशी लीजाती है। कौन है इसके चार्ज में ?

मोहन [आगे बढ़ कर]—मैं हूँ इस कमेटी का सेक्रेटरी।

पु० सु०—अच्छा [राष्ट्रीय झंडे की ओर इशारा करके] यह क्या है ?

मोहन—यह हमारा राष्ट्रीय झंडा है।

पु० सु० [गुस्से से देखते हुए]—नेशनल फ्लैग !※

सब-इन्सपेक्टर [घृणा से]—देखता क्या है, फाड़ डालो।

[सब-इन्सपेक्टर राष्ट्रीय झंडा फाड़ने के लिये आगे बढ़ता है, मोहन उसे रोकता है।]

मोहन—मैं इसका विरोध करता हूँ। आपको राष्ट्रीय झंडे का अपमान नहीं करना चाहिये।

पु० सु०—हट जाओ [मोहन को धक्का देता है और सिपाहियों से कहता है, यह सब तसवीरें फोड़ डालो। इस पर सब सिपाही डंडों से राष्ट्रीय नेताओं की तसवीरें फोड़ते हैं। एक झंडे को इन्सपेक्टर फाड़ता है और दूसरे को सुपरिंटेंडेन्ट खींचकर ज़मीन पर फेंकता है। मोहन उसे बीच में ही पकड़ कर ऊंचा उठाता हैं।]

सब कांग्रेस कार्यकर्त्ता—बोलो, महात्मा गांधी की जय।

इन्स्पेक्टर—बोलो, बादशाह जार्ज पंजुम की जय।

[सब कांग्रेस वाले खिल खिला कर हंस पड़ते हैं।]

पु० सु०—ये सब बदमाश हैं, इनको गिरफ्तार करलो हथकड़ी भरदो।

[सिपाही लोग हथकड़ी भरने की तैयारी करते हैं।]

मोहन—वारंट तो दिखाइये।

※ National flag = राष्ट्रीय झगडा

पु० सु०—हमारा हुक्म वारंट है।

[सब कांग्रेस वाले चुपचाप खड़े रहते हैं और पुलिस वाले उन्हें हथकड़ियां भर कर रस्सी से कस देते हैं।]

पु० सु०—अब तलाशी लो।

[तलाशी शुरू होती है। खादी के कपड़े फाड़े जाते हैं; दफ्तर के कागजात चीर कर फेंके जाते हैं और आलमारी का ताला तोड़ा जाता है। गिरफ्तार कांग्रेस वाले 'महात्मा गांधी की जय' चिल्लाते रहते हैं।]

पु० सु०—इन्सपेक्टर साहब इनका मुंह बन्द नहीं हो सकता ?

एक कांग्रेस वाला—१४४ धारा के मुताबिक ताज़ीरात हिन्द में कोई मुस्का भी बनाया जाय तो अच्छा हो।

पु० सु० [चिढ़कर]—वह भी होगा। तुम लोग जानवर का माफ़िक है। [सिपाहियों को कुछ कागज दिखा कर] अच्छा, ये कागज सँभालो और इन सब को कोतवाली पर ले चलो।

[सब लोग जाते हैं। रवाना होते समय सब गिरफ्तार लोग गाना गाते हैं।]:—

चल दिए माता के बन्दे जेल, बन्देमातरम्।
देश भक्तों की यही है गैल, बन्देमातरम्॥
हैं जहां गांधी गए बरसों तिलक भी थे जहां।
हम भी वहां के कष्ट लेंगे, झेल, बन्देमातरम्॥
जानते हैं क्रूर है, खूं ख्वार है सैयाद वह।
जांच ले हरगिज न होंगे फ़ेल, बन्देमातरम्॥
एक को ले जायगा तो सैकड़ों आगे बढ़ें।
जेल जाने को समझते खेल, बन्देमातरम्॥

देश भक्त ने जिसे सींची है अपने खून से।
लहरायगी फल जायगी वह बेल बन्देमातरम् ॥
देखना हिन्दू मुसलमानो, न टूटे मित्रता।
बोलदो, अल्लाहो अकबर, बोल, बन्देमातरम् ॥

[पटाक्षेप]

दसवाँ दृश्य

[जेल की एक साफ सुथरी कोठरी में रामानुज बैठा है। उसका दरवाज़ा और खिड़कियां खुली हुई हैं। कोठरी के आस पास बहुत बड़ा दालान है जो ऊँची दीवारों से घिरा हुआ है। दीवाल में एक ओर एक फाटक है जिसमें लोहे के मोटे सीखचे लगे हैं। वह बन्द है, और वाहर की ओर एक वार्डर खड़ा है। कोठरी के अन्दर पलंग, टेबल और कुर्सी भी हैं। परन्तु मालूम होता है, रामानुज ने उनका उपयोग नहीं किया। उसका बिस्तर ज़मीन पर लगा है और वह उस पर

हुआ कुछ लिख रहा है। दरवाज़े की ओर उसकी पीठ है। वह लिखने में इतना व्यस्त है कि फाटक का दरवाज़ा खुला और बन्द भी किया गया और दो व्यक्ति भीतर आये परन्तु, उसे कुछ नहीं मालम हुआ। वे दोनों थे श्रीधर और उर्मिला। उनके नज़दीक पहुँचने पर रामानुज ने एकाएक सिर उठाकर देखा।]

रामानुज [बैठे ही बैठे आश्चर्य और प्रसन्नता से]—श्रीधर ! [खड़े होकर, श्रीधर के गले से चिपट जाता है और उसकी आँखों से आँसू बहने लगते हैं] बहुत दिनों में मिले, भाई ! [उर्मिला से, आंसू छिपाकर और पोंछ कर] कितना परिवर्तन हो गया !

उर्मिला—एक 'मिनिस्टर,' और दूसरा क़ैदी।

श्रीधर—हां, भाई, क्षमा करना। तुम इन्हें जानते हो, हरीश की बहिन हैं, उर्मिला देवी। इन्हें मैं साथ लेता आया हूँ।

रामानुज [उर्मिला की ओर देख कर]—बड़ी कृपा हुई। [श्रीधर से] हां, भाई, यह बताओ, हरीश कहां है? क्या कर रहा है? वह तो वकालत कर रहा है न?

श्रीधर—खूब धड़ल्ले से।

रामानुज—यह बताओ, भौजी कहां है। कोई बाल-बच्चा? मुझे तो तुम लोगों ने बिलकुल ही भुला दिया।

श्रीधर—सब अच्छी तरह हैं।

रामानुज—भौजी कभी मेरी भी याद करती है कि नहीं? गोपाल के क्या हाल हैं?

श्रीधर—गोपाल हमारे साथ ही रहता है।

रामानुज—भाई, भौजी को बहुत दिन से नहीं देखा, वे आज कल कहां हैं।

श्रीधर—वह भी यहीं पर बनारस में आई हुई हैं।

रामानुज—उन्हें भी साथ में क्यों नहीं ले आये? अब भी डेढ़ हाथ का घूंघट होता होगा? [हंसता है]

श्रीधर—भाई, वह तुम्हारी गिरफ्तारी पर मुझ से बहुत नाराज़ हुई। मैंने लाख समझाया कि मेरा कोई कुसूर नहीं, पर वह मुझे ही दोष दे रही है और ज़िद कर रही है कि तुम्हें किसी तरह छुड़ाया जावे। उर्मिला को भी उसी ने आग्रह कर के भेजा है।

रामानुज [हंसते हुए]—तुम दोनों मुझे छुड़ा लोगे!

श्रीधर—हां, अगर तुम खुद मदद करो।

रामानुज—भाई,मैं तो तुम्हारी आज्ञा मानने को तैयार हूँ

श्रीधर—राय साहब की तुम से बातचीत हो चुकी है न ? वे मेरे ही कहने से तो यहां आये थे।

रामानुज—अच्छा ! उन्होंने बताया नहीं। राय साहब बड़े सज्जन हैं। वे तो मेरे पुराने हितचिंतक हैं।

श्रीधर— हां, तो फिर तुम ने क्या तय किया ?

रामानुज—मैं क्या तय करता ? तय तो अदालत करेगी।

श्रीधर—अदालत का फ़ैसला तुम्हारे बयान पर अवलंबित है। अपने किसी भाषण की किसी बात पर अफसोस ज़ाहिर कर देना। मामूली सी बात है। क्यों, उर्मिला ?

उर्मिला [सरल भाव से]—बिलकुल !

रामानुज [आश्चर्य से उर्मिला की ओर देखते हुए]—क्या तुम सोचते हो, सिर्फ अफ़सोस ज़ाहिर कर देने से मैं छूट जाऊंगा ?

श्रीधर—इसकी गैरन्टी मैं देता हूँ। तुम मेरा पद जानते ही हो।

रामानुज—मैं जानता हूँ। पर तुम सरकार नहीं हो।

श्रीधर—मैंने खुद गवर्नर साहब से बातचीत कर ली है। यहाँ के कमिश्नर और कलेक्टर से भी सलाह हो चुकी है। रायसाहब की भी यही राय है।

रामानुज [हँसते हुए]—याने, तुम मुझे छुड़ाने के लिये सारा षड़यन्त्र रच चुके हो।

श्रीधर [हँसते हुए]—अब जो कुछ समझो।

रामानुज—पर, देखना, कहीं अधिक न फँस जाऊँ।

श्रीधर—नहीं, यह कभी नहीं हो सकता।

रामानुज [निःश्वास छोड़ते हुए गम्भीरता से]—तो फिर सब की सलाह है कि मैं अफ़सोस ज़ाहर कर दूँ।

श्रीधर—हाँ।

रामानुज—फिर, उन्होंने गिरफ़्तार ही क्यों किया था ?

श्रीधर [ज़रा कुण्ठित होकर]—भाई, तुम्हें क्या बताऊँ ? यह तो * 'स्टेट सीक्रेट' है। भारत सरकार का बड़ा दबाव पड़ रहा था।

रामानुज—भारत सरकार ने यह लिखा था कि रामानुज को गिरफ़्तार कर लो ?

श्रीधर—अब तो तुम प्रश्न पूछने लगे। [उत्तेजित होकर] यह तो नहीं लिखा कि रामानुज को गिरफ्तार कर लो। [आग्रह के साथ] पर, जो कुछ हो चुका, वह तो हो चुका। अब यह सोचो कि करना क्या है।

रामानुज—मुझे तो कुछ करना बाकी नहीं रहा। अब करना तो सरकार के हाथ में है।

श्रीधर—सरकार तो चाहती है, तुम अफ़सोस ज़ाहर कर दो।

रामानुज [सन्तोष से हँसते हुए]—कहो, मैंने षड्यन्त्र शब्द का उपयोग ठीक ही किया था न ?

श्रीधर—रामानुज, इस तरह का इलज़ाम ?

---

* State Secret = राज्य के रहस्य.

रामानुज--दोस्ती के नाते क्या मुझे इतनी भी स्वतन्त्रता नहीं ?

उर्मिला--पर दोस्त को मालूम होना चाहिये कि वह क़ैद में है।

श्रीधर—तुम्हें पूर्ण स्वतंत्रता है। पर देखो, उर्मिला यहां खड़ी है, उसका तुम्हें लिहाज़ करना चाहिये। तुम मुझे चाहे जो इलज़ाम लगाओ, पर असली प्रश्न यह है कि तुम जेल से छूटना चाहते हो, या नहीं ? तुम्हें छुड़ाने की हितचिंतना से हम यहां आये हैं।

रामानुज—अपने छूटने और छुड़ाने के प्रश्न पर फिर विचार करेंगे। पहली बात तो यह है कि यदि तुम मेरे हितचिंतक थे तो मुझे छुड़ाने के लिए तुम्हें होममेंबर की हैसियत से जेल में नहीं आना चाहिये था, किन्तु, एक क़ैदी की हैसियत से आना चाहिये था।

श्रीधर—क्या मैं तुम्हारा हितचिंतक नहीं हूँ ? और क्या यह उर्मिला भी तुम्हारी हित-चिन्तिका नहीं है ?

रामानुज—इसका उत्तर तुम ख़ुद सोच लो।

श्रीधर—तुम्हें उर्मिला के सामने तो ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिये।

रामानुज—श्रीधर, तुम मुझे अच्छी तरह जानते हो, और मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। छिपाने की आवश्यकता नहीं। इसी लिये मैं [उर्मिला की ओर इशारा करके] इन्हें गवाह बना कर तुम से साफ़ साफ़ बातें करना चाहता हूँ।

श्रीधर [कुछ डर कर, समझाते हुए]—भाई, बातें तो होती रहेंगीं, पर कुछ अपने छूटने की तरकीब सोचो।

रामानुज—फिर, वही बात। मैं तो इस छूटने और छुड़ाने को देश-द्रोह मानता हूँ।

श्रीधर—तो क्या हम देशद्रोही हैं? क्या हमारे प्रयत्नों का यही बदला हमें मिलेगा?

रामानुज—बदला तो परमात्मा देगा। परन्तु इसमें कोई शक नहीं कि [रामानुज चुप हो जाता है]

श्रीधर—कहो, कहो।

रामानुज—भाई, कहने का बुरा न मानना। जब तुम सुनना ही चाहते हो तो मैं तुम्हें साफ़ साफ़ कह देना चाहता हूँ कि मेरी राय में तुम देशद्रोही हो।

[थोड़ी देर के लिए तीनों पर सन्नाटा छा जाता है]

श्रीधर [मंद स्वर से] रामानुज, क्या कहते हो!

रामानुज—मैंने जो कुछ कहा, वह सोच-समझ कर कहा। और उसके लिये मेरे पास काफ़ी प्रमाण हैं।

श्रीधर [शून्य भाव से]—क्या?

रामानुज—अच्छा, बैठो। मैं सब शुरू से सुनाता हूँ।

[तीनों बैठते हैं। श्रीधर बहुत चिंतित मालूम होता है।

रामानुज—सुनो। एल-एल०बी० के रिज़ल्ट का तार आने के बाद तुम जब अपने ससुर की बीमारी का तार पढ़ कर खिड़की के पास खड़े हुए बोल रहे थे उस समय मैं वहीं से गुज़र रहा था। मैंने सब सुना है।

श्रीधर [डर कर किन्तु अविचलितता दिखाते हुए]—क्या सुना? क्या मैंने कोई ख़राब बात कही थी?

रामानुज—कुछ नहीं, सिर्फ यही कहा था कि सौभाग्य अकेला नहीं आता। तुम अपने ससुर की बीमारी पर प्रसन्न थे।

श्रीधर [घृणा से] झूठ, सफ़ेद झूठ !

रामानुज—मुझे ज़रा झूठ भी बोल लेने दो जिससे तुम्हारी सच्चाई और भी चमक उठे। बाद में तुमने अपने ससुर का इलाज जैसा करवाया उसका भी मुझे पता है।

श्रीधर [उत्तेजित होकर]—रामानुज, झूठ की भी हद है ?

रामानुज—नहीं, वह और भी बड़ी है। तुम मरे हुए ससुर की गद्दी पर बैठ कर तालुकेदार बने, और कौंसिल में जाकर तुमने 'मिनिस्टरी' पर अपनी देश-भक्ति के सारे वादे न्योछावर कर दिये। अब एक दोस्त की हितचिंतना की नींव पर किसी दूसरी महत्वाकांक्षा का महल खड़ा करना चाहते हो।

श्रीधर [प्रार्थना के स्वर में]—रामानुज, यह क्या कहता है !

रामानुज—मैं ठीक कहता हूँ। तुम्हारे षड़यंत्र को मैं पहिचानता हूँ।

श्रीधर [गम्भीरता से]—षड़यंत्र ?

रामानुज—हां, षड़यंत्र। अब तुम और राय साहब माडरेटों की आम नीति के अनुसार ऐसी चालें चल रहे हो जिससे असहयोग का सत्यानाश हो जावे। मैं अफ़सोस ज़ाहर करूं, फिर उस पर सरकार शान से 'कम्युनिक' (विज्ञप्ति) निकाले कि फलानी काँग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी ने मांफ़ी माँग ली। परिणाम यह होगा कि काँग्रेस का नैतिक प्रभाव कम हो जावेगा। मालूम होता है, पशुबल काफ़ी नहीं था, इसलिए नैतिक बल प्राप्त करने की भी चालें चली जा रही हैं। और

तुम मित्रता की ओट में और अपनी धर्मपत्नी पर अहसान करने के बहाने मेरा नैतिक अधःपतन करने के लिए यहाँ आये हो, और इस प्रकार राष्ट्रीयता का विध्वंस करके स्वयं ऊंचे चढ़ना चाहते हो।

श्रीधर—निन्दा करना असहयोगियों का स्वभाव होगया है। मानो कोई दूसरा देशभक्त नहीं है।

रामानुज—सब मनुष्य अपने को देशभक्त कह सकते हैं, परन्तु मनुष्य का हृदय तो उसके कार्यों से ही जाना जाता है।

श्रीधर—उदाहरणार्थ, क्या माडरेटों के कार्य प्रशंसनीय नहीं हैं ? उन्होंने यूनिवर्सिटियां क़ायम की हैं। बड़ी बड़ी संस्थाएँ चला रहे हैं और कौंसिल में जाकर देश की सहायता कर रहे हैं।

रामानुज—क्षमा करना। मैं तो इस प्रत्येक कार्य में उस जयचन्द का हाथ देखता हूँ। अफ़सोस कि हिन्दुस्थान में सैकड़ों लड़ाइयाँ हुईं, ख़ून की नदियाँ बहीं, किन्तु उस जयचन्द का ख़ून हिन्दुस्थान की रगों के बाहर नहीं हुआ। वह आज भी विदेशी सत्ता की छत्रछाया में यूनिवर्सिटियाँ क़ायम करता है, कौंसिलर बन के उसके क़ानून का बल बढ़ाता है, और जलियाँ वाला में मरे हुए अपने ही भाइयों के रिश्तेदारों से मावज़े में दी जाने वाली आना पाई का हिसाब लगाता है।

श्रीधर [क्रोध से]—रामानुज, बस बहुत हो चुका। [खड़ा होते हुए] मैं अब नहीं सुन सकता। मुझ में भी आत्मसम्मान है।

रामानुज [रोते हुए, श्रीधर के पैर पकड़ कर ऊपर देखते हुए]—अगर आत्मसम्मान है तो भाई, छोड़, मिनिस्टरी को छोड़, देश की गुलामी का साधन मत बन [रामानुज खड़ा होजाता है]

श्रीधर [विचलित किन्तु क्रुद्ध भाव से]—तुम देश के और अपने सत्यानाश पर तुले हो। दोनों का भला इसी में है कि तुम जेल में बन्द रहो, जिससे बाहर बलवा न होने पावे और हिन्दुस्थान को रूस के समान मारकाट के दृश्य न देखने पड़ें। ख़ैर, इस सम्बन्ध में तुम से वाद-विवाद करना व्यर्थ है। सिर्फ़, एक बात और कहनी रह गई है।

रामानुज—क्या ?

श्रीधर—तुमने ग़लत जोश में आकर अपने जीवन के एक पहलू को बिलकुल ही भुला दिया।

रामानुज—कौनसा ?

श्रीधर [उर्मिला के सिर पर हाथ रख कर]—वह पहलू उर्मिला है।

रामानुज—मेरे हृदय के कोमल भाग का तुम्हें पता है और मालूम होता है यह तीखा तीर इसीलिए लाये हो और उसे अमोघ मानकर सब के पीछे चलाने के लिए रख छोड़ा है।

उर्मिला [प्रसन्नता से]—अब मेरे बोलने का समय आया। मैं अभी तक सोच रही थी कि मैं व्यर्थ ही आई।

श्रीधर—मैं जानता था, तेरा आना व्यर्थ नहीं होगा।

[जेलर आता है]

जेलर [श्रीधर से]—हुज़ूर, कलेक्टर साहब आये हैं। आपसे दफ़्तर में मिलना चाहते हैं।

श्रीधर—अच्छा, चलो। [चलते चलते उर्मिला से, इन्हें समझाना, मैं आता हूँ।]

[श्रीधर और जेलर जाते हैं, अब कमरे में उर्मिला और रामानुज दोनों रह गये। दोनों थोड़ी देर चुप रहते हैं।]

रामानुज [गम्भीरता से]—उर्मिला! [उर्मिला चौंक पड़ी] तुम क्या मुझे यह कहने आई हो कि मैं माफ़ी माँगलूँ ?

उर्मिला—नहीं, यह पूछने आई हूँ कि तुम मुझे प्यार करते हो, कि नहीं ?

रामानुज—पूछने की ज़रूरत भी है ?

उर्मिला—अगर तुम मुझे प्यार करते तो जेल आने में तुम्हें कुछ अफ़सोस ज़रूर होता।

रामानुज—अफ़सोस बहुत है।

उर्मिला—फिर छूटने का प्रयत्न क्यों नहीं करते। अफ़सोस ही तो ज़ाहर करना है। तुम स्वतन्त्र हो जाओगे, हमारा विवाह हो सकेगा, और हम सुखी होंगे।

रामानुज—उर्मिला, मैं तुझे प्यार करता हूँ, परन्तु तुझ से अधिक प्यार करता हूँ मेरी और तेरी मातृ-भूमि को। उर्मिला और रामानुज का जीवन कुछ ही समय का है; उर्मिला और रामानुज का सुख और दुख केवल दो व्यक्तियों का, और क्षणिक है। परन्तु इस मातृ-भूमि का जीवन अनन्त है, और उसका सुख और दुख उसकी तीस करोड़ सन्तान का सुख और दुख है। यही नहीं, आज उसकी ग़ुलामी सारे एशिया महाद्वीप और अफ्रीका की ग़ुलामी का कारण हो रही है। सब से बड़ा अनिष्ट तो यह हुआ है कि हिन्दुस्थान के ग़ुलाम होने से ईसा, मुहम्मद और बुद्ध तीनों की आत्मा क़ैद में है।

संसार से धर्म उठ गया है। तू हिन्दुस्थान को गुलामी में बाँध रखने वाली कड़ी होगी, या उस को तोड़ने वाली हथौड़ी?

उर्मिला—मैं इस मामले को इस दृष्टि से नहीं देखती। मेरी दृष्टि भिन्न है। मैं तुम्हें प्यार करती हूँ और तुम्हारे बिना जीती नहीं रह सकती। मेरे लिए केवल तुम ही हो, तुम से परे न देश है, न ईश्वर है।

रामानुज—प्यार करती हो, मेरे शरीर को या मेरे आदर्श को?

उर्मिला—इस प्रश्न का उत्तर देने की मुझे आवश्यकता नहीं। प्रश्न तो यह है कि तुम मुझे प्यार करते हो, या नहीं

रामानुज—करता हूँ।

उर्मिला—तो जेल से छूटो।

रामानुज—तेरा आग्रह सुनकर तो मुझे दुःख ही हुआ, अब मैं तुझे प्यार करने का प्रायश्चित जेल में रह कर ही करूंगा। तुझे प्यार करने का मुझे अफ़सोस होगा। तुझ से दूर रहने का मुझे कष्ट होगा। मैं दोनों सहूंगा। तुम मुझ से मिलने को व्यर्थ आईं। मैं तुम्हें माया के रूप में नहीं देखना चाहता था। मैं तुम्हें शक्ति के रूप में देखता और प्यार करता था।

उर्मिला, मैं फिर पूछता हूं, तू मेरे लिए कमजोरी साबित होगी या शक्ति?

उर्मिला (प्रसन्न होकर)—शक्ति।

रामानुज—सबूत?

[उर्मिला अपनी जेब से कटार निकाल कर दिखाती है, रामानुज आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लेता है]

रामानुज—यह क्या?

उर्मिला [हंसते हुए]—यह तुम्हारी कमजोरी का इनाम देने के लिये लाई थी।

रामानुज—तुमने कैसे जाना कि मैं कमज़ोर था।

उर्मिला—मामा और श्रीधर भैया की बातों की भनक मेरे कान में पड़ी कि तुम माफी मांगने को कुछ कुछ राज़ी हो।

रामानुज [अपनी दृढ़ता का विश्वास दिलाने वाले स्वर में]—सच ?

उर्मिला—मैं व्याकुल होगई कि क्या जिसकी मैंने हृदय से पूजा की, वह देव नहीं, पशु निकला ? तब मैंने सोचा कि जाकर परीक्षा लूंगी और यदि वह कच्चा निकला तो समझाऊंगी। फिर भी न संभला तो उसके खून से अपनी निराशा शान्त करूंगी, और प्रायश्चित्त में स्वयं मर जाऊंगी।

रामानुज [प्रसन्नता से आगे बढ़कर]—तब तो तू माया नहीं, शक्ति है, बाधा नहीं, विजय है।

[उर्मिला को चूमता है]

उर्मिला—आज मेरे हृदय से सच्ची बधाई उठती है।

रामानुज [अलग होकर]—पर, उर्मिला, अब विवाह कब होगा ?

उर्मिला—वह तो होगया। लगन लग चुकी थी, मुहर भी [अपने ओठों पर हाथ रख कर और चूमकर] लग गई।

रामानुज—जेल से लौटने के बाद ?

[श्रीधर आता है]

श्रीधर—हां तो, मुझे ज़रा देरी लग गई।

[चकित होकर] बड़े खुश मालूम होते हो। रामानुज राज़ी होगया, क्यों उर्मिला ?

उर्मिला [हंसती हुई]—हाँ, भैया।

श्रीधर—शाबास ! यही सोच कर तो मैं तुझे यहाँ लाया था।

उर्मिला—भैया, तुमने बड़ी कृपा की।

श्रीधर—हां, तो क्या तय हुआ ?

उर्मिला (दृढ़ता से)—यही कि ये माफ़ी हरगिज़ नहीं मांगेंगे।

[श्रीधर अत्यन्त उदास होकर रामानुज की ओर देखता है।]

रामानुज [उर्मिला का हाथ पकड़ कर]—और यह, कि उर्मिला और रामानुज का विवाह क़ैद से छूटने पर होगा।

[श्रीधर निराशा और दुःख से दोनों की ओर देखता है। उर्मिला और रामानुज प्रसन्नता से 'वन्देमातरम्' का गायन गाते हैं। इतने में पुलिस के सिपाही मोहन तथा उस के अन्य साथियों को गिरफ़्तार करके लाते हैं। वे भी गाने में शामिल हो जाते हैं]

वन्दे मातरम्।

सुजलाम्, सुफलाम्, मलयज शीतलाम्
शस्य श्यामलाम् मातरम्। वन्दे...... ॥
शुभ्र ज्योत्स्ना पुलकित यामिनीम्,
फुल्ल कुसुमित द्रुम दल शोभिनीम्,
सुहासिनीम्, सुमधुर भाषिणीम्,
सुखदाम्, वरदाम् मातरम्। वन्दे...... ॥
त्रिंश कोटि कंठ कल कल निनाद कराले,
द्वित्रिंश कोटि भुजै धृत खर कर वाले,
के बोले मा तुमि अवले—
बहुबल धारिणीम् नमामि तारिणीम्
रिपु दल वारिणीम् मातरम्। वन्दे...... ॥

[पटाक्षेप]

नाटक समाप्त।

'प्रताप पत्र पुष्प' की दूसरी पुस्तक

देशभक्त मेकिस्वनी

विश्वम्भरनाथ जिज्जा

'प्रताप पत्र-पुष्प' की दूसरी पुस्तक

देशभक्त मेक्सिनी

अनुवादक

विश्वम्भर नाथ जिज्जा

मुद्रक तथा प्रकाशक

सुरेन्द्र शर्म्मा

प्रताप प्रेस, कानपुर

प्रथम संस्करण २००० } सन १९२४ ई० { मूल्य चार आना

दो शब्द

आयर्लेण्ड लगभग ७०० वर्ष से गुलामी की जन्जीर से जकड़ा हुआ है ।। समय समय पर अनेक ऊँची आत्माओं ने जन्म लेकर अपने महान आत्मत्याग से मुर्दा आयरिश क़ौम में जीवन की लहर पैदा की, तथा गुलामी के दूषित वायुमण्डल को नष्ट कर उन्होंने एक ऐसी वायुमण्डल तैयार किया, जिसमे स्वतन्त्रता की सुरभित समीर के झोंके, गुलाम आयरिश जाति के मस्तिष्क से टकराने लगे । आयर्लेण्ड की भूमि से विदेशी शासन का अन्त कर प्रजातन्त्र का झण्डा खड़ा करने वाले वीरों में स्वर्गीय देशभक्त मेक्स्विनी का नाम अमर रहेगा । वह देश के लिए जिया और देश ही के लिए मरा । उसकी आत्म-गाथा किसी भी गुलाम देश के युवकों को पथदर्शक का काम दे सकती है । यह पुस्तक मेक्स्विनी के एक मित्र द्वारा लिखी गई अंग्रेजी पुस्तक का भावानुवाद है । इसमें मेक्स्विनी की संक्षिप्त आत्म-गाथा है । उसने देश में क्रियात्मक आन्दोलन की लहर कैसे पैदा की, सशस्त्र स्वयसेवक-दल किस प्रकार सङ्गठित किया, विदेशियों से सङ्घर्षण करने में किस कार्य्यपटुता से काम लिया, और अन्त में आयरिश भूमि में प्रजातन्त्र का रक्त-बीज बोकर ७३ दिन के उपवास में स्वतन्त्रता की वेदी पर किस प्रकार बलि चढ़ गया, आदि बातों का रोमाञ्चकारी वर्णन किया गया है । इस पुस्तक को एक बार पढ़ जाने से उस अमर देवता के चरणों में अगाध श्रद्धा उत्पन्न होगी, और भटके हुए युवकों को देश-भक्ति के पथ में आगे बढ़ने का अपूर्व साहस मिलेगा । हमें आशा है कि हमारे देश के युवकों को इस पुण्य-गाथा से अवश्य लाभ होगा ।

सुरेन्द्र शर्म्मा

देश-भक्त मेक्स्विनी

आन्दोलन का श्रीगणेश

आयर्लैण्ड प्रायः ७०० वर्ष से इंग्लैण्ड के अधीन है। आयर्लैण्ड को पराधीनता से मुक्त करने के लिए कितने ही आयरिश नेता प्रत्येक शताब्दी में पैदा हुए, वे यथाशक्ति आन्दोलन करते रहे, और बारम्बार आयरिश जनता को बेख़बरी की नींद से जगाते रहे। वे पराधीनता की बेड़ियों को एक दम तोड़ कर आयर्लैण्ड को स्वतन्त्र कर देना चाहते थे। कई दूसरे नेता ऐसे भी हुए, जो विधि विहित रूप से, अँगरेज़ों के बनाये क़ानूनों के अन्दर रह कर, आन्दोलन करने की सलाह देते थे। वे ब्रिटिश पार्लिमेंट के सदस्य होते थे, और आयर्लैण्ड की मुक्ति का मार्ग पार्लिमेंट के किसी 'एक्ट' या 'रिफ़ार्म' के द्वारा दिखाते थे। वे नेता अमीर आरामतलब होते थे, पार्लिमेंट में गर्जते हुए भाषण देकर वहाँ के भवन हिला देते थे। अन्य माननीय सदस्य उनके ज्वलन्त और भयानक भाषणों पर उनके 'अपूर्व' साहस की ख़ूब प्रशंसा करते थे। अँग्रेज़ी अख़बारों में उनके ज़ोशीले भाषणों की बड़ी सरस आलोचना होती थी, पर, इन बातों से आयर्लैण्ड की स्वाधीनता का प्रश्न हल नहीं होता था। पराधीन देश स्वतन्त्र कैसे हो, यह

समस्या उन पार्लिमेन्ट के नेताओं की समझ में नहीं आती थी। किन्तु, देश के ऐसे दुर्दिनों में भी कुछ देश-भक्त साहसी नवयुवा आयरिश स्वतंत्रता की चिन्ता किया करते थे। सन् १८९८ में इन देश-भक्तों ने "उल्फ टोन क्लब" संगठित किया, जिसमें युवा और वृद्ध सब तरह के लोग शरीक थे। कुछ समय तक ये लोग नेकनीयती के साथ काम करते रहे, पर, दुर्भाग्य वश इन कार्यकर्ताओं में से कुछ के दिमाग़ साम्यवाद (socialism) की ओर ऐसे झुके कि वे, देश की स्वाधीनता का वास्तविक और प्रारम्भिक कार्य छोड़कर साम्यवाद का प्रचार करने लगे। उनका असली काम देश को पराधीनता से मुक्त करने का था, पर, वे उसे भूलकर साम्यवाद की ओर बहक गये, जिसका परिणाम यह हुआ कि "क्लब" में फूट पैदा होगई और अन्त में 'क्लब' टूट गया।

स्वतंत्रता में पूर्ण विश्वास रखने वाले देशभक्त इस धक्के से निराश न हुए। उन्होंने सन् १८९९ में "नवयुवा आयर्लैण्ड समिति" का संगठन किया और वे राष्ट्रीयता के अनुसार कार्य करने लगे। "नवयुवा आयर्लैण्ड समिति" दो वर्ष तक चली, पर, फिर 'युवा' और अन्य सदस्यों में मतभेद होगया। अन्य सदस्य पुराने 'फ़ेनियन' दल के थे, जो देश को स्वतंत्र करना चाहते थे, पर, उनसे उचित उपाय न बन पड़ते थे। वे संख्या में थोड़े थे, और आयर्लैण्ड में फैले हुए थे। उन्होंने स्वतंत्र आयर्लैण्ड देखने की आशा त्याग दी थी। वे प्रजातंत्र भोगी आयर्लैण्ड देखना चाहते थे, पर, इस जन्म में नहीं; वे समझते थे कि भविष्य में कोई आयरिश सन्तान देश को स्वतंत्र बनावेगी। उनमें निराशा छागई थी। उनकी राजनैतिक भावना अब केवल इसी ओर थी कि जनता में किसी प्रकार स्वतंत्रता का प्रेम बनाये रखा जाय। देश के

कुछ और नवयुवा कार्य करना चाहते थे। वे समस्त रचनात्मक कार्यों में विश्वास करते थे, राष्ट्रीय भाषा के प्रचार के लिए सरगर्मी से कोशिश करते थे, आयरिश व्यापार को बढ़ाने का उद्योग करते थे और सरकारी सेना में रंगरूटों की भर्ती का विरोध करते थे। परन्तु, वे मुख्यतः यह चाहते थे कि, जो 'फेनियनिज़म' के सिद्धान्त मानतेहैं, वे खुल कर बाहर आवें, जनता में नया जीवन पैदा करें, और पार्लिमेन्ट के दल के विरुद्ध सार्वजनिक बोर्डों में लड़कर अपनी धाक जमावें। ऐसी दशा मे स्वतंत्रता प्रेमियों के दलों में मतभेद होना बहुत सम्भव था। क्योंकि पुराने प्रजातंत्रवादियों का यह ख़्याल था कि, हम गुप्त रूप से कार्य करें, गुप्त रूप से अपनी बैठकें करें, और गुप्त रूप से अपनी सेनाएं तैयार करें। पर, हमारे चरित्र नायक मेक्स्विनी को यह पसन्द न था। वह सब कार्य प्रकट रूप से करना चाहता था। इसलिए सन् १९०१ में वह और उसके अन्य साथी अलग होगये, और कार्क नगर में उन्होंने अपना एक 'साहित्य-समिति' का संगठन किया।

यहां पर हम अपने चरित्र नायक मेक्स्विनी की बाल्यावस्था का दिग्दर्शन कराना आवश्यक समझते हैं। आयर्लैण्ड के इस प्रसिद्ध देश-भक्त का जन्म २८ मार्च सन् १८७९ ई० को कार्क नगर में हुआ था। उनकी बाल्यावस्था ही में पिता का देहावसान होगया, इस कारण उनके भरण-पोषण का भार माता पर आपड़ा। उनके पिता कट्टर देश-भक्त थे, वे राष्ट्रीय शिक्षा के बड़े पक्षपाती थे। मेक्स्विनी राष्ट्रीय वायुमण्डल में पले थे, आरम्भ ही से उन्होने राष्ट्रीय शिक्षा प्राप्त की थी। उस ज़माने में आयर्लैण्ड में हज़ारों राष्ट्रीय स्कूल थे। आयरिश जनता की अभिरुचि राष्ट्रीय

शिक्षा की ओर दिन पर दिन बढ़ रही थी। बालक मेक्स्विनी के हृदय में देश को स्वतंत्र करने की इच्छा अभी से बलवती होती जारही थी। उन्होंने १५ वर्ष की उम्र में स्कूल छोड़ दिया और डायर एण्ड कम्पनी में नौकरी करली। निरन्तर परिश्रम और अध्यवसाय से काम करने पर युवा मेक्स्विनी उसी कम्पनी में कुछ दिनों बाद एकाउन्टेन्ट होगये और सन् १९११ तक यही काम करते रहे, फिर व्यापार के अध्यापक नियुक्त हुए। मेक्स्विनी के हृदय में बी० ए० पास करने की लगन लग रही थी। वे दिन भर आफिस में काम करते, तथा अन्य कामों से निश्चिन्त हो रात के ८ बजे सोजाते और २ बजे उठ कर पढ़ते। उन्होंने घोर परिश्रम करके सन् १९०७ ई० में बी० ए० पास किया।

मेक्स्विनी का परम प्रिय मित्र लिआमडी-रोयस्टी उनके विषय में लिखता है:— साहित्य-समिति में मेक्स्विनी ने अपनी लेखन और भाषण शक्ति बढ़ाई। वह आयरिश जातीयता का महान प्रचारक बन गया। आयरिश इतिहास में से दो व्यक्ति, टोन और माइकेल उसके आदर्श थे। मेक्स्विनी की सबसे बड़ी अभिलाषा यही थी कि वह अपने देश का सिपाही बन कर युद्ध करे, स्वतन्त्रता के लिए रणक्षेत्र में सैन्य-सञ्चालन करे, और यदि आवश्यकता हो तो युद्ध में काम आवे। उसका मस्तिष्क विशेष रूप से सैनिक मस्तिष्क था, वह सैनिक बातें तुरन्त सोच समझ लेता था, विशेष प्रबन्ध सम्बन्धी बातें तथा आज्ञाओं का बहुत ध्यान रखता था। वह संगठन-कर्ता था, और सदैव नियम पालन करने और कराने के लिए दृढ़ रहता था। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी उसके कामों में ढील नहीं पाई जाती थी।

कार्क में "साहित्य-समिति" वही कार्य करती थी, जो अन्य राष्ट्रीय समितियाँ समस्त आयलैंण्ड में करती थीं, और जिनसे अन्त में "शिनफेन" दल तैयार हुआ। इन समितियों में नवयुवकों ने सोचना, तर्क करना, बोलना और लिखना सीखा; उन्हें आयरिश इतिहास की राजनैतिक तथा सामाजिक बातों का ज्ञान पैदा हुआ, देश की आर्थिक समस्याएं उनकी समझ में आईं। उस समय कार्क, डबलिन, लन्दन, और बेलफास्ट आदि नगरों में वे समितियां यही कार्य्य करती थीं, और उन्हीं के उद्योग से अन्त में आयलैंण्ड प्रजा-तंत्र के पक्ष में हुआ। उनका कार्य्य स्वयं अपने को राष्ट्रीय भावनाओं से भर देने का था। वे नवयुवक सार्वजनिक कार्य्यों की ओर भी ध्यान देते थे। उनका सब से महान और प्यारा कार्य्य यह था कि वे अँग्रेज़ी सेना में रंगरूटों की भर्ती न होने दें। वे भाषणों और विज्ञापनों के द्वारा यह कार्य्य करते थे। आयलैंण्ड की सब सड़कों, गलियों में और मकानों के दर्वाज़ों पर विज्ञापन चिपके रहते थे कि अंग्रेज़ी सेना में भर्ती मत हो। कितने ही रविवार उन युवकों ने गावों और देहातों में बिता दिये, जहां वे देहातियों को सेना में भर्ती न होने का उपदेश देते थे। इन समस्त कार्य्यों में टेरेन्स मेक्स्विनी प्रधान भाग लेता था। वह कार्क समिति का प्राण था। ... निवेदन करते ही झट भाषण देने के लिए तैयार हो जाता था। वह बड़ा ही गम्भीर और समझदार वक्ता था। वह लेख लिख कर नई बातें समझाता था। समस्त समितियों की तरह कार्क समिति का भी एक हस्तलिखित मासिक पत्र था, जिसमें मेक्स्विनी के लेख और कविताएं रहती थीं। पिछले दिनों में वह अपने लेखों में अपना नाम "मेकईरेन" (ईरेन का लड़का) लिखता था। वह इस बीच में बराबर बेशुमार

किताबें पढ़ता था, बेहद सोचता और काम करता था, तथा विश्व-विद्यालय से 'डिग्री' प्राप्त करने के लिए तैयारी भी करता था।

"सिनफ़ीन" दल दिनों दिन उन्नति करने लगा। सन् १८९९ में मिस्टर आर्थरग्रिफ़्थ ने "युनाइटेड आयरिशमैन" नामक पत्र जारी किया, जिसके द्वारा समस्त समितियों को उत्साह मिलता था। सन् १९०५ में समस्त 'क्लब' और समितियां एक महान राष्ट्रीय संघ में मिलाली गईं, और इसका नाम हुआ "सिनफ़िन" दल। इस दल में प्रायः समस्त आयरिश राष्ट्रवादी सम्मिलित हुए। इसकी एक कार्यकारिणी कौंसिल थी, जिसका नाम था "नेशनल कौंसिल।" यह दल स्थापित होने के बाद फिर कोई पीछे न हटा। सबके हृदय एक होगये थे, और सब एक महान भावना से केवल आयर्लैण्ड को स्वाधीन करने के लिए कटिबद्ध थे। सिनफ़ीन आन्दोलन एक निश्चित आन्दोलन हो गया। इसका एक मंच था, और एक नीति थी। यह आन्दोलन सार्वजनिक रूप से जनता में जाग्रति उत्पन्न करने लगा, और दूसरी ओर पार्लमेन्ट की पद्धति का विरोध करने लगा। उसने आयर्लैण्ड में नया राजनैतिक क्षेत्र तैयार किया।

कई वर्षों तक टेरेन्स मेक्स्विनी कार्क की समिति में कार्य करता रहा। उसके विचार अब दृढ़ हो चुके थे, और उसने एक उद्देश स्थिर कर लिया था। वह अपने देश के लिए केवल प्रजातंत्र चाहता था, प्रजातंत्र से कम कुछ नहीं। उसका विश्वास था कि इस प्रजातंत्र की प्राप्ति के लिए हमें इंगलैण्ड से युद्ध करना होगा और उसका यह भी विश्वास था कि इस संसार में सिवा इस उद्देश के और कोई चीज़ लड़ने के लिए है भी नहीं। उसका विश्वास था कि इस युद्ध की समस्त तैयारी हमें खुल कर करनी चाहिये।

"आयरिश रिपबलिकन ब्रदरहुड" नाम की समिति गुप्त रूप से कार्य्य कर रही थी, जो अब तक है, पर मेक्स्विनी ने कभी उस समिति में कार्य नहीं किया, क्योंकि वह समझता था कि गुप्त रूप से खाई हुई सौगंध बहुत फलदायी न होगी। गुप्त कार्य को वह पसन्द न करता था। जब उस से यह कहा जाता था कि, हमें गुप्त रूप से काम करना ही होगा, क्योंकि इङ्गलेंड कभी हमारी फ़ौजों को खुले आम शस्त्र लेकर क़वायद न करने देगा। तब मेक्स्विनी उत्तर देता था कि, यदि हम धैर्य रख कर तैयारी करें तो हमारा अवसर आवेगा। जोन-ओलेरी की तरह उसका विश्वास थाः— "हम नहीं जानते कि वह घड़ी कब आवेगी; दूसरी ओर हम यह भी नहीं जानते कि वह घड़ी कब नहीं आवेगी। हमारा कर्तव्य यही है कि हम उसके लिये तैयारी करें, और सदा तैयार रहें। आयर्लेण्ड के लिए कार्य्य करना है। तुम जानते हो कि वह क्या कार्य्य है? नवयुवको! तैयार होजाओ।"

मेक्स्विनी का विश्वास जातीय भाषा के आन्दोलन में बहुत था। आरम्भ में उसे आयरिश भाषा की इतनी आवश्यकता न मालूम हुई, परन्तु अब, जब उसने स्वयं अपनी परीक्षा की, तो उसे वह अत्यन्त आवश्यक मालूम हुई। और उसने फिर समझा कि वह महान कार्य्य करने के लिए बहुत कम तैयार है। इस लिए, वह समिति से हट गया, उसने उस समय कहा कि, मैं जनता को संचालन करने के अयोग्य हूं, इस लिए मैं अभी जाकर अध्ययन करूंगा, जिससे अवसर आने पर मैं नेता बन कर कार्य्य कर सकूं। इसके बाद कई वर्ष तक वह देश के साहित्य का अध्ययन करता रहा।

मेक्स्विनी साहित्य-क्षेत्र में आकर बहुत विख्यात हुआ। उसकी पहली कविता "सेन्ट पेट्रिक" नाम के पत्र में प्रकाशित

हुई थी। कवि ने अपना नाम न प्रकाशित किया, केवल "नाम ड्रिग्युरी" उपनाम दिया था। परन्तु जनता का ध्यान उस अपूर्व कविता की ओर इतना आकृष्ट हुआ कि, "सेन्ट पेट्रिक" के सम्पादक को वह कविता फिर प्रकाशित करनी पड़ी। अब की सम्पादक ने कवि मेक्स्विनी का नाम भी प्रकाशित किया, और सुन्दर शब्दों में उसकी प्रशंसा छापी। कविता का नाम था, "प्रकृति का गान," जिसका भाव यह थाः—"प्रकृति की समस्त सुन्दर आकृति स्वतंत्र है। प्रबल वायु, जल का वेग, और पक्षी सब स्वतंत्र हैं—परन्तु, आयर्लैण्ड! आयर्लैण्ड! स्वतंत्र नहीं है!"

टेरेन्स मेक्स्विनी कार्क की "साहित्यिक समिति" का सदस्य था। उसकी बुद्धि बड़ी प्रखर थी और वह उसका उपयोग करना जानता था। वह साहित्यिक पत्र छपवाने में अपना पैसा खर्च करता था। वह उस पत्र में लेख, कविता, और महान लोगों के चरित्र लिखता था। कोई न कोई बात ऐसी ज़रूर होती थी, जिसके कारण उसे खरी टिप्पणी लिखनी पड़ती थी। आयर्लैण्ड के प्रधान शासक लार्ड, लेफटिनेण्ट को यदि अभिनन्दन पत्र दिया गया, यदि सम्राट का आगमन हुआ, या कोई सार्वजनिक दल झुक कर विनम्र बातें करता अथवा, कोई वक्ता आयरिश भावना के विरुद्ध भाषण देता, तो मेक्स्विनी इन सब बातों की खरी आलोचना करता था। उसकी कविताएँ सदा आयर्लैण्ड को एक दिव्य सन्देश सुनाती थीं। वे कविताएँ प्रायः युद्ध का संगीत होती थीं। सन् १९०७ में उसने एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसका नाम था, "स्वतन्त्रता का संगीत।" विषय प्रायः वही था जो उसने अपनी पहली कविता में गाया था। जैसे,—"गर्जती हुई तरंगें क्या गाती हैं? वे कहती हैं कि हम स्वतन्त्र

हैं, ईश्वर ने हमें बनाया, और उसने हमें स्वतन्त्रता दी।" इस पुस्तक में वायु, समुद्र, स्रोत और पहाड़ियों को सम्बोधन किया है, और उनके प्रति संगीत हैं। जिन विचारों और भावनाओं से देशभक्ति का रस, रगों में प्रवाहित होने लगता है, उन्हीं को मेक्स्विनी ने अपनी अनुपम और सरस भाषा में वर्णन किया है। उसके अन्त में उत्तरी आयर्लैण्ड से प्रबल प्रार्थना थी कि, स्वतन्त्रता के नाम पर उत्तरी भाग को शेष आयर्लैण्ड से मिल जाना चाहिये। इस पुस्तक पर भी रचयिता ने अपना नाम नहीं दिया था। केवल "वयुरिडोयर" (अर्थात बीज बोने वाला) दिया था, पर कम से कम कार्क नगर में बहुत लोग यह जानते थे कि पुस्तक मेक्स्विनी की लिखी हुई है।

देश-भक्ति पूर्ण नाटक

कुछ दिनों के बाद कार्क में एक नाट्य-समिति की स्थापना हुई। इस समिति का उद्देश नाटक खेलने का उतना नहीं था, जितना नाटक लिखने और प्रकाशित करने का था। समिति में वह नाटक नहीं खेला जाता था जो समिति का लिखा हुआ नहीं होता था। समिति के नाटक साहित्यिक ढँग के होते थे। इसमें टेरेन्स मेक्स्विनी हृदय से, लग कर काम करता था। उसे यह पक्का विश्वास था कि, साहित्य के द्वारा स्वाधीनता का प्रचार अच्छी तरह किया जा सकता है, और नाटकों द्वारा जनता को भली प्रकार साहित्य समझाते हुए स्वाधीनता के लिए उत्तेजना दी जा सकती है। लोगों को उन्हीं का भूत हाल समझाओ, उन्हीं के गुज़रे हुए बहादुरों के कारनामें सुनाओ और उनको वर्तमान पतित दशा उन्हें दिखाओ; उन्हीं की जाति के वीरों की कहानी कहो, नाटकों के द्वारा आयर्लैण्ड की महान गाथाएँ दिखाओ, तब लोगों को

स्वाभिमान होगा और वे स्वतन्त्रता प्राप्ति करने के उद्योग से कभी पीछे न हटेंगे। मेक्स्विनी अधूरा काम नहीं पसन्द करता था, वह आयलैंण्ड के वास्ते अच्छी तरह काम करने के लिए उपदेश देता था। वह केवल उपदेश नहीं देता था, बल्कि, स्वयं बड़ी दृढ़ता से कार्य करता था। उसने अपने राष्ट्रीय कार्यों को पूर्णतया करते हुए उत्तमोत्तम नाटकों का अध्ययन किया। इसके बाद उसने कई नाटकों के कथानक लिखे। वह गद्य में नहीं, बल्कि पद्य में नाटक लिखना पसन्द करता था। वह अतुकान्त कविता उतनी ही सरलता से लिखता था, जैसे गद्य लिखता था। उसका प्रथम नाटक "कोल के युद्ध" नाम का तैयार हुआ। इस नाटक का मसाला उसे पुराने आयरिश साहित्यसे मिला।उसका आशय यह है:—"कभी आत्मसमर्पण मत करो। बराबर लड़ते रहो और उस समय तक लड़ते रहो जब अन्तिम आशा भी न रहे।" यह नाटक सन् १९१० के नवम्बर मास में तैयार हुआ था। समिति ने यह प्रथम नाटक खेला, जिसकी सारे देश में मुक्तकण्ठ से प्रशंसा हुई। नाटक खेले जाने के बाद उसके रचयिता को दर्शकों ने देखना चाहा, पर नाटककार मेक्स्विनी प्रशंसा न चाहता था, और वह सामने न आया। २७ दिसम्बर १९१० ई० को उसका दूसरा नाटक खेला गया। इस नाटक से स्वयं समिति के सदस्य और अन्य लेखक चकित होगये थे, क्योंकि इसमें टेरेन्स मेक्स्विनी ने कुछ विशेष चमत्कार दिखाया था। एक समाचार पत्र ने नाटक का सार इस प्रकार प्रकाशित किया था:—

"नाटक में ऐसी घटनाएँ दिखाई गई हैं जो इस देश में और अन्य देशों में भी बराबर होती हैं। एक दीन दुखिया का घर दिखाया जाता है, जिसका रोटी कमाने वाला घर के बाहर गया है, और घर में एक छोटी बीमार लड़की बिस्तरे

पर पड़ी है। माता लड़की की सेवा-सुश्रूषा करती है। पादरी आता है और सहानुभूति दिखाते हुए कुछ खर्च के लिए दे जाता है। माता आवश्यक पदार्थ खरीदने के लिए बाहर चली जाती है। डाक्टर, जो वास्तव में एक सांसारिक मनुष्य है, आता है। उसे बिल्कुल सहानुभूति नहीं होती। वह लड़की को देख कर बचने की आशा बिल्कुल नहीं बतलाता, और अन्य रोगियों को देखने चला जाता है। इसके बाद पिता घर में प्रवेश करता है। वह किसी उद्योग-धन्धे के न मिलने से निराशा में डूबा हुआ है। ऐसे घरू दुःख और सङ्कट की घड़ी में लड़की मर जाती है, और पर्दा गिरता है। (कार्क इक्ज़ेमनर)

यह रोचक नाटक इतना पसन्द किया गया कि समिति को इसे दो बार खेलना पड़ा। इससे भी अधिक एक और रोचक नाटक मेक्स्विनी ने लिखा। इसका नाम था—"तौर तरीके मनुष्य को छिपाते हैं।" (Manners masketh man) इस नाटक का भाव यह था कि एक मनुष्य पर सबसे अधिक अत्याचार इस लिए होता था कि वह बहुत नर्म और अदब क़ायदे वाला था। यह एक हास्य-रस का नाटक था, इसमें केवल एक पात्र था और चार पात्रियां थी। नाटक को हास्य-रस का समझ कर हमें मेक्स्विनी के हृदय की अनन्त गम्भीरता न भूलनी चाहिये, जो इस नाटक के अन्दर छिपी थी।

मेक्स्विनी ने अपना ध्यान जब पुराने आयरिश साहित्य की ओर दिया, तो उसका ध्यान वर्तमान नाट्य-प्रणाली से पुरानी प्रणाली की ओर गया, और वही पुरानी प्रणाली उसे पसन्द आई। उसने नवीनता त्याग कर पुरानी आयरिश जातीयता के आदर्श अपने सामने रखे। उसने पुराने आयरिश इतिहास से कुचलेन और एमर की कहानी खोज कर निकाली। एमर एक युवती थी, जिससे कुचलेन ने तलवार के

ज़ोर से शादी की। एमर एक वीराङ्गना थी। दोनों में बड़ा प्रेम था। कुचलेन से विवाह करने के लिए एमर को अपने पिता से अलग होना पड़ा। जिस समय कुचलेन का कर्तव्य रण-क्षेत्र में जाकर युद्ध करने का था, उस समय एमर ने उसे रोका नहीं, किन्तु, सच्ची वीराङ्गना की तरह पति को युद्ध में जाने के लिए उत्साहित किया। एमर का चरित्र बहुत नम्र और सुशील गृहणी स्त्री का दिखाया था। यह नाटक पद्य में लिखा गया था, जिसकी भाषा अत्यन्त सुन्दर और मनोहारिणी थी। जिन लोगों ने यह नाटक प्रथम दिन खेले जाते देखा, उन्हें वह सारा याद रहेगा, साथ ही उन्हें वह रात भी न भूलेगी। एक तो ठंड, दूसरे मूसलाधार वृष्टि होरही थी। ऐसी प्रलय--रजनी में कोई विरला ही मनुष्य नाटक देखने निकलेगा। परन्तु नाटक खेला गया, दर्शकों की बेंचें खाली पड़ी थीं, केवल दो-चार दर्शक आये थे। इससे पात्र और पात्रियां हतोत्साही न हुईं, बल्कि, उन्होंने इसे पूरा 'ड्रेस रिहर्सल' समझा, और अच्छी तरह नाटक खेला। थोड़े से इने गिने दर्शक जो गये थे, उन्होंने इस नाटक का पूरा आनन्द उठाया। बाद में, इन दर्शकों के द्वारा जब नाटक की सफलता बयान की गई, तो जनता में बड़ी उत्सुकता फैली। दूसरी बार जब नाटक खेला गया तो नाटक-भवन दर्शकों से खचाखच भर गया था। बहुत से लोग स्थान न मिलने से लौट गये। नाटक की बड़ी प्रशंसा हुई। जब जब यह नाटक खेला गया, नाट्य-भवन में वैसी ही भीड़ होती थी। मेक्स्विनी के भाई ने नायिका का पार्ट खेला था।

मेक्स्विनी के सब नाटक कार्क की नाट्य-समिति ने खेले थे। समिति में केवल पन्द्रह सदस्य थे। मब के सब अच्छे एक्टर (खिलाड़ी) और उत्साही कार्यकर्ता थे। ये सब

अवैतनिक कार्य करते थे। अभिनेता लेखक थे, और लेखक अभिनेता थे। समिति का यह नियम था कि प्रत्येक नाटककार दूसरे के नाटक में पार्ट खेले, अपने नाटक में नहीं। अभिनेता और लेखक मिलकर रंगमंच बनाते और सजाते थे। टेरेन्स मेक्स्विनी ने कभी कोई पार्ट नहीं खेला, क्योंकि वह अन्य कार्यों में बहुत फँसा रहता था और उसे अवकाश न मिलता था। दूसरे यह कि, वह पार्ट खेलना पसन्द न करता था, क्योंकि मंच पर खड़े होकर हावभाव बताना उसे नहीं आता था। वह एक वीर योद्धा था, और नकली हाव-भाव पसन्द न करता था। पर, वह नाटक में 'रिहर्सल' (Rehearsal) में उपस्थित होकर पात्र-पात्रियों को प्रभावोत्पादक भाव बताना जानता था। वह अपने अल्प साथियों से सन्तुष्ट था, और वे उसकी पूजा करते थे। वह एक बहुत ही कार्यव्यस्त मनुष्य था, जिसे दम लेने की फुरसत न मिलती थी। वह प्रायः रात्रि के दस या साढ़े दस बजे समिति में आकर वहां का कार्य देख जाता था। वह समिति में आकर चुपचाप एक तरफ बैठ जाता था, और अत्यन्त आवश्यकता पड़ने ही पर बोलता था। पहली रात तमाशा होजाने के बाद वह स्वयं पात्र और पात्रियों को उनके कार्य के लिए बधाई देता था। वे उसके शब्दों का बहुत सम्मान करते थे क्योंकि वे जानते थे कि वे शब्द कितने सच्चे हृदय से निकले हुए हैं। सन् १९१४ में, जब कि जर्मन महायुद्ध की कोई सम्भावना न थी, उसने अपना दूसरा नाटक प्रकाशित किया, इसका नाम था—"क्रान्तिकारी"। जब यह नाटक सन् १९१४ में प्रकाशित हुआ, तब आयर्लेण्ड के लिए ब्रिटिश प्रधान मंत्री मि० एस्क्विथ का होमरुल बिल तैयार था, और पार्लमेंट में पेश था। हर एक आदमी

जानता था कि बिल ब्रिटिश पार्लमेन्ट स्वीकार करेगी और इङ्गलैण्ड-नरेश उस पर हस्ताक्षर भी कर देंगे। इसमें किसी को सन्देह न था। वास्तव में बिल पास हुआ, इङ्गलैण्ड-नरेश ने हस्ताक्षर भी किया, पर कई कारणों से वह उपयोग में न आसका। उक्त नाटक में मेक्स्विनी ने दिखाया कि, आयर्लैण्ड में होमरूल का क़ानून जारी कर देने से समस्त चिन्ताओं और झगड़ों का अन्त हो जायगा, तब भी पूर्ण स्वतंत्रता का स्वप्न देखने वाले आयरिश देशभक्त रहेंगे, तब भी क्रान्तिकारी रहेंगे। मेक्स्विनी ने दिखाया कि होमरूल बिल पास होने पर ब्रिटिश राजसत्तावादियों ने आयर्लैण्ड में प्रसन्नता की धूम मचा दी, हर तरफ झण्डे हिलने लगे, सैनिक-बेंड बाजे बजने लगे। परन्तु, नाटक का वीर नायक 'क्रान्तिकारी' ह्यूओनील (Hugh O' neill) इस प्रसन्नता पर मातम कर रहा है। उसके कुछ साथी जिनका वह विश्वास करता था उसे छोड़कर चले गये। उन्होंने विवाह कर लिए और शांति पूर्वक गृहस्थों की तरह रहने लगे। थोड़े से साथी रह गये, और वे भी ऐसे असन्तुष्ट थे, जैसे बहुसंख्यक शत्रु-सैन्य की भारी विजय से, हारे हुए पक्ष के सैनिक होजाते हैं। ओनील अब भी हताश नहीं हुआ, बल्कि, वह अधिक सरगर्मी से लोगों का संगठन करने लगा। एक जगह से दूसरी जगह दौड़-दौड़ कर जाना, हर एक को उत्साह देना और उन्हें दृढ़ बनाना उसका कार्य था। देश को स्वतंत्र करने ही के कार्य में वह अपने को लगा देता है और अंत में देश-सेवा ही करते करते मर जाता है। देश-भक्त मेक्स्विनी ने बड़ी बुद्धिमानी से 'क्रान्तिकारी' नाटक लिखकर लोगों को अंग्रेज़ों के दिये हुए होमरूल की झलक पहले ही दिखलादी, जिस से लोग समझलें कि होमरूल कैसा होगा। उसने

'क्रान्तिकारी' का चरित्र इतना महान चित्रित किया, जिससे यह सन्देह होता है कि, कहीं उस वीर क्रान्तिकारी मेक्स्विनी ने अपना ही तो चरित्र नहीं चित्रित किया ? पर नहीं, नाटक लिखते समय उसे इसका ध्यान भी न होगा कि, एक दिन वह स्वयं शहीद होकर अपने नाटक को सत्य प्रमाणित करेगा। नहीं, वह केवल एक सच्चे क्रान्तिकारी का चरित्र दिखा रहा था। पर, ओनील का स्वार्थ त्याग, उसकी वीरता और सच्चाई स्वयं मेक्स्विनी की वीरता और सच्चाई थी। नाटक में एक वाक्य भी ऐसा नहीं है,जो मेक्स्विनी ने स्वयं अपने मुँहसे समय समय पर न कहा हो। नाटक में क्रान्तिकारी कहता है:—"जब तक देश पूर्ण स्वतंत्र न होगा तबतक शान्ति न मिलेगी। जीवन एक ईश्वरीय साहस है, और जिस मनुष्य का विश्वास सब से अच्छा होगा, वही सब से आगे जायगा।" उसका एक महत्वपूर्ण वाक्य है :—"क्या तुम परिणाम भोगने से डरते हो ? मैं उसके भोगने से नहीं डरता। हम अपनी जनता को उस समय तक नहीं उठा सकते जब तक हम उस से थोड़ा कार्य्य करने के लिए कहेंगे। सम्भव है कि हमें फ़िरश्तों का काम करने के लिए दिया गया हो, और अपनी कमज़ोर मानवीय प्रकृति के कारण हम उस महान कार्य को कभी कभी बुरी तरह करते हों।" नाटक में नायक की मृत्यु पर उसकी स्त्री कहती है :—"हम उसे खुला हुआ छोड़ दें, जिस से प्रत्येक मनुष्य उसका वीर मुख देख सके, जिस से और मनुष्य भी उसी प्रकार मरने की इच्छा करें।"

यह नाटक मेक्स्विनी ने अपनी प्यारी माता को समर्पित किया है। कहना व्यर्थ है, कि, नाटक के प्रकाशित होते ही विरोधियों के हमले उस पर होने लगे। परन्तु, उसके बाद मेक्स्विनी ने जो कुछ लिखा, वह क्रान्तिकारी आन्दोलन के

लिए लिखा। उसके लेख और नाटकों ने जनता में देश-भक्ति की आग फूंक दी।

मेक्स्विनी को सब से अधिक ध्यान अपनी शुद्ध और ठेठ आयरिश भाषा को सुधारने का था। उसने आयरिश साहित्य के ऊंचे ग्रन्थों का केवल अध्ययन ही नहीं किया, किन्तु गंवारू भाषा सीखने के लिए वह गावों में देहातियों के साथ रहा। कार्क की 'गेलिक' साहित्यक लीग का सदस्य रहने पर भी वह ग्रामीण भाषा से प्रेम करने लगा। उसे उस भाषा में पुरानी आयरिश सभ्यता दिखाई पड़ती थी, और उसी में उसे राष्ट्रीय आदर्शों की झलक मिलती थी। वह कार्क के पश्चिम में बेलिनगेरी गांव में लोगों के साथ रहता था, उनकी देशी भाषा बोलता और समझता था, सीधे सादे शब्दों में उन्हें अपने भाव समझाता था। उस ने यद्यपि अंग्रेजी भाषा का अध्ययन किया था और वह अमीरी में पला था, तो भी प्राचीन आयरिश जातीयता के सामने वह अपनी सब बनावटी बातें भूल गया। वह अब भाषण देते समय अंग्रेज वक्ता नहीं, बल्कि एक आयरिश वक्ता मालूम होता था। उसकी सादगी बिल्कुल गांवों के लोगों की सी हो गई थी। आयरिश लोगों का विश्वास प्रबल होता है, और वैसा ही प्रबल विश्वास मेक्स्विनी का था। लोग कोई प्रश्न नहीं करते थे, बल्कि, पूरे विश्वास के साथ मेक्स्विनी की बातें सुनते थे।

इस तरह उसने कई वर्षों में अथक परिश्रम कर लोगों के विचार बनाये। उसे आयरिश भाषा पर भी पूरा अधिकार हो गया। सन् १९११ ई० में वह कार्क काउण्टी में व्यापार विषय पर वक्ता नियुक्त किया गया। वह बराबर यात्रा किया करता था और हर जगह जाकर व्यापार के सम्बन्ध में भाषण देता था। तीन वर्ष तक उसने यह कार्य किया, और इस

बीच में घूमने से उसे आसपास का इतना अच्छा ज्ञान हो गया कि, जब आयरिश स्वयंसेवक-दल के सङ्गठन करने का अवसर आया तब इस कार्य के लिए मेक्स्विनी सब से अधिक योग्य और अनुभवी पाया गया। उस समय आयलैंण्ड में ब्रिटिश पार्लिमेण्ट के पक्षपाती नेताओं का ज़ोर बढ़ रहा था। बड़े बड़े नेता पार्लिमेण्ट के दल में थे, और देश को पार्लिमेण्ट के ढंग की शासन-पद्धति के अनुसार चलाना चाहते थे। पर, वे पुरानी पीढ़ी के आयरिश थे, जिनका समर्थन अधिकांश पुराने लोग ही करते थे। परन्तु, युवा आयरिश उन नेताओं को पसन्द न करते थे। नये उन्नत विचारों के प्रायः समस्त नवयुवक पार्लिमेण्ट के ढङ्ग के शासन के विरुद्ध अपना निजी राष्ट्रीय शासन चाहते थे। उनका अंग्रेज़ों की प्रणाली से सदा विरोध रहता था। उन विरोधियों ने अपनी एक अलग संस्था बनाई। जिसे "सेपरेटिस्ट" कहते थे। इन लोगों का दल बराबर काम करता रहा। उत्साही नवयुवकों की संख्या यथेष्ट थी, जिनका केवल सङ्गठन करना था। "सेपरेटिस्ट" (Separatist) पृथक होने वालों का पहला दल मि० आर्थर ग्रिफिथ के द्वारा तैयार हुआ। पिछले बीस वर्षों में मि० ग्रिफ्थ आयलैंण्ड के एक प्रभावशाली नेता थे। सन् १९१० में उन्होंने "आयरिश स्वतन्त्रता" (Irish freedom) नाम का पत्र निकाला, जिसने स्पष्ट शब्दों में घोषणा कर दी:—

"हम किसी राजनैतिक दल की ओर से नहीं खड़े हुए हैं, बल्कि हम राष्ट्रीय सिद्धान्तों के लिये है। हमारे वे सिद्धान्त हैं, जो उल्फ़-टोन, राबर्ट एमट, जोन मिचल, और जोन-ओलेरी के थे। हम उन्हीं की तरह से आयलैंण्ड को पूर्ण रूप से इङ्गलैण्ड से पृथक कर देना चाहते हैं,......हम उन्हीं की तरह प्रजातन्त्र चाहते हैं जैसे टोमस-डेविन-

रेली ने सन् १८४८ में कहा था कि, स्वतंत्रता हम में केवल एक रूप ले सकती है—और वह है प्रजातंत्र का।" प्रजातंत्र के प्रमी नवयुवकों का दल दिनो दिन बढ़ने लगा। फिर, वे इस लक्ष्य से कभी पीछे नहीं हटे। इन्हीं उत्साही नवयुवकों में मेक्स्विनी भी काम करता था। "आयरिश फ्रीडम" नामक पत्र में उसके आन्दोलनकारी लेख निकलते थे। उसने "स्वतंत्रता के सिद्धान्तों" की उसमें लेख माला निकाली, जो बाद में पुस्तकाकार भी प्रकाशित हुई। मेकिस्वनी के लेख आयरिश जाति में नई जान फूंक रहे थे।

स्वयंसेवक-संगठन

आयलैंण्ड में पार्लमेन्ट के दल का प्रभाव जब से घटा तब से उसके कर्ण प्रिय ओजस्वी वाक्य कम सुनाई देने लगे। पार्लमेन्ट के दल वाले मि० जौन रेडमौंड या मि० डीलोन अपने प्रभावशाली दिनों में प्रायः नित्य ही आयलैंण्ड के लिए "किसी महान शुभ दिन" का आगमन सुनाते थे। वे चले गये, पर वह "महान शुभ दिन" कभी किसी ने आते न देखा। वह दिन आया। कब? जिस दिन ब्रिटिश सत्ता की पक्षपाती अलस्टर की "यूनियनिस्ट कौंसिल" ने "इङ्गलिश टोरी दल" की सम्मति से अलस्टर में स्वयंसेवक-दल तैयार किये। यह कहना व्यर्थ है कि ये स्वयंसेवक प्रजातंत्र की भावना कुचलने के लिए संगठित किये गये थे। उन्हें हथियार दिये गये। पर, इङ्गलैण्ड या आयलैंण्ड ने यह ठीक न समझा कि अलस्टर के स्वयंसेवक क्यों तैयार किये गये हैं। पार्लमेन्ट के नेता मि० रेडमौंड और उनके अनुयायियों ने बेपरवाही के साथ कहा कि अलस्टर के "स्वयंसेवक जिनके पास बन्दूकें हैं, किसी

अर्थ के नहीं हैं। वे केवल हँसे जाने लायक़ हैं।" इङ्गलैण्ड के लिए तो अलस्टर के स्वयंसेवक "ईश्वरीय दूतों" से कम न थे, जो उनके साम्राज्य की रक्षा करने के लिये भेजे गये थे। परन्तु, युवा आयरिशों तथा "आयरिश फ्रीडम" के कार्यकर्ताओं ने उन स्वयंसेवकों को किसी भिन्न दृष्टि से देखा। वे चौंक पड़े, और उन्होंने समझा कि अब उनके लिए भी स्वयंसेवक तैयार करने का समय आगया है। "आयरिश फ्रीडम" ने लिखा:—"अलस्टर में हथियारों का चमकना शेष आयलैंण्ड के लिये इशारा है!" "सेपरेटिस्ट" दल में खलबली मची, और उन्होंने तुरन्त आयरिश स्वयंसेवकों को सङ्गठन करना निश्चय किया। २५ नवम्बर सन् १९१३ को एक सार्वजनिक सभा में "आयरिश स्वयंसेवक" तैयार करने की घोषणा की गई। प्रायः पन्द्रह हज़ार मनुष्य सभा में आये थे। जनता में बड़ा उत्साह था। नवयुवकों को विश्वास था कि एक बार स्वयंसेवक-दल आरम्भ होने पर फिर वह कभी न रुकेगा। विरोधियों ने विघ्न डालने की बहुत चेष्टा की, पर, सफल न हुए। ज़िले ज़िले में स्वयंसेवक-दल सङ्गठित करने के समाचार पहुँचाये गये। तीस हज़ार मनुष्यों ने नाम लिखाये। उनके पास हथियार अधिक न थे, तो भी हथियारों से भी तेज उनके साहसी हृदय थे। उन्हें सैनिक-शिक्षा मिलने लगी, और उन्हें विश्वास होगया कि हथियार भी शीघ्र मिल जायँगे। आयलैंण्ड ने सचमुच अलस्टर की ललकार का उत्तर दिया। बहुत से प्रौढ़ और वृद्ध मनुष्यों ने भी स्वयंसेवकों में नाम लिखाये। वे नवयुवकों के साथ फौजी क़वायद करते थे, और प्रसन्न होते थे। पर, अधिकांश युवक मेक्स्विनी के पानी के थे, देश सेवा के लिए जिनके प्राण खिंचे हुए थे, जो यह समझते थे कि शताब्दि के बाद आयलैंण्ड

के लिए फिर स्वाधीन होने का अवसर आया है। स्वयं-सेवक दल तैयार करने के बाद उसके संगठन-कर्ता प्रति क्षण यह बाट जोहते थे कि सरकार कब इस दलको ग़ैर क़ानूनी घोषित करके दबाती है। पर सरकार ने ऐसा न किया, और तब, सब की धुँधली आशाएँ प्रज्वलित हो उठीं। सरकार ने यह किया कि, आयलैंण्ड में हथियारों का आना रोक दिया। पर, इस आज्ञा से कोई निराश न हुआ। उन्होंने सोचा कि मुख्य बात थी स्वयंसेवक-दल तैयार करने की, सो कर लिया, शेष प्रबन्ध पीछे होते रहेंगे। समस्त कार्य-कर्ता पूरे उत्साह से अपनी दलबन्दी करने लगे। टेरेन्स मेक्स्विनी ने बड़ी प्रसन्नता से कार्क में संगठन कार्य्य आरम्भ किया।

स्वयंसेवक-आन्दोलन

मेक्स्विनी एक अत्यन्त दृढ़ विचारों का शिनफ़ेनर था। स्वयंसेवकों का आन्दोलन आरम्भ करने पर वह उनके साथ क़वायद करता था। साथ ही वह युद्ध-विद्या का अध्ययन करने लगा। वह जिस दिन की आशा करता था, वह दिन आगया। मेक्स्विनी स्वयंसेवक-आन्दोलन को एक बहुत ही गम्भीर बात समझता था और गम्भीर स्वयंसेवक बनने के लिए वह सब को उत्साहित करता था। परन्तु बिना कठिनाई के कोई कार्य्य नहीं होता। कार्क में पार्लमेण्ट के नेता मि० डेवलिन के प्रभाव से, "मोलीज़" दल, इन स्वयंसेवकों का विरोध करने के लिए तैयार था। डबलिन में स्वयंसेवक-दल का श्रीगणेश होते ही कार्क में भी कार्य्य आरम्भ हुआ। कार्क में एक छोटी कमेटी बनाई गई, जिसके सदस्य थे, टेरेन्स मेक्स्विनी, टोम कर्टिन, (कार्क का प्रथम प्रजातंत्रवादी लार्ड

मेयर), और जे० जे० वाल्टा (जो कार्क की ओर से आयरिश शिनफ़ेन पार्लमेण्ट "डेल आयरेन" के सदस्य थे)। कमेटी ने "मोलीज दल" को अलग रखना निश्चय किया, और स्वयं-सेवक-दल आरम्भ करने के लिए नगर निवासियों की एक, सार्वजनिक सभा कीगई। उसमें मुख्य वक्ता प्रोफेसर ईओन मेकनील और मि० राजर केसमेन्ट* थे। सभा वाले दिन मालूम हुआ कि "मोलीज़ दल" के लोग सभा में न आयँगे और उन्होंने उसका वहिष्कार कर दिया है। परन्तु, सभा में प्रथम छः बेंचों पर "मोलीज़" दल वाले बैठे थे। वे सभा भङ्ग करने ही के लिए आये थे। जिस समय प्रोफेसर मेकनील ने अपने भाषण में "अलस्टर वालण्टियरों" की ओर इशारा किया, तब समस्त "मोलीज़" दल वाले सभा-मंच पर टूट पड़े, तथा उपद्रव मचाने लगे, और अन्त में सभा भङ्ग होगई। इतना ही नही, दोनों ओर के मनुष्य घायल भी हुए। सभापति मि० जे० जे० वाल्श के सिर पर कुर्सी मारी गई। यह सब हुआ, पर आन्दोलन जो एक बार आरम्भ होचुका था, वह न रुका। कार्क में ज़ोरों से आन्दोलन हुआ, क़वायद आदि करने के लिए उन्होंने मकान भाड़े पर लिया। वाल्श ने उस समय लिखाः—"स्वयंसेवक-आन्दोलन रक्त से पवित्र होचुका है। आओ और उसमें मिलो !"

मेक्स्विनी का बल, प्रताप और साहस अद्वितीय था। उसे कभी अपने उद्देश में सन्देह न होता था, वह कभी निष्फलता की कल्पना नही करता था। वह औरों में यही भाव भरता था कि हम हर तरह सफल हो रहे हैं, हमारी सब

* मि० राजर केसमेन्ट को महायुद्ध के समय जर्मनी से षड़यन्त्र करने के अपराध में गोली मारदी गई।

आयोजना ठीक है। स्वयंसेवकों ने कार्क में प्रथम दिन जो क़वायद की, वह बहुत आशाप्रद न थी। हर तरह उन्हें तंगी और असुविधा थी। उन्हें एक ड्रिल-हाल का भाड़ा देना पड़ा; कमरे में केवल २४-२५ आदमी खड़े हो सकते थे। सैनिक-शिक्षा देने वाले नेताओं की कमी न थी, क्योंकि सरकारी सेना से निकले हुए सैनिक अफसर यथेष्ट थे। आन्दोलन बराबर बढ़ता ही गया, और इसके बाद क़वायद करने के लिए उन्हें कार्क का गल्ले का बाज़ार मिल गया, जो 'कार्नमार्केट कमेटी' की सिफ़ारिश से मिला था। महीनों वे साहसी स्वयंसेवक उसी मार्केट में क़वायद करते रहे। एक दिन नगर निवासियों को सूचना दी गई कि आज कार्क के स्वयंसेवक फौजी कतारों में घूमने निकलेंगे। उस दिन जनता की एक बड़ी भीड़ उन्हें देखने के लिए गल्ले के बाज़ार के बाहर एकत्र हुई। जिस समय स्वयंसेवक सैनिक वर्दियों में निकले, लोग उन्हें देख कर चकित होगये। वे आयरिश लड़के कैसे मालूम होते थे! समस्त जनता में ख़ामोशी थी। कितने ही दर्शकों के दिल बढ़े, और उन्हें स्वयं स्वयंसेवकों के दल के साथ चलने की इच्छा हुई। अचानक वर्षा होने लगी। वीर स्वयंसेवक बरसते हुए पानी में सफर कर रहे थे। ब्लाटनी पहुँचने पर पुलिस-थाने के बगल में स्वयंसेवक ठहर गये। वहां मैदान में उन्होंने सभा की, जिसमें मेक्स्विनी ने ज़ोरदार व्याख्यान दिया। इसके बाद वे नगर लौटे। नगर में पहुँचते पहुँचते सन्ध्या होगई थी। उनके चलने की गम्भीर आवाज़ सड़कों पर गूंज रही थी। घरों में बैठे हुए लोग स्वयंसेवकों के पैरों का 'रप, रप' सुन रहे थे। जब वे ब्लाटनी स्ट्रीट के बाहर निकले तो वहां उन्हें एक पादरी मिला। पादरी रुका, उसने अपनी टोपी उतारी, और स्वयंसेवकों को आशीर्वाद देते हुए बोला:—"लड़को,

ईश्वर तुम्हारा भला करे।" उस दिन की क़वायद पूरी हुई, और स्वयंसेवक अपने घर लौटे। फिर तो आयरिश स्वयंसेवकों का आन्दोलन बराबर बढ़ने लगा। समस्त आयर्लैण्ड अच्छी तरह यह जान गया कि, देश को स्वाधीन करने वाले योद्धाओं की सेना तैयार हो रही है। जिन लड़कों और नवयुवकों ने कभी राजनैतिक बातों में भाग न लिया था, वे भी स्वयंसेवक-दल में मिलने लगे।

स्वयंसेवक-दल की प्रगति

कोई बाधा स्वयंसेवक-आन्दोलन को न रोक सकती थी। पार्लमेंट के दल ने जब यह देखा कि वह उसे अब रोक नहीं सकता तो उसने स्वयंसेवक दल पर अपना प्रभाव रखना निश्चित किया। मि० जान रेडमांड ने स्वयंसेवक-समिति को सूचना दीः—"मैं अपने २५ आदमी भेजता हूँ, इन्हें अपने स्वयंसेवक दल में मिला लो। यदि न लोगे तो मैं तुम्हारा दल भङ्ग कर दूंगा।" उसी समय मि० रेडमांड ने अपनी एक चिट्ठी समाचार पत्रों में प्रकाशित की और सारे देश में सनसनी पैदा कर दी। स्वयंसेवक-दल को अपने हाथ की कठपुतली बनाने की यह एक युक्ति थी। स्वयंसेवकों ने पहले सोचा कि, मि० रेडमांड चूल्हे में जायँ, उनके २५ आदमी न लिए जायंगे, पर, समिति ने यह उचित न समझा और २५ आदमी समिति में मिला लिये गये। मि० रेडमांड के दल का बहुमत समिति में हो गया; वे हर तरह समिति के हथियार आदि मंगाने के काम में बाधा डालते थे। यह डबलिन की दशा थी। कार्क में भी स्वयंसेवक-समिति में मि० रेडमांड के दूत पहुँच गये। मेक्स्विनी और उसके मित्र टोमस ने जब ऐसी स्थिति देखी

तो वे समिति की प्रत्येक बैठक में उपस्थित होकर काम देखने लगे। पर, रेडमांड वालों से ऐसी कोई विशेष हानि न हुई, उलटे लाभ यह हुआ कि, कितने ही लोगों ने यह समझा कि मि० रेडमांड भी स्वयंसेवक-समिति में शरीक हैं, और इस लिए दल में रंगरूटों की अधिक भरती होने लगी।

इधर सन् १९१४ में महायुद्ध आरम्भ हो गया। जब इंगलैण्ड ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की तब उसके प्रायः दो सप्ताह पूर्व डबलिन के स्वयंसेवकों ने अपने लिए जहाज से बन्दूकें मंगवाई थीं। उन्होंने पुलिस और बन्दरगाह के रक्षकों को सहसा रोक लिया, और सफलता पूर्वक बन्दूकें लेकर निकल आये। इसके पहले अलस्टर के स्वयंसेवकों ने बन्दूकें मंगवाई थीं, पर, सरकार ने उन्हें न रोका अब डबलिन के स्वयंसेवक रोके गये। डबलिन की सड़क पर पुलिस और सेना ने उन्हें रोका। स्वयंसेवकों से उनकी मुठ भेड़ हुई, पर, स्वयसेवक उन्हें धोखा दे बन्दूकें लेकर निकल गये। इसके बाद सरकारी सेना ने व्यर्थ निःशस्त्र जनता की भीड़ पर गोलियां चलाई, जिससे कुछ लोग मरे और घायल हुए। एक क्षण में लोगों को यह मालूम हो गया कि, अलस्टर के स्वयंसेवकों के लिए एक क़ानून है और आयरिश स्वयंसेवकों के लिए दूसरा क़ानून है। एक क्षण में यह मालूम होगया कि इंगलैण्ड अब तक कट्टर इंग्लैण्ड है। जनता में सर्वत्र और भी उत्साह फैला, और लोग धड़ाधड़ स्वयंसेवक-सेना में नाम लिखाने लगे। इतने लोग भर्ती होने लगे जितनी कि पहले कभी आशा न थी। धनी लोग हथियार, मोटर गाड़ियां आदि खरीदने के लिए रुपये देने लगे। एक बार समस्त आयर्लैण्ड की आत्मा जाग उठी। देश की नस नस में बिजली दौड़ उठी। चारों ओर से रंगरूट टिड्डी दल की तरह आकर स्वयं-

सेवक दल में मिलने लगे। मेक्स्विनी और टोमस उन बहु संख्यक सेवकों का सङ्गठन करने लगे। उन्होंने कहा, 'खेल इस समय हमारे हाथ में है, यदि हम चैतन्य रहें, घबड़ाकर या जल्दबाज़ी में कोई अनुचित कार्य्य न करें तो हम इंग्लैण्ड के मुकाबले में एक इतनी बड़ी सेना खड़ी कर देंगे, जितनी स्वयं इंग्लैण्ड की है।' समस्त राष्ट्रीय आयरिशों ने अपने मतभेद भुला दिये, और वे स्वयंसेवक-दल में मिलने लगे। उस समय आयर्लैण्ड में इस आन्दोलन के सिवा और कोई आन्दोलन न था। इंग्लैण्ड और जर्मनी में युद्ध आरम्भ होगया था और इधर आयर्लैण्ड में स्वयंसेवक-आन्दोलन तेजी से बढ़ने लगा। दक्षिण अफ्रीका में बोयरों से जब अंग्रेज़ों का युद्ध हुआ तो उस समय आयर्लेण्ड निःशस्त्र था, पर, अब तो तीन लाख आयरिश स्वयंसेवक हथियारों और कील काँटों से तैयार थे। वे तीन लाख नवयुवा आयर्लैण्ड के फूल थे, अपनी जाति के अभिमान थे। लोगों ने सोचा कि इंगलैण्ड की कठिनाई आयर्लैण्ड के लिये अवसर है। यह वह स्वर्ण-अवसर है जब कि आयर्लेण्ड अपने पराधीनता के बन्धन तोड़ने के लिए प्रयत्न कर सकता है। इसी समय मि० जान रेडमांड ने ब्रिटिश पार्लमेण्ट में अपील करते हुए कहाः—"मैं इंगलैण्ड के लिए आयर्लैण्ड को रोके रहूँगा।" इस अपील पर आयरिशों के दिल दहल गये, यहाँ तक कि आरम्भ में स्वयंसेवक-समिति ने भी मि० रेडमांड की अपील का प्रतिवाद न किया। सच्चे स्वयंसेवकों को मालूम हुआ कि उनके साथ चाल खेली जा रही है। आयर्लैण्ड के प्रायः समस्त अखबार अंग्रेज़ों का समर्थन करने लगे। "सेपरेटिस्ट" दल वालों को मालूम हुआ कि उन्हें अपने ही दलके अन्दर पहले युद्ध करना है। मेक्स्विनी और उसके साथियों ने ठीक निर्णय

कर लेने के लिए एक सभा की। गन्ने की मार्केट में कार्क के लगभग दो हज़ार स्वयंसेवक जमा हुए। मि० रेडमांड के चेले कप्तान टेलबोट क्रासबी ने बड़ा ओजस्वी भाषण दिया, जिस में स्वयंसेवकों से अपील की कि मि०रेडमांड के नेतृत्व में चलो। किसी कारण, सभा में कुछ शोर मच गया और उसी समय स्वयंसेवक-दल भंग हो गया। रेडमांड के अनुयायी पचास से अधिक न थे, वे सब उठकर खड़े हो गये, और नाराज़ी के साथ सभा से निकल गये।

आयरिश स्वयंसेवक-दल जिस समय भंग हुआ, उस समय स्वयंसेवकों की संख्या २५ हज़ार से अधिक थी। इनमें लगभग ८ हज़ार मि० रेडमांड के पक्षपाती थे। डबलिन में स्वयंसेवकों की कुछ अधिक संख्या बच रही, शेष स्थानों में वे घटने लगे। इन अल्प संख्यक सदस्यों के सामने कठिन स्थिति थी। सारे देश में स्वयंसेवकों की निन्दा की गई, और समाचार पत्रों में लिखा गया कि, ये लोग आयर्लैण्ड के शत्रु हैं, जर्मनी ने इन्हें घूँस देकर खरीद लिया है। पार्लमेन्ट के दलने उसका अपवाद करने में कुछ भी कसर न उठा रखी, सब तरफ़ स्वयंसेवक अच्छी तरह बदनाम किये गये। पर, समस्त आयर्लैण्ड को धोखा दिया गया। कार्क के लघु सेवकों में मेक्स्विनी और टोमस कर्टिन थे। उनके मस्तिष्क शीतल थे और हृदय में पूर्ण विश्वास था। वे निरुत्साही नहीं हुए। वे पूर्ववत् अपने लघु संख्यक स्वयंसेवकों से क़वायद कराने लगे। अब की उन से गल्ले की मार्केट भी छीन ली गई, इस लिए उन्होंने क़वायद करने के लिए नई भूमि ली और उसी जगह को अपना नया सदर मुकाम बनाया। उन्हें बहुत से नये रंगरूट मिले। सारे देश में ऐसा ही हुआ। जिन पार्ल-मेन्ट के पक्ष के स्वयंसेवकों को निकल जाना था, वे चले

गये, पर, शेष स्वयंसेवक उसी प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहे।

कार्क में मेक्स्विनी ने "फ़िअन्नाफ़ेल" नामक साप्ताहिक पत्र १९ सितम्बर, १९१४ को निकाला, जिसके केवल ग्यारह अङ्क निकल पाये। ५ दिसम्बर १९१४ ई० को पत्र का अन्तिम अंक निकला था। पत्र का मुख्य सिद्धान्त प्रसिद्ध आयरिश देशभक्त नेता मि० जान मिचलके सिद्धान्तों से लिया गया था। वह इस प्रकार थाः–'आयरिश राष्ट्रीयता का प्रबल प्रमाद ब्रिटिश साम्राज्य को निर्जीव करदेगा।' पत्र का प्रत्येक अंक लोगों में नवजीवन डालने वाला होता था। प्रथम अंक में मेक्स्विनी ने लिखाः—"वर्तमान हलचल के कारण यह पत्र निकाला गया है। देशी, विदेशी समाचार प्रकाशित करने के लिए नहीं, किन्तु राष्ट्रीय सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए। जिससे आयरिश जाति अपनी एक नीति बनाले और तदनुसार सब सहमत होकर पूर्ण स्वाधीनता के लिए कर्म-क्षेत्र में खड़े हो जायँ। आयर्लैण्ड को अपने अन्दर और बाहर के सम्बन्ध बनाने और बिगाड़ने का पूर्ण अधिकार रहे।" दूसरे लेख में मेक्स्विनी ने पार्लिमेंट के नेताओं पर छींटा फेंकते हुए लिखाः—"यह निश्चय है कि यदि मि० डेबलिन या मि० रेडमांड ने आयर्लैण्ड की पूर्ण स्वाधीनता के लिये आवाज़ उठाई होती तो समस्त राजनैतिक दलों के लोग आग और पानी में उनके पीछे चलते। क्या आयर्लैण्ड को कभी ऐसा अवसर दिया गया? क्या अब नई स्थिति उत्पन्न हो गई है? वे आयरिश जो गर्म (Extremist) दल के कहे जाते हैं, और केवल आयर्लैण्ड के शुद्ध प्रेमी हैं, वे अब इन विधि विहित पार्लमेंट के नेताओं के साथ नहीं हैं।

वे देखते हैं कि पुराने पार्लिमेंट के नेता अब बिलकुल थक गये हैं। इसलिए, वे अब घर बैठें और आराम करें। पर, हम नवयुवा आयरिश हैं, हमें लड़ने का शौक़ है। हम चाहते हैं कि हमें एकबार आयर्लैण्ड की स्वाधीनता का युद्ध लड़ने दिया जाय। चाहे जो हो, हम समस्त कठिनाइयों के लिए तैयार हैं। हम चाहते हैं कि नेता इस स्थिति को समझलें, और तदनुसार कार्य करें। इसके बाद देखें, परिणाम क्या होता है।"

दूसरे अंक में मेक्स्विनी ने लिखा:—"हम आयर्लैण्ड में जीवन की आग भड़का देना चाहते हैं। हम समझते हैं कि हमारा आत्मबलिदान बहुत मूल्यवान नहीं है। आत्मबलिदान की मीमांसा को समझो; हमारे शत्रुओं का रक्त आयर्लैण्ड में अवश्य बहे, परन्तु पहले नहीं। उससे केवल यह मालूम होगा कि हम बदला लेरहे हैं। परन्तु, पहले आयरिश खून आयरिश भूमि पर बहने दो, और तब, स्वतंत्रता की एक ऐसी मशाल जल उठेगी, जिसे नर्क की तमाम शक्तियां भी नहीं बुझा सकतीं। हम अभी ऐसी महान विजय की गम्भीरता का अनुभव नहीं करते, हम केवल अभी सीखने चले हैं। हम फिर अपने शूरवीरों की विजय देखेंगे। हमारे स्वयंसेवक अभी उतने दक्ष और सचेत नहीं हैं। अभी उनकी परीक्षा भी नहीं लीगई। उनका खून खौलाने के लिए मिचेल के सिद्धान्तों की आवश्यकता है, जो आयरिशों से यह कहता था कि, शीघ्र चिन्तित और तत्पर हो, मृत्यु या विजय के लिए तैयार होजाओ। यह केवल आत्मत्याग करने ही से होगा। स्वर्ग की एक स्वास हमारी आत्माओं को फूंक कर प्रज्वलित करदे।"

मेक्स्विनी के इस ज़ोर के लेख पत्र में निकलते थे कि सरकार ने तुरन्त उस पत्र को और अन्य राष्ट्रीय पत्रों को

बन्द कर दिया। पत्र मेक्स्विनी ने अपने ही खर्च से निकाला था। पत्र बन्द होने के बाद उसे उसकी छपाई आदि का सब खर्च अपने पास से देना पड़ा। मेक्स्विनी के पास अधिक रुपये न थे। छापेखाने के बिल चुकाने के लिए उसे अपनी प्यारी पुस्तकें बेचनी पड़ीं। उसे उस समय बड़ा दुःख हुआ पर, देश सेवा के सामने उसने कुछ परवाह न की, पत्र अपना काम कर चुका था। उसने कार्क के राष्ट्रीय दल वालों को नये जीवन का संदेशा सुना दिया था।

सन् १९१५ के जुलाई मास में मेक्स्विनी ने अपना सब तन, मन और धन स्वयंसेवकों का संगठन करने में लगाया। कार्क के सारे जिलों में वह बाइसिकिल पर घूमता था और नवयुवकों को इकट्ठा करता था। उसके अथक परिश्रम से सन् १९१६ के आरम्भ में कार्क के स्वयंसेवक पूरे सैनिक कार्यों के लिये तैयार होगये।
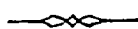
पहली गिरफ़्तारी

कार्क में स्वयंसेवकों की इतनी गर्म तैयारी देखकर सरकार के कान खड़े हुए। यह सब संगठन-कार्य मेक्स्विनी के द्वारा हुआ था, इसलिए सरकारी कर्मचारियों की शनि-दृष्टि पहले उसी पर पड़ी। १३ जनवरी सन् १९१६ को मेक्स्विनी विक्टोरिया रोड के अपने घर में गिरफ़्तार किया गया। पुलिस ने गोली बन्दूक पाने के लिए उसके सारे घर की तलाशी ली, पर कुछ नहीं मिला। बहुत से कागज़ पत्र और चिट्ठियाँ मिलीं; जिन्हें पुलिस ने अपने क़ब्ज़े में किया। मैक्स्विनी पर एक राजद्रोही व्याख्यान देने का अपराध लगाया गया, जो उसने २ जनवरी को वेलीनों में दिया था।

मामूली दशा में यह होता कि, राजद्रोही भाषण देने के लिए मेक्स्विनी मजिस्ट्रेटों की एक बेंच के सामने पेश किया जाता, और मजिस्ट्रेट उसे छः मास क़ैद का दण्ड देते। परन्तु, इस मामले में ऐसा नहीं हुआ। हफ़्तों गुज़र गये, मेक्स्विनी हवालात ही में बन्द रहा। उस पर मुकदमा चलाने की कोई नौबत नहीं आई। यह एक ऐसी विचित्र दशा थी कि ब्रिटिश पार्लमेण्ट (हाउस आफ़ कामन्स) में प्रश्न किया गया, जिसके उत्तर में सरकार की ओर से कहा गया—"मेक्स्विनी का अपराध गम्भीर है, इसी कारण विलम्ब होरहा है।" इस "गम्भीरता" से सब लोग चकराये, क्योंकि मेक्स्विनी तो केवल एक राजद्रोही भाषण देने के लिए पकड़ा गया था। परन्तु विलम्ब का कारण जब खुला, तो वह एक बड़ी दिल्लगी मालूम हुई। मेक्स्विनी का 'जान' नामका एक छोटा भाई था, जो बाहर रहता था। यह जान कभी कभी घर चिट्ठियां भेजता था। तलाशी लेते समय उसकी कितनी ही चिट्ठियां पुलिस के हाथ लगीं। ज़ान ने उनमें मि० जान रेडमांड आदि आयरिश नेताओं की बुराई लिखी थीं, और ऐसी ही अन्य बातें थीं।

१६ फरवरी को कार्क की पुलिस द्वारा अदालत में मेक्स्विनी को पेश किया गया। कुछ कार्रवाई के बाद मजिस्ट्रेटों ने उसको ज़मानत पर छोड़ा। टोमस-कर्टिन और फ्रेड कोनिन ने ज़मानतें दी थीं।

क्राउन सालिसिटर (सरकारी वकील) डाक्टर एच० ए० व्हाइन 'यूनियनिस्ट' * दल का कट्टर अनुयायी था, इसलिए

---

* यूनियनिस्ट = इस दल में वे लोग थे जो आयर्लेण्ड के होमरूल के विरुद्ध थे और चाहते थे कि आयर्लेण्ड और इंगलैण्ड का शासन एक ही पार्लमेन्ट करे।

वह मेक्स्विनी का कट्टर शत्रु था। मेक्स्विनी के मित्र, वकील की कार्रवाई बहुत ध्यान पूर्वक देखते थे। मित्र जानते थे कि यदि यह मामला किसी भी अन्य अदालत में होता, तो मेक्स्विनी निर्दोष छोड़ दिया जाता, पर, यहां डा० ह्वाइन उन पर बिना अभियोग लगाये न मानेगा। सरकारी वकील को उस समय यह अधिकार था कि वह कोई मामला बिना सूचना दिये जिस दिन चाहे पेश कर सकता है। कार्रवाई आरम्भ होने के एक दिन पूर्व डा० ह्वाइन ने मेक्स्विनी के सम्बन्धियों को सूचना दी कि, मामला कल नहीं पेश किया जायगा। इस पर मित्रों को उसकी चेष्टा पर और भी सन्देह हुआ, और वे बहुत सचेत होकर डा० ह्वाइन के कार्य्यों को देखने लगे। ह्वाइन ने मामला टालने की बहुतेरी कोशिश की, पर, छः राष्ट्रीय मजिस्ट्रेटों की अदालत में मेक्स्विनी के मामले की कार्रवाई बहुत दूर तक बढ़ गई थी, और अब ह्वाइन पीछे नहीं हट सकता था। यदि वह इसकी चेष्टा भी करता तो भी मजिस्ट्रेट राज़ी न होते। ह्वाइन के चेहरे से घबराहट और निराशा टपक रही थी। उसने खिन्न चित्त हो मेक्स्विनी पर निम्न लिखित तीन अपराध लगायेः—

(१) उसने अपने भाषण में ऐसी बातें कहीं, जिनसे इंगलैंड-नरेश के विरुद्ध अप्रीति फैलने की सम्भावना है, (२) अप्रीति फैलाने का प्रयत्न किया, (३) तलाशी लेने पर उसके यहाँ ऐसे पत्र निकले जिनमें जल या स्थल-सेना के गुप्त साङ्केतिक अक्षर लिखे थे।" यह एक आश्चर्य है कि "गुप्त साङ्केतिक अक्षरों का" अपराध उसके प्रथम और अन्तिम मामले में भी आया था।

तमाम दिन मामले की कार्रवाई होती रही। मेक्स्विनी के विरुद्ध सब गवाहियां पुलिस की थीं, पर, उसकी ओर से कोई

गवाह तलब न किया गया। मिस्टर फ्रेङ्क जे० हीले० बी० एल० उसकी ओर से जिरह करने के लिए तैयार थे। यह एक बड़ा मनोरञ्जक मुकदमा था। अदालत में दर्शकों की भीड़ थी, जो प्रत्येक राजद्रोही वाक्य पर हँसती थी। इस पर डा० ह्वाइन और भी चिढ़ता था और क्रुद्ध होता था। अन्त में मामला दिल्लगी के साथ समाप्त हुआ। "कार्क एग्ज़ामिनर" पत्र की रिपोर्ट यहां दी जाती है :—

"लार्ड मेयर ने कहा कि मजिस्ट्रेटों का बहुमत पहले के दो अपराध रद् करता है। अभियुक्त (मेक्स्विनी) पर तीसरा अपराध लगाया जाता है, और मजिस्ट्रेटों के बहुमत से उस पर एक शिलिङ्ग (१२ आना) जुर्माना करते हैं, कुछ खर्च नहीं लिया जायगा। (अदालत में देर तक हर्ष ध्वनि) जुर्माना तुरन्त दे दिया गया।"

मजिस्ट्रेटों का यह फैसला इंग्लेण्ड और आयर्लैण्ड ने सुना। इंग्लेण्ड नाराज़ हुआ पर आयर्लैण्ड प्रसन्न हुआ। इस फैसले ने प्रकारान्तर से 'आयरिश स्वयंसेवकों का सङ्गठन उचित ठहराया; सङ्गठन केवल न्याय के तराजू पर तौला गया पर, राजद्रोह नहीं ठहराया गया। आयरिश नवयुवकों ने देखा कि वे जीत रहे हैं।

ईस्टर की क्रान्ति

जर्मनी और इंग्लैण्ड में जिस समय महायुद्ध प्रारम्भ हुआ, उस समय आयर्लैण्ड की अधिकांश जनता गुमराही के जोश में आगई। मि० जान रेडमांड तथा अन्य पार्लमेन्ट के नेता जनता का जोश दबाने के लिए नाना प्रकार के भुलावे देने

लगे और हर तरह उन्होंने आयर्लैण्ड के अन्दर राष्ट्रीय आन्दोलन दबाने की चेष्टा की, क्योंकि जान रेडमांड पहले ही "हाउस आफ़ कामन्स" में यह प्रतिज्ञा कर चुके थे कि, 'मैं इंग्लैण्ड के लिये आयर्लैण्ड को रोके रहूँगा।' पर, दूसरी ओर, आयरिश स्वयंसेवक-दल और "आयरिश रिपबलिकन ब्रदरहुड" नामक संस्थाएँ किसी दूसरी फिक्र में थीं। स्वयंसेवक-दल में वे समस्त लोग आगये जो स्वतन्त्र आयर्लैण्ड में विश्वास करते थे, और ये लोग "आयरिश रिपबलिकन ब्रदरहुड" के द्वारा कार्य करते थे। स्वयंसेवकों में भी दो दल होगये। ये दोनों दल एक ही उद्देश को लेकर कार्य करते थे। अंग्रेजी सेना में रंगरूट न भरती हों, इसके लिए दोनों दल उद्योगी थे। स्वयंसेवकों को हथियार आदि से दुरुस्त कर उन्हें मज़बूत बनाने तथा सैनिक-शिक्षा देने के पक्ष में दोनों थे—, पर, कार्य के ढंग से दोनों सहमत न थे। "आयरिश रिपबलिकन ब्रदरहुड" में टोम क्लार्क, सीन मेकडरमोट, पीयर्स और प्लङ्कट आदि नेता थे जो एक दम शीघ्र बगावत कर देना चाहते थे, पर दूसरे दल वाले प्रोफेसर मेकनील आदि कहते थे कि, नहीं, ठहर जाओ, जब तक कि महायुद्ध न समाप्त होजाय; तब इसके बाद हम अपना समस्त बल आयर्लैण्ड को स्वाधीन करने में लगा देंगे। "आयरिश रिपबलिकन ब्रदरहुड" के नेता समझते थे कि स्वयंसेवक एक सूत्र में संगठित नही रहने दिये जायंगे। अन्त में यह बात सच निकली।

आयर्लैण्ड में अंग्रेज़ी सेना के लिए रंगरूटों की कमी और स्वयंसेवक दल की बढ़ती ने अंग्रेज़ सरकार को चौंका दिया। हर जगह सरकार ने मुख्य स्वयंसेवकों को क्षति पहुँचाने का प्रयत्न किया। पर, सफलता न मिली। स्वयंसेवक बराबर

दढ़ते ही गये, और जान रेडमांड के "राष्ट्रीय" स्वयंसेवकों का अन्त होगया।

"आयरिश रिपबलिकन बूदरहुड" का प्रभाव स्वयंसेवकों पर था। सन् १९१६ में आयर्लैण्ड में जो क्रान्ति हुई, वह अधिकतर 'फीनियन' क्रान्ति थी, जिसका संचालक 'रिपबलिकन बूदरहुड' था। सन् १९१५ में क्रान्तिकारी नेताओं ने निश्चय कर लिया था कि अब क्रान्ति करने का समय आगया है। इसी निश्चय के अनुसार वे कार्य करने लगे।

कार्क में मेक्स्विनी और टोमस कर्टिन "रिपबलिकन बूदरहुड" के साथ सहमत थे, और उन्होंने उसके लिए पूरी तैयारी की।

'ईस्टर' में रविवार २३ अप्रैल (१९१६) को क्रान्ति करने का दिन निश्चित किया गया। यह दिन जितना ही निकट आता जाता था, मेक्स्विनी उतनी ही दृढ़ता पूर्वक दिन रात देश में सर्वत्र घूम घूम कर तैयारी करता जाता था। इसी दिन की वह प्रतीक्षा कर रहा था। सब प्रबन्ध ठीक थे, युवा स्वयंसेवक प्रसन्न और उत्साहित थे। पर, शनिवार की सन्ध्या को प्रोफेसर मेकनील ने "चीफ़ आफ़ स्टाफ़" की हैसियत से यह सूचना समाचार पत्रों में प्रकाशित की :—"बड़ी गम्भीर स्थिति के कारण आयरिश स्वयंसेवकों को कल (ईस्टर रविवार) के लिए जो आज्ञा दी गई थी, वह रद्द की जाती है।" चीफ़ आफ़ स्टाफ़ ने क्रान्ति करने से मना कर दिया, स्वयंसेवकों को बड़ी निराशा हुई। वास्तव में बात यह थी कि प्रोफेसर मेकनील को पहले कुछ नहीं मालूम था, निश्चित दिन रविवार से कई दिन पहले उन्हें क्रान्ति की बात मालूम हुई। और उन्होंने ठीक अन्तिम घड़ी में क्रान्ति रोक दी।

इधर "आयरिश रिपब्लिकन ब्रदरहुड" क्रान्ति करने के लिए पूर्ण निश्चित था और वह समझता था कि क्रान्ति करने में विलम्ब न करना चाहिये। उसने रविवार के बदले सोमवार २४ तारीख को क्रान्ति का दिन निश्चित किया, और अपने दूत समस्त आयर्लैंण्ड में भेज कर लोगों को सावधान किया तथा मेकनील की आज्ञा रद्द की। कार्क में क्रान्ति करने के लिए अन्दर नगर में सुगमता न थी, क्योंकि नगर के चारों ओर पहाड़ियाँ हैं और नगर खोखले में है। चारों ओर सरकारी सेनाएं डटी थीं और उन्होंने क्रान्ति रोकने के लिए तोपखाने लगा दिये थे। इस लिए क्रान्तिकारी नेताओं ने यह सोचा कि नगर के लोग सब नगर से बाहर निकल कर जिले के अन्य आदमियों से मिलेंगे, और सब मिल कर फिर जिले का कोई मार्ग रोक लेंगे। रविवार के दिन कार्क के स्वयंसेवक सोची हुई कार्य प्रणाली के अनुसार नगर के बाहर गये, पर, मेकनील की आज्ञा के कारण वे निरुत्साही होकर लौट आये। मेक्स्विनी और टोमस ने शियर्स स्ट्रीट के पास उन्हें बिदा किया। पर, इसके बाद फिर पियर्स की आज्ञा रविवार को प्रकाशित हुई, जिसने मेकनील की आज्ञा रद्द कर दी थी। उस दिन बहुत रात्रि बीत जाने तक स्वयंसेवक-नेता बहस कर रहे थे, उसी समय फिर उनके पास मेकनील का संदेशा आया। सबने घबड़ा कर एक दूसरे के मुंह देखे। तीन दिन के अन्दर कार्क के नेताओं को डबलिन से सात भिन्न-भिन्न आज्ञाएं मिलीं, परिणाम यह हुआ कि कार्क में कोई क्रान्ति नहीं हो सका।

डबलिन में बग़ावत हुई। यह समाचार सोमवार की संध्या को मिला। समाचार पाते ही सरकारी सेना ने तुरन्त भारी तोपखानों से कार्क के नाके बन्द कर दिये।

"रिपबलिकन ब्रदरहुड" (प्रजातंत्र वादी सङ्घ) के नेता टोम क्लार्क ने डबलिन से एक सूचना कार्क के क्रान्ति कारियों के नाम भेजी थी,—"मुझे मालूम है कि-मैं कार्क पर विश्वास कर सकता हूँ ।" कार्क के स्वयंसेवकों के दिलों में बड़ी चोट लगी कि, हम टोम क्लार्क की आशा न पूरी कर सके। पर, मेक्स्विनी ने यह सोच कर कार्क में क्रान्ति नहीं की, कि उस का कोई अच्छा फल न होगा । यह दूसरी बात थी कि सेना हमला करती, तब वे भी उस पर हमला करते; और इसी लिए कार्क के स्वयंसेवक शियर्स स्ट्रीट में जाकर अपने सदर मुकाम में जमा हुए, उनके पास हथियार थे,और उनमें से बहुतेरे सेना के हमले की आशा करते थे। सरकारी सेना ने हमला नहीं किया। नगर का लार्ड मेयर आकर स्वयंसेवकों के नेताओं से मिला। बड़ी देर की बहस के वाद एक संधि हुई। जिस के अनुसार यह तय पाया कि स्वयंसेवक अपने हथियार लार्ड मेयर को देदें; जब तक हलचल खतम न हो जाय, तब तक हथियार लार्ड मेयर के पास रहेंगे । सेना को भी इस पर सन्तोष था, और दूसरे उस सन्धि के अनुसार समस्त स्वयं-सेवकों को सरकार क्षमा कर देती। ये शर्तें स्वयंसेवकों के बहुमत ने स्वीकार करलीं और हथियार लार्ड मेयर को देदिये । परन्तु सरकारी सेना ने सदा की भाँति सन्धि भङ्ग की। उसने हथियार ले लिये और स्वयंसेवक नेताओं को क़ैद कर लिया। ३ मई (१९१६) को मेक्स्विनी गिरफ्तार किया गया। पहले उसे कार्क जेल में रखा, इसके वाद रिचमांड वेरकों में, फिर डबलिन में, वेकफील्ड के जेलखाने में, और इसके वाद वह उत्तर वेल्स के कारागृह में रखा गया । फिर वही हुआ जो पियर्सन ने पहले कहा था कि, समस्त आयरिश मत क्रान्ति के पक्ष में होगा। अगस्त में सरकार ने स्वयंसेवक-नेताओं को

पृथक कारागृह में रखना निश्चित किया। सरकार ने नेताओं को चुना, और उन्हें रीडिङ्ग जेल में रखा। इन क़ैदियों में मेक्स्विनी भी था। आयर्लैण्ड में लोकमत का जोर बढ़ता ही गया, सरकार ने यह चालाकी सोची कि सम्भव है कि इस समय कैदियों को छोड़ देने से स्वयंसेवकों में जो "नर्म" लोग (Moderate) हैं उनके हाथ में उनका संचालन चला जाय, इस लिए १९१६ के बड़े दिनों में सब क़ैदी आम तौर से माफ कर दिये गये। इंगलैण्ड के महामंत्री ने यही समझ कर क्षमा दी थी कि, स्वयंसेवक छूटने के बाद नर्म भाव पैदा करेंगे। परन्तु, मुक्त नेताओं ने फिर प्रजातंत्र का संगठन कार्य्य आरम्भ किया, और पूर्ववत् 'प्रजातंत्र' की शपथ खाई। १९१७ में, २२ फरवरी को मेक्स्विनी फिर पकड़ा गया, और ब्रोमयार्ड (इंगलैण्ड) जेल में रखा गया। जूनके अन्त में वह आज्ञा सरकार ने रद्द की, और वह छोड़ दिया गया। कार्क में आकर उसने फिर संगठन करना और भाषण देना आरम्भ किया। अक्टूबर १९१७ में वह फिर गिरफ्तार किया गया और छः मास कैद की सज़ा दी गई, पर, मेक्स्विनी ने जेल में अनशन व्रत आरम्भ कर दिया। नवम्बर में वह छोड़ दिया गया। मार्च सन् १९१८ में वह फिर पकड़ा गया और उस से पहले की छः मास कैद की सज़ा पूरी कराई गई। छः मास के बाद वह ४ सितम्बर को छोड़ा गया, पर, केवल जेल के फाटक तक जाने पाया था कि फिर गिरफ्तार किया गया। इस बार वह इंगलैण्ड के लिंकन जेल में भेजा गया। यहाँ उसकी भेंट मि० ईमोन-डीवेलरा और अन्य आयरिश नेताओं से हुई। डीवेलरा आदि जर्मन षड्यंत्र के सम्बन्ध में गिरफ्तार किये गये थे।

इन दिनों में अंग्रेज़ सरकार निरन्तर आयर्लैण्ड का आन्दोलन दबाने के लिए कड़े से कड़े उपाय करती रही, पर

आयरिश 'प्रजातंत्र' अटल रहकर अपना कार्य्य दृढ़ता पूर्वक कर रहा था। आन्दोलन दबाया न जा सका।

प्रजातन्त्र की लहर

जिन दिनों में 'शिनफ़ेन' आयरिश, संख्या में बहुत कम थे, उन्होंने अपनी मुख्य नीति यह स्थिर की कि, हम ब्रिटिश पार्लमेन्ट को मानने से बराबर इनकार करते रहेंगे। इस नीति के अनुसार उन्होंने अपने प्रतिनिधि पार्लमेन्ट से निकालने आरम्भ किये। और अब, जब उनका बहुमत हुआ तो उन्होंने अपना प्रजातंत्र स्थापित करने के लिए पहला काम यही किया कि वे निश्चित रूप से अपनी वह नीति काम में लाने लगे। सन् १९१६, १७, और १८ में आयरिश नेता चाहे अंग्रेज़ सरकार की जेलों में हों, चाहे आज़ाद हों, प्रजातंत्रवादी उसी नीति का दृढ़ता पूर्वक पालन करने लगे। इसी एक बात से सरकार डरती थी। चुनाव में जब काउन्ट प्लङ्कट और मि० डीवेलरा सरीखे प्रजातंत्रवादी नेता बहुमत पाने लगे तो सरकार बहुत घबड़ाई। सरकार और पार्लमेन्ट के दल ने देखा कि यदि आयरिश बहुमत पार्लमेन्ट में जाना अस्वीकार करे तो इसका अर्थ आयर्लैण्ड में अंग्रेजों के शासन का अन्त हो जाना है। इधर पार्लमेन्ट के आम चुनाव की भी जल्दी थी, इस लिए सरकार ने एक बहाना ढूंढ़ निकाला। उसने शिन-फ़ेन नेताओं पर "जर्मन षड्यंत्र" में शरीक होने का अपराध लगाया, और मई सन् १९१८ में उन नेताओं को गिरफ्तार करना आरम्भ कर दिया। परन्तु, आयर्लैण्ड ने इसका तुरन्त प्रतिउत्तर दिया। ईस्ट-कैवन की ओर से प्रजातंत्रवादी मि० आर्थर ग्रिफ़िथ चुने गये, और अधिकांश लोग प्रजातंत्र-भाव-

नाओं की ओर झुकने लगे। शिनफ़ेन दल बराबर चुनाव के लिए अपने नेता तैयार करने लगा। १९१८ के दिसम्बर मास में जो चुनाव हुआ उसमें शिनफ़ेन-दल वालों ने ७३ स्थान प्राप्त किये; ६ राष्ट्रीय और २६ 'यूनियनिस्ट' (सरकार के पक्षपाती) चुने गये। ७३ सदस्यों में से अधिकांश जेल में थे, और इन क़ैदियों में मेक्स्विनी भी था। मेक्स्विनी मध्य कार्क से चुना गया था। मई में समस्त क़ैदी छोड़ दिये गये।

नेताओं ने क़ैद से छूटते ही फिर प्रजातंत्र का कार्य्य करना आरम्भ किया। वे जब क़ैद में थे, उसी समय अन्य नेताओं ने घोषणा करदी थी कि आयर्लैण्ड का सम्बन्ध इंग्लेण्ड से टूट गया; उन्होंने अपने 'प्रजातंत्र' की घोषणा की। जब ७३ योग्य नेता छूट कर आये, तब उन्होंने देश में प्रजातन्त्र-सरकार का झण्डा खड़ा किया। ईमोन-डीवेलरा उनका चुना हुआ राष्ट्रपति (प्रेसिडेन्ट) था; उसके लिए शिनफ़ेन दल के लोगों का एक मंत्रिमंडल बना। प्रजातंत्र सरकार के लिए ऋण मांगने का कार्य्य किया गया; और उन्होंने अपनी "डेल ईरेन" नाम की पार्लमेन्ट बनाई। इस तरह अंग्रेज़ सरकार को बिल्कुल मुर्दा बना दिया। मेक्स्विनी इन सब कार्य्यों में मुख्य भाग लेने वाला था; वह डबलिन में डेल-ईरेन की बैठकों में जाता था, कार्क में स्वयंसेवकों का सङ्गठन देखता था; और इन कार्य्यों के अतिरिक्त वह अपने हलके में और भी कितने ही कार्य्यों को समझाता था। शिनफ़ेन लोग पार्लमेन्ट डेल-ईरेन के अधिकार बराबर बढ़ाते रहे। उसे ऋण मिलने में बड़ी भारी सफलता हुई। देश विश्वास पूर्वक 'डेल' की ओर निहारने लगा। सन् १९१९ में जब स्थानीय कौंसिलों का चुनाव हुआ तब शिनफ़ेन लोगों को भारी बहुमत मिला। सन् १९२० में स्थानीय दलों और पार्लमेन्ट के दलों को अपने हाथ में

लेकर समस्त आयर्लैण्ड प्रजातंत्र की ओर बढ़ा। प्रजातंत्र वादी दल ने अपनी अदालतें स्थापित कीं, जिनमें समस्त लड़ाई झगड़े के मामले पेश होते थे, इधर अंग्रेज़ी अदालतें बिल्कुल खाली रहने लगीं। आयर्लैण्ड के अधिकांश भाग में स्थानीय कौंसिलों और बोर्डों ने प्रजातन्त्र के प्रति भक्ति रखने की शपथ खाई। अन्त में स्वयंसेवक-दल से प्रजातंत्र की सेना बनी, और उन्होंने गांवों की सरकारी पुलिस को निकाल कर वहां अपना अधिकार जमाया। अंग्रेजों की पुलिस केवल बड़े नगरों में रह गई, जहां अंग्रेज़ी सेनाएँ थीं। आयरिश प्रजातंत्र निरन्तर उन्नति के मार्ग पर बढ़ रहा था।

इस स्थिति का सामना १९२० की बसंत (Spring) ऋतु में इंग्लैण्ड को करना पड़ा। इंग्लैण्ड ने अब फिर आयर्लैण्ड को विजय करने के लिए वही गन्दे उपाय निकाले, जिनसे वह बोयर युद्ध में बदनाम होचुका था। आयर्लैण्ड में शान्त जनता पर अत्याचार होने लगे। भीषण संहार और अग्निकांड आदि तक हुए। इन्हीं अत्याचारी उपायों का शिकार मेक्स्विनी भी हुआ, जो सदा के लिये शहादत का प्याला पीकर संसार में अमर होगया।

प्रथम लार्ड मेयर की हत्या

सन् १९१८ की शरद ऋतु में शिनफ़ेन लोगों ने स्थानीय कासिलों का चुनाव किया, और मिस्टर टोमस कर्टिन, कार्क नगर का प्रथम "लार्ड मेयर" चुना गया। लार्ड मेयर का पद इन्हीं दो में से किसी एक को मिलता,—टोमस कर्टिन या मेक्स्विनी को। टोमस कर्टिन एक प्रसिद्ध वक्ता था, और वह बाल्यावस्था

ही से आयर्लैण्ड की स्वाधीनता के लिए कार्य्य करता था। उसके चुनाव की समस्त कार्रवाई आयरिश भाषा में हुई; उसे चुनने वाला स्वयं मेक्स्विनी था। टोमस ने थोड़े ही दिनों के कार्य्य में यह दिखा दिया कि वह लार्ड मेयर के पद को कितनी योग्यता के साथ निभा सकता है। उसकी अध्यक्षता में कार्क के शिनफ़ेन दल दिन दूना रात चौगुनी उन्नति कर रहे थे। परन्तु, टोमस कर्टिन अधिक दिन तक नहीं जीने पाया। जनवरी सन् १९२० में वह लार्ड मेयर चुना गया, और १९ मार्च को उसी के घर में नक़ाबपोशों ने घुस कर उसे गोली मारदी; बाद में मालूम हुआ कि वे नक़ाबपोश पुलिस के आदमी थे। टोमस की हत्या पर विचारक जूरियों ने उसकी लाश का अनुसंधान किया, और उन्होंने अँग्रेज़ महा मन्त्री मिस्टर लायड जार्ज पर, तथा कार्क में सरकारी पुलिस के एजेण्ट पर हत्या का अभियोग लगाया।

२० मार्च को कार्क के कारपोरेशन ने दूसरा लार्ड मेयर चुना। सबकी इच्छा मेक्स्विनी को चुनने की हुई, और वह सर्व सम्मति से कार्क का लार्ड मेयर चुना गया। उसको चुनते समय चुनने वाले यह अच्छी तरह जानते थे कि वे कैसे खतरनाक पद के लिए मेक्स्विनी को चुनते हैं। अभी टोमस कर्टिन मारा गया था। मेक्स्विनी स्वयं चुनने वालों से अधिक साहसी था। वह जानता था कि शिनफ़ेन दल आयर्लैण्ड में शासनाधिकार प्राप्त कर रहा है। उसे अपने दल का प्रभाव जमाने का सबसे पहले ध्यान था।

आल्डरमैन लिआम-डि-रोयस्टी ने आयरिश भाषा में भाषण देते हुए मेक्स्विनी को लार्ड मेयर चुनने का प्रस्ताव किया, और आतड वेरी ने उसका अनुमोदन किया। सर जोन स्काट के समर्थन करने पर मेक्स्विनी सर्व

सम्मति से कार्क का लार्ड मेयर चुन लिया गया। मेक्स्विनी ने उस समय जो भाषण दिया, वह चिरस्मरणीय रहेगा। पहले आयरिश भाषा में बोलने के बाद फिर वह अँग्रेज़ी में इस प्रकार बोलाः—

"मैं थोड़े से शब्द कहूँगा। यह समय लम्बे भाषणों अथवा शिष्टाचार या धन्यवाद प्रकट करने का नहीं है। लार्ड मेयर का पद खाली होने पर उसकी पूर्ति होनी आवश्यक थी। और मैं यहां एक सिपाही की हैसियत से उस पद की पूर्ति करने के लिए आगे बढ़ा हूँ, किसी म्युनिसिपैल्टी में शासक होने की हैसियत से नहीं। साधारण समय में तुम्हारा यह कर्तव्य होता कि तुम किसी अधिक अनुभवी और दक्ष कार्य्यकर्ता को इस पद के लिए चुनते। परन्तु, यह समय असाधारण है। हमने अपने भूतपूर्व लार्ड मेयर टोमस कर्टिन की हत्या देखी कि वह किस तरह निर्दयता पूर्वक मारा गया, जिससे हम सब भयभीत होजायँ। हमारा प्रथम कर्तव्य यही है कि हम उस भय का उत्तर दें, और ऐसी योग्यता से दें, जिससे हमारी निर्भयता और दृढ़ता मालूम हो, जिससे हमारा मुख्य उद्देश देश को स्वतंत्र और सम्पन्न बनाने का प्रमाणित हो। उसी उद्देश की पूर्ति के लिए मैं यहां तैयार हूँ। मैं अपने मृतक मित्र टोमस के साथ अधिक घनिष्टता पूर्वक कार्य्य करता रहा हूँ; ईस्टर के उपद्रव में क़ैद और क़ैद के बाहर तथा उसकी मृत्यु तक मैं बराबर उसके साथ रहा हूँ। इस कारण मैं यह पद स्वीकार करता हूँ। मैं समझता हूँ कि जिन्होंने उसको मारा, उन्हें यह उचित उत्तर है। (सभा में करतल ध्वनि) आवस्यक यह है कि हम अपना मुल्की शासन देखें। यदि हमारे शत्रुओं का दमन हमें दबा सका और हमने स्वेच्छा-पूर्वक अपने कार्य्य रोक दिये, तो हमारे शत्रुओं को हमारा

उद्देश नष्ट कर देने में बड़ी सहायता मिलेगी। मैं समझता हूँ कि हमारा भावी कार्य्य-क्रम हम सबको निगाहों के सामने है। और मैं समझता हूँ, कि मैं सबके विचारों को, इस समय यह कह कर सुना रहा हूँ कि जिस योग्यता और दृढ़ता से हमारे मृतक मित्र ने कार्य आरम्भ किया था, वह यथा शक्ति हम जारी रक्खेंगे। मैं इस समय उस मित्र के विषय में कुछ कहना नहीं चाहता, परन्तु, इतना मैं अवश्य कहूंगा कि, मैंने उसको लार्ड मेयर चुनने के लिए विशेष प्रयत्न किया था। उसे पद की आवश्यकता न थी और न वह उसे स्वीकार करता, पर, कर्तव्य के तौर पर, वह पद जब उसे दिया गया, तो उसने एक वीर सिपाही की तरह उसे स्वीकार किया। सज्जनो, आपने उसकी हर तरह सराहना की। यह मेरा कर्तव्य है कि मैं उसी पद्धति के अनुसार यथाशक्ति आगे चलूं। इस सभा में कोई ऐसा नहीं है जो उसकी सी योग्यता और कार्य पटुता से काय कर सके। (करतलध्वनि) शत्रुओं का भय हमारे सिर पर है और इस समय हमारा मुख्य कर्तव्य यही है कि हम अपूर्व साहस से भविष्य का सामना करते रहें। हमने वर्ष के आरम्भ से जिस उत्साह के साथ कार्य प्रारम्भ किया, नगर को अच्छा बनाने के लिए जो साहस दिखाया, वह बराबर जारी रहे। उसके लिए हम बराबर कार्य करें और आवश्यकता हो तो प्राणतक देदें। मैं अपने उन शब्दों को फिर याद दिलाता हूं जो मैंने प्रथम लार्ड मेयर के चुने जाने पर कहे थे। मैं समझता हूँ कि तुम में से बहुत से जो यहां लघु संख्या में हो, हमारे प्रति सच्चे भक्त बने रहोगे; परन्तु, तुममें उस साहस और आशा की कमी है जिससे तुम हमारे साथ मिलकर मुक्ति का कार्य पूरा कर सको। मैं यहाँ फिर कहता हूं, क्योंकि, मैं तुम्हें अपने बलका रहस्य

और विजय का विश्वास दिलाना चाहता हूं। हमारी लड़ाई वदला लेने की नहीं वल्कि स्वयं सहन करने की है। वे जो अधिक हानि पहुँचा सकेंगे, नहीं, वल्कि वे जो अधिक कष्ट सहन कर सकेंगे, अंत में विजय लाभ करेंगे। जिनका विश्वास अटल है,वे अन्त तक दृढ़ वने रहेंगे और विजयी होंगे। हमारे इस समय की उज्वल आशा यही है कि हमारी अधिकांश जनता अपने उस विश्वास में अब अटल होगई है। सज्जनो, तुम लोग, जो लघु संख्या में हो, मैं तुम से फिर आग्रह पूर्वक कहता हूँ कि तुम साहसी और आशावादी वने रहो। मुझे मालूम होता है—और मैं यह तुम्हें दुःखी करने के लिए नहीं कहता—कि तुम्हारा विश्वास अधिक शैतान में है और ईश्वर में कम है। परन्तु, ईश्वर हमारे ऊपर है, और उसी की ईश्वरीय शक्ति में हमें विश्वास करना चाहिये। आयर्लैण्ड के गत पांच वर्ष के इतिहास को देखो तो एक जादू मालूम होगा कि देश में किस तरह कार्य हो रहा है। ईश्वर ने हमारे साहस की परीक्षा ली, हमें इसका अवसर दिया कि हम एक महान कार्य के लिए अपने को योग्य प्रमाणित कर सकें। तुममें से वहुतेरे जो भटक गये, उन्होंने झूठे पैगम्बरों से धोखा खाया। हम जिस स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए प्रयत्न कर रहे हैं, वह एक बड़ी ही पवित्र चीज़ है, वह आध्यात्मिक स्वाधीनता, जिसके लिए मनुष्य का मुक्तिदाता सबसे पहले मरा था और जो समस्त सरकारों की सच्ची वुनियाद है। वह उद्देश अति पवित्र है, जिसके लिए हमारे अत्यन्त योग्य और वीर मनुष्यों ने अपने प्राण दिये हैं। कभी कभी अपने दुर्दिनों में हम मूर्खता के साथ विना सोचे समझे यह चिल्लाते हैं, "त्याग वहुत अधिक करना पड़ेगा।" परन्तु, इसीलिए हमारे अत्यन्त योग्य और वीर मनुष्यों ने उसके

लिए प्राण दिये थे। उससे कोई कम त्याग हमारी रक्षा नहीं कर सकता। उसीके कारण हमारी लड़ाई पवित्र है। हमारी लड़ाई उनके रक्त से पवित्र होचुकी है और उनके प्राणोत्सर्ग से हमारी विजय निश्चित होचुकी है। हम, उनके कार्यों को जिन्हें वे अधूरा छोड़ गये हैं, ईश्वर में विश्वास कर पूरा करने का प्रयत्न करेंगे और उनके बदले में हम अब प्राणोत्सर्ग करेंगे। हम निरपराध रक्त नहीं लेते बल्कि, देते हैं, जिसमें हमारे अमर शहीदों की याद है, जिन्होंने केवल एक ही उद्देश से देश का स्वाधीन करने के लिए ईश्वरीय आदेश का पालन किया। अपने शत्रुओं का सामना करने में हम केवल अपने स्वावलम्बन से काम लेंगे। हम दया नही चाहते, न हम समझौता करेंगे। हम केवल दया के कर्ता ईश्वर से बल बढ़ाने के लिए प्रार्थना करते है, चाहे हमारे ऊपर जितने भी अत्याचार हों, हम अंत में अपने भाइयों के लिए विजय लाभ करेंगे। सभ्य संसार हमारे त्याग पर तटस्थ रहने का साहस नहीं कर सकता। पर, यदि पृथ्वी के शासक हमारी सहायता न करें तो भी स्वर्ग के शासक से हमारी मुक्ति निश्चित है; और चाहे कुछ अधीर हृदयों को उस परम पिता के निर्णय में सन्देह मालूम होता हो, पर वह कभी निष्फल नहा जाता।"

यह भाषण कितना ओजस्वी और भावपूर्ण है। उसके अन्तस्तल से निकाले हुए मार्मिक उद्गारों में कितनी पवित्रता है। एक ओर देश की पराधीनता की व्यथा, उसके हृदय को वेचैन कर रही है तो दूसरी ओर देश के उज्वल भविष्य की आशा-लता उसके चित्त को प्रफुल्लित कर रही है। एक सैनिक का, स्वतन्त्रता के संग्राम में विजयी होने का कैसा अटूट विश्वास है। प्राणोत्सर्ग करके भी देश की गुलामी के बन्धन

तोड़ने में देशभक्ति का कितना ऊँचा आदर्श है, यह मेक्स्विनी के हार्दिक उद्गारों से भलीभाँति प्रकट है।

उसने ये शब्द केवल कार्क को ही नहीं, बल्कि, समस्त आयरिश जाति को सुनाये। उसके इस भाषण से मालूम होता है कि आयर्लैण्ड किन स्थितियों में किस अटूट विश्वास और बल के साथ स्वाधीनता के लिए प्रयत्न कर रहा था।

अन्तिम गिरफ्तारी

मेक्स्विनी कार्क का लार्ड मेयर बना, और वह बड़ी सरगर्मी के साथ नगर का म्युनिसिपल शासन देखने लगा। वह म्युनिसिपैल्टी का प्रधान अधिकारी था, इसलिए उसके सामने अनेक बाधाएँ थीं, परन्तु उसने किसी बाधा या आर्थिक कठिनाई की परवाह न की। उसने म्युनिसिपैल्टी के सम्पूर्ण शासन का पुनर्संगठन करना चाहा और वह अपनी सोची हुई व्यवस्था के अनुसार कार्य करने लगा। वह चीफ़ मजिस्ट्रेट भी था और वह अदालत के समस्त कार्य बहुत ही ध्यान पूर्वक देखता था। उसने विदेशी म्युनिसिपैल्टियों का हाल जानने के लिए उनसे पत्र व्यवहार किया; वह लोगों के घर बनाने के प्रश्न की ओर ध्यान देने लगा, और उसने बच्चों की विशेष रक्षा के प्रबन्ध किये। वह जिस कार्य को हाथ में लेता था, उसकी पूरी तरह जानकारी पैदा करते हुए उसे अच्छा बनाने का निरन्तर प्रयत्न करता था। इसके अतिरिक्त वह प्रजातन्त्र सेना का, कार्क 'ब्रिगेड' का सेनापति भी था। वह सैनिक कार्यों की ओर उतना ही ध्यान देता था जितना कि म्युनिसिपल कार्यों की ओर देता था। वह उन दिनों में इन कार्यों के अतिरिक्त और कुछ न करता था। उसे रोटी खाने की भी फ़ुर्सत न थी। कोई मित्र उससे सिवा काम के और

किसी तरह नहीं मिल सकता था। दस बजे दिन से दस बजे रात तक वह केवल नगर के "सिटी हाल" में बैठा कार्य्य करता था, और कार्य्य करने के आदेश देता था; बीच में थोड़े समय में चाय-पानी कर लेता था। उसका एक पुराना मित्र जो छुट्टियों में कार्क आया था, उससे रोज़ मिलना चाहता था। मेक्स्विनी ने उसे लिखा :-"यहाँ पौन बजे आओ। मैं उस समय भोजन करने जाऊँगा, तुम मेरे साथ रास्ते में घर तक बातें करते हुए चलना, और कुछ भोजन भी करना।" डेढ़ बजे वह घर से लौटता और फिर अपने कार्य्य के समुद्र में डूब जाता। उसके शत्रु और मित्र सब कहते थे कि वह एक बड़ा पटु और परिश्रमी शासक है।

यह अंग्रेज़ सरकार पसन्द न कर सकती थी। सरकार ने आयरिश प्रजातन्त्र का शासन-यन्त्र नष्ट कर डालने का प्रयत्न किया। उसने प्रजातन्त्रवादियों की अदालतें जहां पाईं, भंग कर दीं; म्युनिसिपल कौंसिलों के मुख्य नेताओं को गिरफ्तार किया। इसी नीति के अनुसार १२ अगस्त की रात को साढ़े सात बजे एक सरकारी सेना-दल ने "सिटी हाल" पर भी आक्रमण किया। उस समय प्रजातन्त्र अदालत बैठी एक धनाढ्य अंग्रेज़ी इन्श्योरेन्स (बीमा) कम्पनी का मामला सुन रही थी। मेक्स्विनी और दस प्रजातन्त्रवादी जो वहाँ थे, गिरफ़्तार किये गये। उनके ऊपर कोई अपराध नहीं लगाया गया और न उनके पास कोई ऐसी चीज़ मिली जिससे उनके ऊपर कोई अपराध लगाया जा सकता। उसी रात में साढ़े ग्यारह बजे पुलिस ने "सिटी हाल" पर फिर छापा मारा, मेक्स्विनी के निजी सन्दूक की ज़बर्दस्ती तलाशी ली और उसके कई कागज-पत्र ले गई। इन्हीं कागज़-पत्रों के आधार पर मेक्स्विनी पर तीन अपराध लगाये गये।

गिरफ़्तारी के बाद, समस्त कैदियों ने फ़ाका करना शुरू किया। १५ अगस्त के बाद सब कैदी छोड़ दिये गये, पर, मेक्स्विनी क़ैद ही में रहा १६ अगस्त को वह कोर्टमार्शल (फ़ौजी) अदालत के सामने पेश किया गया। १७ अगस्त को "कार्क एग्ज़ामिनर" पत्र में निम्न लिखित रिपोर्ट प्रकाशित हुईः—

"कल कार्क की विक्टोरिया बेरक में कार्क के लार्ड मेयर राइट आनरेबल टेरेन्स मेक्स्विनी पर निम्न लिखित अपराध लगाये गये :—(१) बिना किसी क़ानूनी अधिकार या कारण के उसके पास १२ अगस्त को आयरिश प्रजातन्त्र के गुप्त साङ्केतिक अक्षर मिले, (२) उसके पास एक ऐसा पत्र था जो हिज़ मेजिस्टी (इङ्गलैण्ड-नरेश) के विरुद्ध अप्रीति उत्पन्न करा सकता था, यह पत्र एक प्रस्ताव था, जो म्युनिसिपल कारपोरेशन ने पास किया था और जिसमें प्रजातंत्र पार्लमेण्ट "डेल इरेन" के प्रति भक्ति प्रकट की गई थी, (३) उसके उस भाषण की एक प्रति मिली जो उसने लार्ड मेयर होते समय दिया था।"

लार्ड मेयर जब से गिरफ्तार हुआ तब से उसने कोई भोजन नहीं किया और वह इस अनशन व्रत के कारण कम-ज़ोर मालूम होने लगा। उसके लिए एक आराम कुर्सी रखी हुई थी, जिसके दोनों ओर सङ्गीनों का पहरा था। उसके बहुत से मित्र और सहयोगी अदालत में उपस्थित थे। प्रत्येक मनुष्य जो अदालत में गया, उसका नाम और पता लिख लिया गया, और उनकी तलाशी ली गई। मेक्स्विनी से जब कहा गया कि तुम अपनी पैरवी के लिये कोई वकील करना चाहते हो, तो उसने कहाः—"मैं यहां आपकी कार्रवाई के विषय में कुछ कहना चाहता हूँ। मैं कार्क का लार्ड मेयर और नगर

का प्रधान मजिस्ट्रेट हूँ, और मैं घोषित करता हूँ कि यह अदालत ग़ैर कानूनी है, और जो इसमें भाग ले रहे हैं, वे आयरिश प्रजातंत्र-क़ानून के अनुसार गिरफ्तार होने चाहिये।"

इसके बाद उससे पूछा गया कि क्या तुम इस अदालत के अफ़सरों पर कुछ आपत्ति करते हो? उसने उत्तर दिया:-'मैंने जो कुछ कहा है उसमें वह आपत्ति भी आगई है।' जब पैरवी करने के लिए कहा गया तो लार्ड मेयर ने अदालत के प्रधान अधिकारी (प्रेसिडेन्ट) से कहा:—"तुम्हारे व्यक्तित्व को बिना कुछ भी कहे मैं तुमको यह बताना चाहता हूँ कि यह सब पूछने के लिए तुम अपराधी हो।"

प्रेसिडेन्ट—तुम बाद में जो कुछ बयान दोगे वह लिख लिया जायगा।

लार्ड मेयर—मैं जो कुछ कहता हूँ उसके लिखने की कुछ ज़रूरत नहीं है। तुम्हारी केवल कार्रवाई पर मैं पहिले ही आपत्ति करता हूँ।

इसके बाद सरकारी वकील ने अपने बयान में बताया कि कार्क को लार्ड मेयर मेक्स्विनी किस तरह गिरफ्तार किया गया; किस तरह सेना और पुलिस ने "सिटी हाल" पर छापा मारा और तलाशी लेने पर लार्ड मेयर की मेज में से काग़ज़-पत्र निकाले। कई सरकारी गवाहों ने, जो पुलिस और सेना के अफसर थे, अपने बयान में प्रायः वेही सब बातें दुहराईं। गवाह सरजेन्ट मेजर वेली ने कहा कि १२ अगस्त की रात को जब मैंने अभियुक्त (मेक्स्विनी) को गिरफ्तार किया तो वह उस समय प्रजातंत्र के 'बैज' और ज़ंजीर लगाये था। मैंने उससे 'बैज' और ज़ंजीर उतार देने के लिए कहा। उसने उत्तर दिया कि मैं मरजाऊंगा, पर उसे न उतारूंगा।

प्रेसिडेन्ट—तुमने क्या उससे ज़ंजीर नहीं ली ?

गवाह—मैंने ज़ंजीर के अतिरिक्त और सब चीज़ें उसकी लेली थीं।

आयरिश प्रजातंत्र के साङ्केतिक अक्षरों की जब चर्चा आई और एक गवाह इन्सपेक्टर ने उन अक्षरों को दिखा कर कहा कि, इनसे वास्तविक तात्पर्य का पता लगाना बहुत कठिन है, तब प्रेसिडेन्ट ने कहाः-क्या बहुत ही कठिन साङ्केतिक अक्षर हैं ? मैं समझता हूँ कि विना कुंजी के उनका पता लगाना असम्भव है।

लार्ड मेयर मेक्स्विनी—मुझे इस आदमी से कुछ कहना है। साङ्केतिक अक्षरों के विषय में असल बात यह है कि कोई भी मनुष्य जो आयरिश प्रजातंत्र का सदस्य नहीं है, यदि उसके पास ये अक्षर हों तो वह आयरिश प्रजातंत्र के विरुद्ध भीषण षड्यन्त्र करने का अपराधी है। इसलिए तुम गवाही देते समय मुझे नहीं, अपने को मुजरिम करार देते हो।

प्रेसिडेन्ट ने पूछा—'क्या तुम्हें कुछ कहना है ?' मेक्स्विनी अपनी कुर्सी से जवाब देने के लिए खड़ा हुआ।

प्रेसिडेन्ट ने कहा—'मिस्टर मेक्स्विनी तुम बैठे रहो।'

लार्ड मेयर—मुझे विश्वास है कि इस कार्रवाई के समाप्त होने तक मैं खड़ा रह सकता हूँ और फिर यह कुछ बात नहीं है। यह अदालती कार्रवाई, जैसा मैंने कहा है, बिल्कुल ग़ैर-कानूनी है। जो कुछ मैं कहता हूँ, वह अपनी आत्मरक्षा के लिए नहीं कहता। तुमको यह शीघ्र ही मालूम होगा कि वास्तव में आयरिश प्रजातन्त्र का अस्तित्व है। मैं तुम्हें यह याद दिलाता हूँ कि सब से बड़ा अपराध यदि कोई कर सकता है तो, वह है राज्य के प्रधान अधिकारी को चोट पहुँचाना।

परन्तु, यह अपराध उस समय बहुत बढ़ जाता है, जब उस अधिकारी को गिरफ्तार किया जाय, उसके घर की तलाशी ली जाय और उसके काग़ज़-पत्र लेलिये जायँ। यह स्थिति उलट दो और तुम सज्जन पुरुष जो अदालत की कुर्सी पर बैठे हो, अपने को मेरी स्थिति में समझो। एक कागज जो मुझ से लिया गया है उसमें आयरिश प्रजातंत्र के प्रति राजभक्ति की सौगंध है। उसी तरह का वहां एक और भी कागज था। वह एक प्रस्ताव था जिसमें मेरे पूर्व कार्क के लार्ड मेयर की हत्या का अनुसंधान और ज्यूरियों का फैसला लिखा था। उसमें ज्यूरियों की सर्व सम्मति से यह मत था कि अंग्रेज सरकार और उसकी पुलिस, भूतपूर्व लार्ड मेयर की हत्या के अपराधी हैं। और अब तुम्हारे सामने यह स्पष्ट हो गया होगा कि यदि वह कोई बात है तो, वह ऐसी गम्भीर बात होगी कि इस ग़ैर कानूनी अदालत में भी आज वही अपराध विचारणीय है। परन्तु वह क़ाग़ज अलग रखा गया और मुझे इसकी ख़ुशी है कि मेरे द्वारा, चाहे मैं कितने भी कष्ट और असुविधा से यहां आया, वह क़ाग़ज भी यहां पहुँचा, और उसे अलग रख देने से अपराध अवश्य उनकी तरफ से स्वीकार कर लिया गया, जिन्होंने वह हत्या करने का अपराध किया है। जब ऐसी स्थिति है तो तुम समझ सकते हो कि लार्ड मेयर का पद मेरे लिए स्वीकार करना कितना ख़तरनाक था, जब कि मैंने यह देखा कि मेरे पहले का लार्ड मेयर किस तरह मारा गया। मैं इसके सिवा और कुछ नहीं कह सकता कि मैं भी, किसी समय भी उसी तरह मारा जा सकता हूँ। हम हमेशा फौज के सिपाहियों का सम्मान पुलिसमैनों से अधिक करते हैं, यद्यपि इस देश में आकर वे कुछ गुमराह होगये हैं, तो भी हम उन्हें इज़्ज़तदार आदमी समझते हैं। मैं जानता हूँ कि आयरिश प्रजा-

तंत्र के साङ्केतिक अक्षर कहां थे और वहां से उन्हें किसने हटाया? यह इसलिए किया गया होगा कि दो मनुष्यों पर दो अपराध लगाये जासकें। मेरे सिवा और कोई ज़िम्मेदार नहीं है। मैं जानता हूँ कि कहां वह कागज़ था। इस देश में जो घटनाएँ हाल में होचुकी हैं, उनके कारण मेरी निगाह में तुम्हारी सेना की इज्ज़त पहले ही से कम थी, पर अब वह बिल्कुल जाती रही। यह एक ऐसा कागज़ है जो केवल मेरे ही अधिकार में रहना चाहिये। कोई मनुष्य बिना मेरी आज्ञा के उसे अपने पास नहीं रख सकता और जो रखता है वह अपराधी है। कोई भी मनुष्य जो इन अक्षरों के द्वारा आयरिश जाति के हाल जानने का उद्योग करता है, वह आयरिश प्रजातंत्र का अपराधी है।........ मैं तुम्हारा ध्यान एक और कागज़ की ओर दिलाता हूँ, जो मेरे यहां तलाशी करके लिया गया। वह एक चिट्ठी की नक़ल है जो मैंने हिज़ होलिनेस पोप के पास भेजी थी। हिज़ होलिनेस ने वह चिट्ठी अब तक पढ़ली होगी और उन्हें यह जान कर ज़रा दिलचस्पी मालूम होगी कि वह चिट्ठी मेरे पास होने से राजद्रोही होगई है।

सरकारी वकील—यदि तुम यह चाहते हो तो चिट्ठी तुम्हें मिल जायगी। उसके सम्बन्ध में तुम्हारे ऊपर कोई अपराध नहीं लगाया गया है, वह तुम्हें वापिस करदी जायगी।

लार्ड मेयर—अब भूल सुधारने के लिए बहुत विलम्ब हुआ। दूसरी चिट्ठी जो मुझसे लीगई वह मेरे पास पेरिस की म्युनिसिपल कौंसिल के प्रेसिडेण्ट ने भेजी थी, जिसमें प्रेसिडेण्ट ने कई बातें मुझसे पूछी थीं। फ्रेंच सरकार का ज़रा इससे मनोरंजन होगा कि म्युनिसिपल-कौंसिल, पेरिस, के प्रेसिडेण्ट का मेरे पास चिट्ठी भेजना मेरे लिए राजद्रोहात्मक अपराध है। मेरे पास बहुत से निमंत्रण-पत्र भी थे, जो पुलिस

के हाथ लगे। ये निमंत्रण-पत्र मेरे पास विदेशों से—अमेरिका, फ्रान्स, और अन्य यूरोपीय देशों से—अखबार-नवीसों ने भेजे थे, परन्तु, मेरे पास होने से वे राजविद्रोहात्मक षड्यन्त्र का अपराध हो गये। मेरे पास जो काग़ज़-पत्र एक स्थान में पाये गये, उनके विषय में यह नहीं कहना चाहिये था कि वे अन्य स्थानों में मिले, जिससे अन्य मनुष्यों को भी इस मामले में फँसाया जाय। मैं ही एक व्यक्ति हूँ जो उन सबके लिए ज़िम्मेदार हूँ। अफ़सर और अन्य व्यक्तियों ने झूठी क़सम खाई। मैं स्पष्ट कहता हूँ कि आयरिश प्रजातन्त्र का सिपाही होने की हैसियत से मैं सब सिपाहियों का सम्मान करता हूँ, पर, मुझे इन सिपाहियों के लिये खेद है। मैं अदालत से कोई क्षमा नहीं मांगता।

इसके बाद १५ मिनट के लिए न्यायाधीश लोग गुप्त परामर्श करने को चले गये। इस बीच में श्रीमती म्युरियल मेक्स्विनी ने अपने पति से आयरिश भाषा में दो बातें कीं। प्रधान न्यायाधीश 'प्रेसिडेण्ट' ने कहा—'पहले मामले के लिए मेक्स्विनी अपराधी नहीं है, पर, दूसरे और तीसरे मामलों के लिए वह अपराधी है।'

लार्ड मेयर—मै यह कहना चाहता हूँ कि इसके बाद जो मैं काम करूंगा, उसके लिए तुम चाहे जितने समय के लिए मुझे कारावास का दण्ड दे देना। गुरुवार से मैंने कुछ भोजन नहीं किया, इसलिए, एक मास के अन्दर में स्वतन्त्र हो जाऊँगा।

प्रेसिडेण्ट—कारावास के दण्ड पर तुम भोजन नहीं करोगे ?

लार्ड मेयर—तुम्हारी सरकार चाहे मुझे जो दण्ड दे, पर

मैंने अपने लिए क़ैद रहने की अवधि निश्चित करली है। मैं जीकर या मर कर, एक मास के अन्दर स्वतन्त्र होजाऊँगा।

न्यायाधीश ने मेक्स्विनी को दो वर्ष के कारावास-दण्ड की आज्ञा सुनादी।

दूसरे दिन ३-४ बजे सवेरे मेक्स्विनी को एक अँग्रेज़ी जहाज़ पर सवार कराके दक्षिण वेल्स में पेमब्रोक डोक में लेजाया गया और वहां से तुरन्त रेलगाड़ी में वह लन्दन पहुँचा दिया गया। बुधवार १८ अगस्त को प्रातःकाल वह लन्दन पहुँचा था। उसी समय वह ४ बजे ब्रिक्स्टन जेल के गवर्नर के सुपुर्द कर दिया गया। मेक्स्विनी ब्रिक्सटन जेल में बन्द हुआ, और उसकी अनशन-व्रत की जगत्-प्रसिद्ध कठोर तपस्या आरम्भ हुई।

उपवास और मृत्यु

लन्दन के ब्रिक्सटन जेल में मेक्स्विनी ने जो ७२ दिन का उपवास किया, उसकी बड़ी हृदय-विदारक कहानी है। उपवास के कारण दिन दिन उसका शरीर घटने लगा, शरीर का मांस और रक्त सूखने लगा, पर, आत्मा में वही बल था, वही दृढ़ता थी। मेक्स्विनी आरम्भ ही से जानता था कि उसे सरकार न छोड़ेगी, इसलिए उसे अपनी मृत्यु का अधिक विश्वास था। शरीर में से रह रह कर जान निकल रही थी। एक दम आत्मघात करके मर जाना सहज है, पर भूखे रह कर क्षण क्षण की दारुण वेदना सहन करना सच्चे वीरों और शहीदों ही का काम है। मेक्स्विनी उसी तरह सत्य और न्याय की वेदी पर बलि चढ़ गया, जैसे उसके पहले कितने ही ईसा और सुक़रात अपने प्राणों को न्याय की वेदी पर

बलि चढ़ा चुके हैं। उसने मृत्यु के साथ ख़ूब मग्न होकर खेल किया। क्यों? इसलिए कि, यह उसका अटल विश्वास था कि उसकी मृत्यु आयर्लैण्ड में नई जान फूंक देगी। वह आयर्लैण्ड के लिए लाखों योद्धाओं का काम कर रहा था। उसके पादरी फ़ादर डोमिनिक ने उसकी वह दशा इन शब्दों में वर्णन की है:—

"कोर्ट-मार्शल की आज्ञा के बाद लार्ड मेयर मेक्स्विनी को कारागृह में लेगये, जो सैनिक-बैरकों में था। मेक्स्विनी के साथ जैसा बर्ताव किया जाता था, उसका उसने विरोध करते हुए सरकारी कर्मचारियों से कहा कि, ब्रिटिश सेना का सेनापति जनरल ल्यूकस जब आयरिश प्रजातन्त्र-सेना के द्वारा गिरफ्तार किया गया तो उसके साथ वैसा ही बर्ताव किया जाता था, जो उसके पद के सर्वथा उचित था। इस कहने का सरकार पर कुछ असर पड़ा और इसके बाद मेक्स्विनी को अलग कमरे में रखा गया, उसे बिछौना दिया गया, पहरे के लिए एक अफ़सर नियुक्त हुआ, जो उसके साथ रहता था। इसके बाद मेक्स्विनी को "कस्टम हाउस क्वे" में लेगये, फिर एक जहाज़ पर सवार कराके उसे इंग्लेण्ड लाये। इस समय तक उसे भोजन त्यागे १०७ घण्टे होगये थे। वह दक्षिण वेल्स के प्रिम्ब्रोक डक में पहुँचाया गया और वहाँ से ट्रेन में फिर लन्दन लाया गया। ब्रिक्सटन जेल में वह बुधवार को प्रातःकाल चार बजे पहुँ-चाया गया। अंग्रेज सरकार ने उस समय यह मिथ्या कहा था कि मेक्स्विनी मंगलवार की रात को साढ़े ग्यारह बजे जेल में पहुँचा था। डिप्टी लार्ड मेयर (कौंसिलर ओसिले-कैन) ने सरकार से, पादरी डोमिनिक के मेक्स्विनी से मिलने की आज्ञा माँगी। अंग्रेज सरकार ने प्रायः २४ घन्टे विचार

करने के बाद आज्ञा देदी। पादरी डोमिनिक शुक्रवार (२० अगस्त) की रात को मेक्स्विनी की स्त्री (श्रीमती म्युरियल मेक्स्विनी) के साथ लन्दन को रवाना हुआ। उसके साथ श्रीमती मेक्स्विनी के अतिरिक्त लार्ड मेयर की छोटी बहिन मिस मेक्स्विनी भी थी। पादरी इनके साथ ब्रिक्सटन जेल में पहुँचा, वहां उसने मेक्स्विनी की बड़ी शोचनीय दशा देखी। मेक्स्विनी बहुत ही दुबला और कमज़ोर होगया था। पर, उसका मस्तिष्क बिल्कुल ठीक था। उसकी यह प्रतिज्ञा और भी दृढ़ होगई थी कि, या तो मैं ज़बर्दस्ती कारावास के फाटक खोलने के लिए दुश्मनों को मजबूर करूंगा या जान ही देदूंगा। उसे कैदखाने के अस्पताल में एक बड़े हवादार कमरे में रखा गया था। इस कमरे में सात बिछौने बिछे थे, पर, इन पर कोई नहीं सोया था, केवल कोने के बिछौने पर लार्ड मेयर टेरेन्स मेक्स्विनी पड़ा था। इसी "वार्ड" में राजर्स केसमेन्ट भी रखा गया था, जिसे १९१६ में जर्मन षड्यंत्र में शरीक होने के अपराध में गोली मारदी गई थी।

मेक्स्विनी के विषय में इंग्लेंड के अखबारों में कभी कभी ऐसे समाचार प्रकाशित होते थे कि लार्ड मेयर अब भोजन कर रहा है, वह अब चैतन्य है, उठने के योग्य है। परन्तु, ये सब समाचार मिथ्या थे। मेक्स्विनी जिस दिन से गिरफ्तार हुआ था, उसने कुछ भी नहीं खाया था। जो लोग कभी कभी उससे मिलने जाते थे, वे उसे अच्छा देखते थे और अपनी नासमझी से यह समाचार देते थे कि, मेक्स्विनी बहुत अच्छा है। ऐसे नासमझ लोग यह नहीं समझते थे कि अपने शरीर की सुडौल बनावट के कारण वह कभी कभी अच्छा दीखता था, भूख के कारण शरीर के अन्दर की सूनी नसें शरीर का रक्त चूसकर मेक्स्विनी का मुख कान्तिमय

बना देती थीं। ब्रिक्सटन जेल में वह केवल चुपचाप बिस्तर पर पड़ा रहता था। वह मरने के लिए बिल्कुल तैयार था पर, वह मरना नहीं—जीना चाहता था। वह इसलिए जीना चाहता था कि वह संसार की जातियों को आयरिश झंडे को सलाम करते हुए देखे; परन्तु, यदि वह दिन निकट लाने के लिये उसका जीवन चाहिये, तो वह जीवन देने के लिए सहर्ष तैयार था। उसकी उस समय की वेदना कोई लेखनी नहीं वर्णन कर सकती। यह सोचते ही हृदय हिल जाता है कि उसके कंधों और पीठ में कठिन पीड़ा होरही थी; टांगों, पड़ियों, और जोड़-जोड़ में बड़े जोर का दर्द था। दर्द के मारे अंग-अंग फट रहा था। पीठ के सहारे लेटने की चेष्टा की, पर, लेटा नहीं गया। टांग फैलाकर टांगों को कुछ आराम देना चाहा, पर, यह भी न कर सका, क्योंकि, घुटनों के जोड़ों से उसका मांस उतर चुका था, यहां तक कि, उसको अब कपड़ों का बोझ सहन करना भी एक दारुण कष्ट होगया था।

वीरवर मेक्स्विनी की यह दशा थी। इसी दशा में वह ७२ दिन जेल में रहा। उपवास करते जब कई दिन हो गये, तब उसको भूख की पीड़ा ने सताना छोड़ दिया। उसे भूख बिल्कुल नहीं थी। पर, भोजन की इच्छा थी। भूख के मारे बेहोश होने से पहले उसने स्वयं "एक चाय के प्याले के लिए एक हज़ार पौंड देने की" इच्छा प्रकट की थी। खून जैसे जैसे घटता जाता था, मेक्स्विनी के कलेजे, सिर, और अंग प्रति अंग में दर्द की वेदना बढ़ती जाती थी। उसके नेत्रों की ज्योति कम होने लगी और कानों से कम सुनाई देने लगा। स्त्री, बहिन और उसके भाई नित्य उससे मिलने जाते थे। उन्हें देख कर हृदय में वह बहुत ही दुःख अनुभव करता था कि, शीघ्रही अपने इन प्यारे सम्बन्धियों से विदा होजाना पड़ेगा। वह जानता था

कि वह धीरे धीरे मर रहा है। उसने परमपिता परमात्मा को धन्यवाद दिया, जिसने उसे मृत्यु की इतनी लम्बी तैयारी करने का अवसर दिया। सरकारी डाक्टर और दाइयां मेक्स्विनी को दिलासा देती थीं। डाक्टर उसके महान साहस की प्रशंसा तो करते थे, पर, उसके भूखा रहने को बुरा बताते थे। वे मेक्स्विनी के व्रत को बेवकूफ़ी कहते थे। मेक्स्विनी को कभी कभी उनके उपदेशों से बड़ा कष्ट होता था। डाक्टर उसे खूब समझाने की कोशिश करते थे कि भूखा रहना ठीक नहीं है, यह सरासर मूर्खता है। वे कहते थेः— 'तुम अगर मर जाओगे तो तुम्हारी स्त्री और घरके लोगों को कितना कष्ट होगा; दो वर्ष कारावास भुगतने के बाद तुम और भी बलशाली होकर देश की आज़ादी के लिए कार्य्य कर सकोगे। तुम्हारे इस उपवास से कुछ लाभ नहीं है।' मेक्स्विनी ये बातें सुन कर रुष्ट होता था।

उपवास का दारुण कष्ट भोगने पर भी मेक्स्विनी को अपने उन वीर साथियों की याद न भूलती थी, जो कार्क-जेल में क़ैद थे। वह नित्य उनके विषय में पूछता था और नित्य उनके लिए प्रार्थना करता था। वह कहता था कि, देश में जबतक ऐसे वीर बालक और योद्धा हैं तबतक आयरिश प्रजातंत्र के लिए कुछ भय नहीं है। वह कहता थाः—"मिलाओ इन आयरिश लड़कों को शिक्षित अंग्रेज़ों से, तब तुम्हें उनका मूल्य मालूम होगा।" वह अपने धर्म की प्रशंसा करता था, और कहता था कि, इन दिनों में मेरा धर्म मेरा कितना सहायक हो रहा है। वह टोमस कर्टिन और अन्य नेताओं की प्रशंसा करते हुए कहता था कि, वे लोग कैसे महान योद्धा और कैसे कैथोलिक धर्म के कट्टर अनुयायी थे। उन्हीं नेताओं की तरह वह भी

वीरता पूर्वक लड़ा और उसी उद्देश के लिए भूखा मर गया।

मेक्स्विनी जिस दिन मरा, वह उसके उपवास का ७४ वाँ दिन था। क्षुधा की वेदना से जब वह बिल्कुल बेहोश होगया तब डाक्टरों ने उसे कुछ खिलाया, यदि वे न खिलाते तो वह कुछ दिनों और जीवित रहता। वह वीर अन्त तक दृढ़ बनारहा। जो उसने सोचा वही किया। उसने जेल के फाटक ज़बर्दस्ती खोले, वह लड़ा और विजयी हुआ। उस समय लन्दन के "टाइम्स" समाचारपत्र ने लिखा था:—"उसने अपना साहस और व्रत खो दिया।" अंग्रेज सरकार अन्त तक हठीली बनी रही। मेक्स्विनी की मृत्यु के कुछ दिन पूर्व सरकार ने ज़बर्दस्ती उसकी दो बहिनों को जेल से बाहर निकाल दिया और फिर उन्हें उनका भाई नहीं दिखाया। यहां तक कि, उसके मर जाने पर सरकार उसका मृतक शरीर भी नहीं देना चाहती थी। अंग्रेज़ 'होम' मन्त्री मृतक शरीर देने के साथ यह शर्त कराना चाहता था कि, उसे सीधा कार्क ले जाना, डबलिन से लाश लेकर न जाना। अन्त में 'होम' मन्त्री ने बहुत सकुचाने के बाद मेक्स्विनी का शरीर दिया, पर होलीहेड स्थान में सरकार ने फिर हस्तक्षेप किया, उसका शरीर ले लिया और उसे एक जहाज पर लादकर कार्क पहुंचाया।

अन्तिम दर्शन

कार्क में आयरिश प्रजातंत्र-दल ने मेक्स्विनी का शरीर लिया, और "सिटी हाल" में उसे रखा। दूसरे दिन हज़ारों मनुष्यों की भीड़ शहीद मेक्स्विनी के अन्तिम दर्शन करने के लिए आई।

उस शहीद के मुंह पर से जब कपड़ा हटा दिया गया तो सब लोग पूज्य भाव से उस अमर देवता के अन्तिम दर्शन करने लगे। उसका मुर्दा चेहरा कुम्हला गया था, पर, पास जाकर देखने में कुछ चमकीला मालूम होता था। उसका मुख तांबे की मूर्ति सा दिखाई देता था। वह वास्तव में एक वीर योद्धा का मुख था। वह उन योद्धाओं में से था, जो कभी कभी पैदा होकर समस्त मानव-जाति के हृदय को जीत लेते हैं। मेक्स्विनी का मृतक शरीर, रविवार ३१ अक्टूबर को प्रजातन्त्र की भूमि पर "सेन्ट फ़िनबार सिमेट्री" में दफ़नाया गया। उसके मित्र टोमस कर्टिन की बगल में उसकी समाधि बनाई गई। शहीद मेक्स्विनी का नश्वर शरीर अब संसार में नहीं है, पर आयरिश प्रजातन्त्र की नींव में उसके बलिदान से जमा हुआ पत्थर अब भी मौजूद है। आयर्लैण्ड में, जब तक उसके रक्त-बीज से लगा हुआ प्रजातन्त्र का पौधा हराभरा रहेगा तब तक उस अमर देवता की स्मृति संसार के लोगों के हृदय पर अङ्कित रहेगी।

'प्रताप पत्र-पुष्प' की तीसरी पुस्तक

तपस्विनी पार्वती देवी

प्रताप कार्य्यालय, कानपुर ।

'प्रताप पत्र-पुष्प' की तीसरी पुस्तक

तपस्विनी पार्वती देवी

मुद्रक तथा प्रकाशक,

सुरेन्द्र शर्म्मा

प्रताप प्रेस, कानपुर।

प्रथम संस्करण २५०० | सन् १९२५ | मूल्य तीन आना

'प्रताप पत्र—पुष्प'

इस पुस्तक—माला में एक वर्ष के भीतर, कम से कम १२ पुस्तकें प्रकाशित की जायँगी। 'प्रताप पत्र—पुष्प' के ग्राहक रजिस्टर में 'प्रताप' के नये और पुराने पर साल के जो ग्राहक अभी से नाम लिखा लेंगे, उन्हें, जब तक वे 'प्रताप' के ग्राहक बने रहेंगे, तब तक पौने मूल्य पर किताबें दी जायगी। ग्राहक रजिस्टर में नाम लिखाने के लिए, किसी फीस के देने की आवश्यकता नहीं है। शीघ्र ही 'प्रताप पत्र-पुष्प' के ग्राहकों में नाम लिखाइये।

ये पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं:—

गुलामी का नशा—युगान्तरकारी असहयोग आन्दोलन का, मौलिक नाटक के रूप में जीता-जागता चित्र। मूल्य ।≡) डा० म० अलग।

देश भक्त मेक्स्विनी—सशस्त्र स्वयं सेवकों का सङ्गठन कर देश में महाक्रान्ति का बीज बोते हुए, अँग्रेजों के जेलखाने में ७३ दिन के घोर उपवास में प्राण त्यागने वाले प्रसिद्ध आयरिश देश भक्त का जीवन चरित्र। मूल्य ।) डाक महसूल अलग।

तपस्विनी पार्वती देवी—असहयोग के युग में गांव-गांव और शहर-शहर में स्वराज्य का संदेश पहुँचाने के अपराध में २ वर्ष की कड़ी कैद की सजा पाई हुई तपस्विनी पार्वती देवी की जेल-कहानी (संक्षिप्त जीवन-चरित्र सहित, मुख पृष्ठ पर बढ़िया चित्र) मूल्य ≡) डा० म० अलग इसको पढ़ कर स्त्रियों की जेलों का हाल मालूम होगा।

ये पुस्तकें शीघ्रही प्रकाशित होंगी—

स्वाधीनता के पुजारी—सैकड़ों वर्षों के कठिन प्रयत्नों के बाद रूस की जारशाही का तख्ता उलट देने वाले प्रसिद्ध क्रान्तिकारियों के आत्म—चरित्रों का रोमांचकारी वर्णन।

क्रान्तिकारी राजकुमार—रूस के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी प्रिंस क्रोपट्किन का विस्तृत जीवन चरित्र।

हिन्दोस्तान गुलाम कैसे बना?—अर्थात् ब्रिटिश इण्डिया कम्पनी के पञ्जे में भारत वर्ष के फँसने की पाप-कहानी, एक अंग्रेज़ की जबानी। इस पुस्तक में अंग्रेजी राज के कारनामों का सच्चा चित्र खींचा गया है। पुस्तक हिन्दी साहित्य में एक दम नई चीज होगी।

तपस्विनी पार्वतीदेवी

'यदि मेरे कष्ट झेलने से भारत की स्वाधीनता की सुनहली उषा एक पल भी निकट आसके, तो मैं बड़े हर्ष से अपना जीवन देश के अर्पण करने को तैयार हूं।'

—पार्वतीदेवी

तपस्विनी पार्वती देवी का जन्म बैशाख शुक्ल ७ सम्बत् १९४६ को पश्चिमी पञ्जाब के कोट कमालिया नामक क़स्बे में हुआ था। देवी जी अपने चार भाइयों और तीन बहिनों में सब से बड़ी हैं। वे एक समृद्धशाली परिवार की पुत्री हैं। उनके घर में साहूकारे का काम होता था। उनके जन्म से पहले ही पिता के विचार आर्यसमाज को ओर झुक गये। उन्होंने अपनी प्यारी पुत्री को घर ही पर हिन्दी की प्रारम्भिक शिक्षा शुरू करादी। सम्बत् १९५२ में उनके और अन्य उत्साही मित्रों के उत्कट विद्या-प्रेम के कारण कमालिया में एक कन्या पाठशाला की स्थापना हुई। इसी पाठशाला में देवी जी प्राथमिक शिक्षा पा सकीं। सम्बत् १९५६ में उनको जालन्धर के कन्या-महाविद्यालय में भेज दिया गया। वहां वे १३ वर्ष की उम्र में मिडिल की परीक्षा में उत्तीर्ण हुईं और उन्होंने एक स्वर्ण-पदक प्राप्त किया। इससे पहले महाविद्यालय में केवल एक ही बालिका ने और इतनी शिक्षा पाई थी। इसी बीच में देवी जी के घर की स्थिति में कुछ उलट फेर होगया। बार के इलाक़े में दो-ढाई हजार वर्ष की पुरानी बस्ती के खेड़े के पास सरकार ने एक थाना बना दिया। देवी जी के पिता जी ने भी वहाँ जाकर डेरा जमाया। ज़मीन ठेके,

और दो साल के बाद मकान बना लिया। सम्वत् १९५२ से उनका समस्त-परिवार इस नये स्थान डिजकोट में आकर रहने लगा। उसी वर्ष लायलपुर की बस्ती बसने लगी। वहां पर भी बहुत सी ज़मीन देवीजी के पिता ने लेली। कन्या-महाविद्यालय से लौटकर देवीजी ३ वर्ष तक डिजकोट में रहीं। भादों सम्वत् १९६२ में १६॥ वर्ष की उमृ में उनका विवाह गुजरात (पञ्जाब) के डाक्टर मिलखी राम जी के साथ होगया। उनके कस्बे में अधिक समय से क़स्बे के अन्दर ही विवाह करने की प्रथा है। उस तङ्ग दायरे के बाहर विवाह-सम्बन्ध करने का विचार लोगों में नहीं था। देवी जी के पिता की यह प्रतिज्ञा थी, कि वे अपनी किसी भी पुत्री का विवाह शहर के अन्दर न करेंगे। यही विवाह उस छोटे क़स्बे में सब से पहला विवाह था, जो उस तङ्ग दायरे के बाहर किया गया। सुधार के इस नये आदर्श में हिन्दू समाज के लिए भी एक महत्वपूर्ण बात थी। इससे पहले आर्यसमाज में केवल दो विवाह-सम्बन्ध जाति-बन्धन तोड़ कर हुए थे। यह तीसरा विवाह था। वर, भाटिया युवक थे और बधू अरोड़ा थीं। शहर में इसका, छिपे छिपे विरोध भी हुआ। पर, इस विवाह ने जिस महत्वपूर्ण आदर्श को भारतीय समाज के सम्मुख रखा था, वह अबतक उस शहर में सम्मान की दृष्टि से स्मरण किया जाता है।

डाक्टर मिलखी राम क्वेटा में किसी फौजी नौकरी पर काम करते थे। उनका लम्बा कद, गोरा रङ्ग, सुडौल शरीर, भरा हुआ हँसमुख चेहरा और साहसी किन्तु अत्यन्त मधुर स्वभाव था। पहलेपहल एक हृष्ट-पुष्ट कन्या का जन्म हुआ। किन्तु, वह डेढ़ साल की होकर चल बसी। विवाह हुए, अभी ढाई वर्ष भी न हुए थे। सम्वत् १९६४

के माघ का महीना था। क्वेटा से आगे बिलोचिस्तान की एक 'निर्जन-पहाड़ी' में शेखवासल के स्टेशन पर डाक्टर साहब काम कर रहे थे। एक दिन तीसरे पहर डाक्टर साहब स्टेशन पर टहल रहे थे। पहाड़ के मोड़ के पीछे से गाड़ी आ रही थी। इधर एक गाय लाइन के भीतर खड़ी थी! उसे बचाने के लिए जैसे ही डाक्टर साहब आगे को झुके, वैसे ही गाड़ी एक दम मोड़ से आगे आ निकली। एञ्जिन के छज्जे में उनका ओवरकोट उलझ गया और वे घायल होकर लाइन के किनारे गिर पड़े। गाय बच गई, पर, डाक्टर साहब के बचने की आशा न रही। स्टेशन से उठा कर उन्हें बँगले पर लाया गया। उनके आदे-शानुसार ही कम्पोण्डर ने मरहम-पट्टी बाँधी; किन्तु, घावों से शरीर चलनी होचुका था। दो घण्टे ही में डाक्टर साहब के प्राण-पखेरू उड़ गये! उस समय इस तपस्विनी देवी के पास पाँच वर्ष के एक छोटे भाई के अतिरिक्त और कोई न था। उन्हें स्वयं ही इस शोक-समाचार का तार अपने पिता और श्वसुर के पास भेजना पड़ा था।

एक हिन्दू महिला के जीवन में वैधव्य के घोर दुःख से बढ़ कर और कोई दुःख नहीं। बिलोचिस्तान के पर्वतों की बीहड़ और सुनसान घाटियों के बीच, उस निर्जन स्थान में अमावस्या की महा भयानक अँधेरी रात्रि तपस्विनी पार्वती देवी के लिए कैसा विकट रूप धारण कर रही थी, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। पूज्य पति देव का सदा के लिए वियोग तथा वैधव्य का मर्मभेदी वज्र-प्रहार दुःखिनी बाला के हृदय में रह रह कर वेदना पहुँचा रहा था। शोका-कुल होकर पहले तो विधवा ने अपने जीवन का अन्त कर देने के लिए तलवार उठाली, पर छोटे भाई और गर्भस्थ बालक

का ध्यान आजाने से हाथ रुक गया। उन्होंने मकान को अन्दर से बन्द कर लिया और तलवार हाथ में लिए हुए मृतक पति देव के सिराहने बैठ कर रात बिताई। दूसरे दिन दोपहर तक क्वेटा से कई आदमियों के आने पर स्व० डाक्टर साहब का अन्त्येष्टि संस्कार हुआ। स्व० डाक्टर साहब का सब लोगों से बड़ा प्रेम था। उनकी मृत्यु पर हिन्दू, पठान, बिलोची आदि सभी रोते थे।

वैधव्य के बाद से तपस्विनी पार्वती देवी अपने पिता के यहाँ रहती हैं। कई बार उनको विधवा-विवाह के लिए प्रोत्साहित किया गया। पर, वे अपने प्राचीन भारतीय आदर्श से कभी तिल भर भी नहीं डिगीं। उन्होंने आजन्म स्वाध्याय और समाज-सेवा करने का पवित्र व्रत धारण किया। देवी जी का पठन-पाठन जारी रहा। अपने शहर के गोस्वामी यशोदानन्दन से उनको संस्कृत पढ़ने तथा सदाचार से अपने आदर्श पर डटे रहने की शिक्षा मिली। सम्बत् १९७० से ७२ तक देवी जी दिल्ली की आर्य्य-कन्या मिडिल पाठशाला में प्रधानाध्यापिका रहीं। वहां, उन्होंने संस्कृत की प्राज्ञ परीक्षा पास की। जालन्धर में पढ़ने के समय ही से उनकी अभिरुचि आयुर्वेद की ओर होगई थी। कविराज निवारण चन्द्र भट्टाचार्य्य से दिल्ली में उन्हें आयुर्वेद में आगे बढ़ने का अवसर मिला। फिर कुछ समय तक वे जालन्धर में रहीं, और वहीं शास्त्री परीक्षा की तैयारी शुरू करदी। पर, अचानक बीमार होजाने के कारण वे परीक्षा न दे सकीं। दूसरे वर्ष अपने भाई श्रीयुत जयचन्द्र विद्यालङ्कार के कहने से देवी जी ने परीक्षा देने का विचार छोड़ दिया। और आयुर्वेद का अध्ययन जारी रखते हुए भारतीय इतिहास और राजनीति का अध्ययन आरम्भ कर दिया। सत्याग्रह आन्दोलन के समय वे बटाला-

कन्या-पाठशाला में प्रधानाध्यापिका थीं। ६ अप्रेल के दिन एक जोशीला भाषण देने के अपराध में उन्हें पाठशाला छोड़नी पड़ी, और वे अमृतसर आगईं।

धीरे धीरे देवी जी अमृतसर के राजनैतिक जीवन में भाग लेने लगीं। डाक्टर किचलू के कहने से वहां वे नव स्थापित स्वराज्य-आश्रम की सदस्या होगईं। अपने भाई श्रीयुत जयचन्द्र विद्यालङ्कार के अनुरोध से उन्होंने अपनी इकलौती लड़की को, जो पूज्य पतिदेव की मृत्यु के बाद पैदा हुई थी, सरकारी स्कूल से उठा लिया। भविष्य में उस लड़की की शिक्षा का भार जयचन्द्र जी के ऊपर छोड़ कर वे निश्चिन्तता से देश-सेवा में लग गईं।

अमृतसर के स्वराज्य-आश्रम में डाक्टर किचलू के अतिरिक्त श्रीयुत ज्योतिषचन्द्र घोष और श्रीयुत नन्दगोपाल भी थे। घोष महाशय वे ही महात्मा हैं, जो महायुद्ध के समय नज़र बन्द कर दिये जाने पर तीन वर्ष तक बरहामपुर के पागलखाने में लोथ की तरह पड़े रहे थे। श्री० नन्दगोपाल भी इसी कोटि के महात्मा हैं। वे स्वदेशी आन्दोलन के सम्बन्ध में १० वर्ष के कालेपानी की सज़ा भुगत चुके हैं। डाक्टर किचलू का विचार था कि स्वराज्य-आश्रम में एक आश्रम स्त्रियों के लिए भी रहे। इसी विचार से उन्होने तपस्विनी पार्वती देवी को इसमें शामिल किया था। श्रीमती किचलू भी इसमें सम्मिलित होतीं, पर यह विचार पूरा न हो सका। देवीजी घर ही पर रहती थीं। पर, आश्रम की ओर से प्रचार-कार्य किया करती थीं। असहयोग आन्दोलन का ज़ोर था। पैर में फोड़ा होजाने के कारण देवीजी को पांच महीने तक चारपाई पर पड़ा रहना पड़ा। देश के इस आड़े समय में उन्हें अपनी इस प्रकार की निष्क्रियता बहुत अखरती थी। पञ्जाब-सरकार

ने स्वयंसेवक-संस्थाओं को ग़ैर क़ानूनी क़रार दे दिया था। जब लाला लाजपतराय पर स्वयंसेवकों के लिए अपील करने के कारण मुक़दमा चलाया गया, तब चारपाई पर पड़े ही पड़े देवीजी ने अपने नाम से एक अपील छपवा डाली। अगहन सं० १९७८ के आरम्भ में डाक्टर किचलू जेल चले गये थे और घोष महाशय बंगाल को प्रस्थान कर चुके थे। स्वराज्य-आश्रम के प्रबन्ध में गड़बड़ी होगई। इसलिए देवीजी अपने भाई श्रीयुत जयचन्द्रजी के मकान पर आगईं और प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अधीनस्थ भारतीय राष्ट्र-सेवक-मण्डल में भरती होगईं। उस समय से वे लाहौर ही में रहती थीं। वे महीने में २८ दिन दौरा करतीं और दो दिन को घर पर आठहरती थीं। पकड़े जाने के समय तक देवीजी रावलपिण्डी से रोहतक और डेरागाज़ी खां से गुरुदासपुर तक शहर-शहर और क़स्बे-क़स्बे में स्वराज्य का सन्देश पहुँचा चुकी थीं।

लाहौर में देवीज़ी एक वार पं० मदनमोहन मालवीय के दर्शनों को गईं। मालवीयजी ने उनसे कहा था कि' अपनी ऐसी दस हज़ार स्त्रियां तैयार करो, तब स्वराज्य मिलेगा। मालवीयजी के आदेश का, अगले ही दिन से, देवीजी ने अक्षरशः पालन करने का प्रयत्न किया। जहाँ वे जातीं, वहाँ ऐसी स्त्रियां तैयार करतीं, जो विदेशी कपड़े की दूकानों पर दृढता पूर्वक धरना देने का प्रण करें। स्त्री-दल का सुदृढ़ सघठन होजाने पर उनका विचार अमृतसर में उसी साल से धरना दिलवाने का था। इसी विश्वास से उन्होंने तीन प्रान्तीय सम्मेलनों में यह प्रस्ताव पास कराया कि देश आज्ञा-भंग (Civil Disobedience) के लिए तैयार है। देवीजी ने यह भी कहा कि यदि पुरुष इससे डरते हैं, तो स्त्रियों को यह काम हाथ में लेना पड़ेगा। राजनैतिक क्षेत्र में उन्हें काम करते

हुए २ ही वर्ष हुए थे, कि सरकार की शनि-दृष्टि उन पर पड़ी, और २०नवम्बर को गिरफ्तार करके ४ दिसम्बर १९२२को उन्हें २ वर्ष की कड़ी क़ैद की सज़ा दे दी गई। अदालत में देवीजी ने जो बयान दिया था, उसे हम इस पुस्तक के अंत में दे रहे हैं। जेल से लौट कर उन्होंने अपनी जेल-कहानी स्वयं लिखी है, और 'प्रताप कार्यालय' को प्रकाशित करने के लिए कृपा पूर्वक प्रदान की है। इसके लिए हम देवीजी के प्रति सम्मान के साथ कृतज्ञता प्रकट करते हुए हिंदी-संसार के सामने उनके जेल-जीवन की पुण्य-गाथा उन्हीं के शब्दों में रखने का साहस करते हैं।

तपस्विनी पार्वती देवी का जीवन त्याग और तपस्या का एक आदर्श जीवन है। देश की गुलामी उन्हें काँटे की तरह खटकती है। वे अपने आत्मत्याग के बल पर देश की आज़ादी की सुनहली किरण का आगमन देखना चाहती हैं। भगवान् करे, देश में देवीजी ऐसी अनेक देवियां भारतीय उत्थान के लिए सच्ची लगन के साथ आगे बढ़ें।

सुरेन्द्र शर्मा

मेरी जेल-कहानी

निवेदन

आज से चार साल पहले जेल-जीवन की कहानियों का लिखा जाना हमारे साहित्य के लिए एक नई बात थी। उन कहानियों से बिलकुल नये विषय का परिचय मिलता था। किन्तु, आज बीसियों कहानियां प्रकाशित हो चुकी हैं, और हज़ारों योद्धा जेलों का प्रत्यक्ष अनुभव कर चुके हैं। जब तक किसी राजनैतिक कैदी पर विशेष अत्याचार न किये गये हों, उसके जेल-जीवन में कोई विशेष घटनाएँ न घटी हों, तब तक उस की कहानी विशेष रोचक और आकर्षक नहीं होती। "भारतीय देश भक्तों की कारावास कहानी", उपेन्द्र बाबू की "निर्वासित की आत्म-कथा" और सान्याल के "बन्दी-जीवन" में अभी बड़ा आकर्षण है। किन्तु, महात्मा जी की यरवदा-जेल की कहानी को शायद अब उतने लोग नहीं पढ़ते, जितने "मेरे जेल के अनुभव" पढ़ चुके हैं। मेरी जेल-कहानी बहुत बड़े कष्टों की कहानी नहीं है, और न, उसकी भूमिका बड़े भारी साहसिक कार्य्यों ही से बनी है। फिर भी मैं आज उसे लिखने बैठी हूँ, केवल इस लिए, कि स्त्रियों की जेलों का पता अभी तक जनता को बिलकुल नहीं मिला, और उनके विषय में लोगों में अभी बड़ी उत्सुकता-पूर्ण जिज्ञासा है। बहुत से लोगों को यह भी मालूम नहीं, कि स्त्रियों को कैसे गिरफ्तार किया जाता है, जेलों में कहां और किस प्रकार रखा जाता है, किस प्रकार एक जगह से दूसरी जगह बदला जाता है। मुझसे पहले दो भारतीय देवियां राजनैतिक अपराधों में जेल

की अच्छी सज़ा पा चुकी हैं। एक तो आन्ध्र-देश की दुब्बम्मा गारू गण्टूर-सत्याग्रह में साल भर के लिए जेल भेजी गई थीं, और दूसरी बंगाल की श्रीमती दुईकोड़ीबाला देवी शस्त्र रखने के अपराध में दो साल के लिए। इन दोनों बहिनों ने अपना अनुभव या तो जनता के सामने रखा नहीं, या रखा है, तो उसका हिन्दी-अनुवाद नहीं हुआ। इसीलिए आशा है, कि मेरा यह प्रयत्न क्षन्तव्य समझा जायगा। इसे देर में प्रकाशित करने के लिए भी क्षमा चाहती हूं। बाहर आते ही मुझे फिर से काम में लगना पड़ा। फिर जेल ही में यह निश्चय हो चुका था, कि मेरी जेल की कहानी मेरे भाई की लेखनी से लिखी जायगी। वह बेचारा आज कल कार्य के बोझ से बहुत दबा रहता है, यह भी देर का बड़ा कारण है। इस कहानी की सब बातों के लिए मैं ज़िम्मेदार हूं, पर, इसकी भाषा और लेखनशैली का पूरा दायित्व मेरे भाई पर है। विचार हम दोनों के साझे हैं।

—पार्वती देवी

गिरफ्तारी

२० नवम्बर सन् १९२२ को जब मुझे गिरफ्तार किया गया, तब मुझे भी इन बातों का कुछ पता नहीं था। दिन के डेढ़ बजे सफ़ेद कपड़े पहने हुए तीन व्यक्ति हमारे घर पहुंचे, और मुझे बाहर बुलाकर नाम-धाम पूछने के बाद उन्होंने अपने साथ चलने को कहा। यह पूछने पर, कि कहाँ जाना होगा, उन्होंने फरमाया कि अभी पुलिस के सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब के यहां जाना होगा। पीछे मालूम हुआ, कि इनमें से एक आदमी का नाम राय साहब ब्रजलाल था, यह सी० आई० डी० में डी०एस० पी० था। रायसाहब ने मुझे गिरफ्तार करने के लिए अवसर बहुत अच्छा ढूंढ़ा था। १८ तारीख को रोहतक में प्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन हो चुका था, १९ को मैं घर पहुँची थी। लाहौर के सभी नेता रोहतक से अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को बैठक में शामिल होने को कलकत्ते चले गये थे। यदि रायसाहब २० तारीख़ को सायंकाल आते तो मैं प्रचार के लिए बाहर चली गई होती। दोपहर का समय उन्होंने खूब अच्छा चुना। भैया पढ़ाने के लिए कालेज गये हुए थे। कोठी में एक-दो आदमी थे, बाकी सब स्त्रियाँ ही थीं। बातचीत सुन कर बहिन पार्वती जी (ला० लाजपत राय जी की सुपुत्री) तथा उनकी माता भी बाहर आगई थीं। मैंने भैया को बुलवा भेजा और उनके आने से पहले जाने से इन्कार किया। रायसाहब ने बहुत यत्न किया, पर व्यर्थ हुआ। उन्होंने कहाः—'आप व्यर्थ देर करती हैं, उनके आने तक तो मैं आपको वापिस भी छोड़ जाऊंगा।' मैंने कहा कि मैं अपरिचित आदमी के साथ कभी न

जाऊंगी । तब आप अभिमान से कहने लगेः—'आपको मालूम हो. मैं रायसाहब हूँ।' मैंने कहा कि राय साहब हो,चाहे उसके दादा हो,भैया के आये बिना मैं कभी न जाऊंगी। हमने टेलिफोन पर कांग्रेस के दफ्तर को खबर देने का यत्न किया। रायसाहब छाया की तरह मेरे पीछे पीछे रहा, पर, वहाँ तो फोन् में करेण्ट ही नदारद् थी ! यह इन्तज़ाम भी पहले ही हो चुका था।

बीस मिनट में भाई आ गये। उन्होंने आते ही पूछा-क्या मामला है। राय साहब ने कहा—इन्हें साहब के पास ले जाना है। भैया ने पूछा—आपके पास क्या अधिकार (Authority) है ? तब रायसाहब ने वारण्ट दिखाया। मेरठ का वारन्ट था। भैया ने फिर पूछा—आप इस समय सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस के दफ्तर पर ले जाना चाहते हैं ? राय साहब ने कहा—हाँ, पहले कोतवाली चलना होगा, पर, अगर वे वहाँ न मिले, तो बँगले पर जाना होगा। यह तो निश्चित था, कि मेरठ जाना होगा, पर जितने सज्जन वहाँ इकट्ठे हो गये थे, सब ने रायसाहब की बातों से यही समझा, कि एक रात मुझे कोतवाली में काटनी होगी। असहयोगी खुद सच बोलते हैं, और इसीलिए वे इस भ्रम में रहते हैं, कि समूची दुनियाँ सच ही बोलती है।

राय साहब के आने से दस मिनट पहले ही हम सब स्त्रियाँ बाज़ार से आई थीं। चलने-फिरने की गर्मी के कारण गर्म कपड़े निकाल दिये थे, केवल एक धोती और एक कुर्त्ता पहन रखा था। इसी हालत में मैं रायसाहब के तांगे पर बैठगई। मेरे साथ ही वह बैठने लगा, तो मैंने एकदम फटकारा। तब एक सिपाही के साथ वह आगे की ओर बैठ गया। मेरे साथ हमारे किसी आदमी को नहीं

बैठने दिया । बहिन पार्वती जी, भैया और एक अन्य सज्जन दूसरे तांगे पर सवार हुए। रायसाहब ने अपने तांगे को ऐसा सरपट दौड़ाया, कि पिछला तांगा मुश्किल से पीछा कर सका। कई मोड़ों पर उसके लिए यह जानना कठिन हो गया, कि हमारा तांगा किधर गया है। हम लोग स्टेशन पर आ निकले। कलकत्ता-मेल हमारे लिए दस मिनट अधिक रोका गया था, पर फिर भी हम देर में पहुँचे। हरद्वार पैसेञ्जर से जाना तय हुआ। रायसाहब के तुच्छ झूठ पर सब को बड़ा क्रोध आया। बहुत कुछ कहा-सुना। गाड़ी चलने में आध घण्टे का समय था। एक सज्जन व्यर्थ ही घर से बिस्तर लेने के लिए दौड़े। एक सैकण्ड क्लास के डब्बे में मुझे बैठा दिया गया। बहिन पार्वती जी और भैया भी साथ थे। सिपाहियों को वहां छोड़ कर रायसाहब भी अपना बिस्तर लेने चला गया।

भैया का विचार पहले मेरे साथ चलने का हुआ, पर, फिर सोचा कि कब तक साथ रहेंगे। अन्त को इन्हीं लोगों के साथ करना होगा। यह निश्चय रहा, कि घर का यथोचित प्रबन्ध कर के वे दूसरी गाड़ी से आयँगे। गाड़ी चलने से पहले दोनों जने उतर गये। अब मुझे मालूम हुआ, कि मेरे और रायसाहब के सिवा गाड़ी में कोई न होगा। इस दशा में जाना मुझे कभी स्वीकृत न था। भले ही इसमें कोई स्पष्ट खतरा न रहा हो, दूर की आशंकाओं का ख्याल करना असंगत जँचे, लेकिन मैं एक ऐसा दृष्टान्त क्यों तैयार होने दूं, जिससे भविष्य में किसी अन्य अबला कैदिनी को हानि होने की सम्भावना हो? मैंने इस विषय में बहुत कुछ कहा और गाड़ी से उतरने लगी, पर, गाड़ी चल चुकी थी। व्रजलाल दरवाजा रोककर खड़ा होगया। यह

गलती हुई, कि पहले, बिना इस बात का विचार किये हीं गाड़ी में बैठ गई।

अपनी भारतीय बहिनों की सूचना के लिए मैं यह बतला देना चाहती हूँ, कि पुलिस और जेल के नारकीय जीवों में वे ही बहिनें जाने की हिम्मत करें, जिन्हें अपनी मजबूती पर पूरा विश्वास हो। जो बाहरी दुनियां को अच्छी तरह समझ सकती हों, और जो कोई भी अवसर आने पर अपने सतीत्व की रक्षा के लिए प्राण तक न्यौछावर करने को हरदम तैयार हो सकें। मैंने अनुभव किया, कि परीक्षा का समय उपस्थित है, और शीघ्र अपने को इसके लिए तैयार कर लिया। व्रज-लाल से कह दिया, कि मैं कुछ भी कर लूंगी, किन्तु इस दशा में उसके साथ न जाऊंगी। उसे मालूम हो गया, कि यह कोरी शाब्दिक धमकी नहीं है; हक्का बक्का होगया, हाथ-पैर जोड़ने लगा। उसने अमृतसर से न जाने क्या टेलीफोन किया। लाहौर रेलवे-पुलिस ने हमारे घर फोन किया, कि मै रास्ते में उतर गई हूँ और मेरा बिस्तर-कपड़ा जल्द भेजो। मेरे उतरने की नौबत नहीं आई, एक आया हमारे साथ गाड़ी में बैठा ली गई थी।

सुबह चार बजे गाड़ी सहारनपुर पहुँची। व्रजलाल ने एक बार अपना कपड़ा मुझे देने की उदण्डता की, जिस पर मैंने घृणा पूर्वक निषेध किया। मैंने कांग्रेस के प्रचार-कार्य में दौरे पर रहते हुए भी कभी पराया कपड़ा नहीं छुआ था, तो इस घृणास्पद व्यक्ति से कपड़ा क्यों लेने लगी? मुझे पहले यह ख्याल न था, कि जिस हिन्दू के अपनी माँ-बहिन हो, वह सी० आई० डी० में जाकर हिन्दू स्त्रियों के नाज़ुक भावों को समझने योग्य भी नहीं रहता। सहारनपुर स्टेशन पर कुछ लोग इकट्ठे हो गये, पूछने लगे—'क्या ये रात भर एक ही कुरते

में रहीं ?' ब्रजलाल बोल पड़ा, 'नहीं, मैंने अपना कम्बल दे दिया था।' इतनी अनुनय-विनय करने के बाद, इतना हाथ-पैर जोड़ने और क्षमा मांगने के बाद एक सी० आई० डी० का अफसर भी इतना ढीठ होसकता था, इसकी कल्पना भी मैं नहीं कर सकती थी। मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। एक दम मेरे मुंह से निकला—'कुत्ते, तुझे झूठ बोलते शर्म नहीं आती।' सारे रास्ते में मुझे उसके साथ इसी प्रकार का व्यवहार करना पड़ा, और मुझे विश्वास है, कि वह सब अपनी रक्षा के लिए आवश्यक था। उस जैसे आदमी के लिए इसमें कुछ भी अनुचित न था। *

रात के ९ बजे लाहौर से जो बाम्बे-मेल चलती है, वह पांच बजे सहारनपुर पहुँचती है। इसी में पुलिस का आदमी मेरा बिस्तर लाया था। मेरठ को इसी गाड़ी में जाना था। पौ फटने से पहले ही मेरठ छावनी की स्टेशन पर पहुँचे, वहां से एक मोटर हमें जेल में छोड़ आई।

मेरठ जेल में

यहां आकर देखा, कि स्त्रियों के लिए जेल में कैसा प्रबन्ध है। मेरठ की जेल एक पहले दर्जे की जिला-जेल है। जेल के अन्दर स्त्रियों के लिए एक अलग घेरा है और पुरुषों के लिए अलग। इस घेरे के बाहर, अन्दर दोनों तरफ ताला लगा रहता है। जेलर के नीचे, पुरुषों की जेल पर जिस प्रकार एक दारोगा रहता है, उसी प्रकार स्त्री-जेल के लिए एक जमादारिन रहती है। जनाने घेरे के अन्दर का ताला वही लगाती है, और बन्द कर लेने के बाद दीवार के ऊपर से जेलर

* खेद है, इस कहानी के छपने से पहले, हाल में, रायसाहब ब्रजलाल का देहान्त होचुका है।

के पास चाबियां फेंक देती है। जेलर या डिप्टी जेलर या डाक्टर जब अंदर आते हैं,तब जमादारिन को साथ लेकर ही आने पाते हैं। इसी प्रकार जेल के अंदर स्त्रियों के परदे का पूरा इन्तज़ाम है, किन्तु उनकी इज्ज़त की रक्षा का कैसा इन्तज़ाम है, इसका अनुभव अभी मुझे करना था।

स्त्री-घेरे की बारकों में १६, १७ कैदिनें थीं। हवालात का घेरा इन बारकों से अलग था, जिसमें मैं अकेली बंद रहती थी। वह घेरा एक तंग लम्बा कमरा था, जिसमें मिट्टी की छः खटियाँ बनी थीं, और आगे थोड़ासा आंगन, चारों तरफ दीवार, और दरवाज़े के बाहर जमादारिन का ताला था। इसी दशा में मेरा सब दिन बीतता था। मैं शौच, स्नान आदि के लिए अपनी बारक से बाहर निकलने पाती और दूसरी स्त्रियों से मिल-जुल सकती थी। पन्द्रह दिन तक मैं इसी हवालात में रही। इन्हीं दिनों में मुझे जेल-जीवन का काफी अनुभव हुआ।

मुझे जेल में प्रविष्ट हुए, आधा घण्टा भी न हुआ था कि डाक्टर साहब तौल लेने आ पहुँचे। नायब-जेलर साथ थे। मेरा नाम-धाम सब पूछा गया। नायब-जेलर वहाँ से मुझे दफ़्तर में ले गया, और फिर "आपका नाम, बाप का नाम" पूछना शुरू किया। मैंने कहा, कि अभी तो पूछ कर आये हैं। इसी बीच में सुपरिण्टेण्डेण्ट आया, और बड़ी पेंठ के साथ उसने फिर से वही बात पूछना शुरू किया। नाम पूछा, तो मैंने कहा—वारण्ट में देख लो। उसने कहा—"वारण्ट में तो देख ही लेंगे, तुम क्या नहीं जानतीं?" मैंने कहा,-"इस तरह बतलाने के लिए नहीं जानती।"

खीझ कर उसने नायब जेलर को हुक्म दिया, कि वह मुझे मेरे वार्ड में ले जाय। वहां पहुँचा कर उसने मेरा हुलिया

लिखा, और अँगूठे का निशान देने को कहा। मैंने कहा, कि अँगूठे का निशान तब तक न दूंगी, जब तक अपने लोगों से मालूम न कर लूं, कि इस सम्बन्ध में क्या नियम है। जेलर से उस दिन मैंने पढ़ने को गीता मांगी। वह तो न मिली, पर रामायण मिल गई। दूसरे दिन सवेरे सुपरिन्टेन्डेन्ट ने जेलर, दोनों नायब जेलरों तथा एक जमादार के साथ मेरे कमरे पर चढ़ाई की। वह आते ही मुझे डपट कर बोला—'हाथ पकड़ कर अंगूठा लगवा लो।' मैंने कहा—खबरदार, जो किसी ने मुझे हाथ लगाया! कुछ बक-झक कर सुपरिन्टेन्डेन्ट चला गया। उसने मेरे हाथ से रामायण छिनवा ली। उस दिन के बाद से उसे कभी मेरे निरीक्षण का शौक़ नहीं हुआ। मैंने भी ऐसा बदमिजाज सुपरिन्टेन्डेन्ट और नहीं देखा। नायब जेलर ने कुछ देर बाद आकर भले आदमियों की तरह बात करना शुरू किया और बताया, कि जेल में अंगूठे का निशान खाली क़ैदियों ही से नहीं, प्रत्युत, हवालातियों और मिलाई वालों से भी लिया जाता है। मैंने कहा कि पहले रामायण लौटा दो। उसके रामायण लौटा देने पर मैंने अंगूठा लगा दिया। २२ को शाम को मेरे भाई भी मुझ से मिले। कुछ ही दिनों में जेल के अन्दर की हालत भी आंखों के सामने आने लगी। एक गर्भवती स्त्री को दो मास से ज्वर आता था। एक दिन जेलर के आने पर उसने मूली खाने को मांगी। उत्तर में, उस स्त्री के कथनानुसार, उस पशु के मुंह से जो शब्द निकले, उन्हें दुहराना या लिखना मेरे लिए असम्भव है।

मुकदमा

२४नवम्बर को मेरे मुक़दमे की पहली तारीख थी। मुक़दमा जेल ही के जनाने वार्ड में हुआ। चौधरी रघुवीरनारायण सिंह

और मेरे नाम इकट्ठे ही वारण्ट निकले थे। वे मेरठ में रहने से जल्द पकड़े गये, मैं ज़रा देर में हाथ आई। उनका मुक़दमा कचहरी में होता था, मेरा जेल में। बीस आदमियों को अन्दर आने की इजाज़त मिली। उन दिनों लोगों में अपूर्व उत्साह था। एक बुढ़िया मुसलमानी कई कोस दूर गाँव से चल कर आई थी। एक सन्यासिनी भी उपस्थित थी। जेल के दरवाजे पर पुलिस वालों ने बुढ़िया से डांट कर पूछा—बुढ़िया, कहां जायगी? बुढ़िया बोली—कहां जाऊँगी? जहाँ ये सब लीडर जायंगे, वहीं मैं भी जाऊँगी।

मुझे जब अपनी बारक से बाहर लाया गया, तो फीमेल (जनाने) वार्ड के घेरे में दो काले कम्बलों पर सब सज्जन बैठे थे। सी०आई० डी० के गवाह एक तरफ थे। मजिस्ट्रेट, पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट और कोर्ट इन्सपेक्टर कुर्सियों पर बैठे थे। उन्हें छोड़ कर बाकी सभी उठ खड़े हुए। मै भी उनके साथ ही कम्बल पर जा बैठी। पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट मि० विलियम्सन की गवाही शुरू हुई। मेरठ में ५ अक्टूबर को मैंने भाषण दिया था, मैं ६ को हापुड़ में और ७ तारीख़ को फिर मेरठ में बोली थी। इनमें से अन्तिम दोनों भाषणों के आधार पर १२४ अ और १५३ अ के अपराध मुझ पर लगाये गये थे। जिसे स्वयं अपने अपराध स्वीकार हों, उसके सामने इन गवाहों के बँधे हुए जवाबों की कवायद बड़ी मनोरञ्जक मालूम होती थी। पुलिस-कप्तान अगले रोज़ विलायत जाने को थे। उनकी गवाही हो चुकने पर, मुझसे जिरह के लिए कहा गया, मैंने गवाही की नकल मांगी। नकल देना तो स्वीकार हुआ, पर कहा गया कि जिरह अभी कर लो। मैंने कहा—नकल देखे बिना मैं अभी जिरह कैसे कर सकती हूँ? मजिस्ट्रेट जानता था,

कि मैं पीछे भी कुछ पूछने की नहीं हूँ। उसने पुलिस-कप्तान को रोकने की कुछ जरूरत न समझी।

सात गवाह और थे, छः पुलिस के और एक हापुड़ के जमींदार। एक बंगाली अनुवादक को छोड़कर बाकी छहों मुसलमान थे। मेरे मेरठ के भाषण देते समय एक मुसलमान सज्जन सभापति थे। सी० आई० डी० के सब इन्स्पेक्टर मुहम्मद हुसैन ने उस सभा में उपस्थित होकर रिपोर्ट लेने की गवाही दी। सभापति का नाम पूछा गया, तो कहा गया, कि जगद्गुरु शंकराचार्य्य थे! वास्तव में जगद्गुरु उस रोज़ देहली में थे। इस से मैंने कब इन्कार किया था कि मेरे भाषणों में राजद्रोह था? राजद्रोह था और जान बूझ कर था। पर, इन अधपढ़े लोगों की दी हुई रिपोर्ट एकदम उपहासास्पद थी। मेरे मुंह से ऐसे अरबी-फारसी के शब्द निकले हुए बताये गये, जिनका अर्थ मैं अब तक नहीं जानता। रिपोर्ट में यह भी कहा गया कि मैंने एक भाषण में द्रोपदी को पांडवों की मां कहा था! और एक में जलियांवाला बाग़ में जनरल डायर द्वारा स्त्रियों की बेइज़्ज़ती की बात कही थी। मतलब यह है कि न्याय का नाटक बड़ा मनोरञ्जक था। तीन घंटे में सब निपट गया। दूसरी पेशी तारीख़ २९ को पड़ी। उस दिन केवल मेरा बयान हुआ। मुझे बहुत कष्ट नहीं करना पड़ा। जेलर साहब हिन्दी अच्छी जानते थे। उन्होंने ठीक व्याख्यान की शैली में उसे पढ़ डाला। ४ तारीख़ को फैसला सुनाने का हुक्म हुआ।

मजिस्ट्रेट उसी दिन उदास दीखते थे, सम्भवतः ३० तारीख को एक दुर्घटना से उनको लात पर चोट आ गई, जिससे यह ख्याल हुआ कि शायद ४ तारीख को वे न आ सकें।* किन्तु, उस

* बाद में मजिस्ट्रेट कैसलस का देहान्त हो चुका है।

दिन उन्होंने घर से ही फैसला लिख भेजा। डिप्टी कलक्टर साहब फैसला सुनाने आये। कहते हैं, जेल के दरवाजे पर बड़ी भीड़ थी। डिप्टी साहब बुर्कानशीन औरत की तरह बन्द गाड़ी में आये। ठीक दरवाजे पर पहुँचने पर गाड़ी का दरवाजा खुला। मेरे पिता जी तथा एक-दो अन्य सज्जनों की उपस्थिति में फैसला सुना कर डिप्टी साहब उसी बन्द गाड़ी में वापिस चले गये।

प्रत्येक भाषण पर प्रत्येक अपराध में छः-छः महीने की सख्त सज़ा दी गई। ये सज़ाएँ एक दूसरे के बाद शुरू होती थीं। अर्थात् मुझे दो साल की कठिन क़ैद का दण्ड मिला।

मेरठ से आगरा

उसी समय जेलर साहब आ पहुँचे। वे कहने लगे—अब क़ैदियों के कपड़े पहनने होंगे। मैंने कहा—उसी के लिए तो आई हूं, लेकिन किसी के पहने हुए कपड़े नहीं पहनूंगी। मेरी पुस्तकें भी लेली गईं। दूसरे रोज़ सुबह क़ैदियों के कपड़े आ गये। क़ैदिनों को दुसूती का कुरता और कम्बल का कोट ठीक वैसा ही मिलता है, जैसा पुरुष क़ैदियों को। इसके सिवाय धारीदार दुसूती का ऊंचा तङ्ग लंहगा और चादर मिलती है। टाट और कम्बल, तसला-कटोरी और गले में गुलामी का तौक—यह सब सम्पत्ति ठीक पुरुषों की तरह मिलती है। मेरे लिए सब कपड़े नये बन कर आगये। मेरठ जेल में केवल दो दिन रहना हुआ। ६ तारीख की शाम को मुझे सूचना मिली—तैयार हो जाओ, चालान होगा। इन्स्पेक्टर जनरल का हुक्म आचुका था। साधारणतः जब क़ैदिनों का एक जगह से दूसरी जगह चालान होता है, तब जेल की

जमादारिन का साथ रहना ज़रूरी नहीं होता। उन्हें पुलिस के ईमान पर छोड़ दिया जाता है। मेरे सम्बन्ध में इन लोगों को मालूम था, कि लाहौर से आते समय किस तरह एक आया साथ आई थी। फलतः एक हवलदार और दो सिपाहियों के अतिरिक्त जमादारिन भी मेरे साथ चली। खूब अंधेरा हो जाने पर मुझे निकाला गया। मेरठ शहर जेल से चार मील पर है। पर, हमें शहर न जाना था। छावनी-स्टेशन से आये थे, वहीं जाना था। आधी रात को गाड़ी ग़ाज़ियाबाद में बदली, और सुबह तीन बजे राजामण्डी स्टेशन आगरा पहुँचे। साधारणतः जेलें सुबह होने से पहले नहीं खुलतीं, पर, उस दिन आगरा-सेन्ट्रल जेल ने रात के तीन बजे ही अपने द्वार खोल कर मुझे शरण दी।

युक्तप्रांत की कांग्रेस ने तो मुझे अपने प्रान्त के दो ही ज़िले दिखाये थे, जेल के अधिकारियों ने एक बड़े हिस्से की सैर करादी है। किन्तु, जब जब मुझे जेल-यात्रा करनी पड़ी है, तब तब दो नियमों का खूब पालन हुआ है। एक तो यह, कि जमादारिन अवश्य साथ रहनी चाहिये, क्योंकि, उसके बिना अकेली पुलिस की रक्षा में, मैं यात्रा नहीं करती, और दूसरे यह कि खूब अंधेरा होने पर यात्रा होनी चाहिये, तथा दिन निकलने से पहले समाप्त हो जानी चाहिये। यहाँ तक कि जब मुझे रिहा किया गया, तब भी जेल के अधिकारी इन नियमों को नहीं भूले। रिहाई की आज्ञा शनिवार की रात को आचुकी थी, पर, इतवार की शाम को मुझे खबर दी गई। मैंने कांग्रेस के दफ्तर में जाने की इच्छा प्रकट की, पर, दारोगा ने सीधा स्टेशन पर पहुँचाया, और वहाँ से भी वह तब तक नहीं हटा, जब तक गाड़ी सीटी देकर सिगनल के पार नहीं पहुँच गई! यद्यपि पुलिस अब मेरे साथ न थी, और मैं अकेली जा सकती थी, तोभी

जमादारिन साथ दी गई, और बरेली में मेरे संबन्धियों से मेरी रसीद लेकर वह वापस गई।

आगरा

जिला-जेलों में ज़नाने घेरे के लिए कोई अलग अफसर नहीं होता, पर सेन्ट्रल जेल में एक पृथक लेडी जेलर होती है। आगरा में इन दिनों इस काम पर एक कलीन और धनी घर की आयरिश देवी, श्रीमती बोरास्टन थी, और उनके पति ही जेलर थे। सात दिसम्बर को सुबह छः बजे उन्होंने जेल के दफ्तर में दर्शन दिये, और मुझे बारक में पहुंचा दिया। आगरा जेल में केवल दो बारकें थी। जिनमें से प्रत्येक में करीब तीस तीस खटिया थीं। इन मिट्टी की कब्रों को यू० पी० की जेलों में सब खटिया कहती हैं, पर, मैं तो पलंग कहा करती थी। उन दिनों जेल में इतनी कैदिनें थी, जो एक ही बारक में समा सकती थी। पीछे मालूम हुआ, कि मेरठ जेल से जब मेरा चालान हुआ, तब यह रिपोर्ट भेजी गई थी, कि बहुत खतरनाक स्त्री है; इसे नियंत्रण में रखने के लिए खूब सख्ती करनी होगी। बारक में मेरे पहुंचने के दो घण्टे बाद ही इन्सपैक्टर जनरल भी वहां उपस्थित हुए। हवा में यह बात उड़ती हुई सुनी, कि वे भी लेडी जेलर का ध्यान उस मेरठ वाली रिपोर्ट की तरफ विशेष रूप से आकर्षित कर गये। किन्तु, मिसेज बोरास्टन कुछ स्वतंत्र तबियत की स्त्री थी। उन्होंने मेरे बारे से अपनी सम्मति खुद बनानी चाही, और कुछ दिन तक आश्चर्य से मुझे देखती रही। मुझे चरखा कातने की मशक्कत दी गई। मेरे टिकट में मेरी शिक्षा के खाने में लिखा था—निरक्षर ! जब लेडी जेलर को मा। कि मैं बारह साल तक कन्या-पाठशालाओं में

रह चुकी हूं, तब उसे बहुत ही आश्चर्य हुआ। जेल के प्रबन्ध और लिखने पढ़ने का बहुत सा काम वह मुझ से लेने लगी। श्रीमती बोरास्टन दयालु स्त्री थीं। २४ दिसम्बर को जब मेरे भाई पहली बार मुझे कैदिनि की हालत में देखने आये, तब वे सारे जेल के कैदियों और कैदिनों को बड़े दिन के उपलक्ष्य में तेल-गड़ के हलुवे की दावत देने का प्रबन्ध कर रही थीं। किन्तु, उनकी दया उसी तरह की होती थी, जैसी एक महाराजा की रैयत पर होती है, वह एक मनुष्य की हैसियत से मनुष्य पर दया न थी। अपनी कुलीनता का उन्हें बेहद अभिमान था। इस कारण उनकी दया दूसरी स्त्रियों को चाहे अनुकूल पड़े, पर, मुझे हमेशा वैसी न मालूम होती थी। दूसरे जेल के अफसर चाहे कितना ही करें, जेल के वास्तविक शासन में जमादारिनों और कैदी अफसरों का बड़ा हाथ रहता है। कोई दबाव और भय दिखलाकर मुझ से आदर पाने या पैसे वसूल करने की आशा करता, तो वह दुराशा ही होती। इसी कारण जमादारिन मुझ से बहुत नाराज़ थी। मेरे भाई मिलने आये, पर, उसे कुछ न मिला, क्योंकि मिलाई का दिन जेल के शासकों की जेबें गर्म होने का सर्वोत्तम अवसर होता है।

एक दिन रात को एक कैदिनि रो रही थी, मैंने राजा हरिश्चन्द्र की कथा सुनाकर उसे शान्त किया। जमादारिनि ने रिपोर्ट की, कि पार्वती रात के बारह बजे तक कैदिनों को इकट्ठा करके लेक्चर देती और भड़काती रही। दूसरे रोज (७ जनवरी) सुबह ही हाथ में बेंत लिए लेडी जेलर आ धमकी और आते ही चिल्लाकर कहने लगी—'बाहर निकलो शुअर! कौन कौन रात को लेक्चर सुना?' सब कैदिनें थर्रा उठीं, मैंने एक दम बाहर निकल कर पूछा—क्या बात है? मैंने उसे बतला

दिया कि व्याख्यान देनेकी बात सब झूठ है। किन्तु, उसका पारा चढ़ा हुआ था, दो घंटे तक उबल कर ठण्डा हुआ। उस दिन से लेडी जेलर का व्यवहार बदल गया। शायद उसी ने खुद ही मेरी बदली के लिए इन्स्पेक्टर जनरल को लिखा। पीछे उसे विश्वास हो गया, कि उसने जमादारिन के बहकाने में आकर मुझे समझने में गलती की थी। जमादरिन को बहुत डांटा-डपटा। मेरी बदली निश्चित हो चुकी थी। वह बहुत पछताई, पर अब क्या हो सकता था? यदि हम दो साल तक इकट्ठी रह पातीं, तो शायद वह हिन्दी और मैं गैलिक (आयलैंण्ड की भाषा) सीख जाती।

फतहगढ़

डिस्ट्रिक्ट जेलों को यदि शैतानी का स्कूल कहा जाय, तो सेन्ट्रल जेलों को कालेज कहा जा सकता है। फतहगढ़ में मुझे ऐसी कैदिनों के साथ रहना पड़ा, जो युक्तप्रान्त की अन्य सब सेन्ट्रल जेलों का अनुभव कर चुकी थीं। इन की बातों से मालूम हुआ, कि यू० पी० के इन कालेजों में भी नैनी और फतहगढ़ के कालेज सब से अधिक भयङ्कर हैं। १९ जनवरी सन् १९२३ की रात को आगरा से मेरा चालान हुआ, और २०-जनवरी को प्रातःकाल फतहगढ़ पहुँची। शनिवार का दिन था। फतहगढ़ में स्त्रियों की जेल की इमारत ही अलहदा है। है। बाहर को दो ऊंची दीवारें लांघ कर एक लंबी सड़क गई है, जिसके मध्य में एक कुंआ है। इसके चारों ओर वृत्ताकार पांच बारकें बनी हुई हैं। नम्बर १ और नं० ५ की बारकों में एक बाड़ा और दो बाड़ा (पहली बार तथा दूसरी या अधिक बार जेल में आने वाली) कैदिनें रक्खी जाती हैं। नंबर २ में अस्पताल है, और अकेली कोठड़ियां भी हैं। नंबर ३-४ में

केवल अकेली कोठड़ियां हैं। कुल मिला कर १६ अकेली कोठड़ियां हैं, पर, इतनी कैदिनों को कभी एकाकी कैद का दण्ड नहीं मिलता, और ये कोठड़ियां आलू, अरहर आदि रखने के काम आती हैं। पहले ही दिन लेडी जेलर ने मुझे अकेली कोठड़ी में बन्द कर दिया। केवल एक खटिया भर की जगह थी। उसने समझा था, इस अछूत की और किसी कैदिनि पर परछाहीं न पड़नी चाहिये। शाम को जेलर ने आकर कहा, कि इस को इस तरह दो साल तक क्या कोठड़ी में बन्द करके रक्खोगी ? तब मुझे वारक नं० १ में भेजा गया।

रविवार को जेल में भी छुट्टी होती है। कैदिनें अपने कपड़े वगैरः धोती हैं। अपनी अपनी वारक के अन्दर चहबच्चे (कुण्ड) में, वे बिल्कुल नंगी होकर कपड़े धोती हैं। नंगी न हों, तो क्या करें, कपड़ों का एक ही "सूट" तो होता है ?

मेरा सब सामान अभी तक मेरे पास से लिया न गया था, गीतारहस्य मेरे पास था। इसे लेकर मैं एक तरफ धूप में बैठी पढ़ रही थी। इसी समय नंबरदारिन अन्दर आकर बाहर चली गई। उसके बाद ही वर्कन्दाजिन (कन्विक्ट वार्डर) ने प्रवेश किया, और कहा—लुगाइयो, जेलर साहब आ रहे हैं। चहबच्चे में जो स्त्रियां नंगी कपड़े धोती थीं, वे इधर उधर दौड़ीं, कुछ मेरी तरफ कोने में आ छिपीं। एक दम जमादारिन अन्दर आ पहुँची, और उन्हें डांटने लगी—तुम पार्वती से बातें कर रही हो ! वह उन्हें अलग लेजाकर डराती-धमकाती रही। न जाने क्या क्या कहा।

दोपहर तक अजब मामला तैयार हो चुका था। लेडी जेलर ने मुझे अपने दफ्तर में बुलाया। उन कैदिनों में से ५

कैदिनों ने मेरे खिलाफ गवाही दी। उन्हों ने कहा—पार्वती ने हम से कहा है, कि मैं तुम्हें छुड़वाने आई हूं। तुम ईंट-पत्थर इकट्ठे कर रक्खो, जमादारिन आवे, तो उसे मार कर भगा दो, लेडी जेलर आवे, तो सब मिल कर हमला करो, और उस की टोपी उतार लो, और जेलर या सुपरिन्टेन्डेन्ट आवे तो उस पर ईंटें फेंको! राई का पहाड़ बनना तो सुना था, पर, बिना राई के पहाड़ का आज यह नया नमूना देखा। मैं सुनकर दंग रह गई, पर मेरी हैरानी पर वे चुटकियां भरती थीं! "हूं! अभी इतनी जल्दी मुकर गई! अभी तो सबके सामने कहा था।" कसमें खा-खा कर ये बातें कहती थीं। मैं कहूं तो क्या कहूं?

सोमवार को सुपरिन्टेन्डेन्ट के सामने पेशी हुई। गवाही वालियों ने तोते की तरह अपना अपना रटा हुआ पाठ सुना दिया। उनके बाद मुझे बुलाया गया। सुपरिन्टेन्डेन्ट ने ऐंठ कर कहा—'तुम बदमाशी करेगा, तो हम तुम्हें बेंत देगा।' मैंने कहा—बेंत छोड़, फांसी दे दो, पर यह बातें एक दम बेहूदा और झूठ हैं। वह भी अपने दिल में इन गवाहियों की कीमत जानता होगा। फिर भी मेरे हिस्टरी-टिकट पर इस पेशी का उल्लेख किया गया। अपराध था—(Inciting Prisoners) कैदिनों को भड़काना! दण्ड मिला—(Warned) सावधान किया गया। इसके साथ ही ४ जून १९२४ तक मेरे रिहाई के दिन सब काट लिये गये, टिकट पर उस तिथि तक निल (Nil) का निशान कर दिया गया।

सोमवार ही को मुझ से फ़ालतू चीज़ें सब ले ली गईं। लेडी जेलर ने चिढ़ा कर कहा—यहां आराम करना नहीं मिलेगा, यहां बान बंटना होगा। मैंने कहा कि यह तो पहले ही से जानती हूं। उसी दिन मुझे मूंज दी गई। दूसरी कैदिनों में

से डर के मारे कोई पास न आती थीं। जमादारिन और लेडी जेलर ने खुद ही मुझे बान बँटना सिखाया। पहले दिन ६४ गज बँटा गया, दूसरे दिन १७६ गज़। हफ्ते भर में सेर भर मूंज का ३०० गज़ बान मैं प्रति दिन पूरा करने लग गई।

दूसरी कैदिनें सब एक दम ऐसी दब्बू न थीं, जैसी आगरा में थीं। उनमें से कुछ ने तो बहुत दबाये जाने पर भी मेरे विरुद्ध गवाही देने से इनकार कर दिया था। धीरे धीरे वे बातें करने लगीं। एक स्त्री ने कहा—तुमने हफ्ते भर ही में तीन सौ गज़ बान देना क्यों शुरू कर दिया, मैंने तो अभी ६ महीने में भी पूरा नहीं किया? धीरे धीरे गवाही देने वालियों सहित सभी स्त्रियों का व्यवहार बदल गया, उन्होंने डर के मारे पाठ तो रट लिया था, पर, शपथ लेने के समय उनका भी अन्तरात्मा जाग उठा था। जमादारिन ने इस रुकावट का विचित्र समाधान किया। जो मुसलमानी थी, उससे गङ्गा की कसम दिलवा दी। जिसका कोई बेटा न था, उससे कहला दिया—मैं झूठ बोलूं, तो मेरे चारों बेटे मर जायं। मै क्या जानती थी, कि किसके बेटे हैं, और किस के बेटी?

रद्दी से रद्दी मूंज रोज़ मेरे हिस्से में आती थी। अभी तक कैदिनो पर जमादारिन का पूरा आतंक था, जिससे कोई मेरी मदद को भी न आ पाती थीं। इधर लेडी जेलर मेरी हितैषिणी बन कर कहने लगी—पार्वती, क्या तुम इन्हीं हाथों से दो साल बान बँटोगी? तुम्हारे तो खून निकल रहा है! क्या तुम यही गल्ले की रोटी दो साल तक खाओगी? कह क्यों नहीं देतीं, कि मुझ से गलती हुई? मैं इन बातों का तिरस्कार पूर्वक सीधा उत्तर दे देती, पर फिर भी वह मेरा पीछा न छोड़ती, और कहती—'तुम सिर्फ़ यह कह दो, कि मैं बान नहीं बँट सकती, बाकी सब मैं खुद समझ लूंगी। सिर्फ यह कह दो कि मैं झरा-

रोटी नहीं खा सकती।' जब तक उसे सफलता की रत्ती भर भी आशा रही, तब तक उसने अपना प्रयत्न बन्द नहीं किया। बान बॅटने की मिहनत कैदिनों में सब से बुरी मानी जाती है। इसके मुकाबले में वे टट्टी उठाना तक पसन्द करती हैं। अगर एक दिन भी ३०० गज़ पूरे न होते, तो मुझे कोई न कोई दण्ड मिलना निश्चित था। मैंने भी इस बात को समझ कर कभी ऐसा अवसर नहीं आने दिया।

इसी बीच में युक्तप्रान्त के सब राजनैतिक कैदी छोड़ दिये गये। इस सामान्य रिहाई का लाभ मुझे न मिला। कौंसिल में दूसरी बार प्रश्न किये जाने पर मुझे विशेष श्रेणी में रखना स्वीकृत किया गया। २० फरवरी सन् १९२३ से मुझे विशेष व्यवहार मिलने लगा। बारक के बजाय अस्पताल में रख दिया गया, कपड़े अपने मिल गये, रसद अलग मिलने लगी। दो कैदिनें मेरे साथ रख दी गईं। जिनमें से एक रसोई बनाती थी, दूसरी सफ़ाई आदि करती थी। किन्तु, मेरी छूत से दूसरी कैदिनों को बचाये रखने का भूत जेल की अधिष्ठात्री देवियों के सिर से न उतरता था। कई लेडी जेलर बदलीं, सुपरिन्टेन्डेन्ट मैकार्टिस मर गये, उनकी जगह दूसरे आये। जेलर भी बदलते रहे। कई बार शासन में हेर-फेर हुआ, पर इस नियम में कुछ दिन के अपवाद को छोड़ कर कभी परिवर्त्तन न हुआ। पहले मैं कुएं पर जाकर कुछ डोल खींच लाया करती थी, जिससे व्यायाम हो जाता था। पर, कुछ दिन बाद ही मेरा वहां जाना बन्द कर दिया गया। लगातार अस्पताल की बारक ही में रहना पड़ता। कभी कभी तो हम पीने के पानी को भी तरसती रहतीं। सब बारकों में कैदिनों में से पहरेदार होतीं, पर हमारी परछाहीं से वे भी डरती थीं। गर्मी के मौसम में हमारी बारक का पानी यदि ख़त्म हो जाता, लालटेन बुझ जाती या रात को

कोई सांप-बिच्छू निकल आता, तो किसी को बुला भी न सकते थे। प्रायः हमें सब कैदिनों से पहले बन्द किया जाता और सब से पीछे खोला जाता। शाम के चार-पांच बजे से प्रातः काल छः-सात बजे तक बन्द रहना पड़ता। युक्तप्रान्त में सूर्योदय पंजाब से पहले होता है। गर्मी के मौसम में अस्पताल में ठीक सामने से धूप आती थी, किन्तु उसी धूप में बैठने के सिवाय कोई चारा न था। जेल-शासिकाओं को मुझे अलग रखने की इस चेष्टा का कारण कुछ दुरूह नहीं है। मेरी उपस्थिति में वे दूसरी कैदिनों पर मनमाना अमानुषिक व्यवहार न कर पाती, उन्हें पशुओं की तरह मारपीट न सकतीं, और न उनसे पूरा आर्थिक लाभ उठा सकती थीं। इसी लिए मैं उनकी आंखों में हमेशा कांटा बनी रही। तो भी कैदिनें मुझ से मिल-जुल लेतीं, समाचार पाती और भेजती, तथा और भी, बहुत कुछ करतीं, किन्तु, सब छिपे छिपे तिकड़म से।

इस प्रकार फ़र्रुखाबाद में सवा साल बिताया। बन्द बैठो रहने से शरीर भारी और कुछ काला हो गया था, जो अब तक ठीक हो पाया है।

करनाल

एक बार बीच में करनाल जाना पड़ा। १७ अप्रैल १९२३ की बात है। मेरे व्याख्यानों का प्रबन्ध और सभापतित्व करने के कारण बहुत सज्जनों को कष्ट झेलना पड़ा। इसी तरह की मुसीबत करनाल के भाइयों पर भी आगई, उन्होंने सफ़ाई देना शुरू किया, मुझे भी सफ़ाई के गवाह के तौर पर बुलाया। जो अपने राजद्रोह के अपराध को स्वयं स्वीकार करती हो, वह यह कैसे कहती, कि उसके भाषण क़ानून की सीमा के अन्दर थे ? इन भाइयों ने न जाने क्या सोचा ? इसका भी

विचार न किया, कि एक स्त्री को एक जेल से दूसरी जेल जाने में कैसा कष्ट होगा। मेरे चालान के समय प्रत्येक स्टेशन पर पुलिस की संख्या इस वार साधारण से बहुत अधिक थी, शायद इस कारण कि मेरे जाने की खबर जनता को मिल चुकी थी, और लोगों के स्टेशनों पर आने का अन्देशा था।

मैं युक्तप्रान्त की पुलिस को कोई सार्टीफ़िकेट तो नहीं दे सकती, पर इतना कह सकती हूं कि करनाल स्टेशन से जो पंजाबी मुसलमान कानिस्टबिल हमारे साथ हुए, उन का व्यवहार यू० पी० की पुलिस से कहीं अधिक जंगली और उजड्डपन का था।

करनाल मे केवल एक छोटी जेल है। उसमें जेलर भी नहीं है, केवल दारोगा है। स्त्रियों के लिए अलग वार्ड तो कहां होता? मेरे लिए जो रसद निश्चित थी, वह दारोगा के घर जाती और वहां से दिन में दो दफ़ा खाना बन कर आता। इस से उसे काफी फ़ायदा होने लगा। सबसे बड़ा कष्ट मुझे उठने-बैठने और रहने का था। दफ्तर के पास एक कोठड़ी में ही रहना पड़ता। यह संकोचपूर्ण निवास मुझे जेल की मिहनत से अधिक कष्टकर होता। खैर, करनाल के भाइयों को मुझ से कोई लाभ होता न दिखाई दिया, और तीन सप्ताह बाद मुझे वापिस जाना पड़ा। मेरी गवाही भी न ली गई।

स्त्री-जेलों की आन्तरिक दशा

स्त्री-जेलों की अन्दरूनी दशा का कुछ दिग्दर्शन कर इस लेख को समाप्त करूंगी। स्त्रियों का कार्यक्षेत्र

बहुत संकुचित और परिमित होने के कारण उन का अपराध-क्षेत्र भी उतना विस्तृत नहीं है, जितना पुरुषों का। स्वभाव से भी शायद स्त्रियों में अपराध करने की प्रवृत्ति कम हो। पर, कम से कम यह तो बिलकुल स्पष्ट है, कि पुरुष अनेक तरह के अपराध कर सकते हैं, जहां तक स्त्रियों की पहुंच ही नहीं। इसी कारण जेलों में स्त्रियों की संख्या पुरुषों से बहुत ही कम रहती है। युक्तप्रान्त में भातू लोगों की जाति ही अपराध करने वाली जाति गिनी जाती है। चोरी और डाका तो उन का परम्परागत 'धर्म' है। उनकी स्त्रियां भी अपने पुरुषों की ठीक ठीक सहधर्मिणी और अर्धाङ्गिनी होती हैं। डाकों में वे भी उनके साथ बहुत वार पकड़ी जाती हैं। इसी तरह चमार और दूसरी छोटी जातियों की बहुत स्त्रियां चोरी और सिक्के बनाने आदि के अपराधों में आती हैं। उनके अपराध भी प्रायः उनके पुरुषों के से होते हैं। मुसलमान स्त्रियां चोरी आदि में तथा बहुत वार लड़कियां भगाने और बेचने या कुटिनीपन के अपराध में पकड़ी जाती हैं। पाठक और पाठिकाएँ यह सुन कर आश्चर्य करेंगी, कि स्त्री जेलों में उच्च जाति की स्त्रियां छोटी जाति की स्त्रियों की अपेक्षा अधिक आती हैं। कुलीन रूपवती युवतियों की संख्या भी कम नहीं होती। युक्तप्रान्त में मुसलमानों की आबादी केवल १४ फी सदी है, और लखनऊ कांग्रेस के सौदे के अनुसार कौंसिल में उनका तीस फ़ीसदी प्रतिनिधित्व है, तथा यही अनुपात वे म्युनिसिपल कमेटियों में भी चाहते हैं। किन्तु, स्त्री-जेलों में उनका प्रतिनिधित्व अपनी संख्या के अनुपात से अधिक होना तो दूर रहा, बराबर भी नहीं है! कुलीन स्त्रियों के अधिक संख्या में आने का कारण हिन्दुओं का सामाजिक अत्याचार है। बालविवाह, उस से बढ़कर अनमेल

विवाह, और विधवा-विवाह का निषेध, जुए के पासों की तरह लड़के-लड़की का अन्धा सम्बन्ध और उस सम्बन्ध पर भी अनन्तता की वैसी ही मोहर, जैसी एक स्वयंवर विवाह पर होनी चाहिये। ये और अन्य हजारों कुरीतियां—जिनके समुच्चय का नाम आज हिन्दुओं में कुलीनता है—उनके सब अपराधों की जड़ में रहती हैं। उपनिषदों के स्वर्ण-युग में भी कुमारी जबाला बिना संकोच के अपने पुत्र से कह सकती थी—

> बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे,
> साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि।
> जबालातु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि।

अर्थात्—'यौवनावस्था में भटकती हुई नौकरानी की दशा में, मैं ने तुम्हें पाया, पर तुम्हारा गोत्र मैं नहीं जानती। मेरा नाम जबाला है, और तुम्हारा नाम सत्यकाम।' और वह सत्य-काम जाबाल ब्रह्मवादी बन सकता था। पर, आज हिन्दू समाज की एक बाल-विधवा यदि अपनी उस प्रवृत्ति को दबा न सके, जिस प्रवृत्ति की खातिर समाज के सम्पन्न ठेकेदार रोज़ हज़ारों अनाचार करते हैं, और कहीं दुर्भाग्य से उसके बच्चा होजाय, तो समाज के दैत्य से बचने का, "कुल की इज़्ज़त" बचाये रखने का, उस बालक की हत्या के सिवाय कौन सा मार्ग है? और यदि कहीं पासा उलटा पड़ जाय, भेद छिपा न रहे, तो फिर बीस साल का जेल है! एक साधारण प्रवृत्ति की शान्ति के लिए, आवेश में आकर एक पाप हो जाता है, और उस के बाद ऐसे नर्क में जाना पड़ता है, जहाँ जाकर बेधड़क सौ तरह के पाप करना सीखे बिना, वह लौट नहीं सकती! नाटकों और उपन्यासों के लेखकों ने अनेक हृदय-द्रावक करुण कथायें लिख कर हिन्दू समाज के उन राक्षसी रिवाज़ों की पोल खोली है,

जिनमें जकड़ कर आज हिन्दू-समाज के ठेकेदार समाज की कुलीनता को बचाते हैं, किन्तु उन्हें मालूम नहीं, कि राज्य की सैनिक शक्ति भी इन ठेकेदारों की सहायता करती है, और अनेक कोमलांगी युवतियों को बेंते और बान देकर वह समाज की कुलीनता की रक्षा करती है! उन स्त्रियों की प्रत्येक आह हिन्दू-समाज को डसने के लिए आतुर काल-नागिन का फुंकार है। उनका समूचा जीवन हिन्दू-समाज के सिर पर जीवित अभिशाप है!

जेल में कैदिनों का रहन-सहन अत्यन्त वीभत्स और दमनीय होता है। उनके साथ बिल्कुल पशुता का व्यवहार होता है। यह मानते हुए भी, कि ये कैदिनें बड़े बुरे अपराधों में आती हैं, इनके साथ जो व्यवहार होता है उसे अत्यन्त निर्दय कहना पड़ता है। वे बेचारी छोटी छोटी चीजों के लिए तरसती हैं। रोटी मर्दाने घेरे से पक कर आती है, प्रत्येक कैदिन का हिस्सा तुला हुआ, अलग अलग रखा होता है। "दलिया" और चने भी उसी तरह अलग अलग आते हैं। सिर पर लगाने को ज़रा सा तेल मिलता है, और दो तीन कंघियाँ सारी बारक के लिए आती हैं। सिर और कपड़े धोने के लिए सादी मिट्टी का प्रयोग किया जाता है। सुनते हैं, मर्द कैदियों में से बहुतों का पेट आध सेर रोटी से नहीं भरता और वे भूखे रहते हैं। स्त्रियों में तो शायद ही कभी कोई रोटी की कमी से भूखी रही हो। भूखी वे भी जरूर रहती हैं, पर, उनको रोटी प्रायः बचती है। त्यौहारों के दिन जेल के अधिकारियों को छुट्टी मनानी होती है, इसलिए दोनों वक्त की रोटी एक ही वक्त पक कर आ जाती है। शायद ही कोई कैदिन इन रोटी कहलाने वाली लकड़ियों से पेट भर सके। अनेकों बार वे इन्हें पानी में भिगोकर मुलायम करके खाती हैं।

कपड़ों के बारे में पहले लिख चुकी हूं। यह कहने की ज़रूरत नहीं, कि कैदिनों के सिर और कपड़े जुँओं से भरे रहते हैं। जेल के नियम बने हुए हैं, कि कैदिनि को कितने समय पीछे कपड़ों का "सूट" मिलना चाहिए। कितने समय बाद कम्बल, कितना तेल, कितनी रोटी और कितने चने आदि मिलने चाहिए। किन्तु, ये सब नियम कागज़ ही पर रहते हैं। इन्स्पैक्टर जनरल या किसी दूसरे अफ़सर के आने पर उन्हें नये कपड़े दे दिये जाते हैं, जिससे उन ऊंचे अफ़सरों की आँखों में गन्दे चीथड़ों का दृश्य न चुभे। हाथी के दाँत खाने के और होते हैं, और दिखाने के और। वास्तव में अधिकांश स्त्रियां गन्दे चीथड़ों में आधी नंगी रह कर अपने दिन बिताती हैं। सच बात तो यह है, कि कैदिनों के कपड़ों का तो कहना ही क्या, उनके तेल, उनके चनों और उनकी रोटी तक में से चोरी होती है। मैंने देखा है, यदि कभी दाल के ऊपर तेल तैरता हो, तो जमादारिनि परसने वाली स्त्री से उतरवालेगी। आप पूछेंगे कि कैदिनों को यह सम्पत्ति किसी के किस काम आती होगी? काम क्यों नही आ सकती? क्या उनके हिस्से के चनों से लेडी जेलर को मुर्गियां नहीं पल सकतीं? क्या उस रोटी से उसके कुत्तों का पेट भी नही भर सकता? और दलिया कही जाने वाली फीकी सानी उसकी गाय के काम भी नहीं आसकती? क्या तेल से कचौरियां नही बन सकती?

इस अवस्था को समझने के लिए जेल के अधिकारियों की स्थिति पर दृष्टि डालना आवश्यक है। लेडी जेलर को जेलर और सुपरिन्टेन्डेन्ट की अधीनता में काम करना होता है। यदि कहीं पर जेलर या सुपरिन्टेन्डेन्ट की स्त्री ही के हाथ में यह काम हो, जैसा कि आगरा में था, तो उसकी स्थिति सर्वथा स्वाभाविक होती है। अन्यथा उसे बड़ा ही चतुर और

चापलूस होना पड़ता है। फतहगढ़ में मुझे प्रायः अंग्रेज़ और यूरेशियन सुपरिन्टेन्डेन्टों, जेलरों और लेडी जेलरों से वास्ता पड़ा। लगभग सभी लेडी जेलरों के विषय में सुना, कि वे पति-त्यक्ता थीं। जेल के शासन को बहुत साधु व्यक्ति हाथ में नहीं ले सकते। कैदिनों के समय का बहुत बड़ा भाग जेल के शासकों और शासिकाओं के चरित्र की चर्चा में बीतता है। फतहगढ़ जेल में यू० पी० की लगभग सब जेलों में घूमी हुई अनुभवी स्त्रियाँ थीं। कैदिनों का यह सामान्य विश्वास है, कि किसी लेडी जेलर का चरित्र दूषित हुए बिना नहीं रहता। उनके कैदी-गज़ट में जेल के नायकों और नायिकाओं के बारे में विश्वस्त आधार पर रोज ऐसी बातें प्रकाशित हुआ करती हैं, जिनके लिए इन कैदिनों में से बहुतों को बीस-बीस साल की जेल की सजा मिली होती है।

लेडी जेलर का वेतन भी उसके बड़े परिवार के अनुकूल नहीं रहता। उसे ७५) या १००) मासिक वेतन मिलता है। इस में एक लेडी जेलर को कितने बड़े परिवार का पेट पालना होता था, उसका उल्लेख करती हूँ। पहले श्रीमती जी खुद, फिर उनकी दो क्वाँरी लड़कियां, दो निठल्ले युवराज और उन की बहुएँ-बच्चे, एक गाड़ी, दो घोड़े, एक खानसामा, एक साईस, एक पंखा-कुली, एक गाय की बछिया, एक बकरी, कई कुत्ते, कई दर्जन मुर्गियां, तोते और मुर्गी पालने वाला एक नौकर! इस से स्पष्ट है, कि इतनी बड़ी बस्ती के गुज़ारे के लिए लेडी जेलर की तुच्छ तनख्वाह काफ़ी नहीं हो सकती।

कैदिनों को जो कष्ट मिलते हैं, वे केवल जेल-शासिकाओं की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए ही नहीं मिलते, प्रत्युत बहुधा उनका काम हलका करने के लिए, या उनके प्रभुत्व-प्रकाशन क

रस लेने के लिए भी। हर जेल में टट्टियां होती हैं, और उनकी सफ़ाई के लिए फिनाइल की निश्चित मात्रा आती है। ये टट्टियां खाली ऊँचे अधिकारियों को, दिखाने के लिए होती हैं। मेरठ और आगरा में तो सब स्त्रियों के लिए एक बालटी रहती थी। फ़तहगढ़ में हम एक छावड़े में पत्ते रख कर उसी से काम लेती थीं। यदि कहीं किसी कैदिनि को कभी पेट की शिकायत हो, दस्त आजाय और पत्तों के नीचे कुछ निकल जाय, तो दूसरे दिन उसकी आफ़त आना निश्चित है !

छोटी छोटी बातों के लिए कैदिनों के बदन पर बेंतों की मार पड़ती है, और अकेली कोठरी मिलती है। इन कोठरी वाली कैदिनों को सब के बराबर सेर भर मूंज का बान बँटना पड़ता है। पर, भोजन एक दफा मिलता है। कई बार एक एक कैदिनि को कम्बल में लपेट कर कई जनियों से अच्छी तरह पिटवाया जाता है।

१५ मार्च १९२३ का फतहगढ़ जेल में एक बुढ़िया को इस बुरी तरह से पीटा गया, कि उसकी छाती और कनपटियां सूज गईं। बेचारी कई दिन बीमार पड़ी रही, बाद में सुल-तानपुर भेज दी गई। उस बेचारी को इस अपराध पर पीटा गया, कि वह अपने लड़के-लड़की की याद करती थी। पहली बार जब वह जेल आई थी, उसके इन दो बच्चों को सँभालने वाला कोई न था। कैदिनों के साथ बहुत बार ऐसी बीतती है। इस दशा में कहा जाता है कि उनके बच्चे खैरात खानों में भेज दिये जाते हैं। सचमुच भेजे जाते हैं, या नहीं, यह कौन जानता है ? वह बुढ़िया कहती थी, कि जेल से छूटने पर उसे उसके बच्चों का कुछ भी पता न दिया गया। वह शक करती थी, कि जेल के अधिकारियों ने उन्हें बिकवा दिया, और ईसाई बना दिया। उसने अदालत तक पहुँचने का

यत्न किया, कहती थी कि इसी कारण पुलिस ने मेरे अपराध बना कर दोबारा जेल भेज दिया। यह बात सच थी, या झूठ, मैं नहीं कह सकती, पर, इतनी बात मैं अपनी आँखों से देखती और अपने कानों सुनती थी कि वह बुढ़िया बेधड़क होकर दिल के गुबार निकालती, और अपने बच्चों के लिए जेल के अधिकारियों को उनके मुँह पर गाली देती थी। इसी अपराध पर बेचारी को अनेक वार मार खानी पड़ी। ३१ जनवरी १९२३ को इन्स्पेक्टर जनरल फ़तहगढ़ आये हुए थे। दूसरे रोज़ सुबह वे स्त्री-जेल देखने वाले थे। मैं उन दिनों सादी कैदिनों के साथ ही थी। मैं लिख चुकी हूँ कि अधिकारियों के आने पर, कैदिनों के कपड़े बदले जाते हैं। उस दिन लेडी जेलर ने मुझे छोड़ और सब कैदिनों के पुराने कपड़े ले लिये, और पहली फ़रवरी को प्रातःकाल नये कपड़े दिये। रात भर सब ने नंगे बदन, कम्बलों में लिपट कर बिताई।

८ जून को इससे बढ़कर एक घटना हुई। कैदियों की तरह कैदिनों की भी परेड होती है। एक क़तार में अपना अपना बिछौना बिछा कर उसके ऊपर वे बैठती हैं। लेडी जेलर के आने पर उठती हैं। घण्टी बजते ही हाथ जोड़ सलाम करतीं, बाहें ऊपर उठातीं और काफी कवायद करके अपना बिस्तर उठा कर जोड़ा जोड़ा होकर बारक के भीतर जाती हैं। उस दिन लेडी जेलर श्रीमती राबर्ट्स को, स्त्रियों को नंगा करके यह क़वायद देखने की इच्छा हुई। सब छोटी-बड़ी स्त्रियों को बिल्कुल नंगा किया गया। कई युवतियां शर्म के मारे अपने अंगों में ही छिपना चाहतीं, पर, वहां तो हाथ उठा उठा कर क़वायद दिखानी पड़ती थी! एक सोलह वर्ष की युवती ने सत्याग्रह किया, और कपड़े तो उतार दिये, पर अपनी चादर उसने अन्त तक लपेटे रक्खी। मेरी अस्पताल वाली बारक में

आने पर मेम साहब ने मेरे पास की दो स्त्रियों को भी लहँगा और कुड़ता उतारने का हुक्म दिया। मैंने एकदम कहा, कि क्यों उतारें लहँगा? वे बोली—'निशान देखे जायँगे।' मैंने कहा—कि शर्म तो नहीं आती? अपना सा मुँह लेकर मेम साहब वापिस होगईं।

मैंने कहा था कि छोटी छोटी चीजों के लिए कैदिनें तरसा करती हैं। सुनते हैं, कि मर्द कैदी अनेक तिकड़मों द्वारा बड़ी बड़ी चोरियां करते हैं, जेल के अंदर तमाकू का अच्छा व्यापार करते हैं। स्त्रियां बेचारी क्या करेंगी? वे चोरी करती हैं—कंघी से निकले बालों की, पुराने चीथड़ों और धज्जियों के डोरों और सुइयों की। वे इन से बड़ी बड़ी कारीगरी की चीजें बनाती हैं। बालों को बँट कर बाल गूंथने की लच्छी बनाई जाती है। यह अच्छी सुंदर होती है, और कैदिनों के सिवाय दूसरी स्त्रियां भी बर्तें, तो बुरी नही मालूम होती। पुराने चीथड़ों में से इंच दो इंच को चीर चोरी चोरी फाड़ लेना जेल में बहुत प्रचलित है। इन चीरों में से एक एक तागा अलग कर लिया जाता है। पहिरेदारिन की चादर सफ़ेद होती हैं, वर्कन्दाज़िन की पीली और नम्बरदारिन की काली। इस प्रकार रंग-बिरंगे तागे जेल में आसानी से मिल सकते हैं। इन तागों से वे बनाती हैं—नाले (इज़ारबंद) बटन और गले में पहनने के गण्डे! कैदिनों के नाले और बटन घरों में बनने वाली इन चीजों से कहीं अच्छे होते हैं। विशिष्ट व्यवहार (स्पेशल ट्रीटमेंट) में आने पर मेरे पास तागों की कमी नहीं रहती थी। मैं जेल से जितने बटन और नाले बना कर लाई थी, मेरे भाइयों और मित्रों ने आते ही छीन लिये। गले के हारों की कुछ विशेष बुनाई नहीं होती, खाली रंग-बिरंगे तागे पहन लिये जाते हैं। स्त्रियों में शृंगार की प्रवृत्ति कैसी सहज होती

है ! जब क़िसी कैदिनि का तलाशी होती है, तब मिहनत से बनाई हुई ये सब चीज़ें उस से छीन ली जाती हैं। कैदिनें अपने दुःखों को याद कर खूब फूट फूट कर रोया करती हैं । इस प्रकार रोने में उनका बहुत समय जाता है । और जब रोती नहीं हैं, तो दुःख भुलाने के लिए दिल खोल कर नाचती और गाती हैं। वास्तव में रोना-गाना और नाचना यही कैदिनों के तीन मुख्य काम हैं। नाचना-गाना जो स्त्री जेल में न जाने, वह फूहड़ समझी जाती है। बिना सीखे कोई रहती नहीं। रात को पहरेदारिनों की "पच्चीस कैदी-ताला, जंगला, लालटैन ठीक है !" और "अड़सठ क़ैदी डण्डा-दीवाल सब ठीक है !" की पुकारों के बीच में दो-दो बजे तक वे नाचा करती हैं। पानी के लिए जो पीपे रक्खे होते हैं, वे खाली होने पर तबले का काम देते हैं; बान बंटने के लिए जो बिल्ले (लोहे के छल्ले) क़ैदिनों को मिलते हैं, वे तिकड़म से रात के समय मँगा लिये जाते हैं और घुँघरू का काम देते हैं ! सहेलियाँ बनाने की चाल जेल में बहुत सामान्य है। सहेलियों की मैत्री कैसे प्रकट हो सकती है ? वे अपने चने मिला लेंगी, रोटी इकट्ठी करके खायेंगी, इकट्ठी नाचेंगी और गायेंगी। बारक से बाहर निकलने को क़ैदिनों का जी बहुत तरसता है, इसी कारण वे कोई भी बाहर का काम—यहाँ तक कि, टट्टी उठाना तक—बान बँटने की अपेक्षा अधिक चाहती हैं। बाहर के काम में तिकड़म का अवसर अधिक मिलता है, और यदि कोई कैदिनि तिकड़म से कुछ लायगी तो वह अपनी सहेली को अवश्य हिस्सा देगी। कैदिनों के लिए जेल में पर्दे का जैसा प्रबन्ध है, उसका उल्लेख पहले कर चुकी हूँ। वास्तव में जब तक जमादारिन न मिले, और बहुत बड़ा षड्यंत्र न रचा जाय, जेल में कुछ गड़बड़ बात नहीं हो सकती।

इस दृष्टि से प्रबन्ध बहुत अच्छा है। किन्तु, जब एक कैदिनि का एक जेल से दूसरी जेल को चालान होता है, तब वह पुलिस के हाथों सौंप दी जाती है। पुलिस गन्दी बातें तो बकती ही है, कुछ अधिक करे, तब भी क्या पता? जेल वालों को सिर्फ़ इसको फ़िक्र होती है, कि जेल में जो स्त्री बिना गर्भ के आई हो, वह, जेल में आकर गर्भवती न हो जाय। जब तक कोई स्त्री हवालात में हो, तब तक जेलवालों को यह चिन्ता भी नहीं होती। उस समय तो वह पूरी तरह पुलिस के हाथों में रहती है। स्त्रियों के बीमार होने, बच्चा होने या कोई गुह्य कष्ट होने पर जेल का डाक्टर या सुपरिन्टेन्डेन्ट ही उनकी सब प्रकार की परीक्षा और दवा-दारू करता है। कोई दायी, नर्स या लेडी-डाक्टर इस काम के लिए नहीं रक्खी जाती। इस अंश में सुधार की बहुत बड़ी ज़रूरत है। सब नियमों के रहते हुए भी जेलर या अन्य अधिकारियों को गन्दा बकने से कौन रोक सकता है? जमादारिन भला क्या चीज़ है? जेल की बात क्या कहें, जेलों के बाहर भी उत्तर भारत के कुलीन और सभ्य कहलाने वाले लोग अपनी बहिनों-बेटियों के सामने गन्दी गालियां बकने से कौनसा परहेज़ करते हैं? या गंवार-गुन्डे लोग गली में गंदे गीत गाते हुए निकलें, तो हम क्या बुरा मानते हैं?

पाठक और पाठिकाएं यह बात सुनकर दंग रह जायँगी, कि स्त्री-जेलों में कैदिनों में परस्पर अस्वाभाविक पाप भी होता है, और खूब होता है। इसी कारण जेल में बड़े संदेह का वायुमंडल रहता है, दो सहेलियों पर फौरन शक कर लिया जाता है। बदनामी से जिसे बचना हो, उसे बहुत ही सावधान होकर रहना चाहिए, किंतु साधारण कैदिनें इस सावधानी की कोई ज़रूरत नहीं समझतीं, वे ऐसा संदेह

किये जाने पर खुश होती हैं। जाति-पांति का तुच्छ अभिमान युक्तप्रांत की जेलों में भी बना रहता है। पञ्जाबी लोग यू० पी० में एक विचित्र प्रकार का वातावरण पाते हैं। चार साल की लड़की भी महाराजाओं और पत्र-सम्पादकों की तरह अपने को 'हम' कहती है। जाति का अभिमान इससे भी बढ़कर है। कहीं किसी पर आपके हाथ से छींटा न पड़ जाय, किसी से कपड़ा न छू जाय! इन भयंकर भूलों से बचने के लिए सावधान रहना चाहिए। लोटे को तीन बार मांजें, या साढ़े तीन बार, स्नान के समय कौन सी धोती हो, और भोजन के समय कौन सी, शौच के समय जनेऊ कन्धे ही पर रहे, या कान पर, कौन से चूल्हे पर चपाती पके और कौन से पर परौंठी-ये और ऐसी अन्य महती समस्यायें हमारे युक्तप्रान्तीय भाइयों के लिए जीवन और मृत्यु का प्रश्न हैं। सरकारी कानून की तरह इन विषयों के महा नियमों के तोड़ने के लिए न जानने का बहाना नहीं सुना जाता। जिस आदमी को आप नहीं जानते, उसे अछूत ही समझना चाहिए, उसके साथ सावधानी से वर्त्तना चाहिए। क्योंकि "किसी के भेद का क्या पता लग सकता है?" मैं पंजाबियों की अस्वच्छ आदतों का समर्थन नहीं करना चाहती, और न उनमें से बहुतों के "ढग्गे पन" का, किन्तु स्वच्छता के नियम व्यावहारिक बुद्धि से बनने चाहिए, न कि अन्धविश्वास से। फतहगढ़ जेल मे पहले पहल जब मैं पहुँची, तो वे स्त्रियां भी, जो बच्चे मार कर या भ्रूण-हत्या कर के आई थीं, मुझे फूःफूः करके दूर रखतीं और मेरा छुआ पानी देख कर नाक-भौंह चढ़ातीं। मेरा रंग-रूप देख कर वे मुझे आसानी से ब्राह्मणी समझ लेतीं, पर, फिर भी सन्देह बना रहता। एक वार मैंने अपने भाई को चिट्ठी लिखते समय उनके नाम के आगे 'पण्डित' लिखा। तब एक

ने मुझ से पूछा—'तुम तो ब्राह्मणी हो?' मैंने बेधड़क होकर कहा—हां! तब से सब ठीक रहा। पीछे मेरे विशेष श्रेणी में हो जाने पर वे ही स्त्रियां मेरी झूठन पर झपटने में भी सङ्कोच न करती।

अन्त में यह प्रश्न मैं अपनी पाठिकाओं और पाठकों के सामने रखती हूँ, कि जेल के नियमों क सम्बन्ध में हमारी क्या वृत्ति होनी चाहिए? मेरठ की हवालात में यही प्रश्न मैंने कांग्रेस के एक नेता से किया था। उन्होंने कहा—'हम आप को क्या बतला सकते हैं? अब तक कोई स्त्रियां जेल गईं नहीं, आप को अपने अनुभव से आगे के लिए मार्ग दिखाना होगा।' अपना अनुभव मैं पाठक और पाठिकाओं के सामने रख चुकी। महात्मा जी की यह दलील मेरे दिमाग़ में नहीं बैठती कि अहिंसात्मक असहयोगी होने और इच्छा पूर्वक जेल जाने के कारण हमें जेल के नियमों का वैसा ही पालन करना चाहिए, जैसा "सुशील" पालतू बालक स्कूल के नियमों का करते हैं। जेल के नियम धर्म के सिद्धान्त नहीं हैं, अन्तरात्मा के आदेश नहीं हैं, शास्त्र के विधान नहीं हैं। वे शत्रु के निमम हैं, और शत्रु के लाभ के लिए बनाये गये हैं। मैंने तो उनको पालने न पालने के सम्बन्ध में एक ही कसौटी वर्ती है—यदि वे मनुष्यता के सिद्धान्तों पर पूरे उतरें, तो उनका पालन करो, नहीं तो निर्भय हो कर तोड़ो। मेरे सामने एक कैदिनि को विना अपराध अकेली कोठड़ी मिले, दिन भर मिहनत करके भी आधे पेट खाना मिले, और मैं दूसरी बारक में पेट भर खाऊं? यह मुझ से तो नहीं हो सकता। यदि मैं तिकड़म से उस की सहायता कर सकती हूं, तो क्यों न करूं? तिकड़म स्वतः कोई पाप नहीं है, वह केवल युद्ध की नीति है। मेरे लिए अपना मनुष्यत्व सब से पहले है। वही मेरा पथ प्रदर्शक रहा है, और सदा रहेगा।

श्रीमती पार्वती देवी का बयान

(जो उन्होंने २६ नवम्बर १९२२ को मेरठ के मजिस्ट्रेट के सामने दिया था।)

आज मेरे जीवन में यह सब से अधिक सौभाग्य और अभिमान का क्षण है, जब मैं इस विद्यमान शासन के विरुद्ध असन्तोष फैलाने और इसे उलटने का यत्न करने के अपराध में अभियुक्त हो, इस कटघरे में खड़ी हूँ। मेरा सौभाग्य है कि मेरे कार्य से सरकार का ध्यान आकर्षित हुआ है, और यह इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि मुझसे देश की जो कुछ सेवा बन पड़ी है, उसका कुछ न कुछ फल अवश्य हुआ है, जिस से सरकार को भी चिन्ता करनी पड़ी है। मैं समझती हूँ कि भारतवर्ष भर में, मैं पहली स्त्री हूँ, जिस पर राजद्रोह फैलाने का अपराध लगाया गया है, यद्यपि अन्य कई देवियां भी अन्य राजनैतिक अपराधों में और दण्ड-विधान की दूसरी धाराओं में अभियुक्त हो चुकी हैं। मुक़दमे के सम्बन्ध में असहयोगी होने के कारण, मैंने न अब-तक कुछ किया है और न अब कुछ करने का विचार है, क्योंकि गवाहियां सब की सब उन्हीं पुलिस वालों और उनके एक पिछलग्गू की ही हैं। यही बात उसे अप्रमाणित करने के लिए बस है, कि उन हज़ारों स्त्री-पुरुषों में से, जो सभाओं में उपस्थित हुए बताये गये हैं, सरकार को सिवाय एक आदमी के जो कई बार का दण्ड-प्राप्त अपराधी और अब तक पुलिस की निगरानी में कहा जाता है, एक भी स्वतन्त्र साक्षी नहीं मिला। जो भाषण मेरे मत्थे मढ़े गये हैं, वे निःसन्देह मेरे नहीं हैं और उनमें से एक तो सभा के समय नहीं, प्रत्युत घण्टों बाद अपने दफ़्तर में जाकर पुलिस के अर्ध-शिक्षित तुच्छ कर्मचारियों का लिखा माना गया है, और दोनों में फ़ारसी

अरबी के मोटे मोटे शब्द, जिनका मैं कभी प्रयोग नहीं करती, और जिनमें से बहुतों का अर्थ मैं अभी तक नहीं जानती, मेरे बतलाये गये हैं। मैं शुद्ध हिन्दी बोलती हूँ। और जो भाषण मेरे कह कर उपस्थित किये गये हैं, वे खुफ़िया पुलिस की स्वतन्त्र कृतियां है, जो उन्होंने भाषणों का उलटा-सीधा आशय लेकर, उसे जहाँ-तहाँ अपना मतलब पूरा करने वाले अपशब्दों से मिश्रित ऐसी अशिष्ट और असभ्य भाषा में, जो मेरी वाणी को कभी कलंकित नहीं कर सकती, लिख कर तैयार की हुई प्रतीत होती हैं। ऐसे तुच्छ आधार पर अभियोग खड़ा करना बेहूदगी की पराकाष्ठा है। मुझे खेद है कि महात्मा गांधी के अहिंसा-धर्म की मुझसी अनुयायिनी पर, जिसका दिन-रात का काम प्रेम का प्रचार करना है, झूठी और बनावटी गवाहियों के आधार पर १५३ (अ) धारा में भिन्न जातियों में द्वेष फैलाने का अपराध मढ़ने में भी संकोच नहीं किया गया, और यह इस सरकार के, जिसके न्याय और शिष्टता के सब भाव मर चुके हैं, स्वभाव के अनुकूल ही है। इसी लिए मैंने अपना पवित्र कर्त्तव्य समझ लिया है कि सोते, जगते, दिन को या रात को, इस विद्यमान शासन को, जो हमारे देश की ऐसी दरिद्रता का कारण हुआ है, जिसका एक मात्र उद्देश भारतवर्ष को उसकी समृद्धि से वञ्चित करना और उसकी प्राकृतिक सम्पत्ति का अपहरण करना है, और जिसने भारतवर्ष के पुत्रों और पुत्रियों को ऐसी नीच और घृणित दासता में बांध रक्खा है कि जिसकी तुलना संसार के इतिहास में नहीं हो सकती—ऐसे शासन को, खून-खराबी से नहीं, पर शांत अहिंसात्मक साधनों से, निश्चेष्ट करने की भरसक चेष्टा करती रहूँ। जब यह महान् असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ, तब मुझे अपने अन्दर एक दैवी प्रेरणा का अनुभव होता था। जलियां-

वाला बाग़ के निरपराध शहीदों की पुकार, मानियांवाला की असहाय अपमानित अबलाओं का हृदयवेधी विलाप, विदेशी सभ्यता के दबाव से कुचले हुए, अत्यन्त जघन्य दरिद्रता में डूबे भारतवर्ष के करोड़ों पुत्रों का करुण-क्रन्दन, धन, मान और गौरव से वंचित, परदेशी के पैरों तले रौंदी जाती बिलखती मातृभूमि का आर्त्तनाद मेरे हृदय के कानों में हर समय गूंजने लगा। अपने को भारतमाता की पुत्री मानती हुई मैं इस पुकार को अनसुना न कर सकती थी, इस प्रेरणा के प्रभाव को थाम न सकती थी। इसीलिए मैंने अपने पढ़ाने के काम को, जिसे बारह साल से कर रही थी, तिलाञ्जलि देकर अपने दरिद्र देशबान्धवों को स्वाभिमान, स्वावलम्ब और स्वाधीनता का सन्देश सुनाना शुरू किया, और पंजाब और पड़ोसी प्रांतों के घर-घर और कुटी-कुटी में इस सन्देश को ले जाने के लिए दो साल तक चक्कर लगाती रही। जिस प्रकार मेरे भाइयों और बहिनों ने हर जगह मेरा स्वागत किया, जिस उत्सुकता से उन्होंने मेरी टूटी-फूटी बोली में महात्मा गांधी के सन्देश को सुना, जिस उत्साह से उन्होंने उन उपदेशों को मान कर अपने जीवन में ढालने का यत्न किया, और अन्त में प्रत्येक देश-सेवक पर होने वाले अत्याचारों का जिस साहस से उन्हों ने सामना किया, उसकी याद कर मेरा हृदय हर्ष से गद्गद् हुए बिना नहीं रहता। जब मैं सोचती हूँ कि कुछ साल पहले हमारे लोग कैसी दरिद्रता, दासता और कायरता की दशा में थे, और साथ ही देखती हूँ कि आज उनमें किस तरह वह अभिमान और साहस जीवन फूँक रहा है, जो केवल स्वाधीन जातियों में ही पाया जाता है, तब मेरा उत्साह बंध जाता है और मातृभूमि के उज्वल भविष्य में विश्वास दृढ़ होजाता है। महात्मा गांधी का सन्देश भारतवर्ष के कोने-कोने में, प्रत्येक

कुटिया और झोपड़े में फैल रहा है, और मुझे इस बात का अभिमान है कि उसका प्रचार करने में, पद्दलित हृदयों की अन्धेरी गुफाओं में स्वाधीनता का उज्वल प्रकाश ले जाने में, मेरा भी कुछ न कुछ तुच्छ सा भाग है। मेरी सम्मति में किसी भी भारतीय स्त्री या पुरुष को अपने जीवन को तब तक सफल मानने का अधिकार नहीं है, जब तक वह भारतवर्ष के स्वाधीनता-संग्राम में अपना भाग पूरा न करदे। मैंने अपना कर्त्तव्य निबाहने का यत्न किया, और यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे उस का फल इतना शीघ्र प्राप्त होगया। हम भारतवासियों में, विशेषतः अंग्रेज लोगों की तरफ से यह विचार फैलाया गया था कि संसार की कोई जाति स्त्रियों के प्रति अंग्रेजों का सा वीरोचित व्यवहार नहीं करती और हमने इसे मान लेने में कुछ देर न की थी। किन्तु, इस निराधार असत्य कल्पना की पोल एक दिन खुले बिना न रह सकती थी, और मुझे हर्ष है कि आज स्त्रियों के विरुद्ध कार्रवाई करके अंग्रेजी सरकार अपने असली रूप में प्रकट हुई है। मेरा दृढ़ विश्वास है, और मैंने, अनेक वेदियों से इस बात को दोहराया है कि जब कोई व्यक्ति या राज्य संस्था सती स्त्रियों पर हाथ उठाने पर उतारू हो जाती है, तब वह अपने दिन पूरे कर चुकती है। मैंने इसके लिए रावण और कौरवों के दृष्टांत अनेक वार दिये हैं। उन को उसका फल मिलने में कुछ देर न लगी थी, और मुझे विश्वास है कि यह शासन भी जिसने भारतीय स्त्रियों पर उन्हीं जैसे नहीं, उन से अधिक अत्याचार करना आरम्भ किया है, भाग्य के निश्चित फल से बच नहीं सकता। यदि मेरे कष्ट झेलने से भारतवर्ष की स्वाधीनता की सुनहली उषा एक पल भी निकट आ सके, तो मैं बड़े हर्ष से अपना जीवन देश के अर्पण करने को तैयार हूँ, और क्योंकि मुझे विश्वास है कि मेरा मुकदमा और कैद भोगना देश भर

सचित्र
काव्य-वाटिका
संग्रहकर्त्ता
बाबू किशोरीलाल गुप्त,
विशारद।
प्रकाशक
हरिदास एण्ड कम्पनी
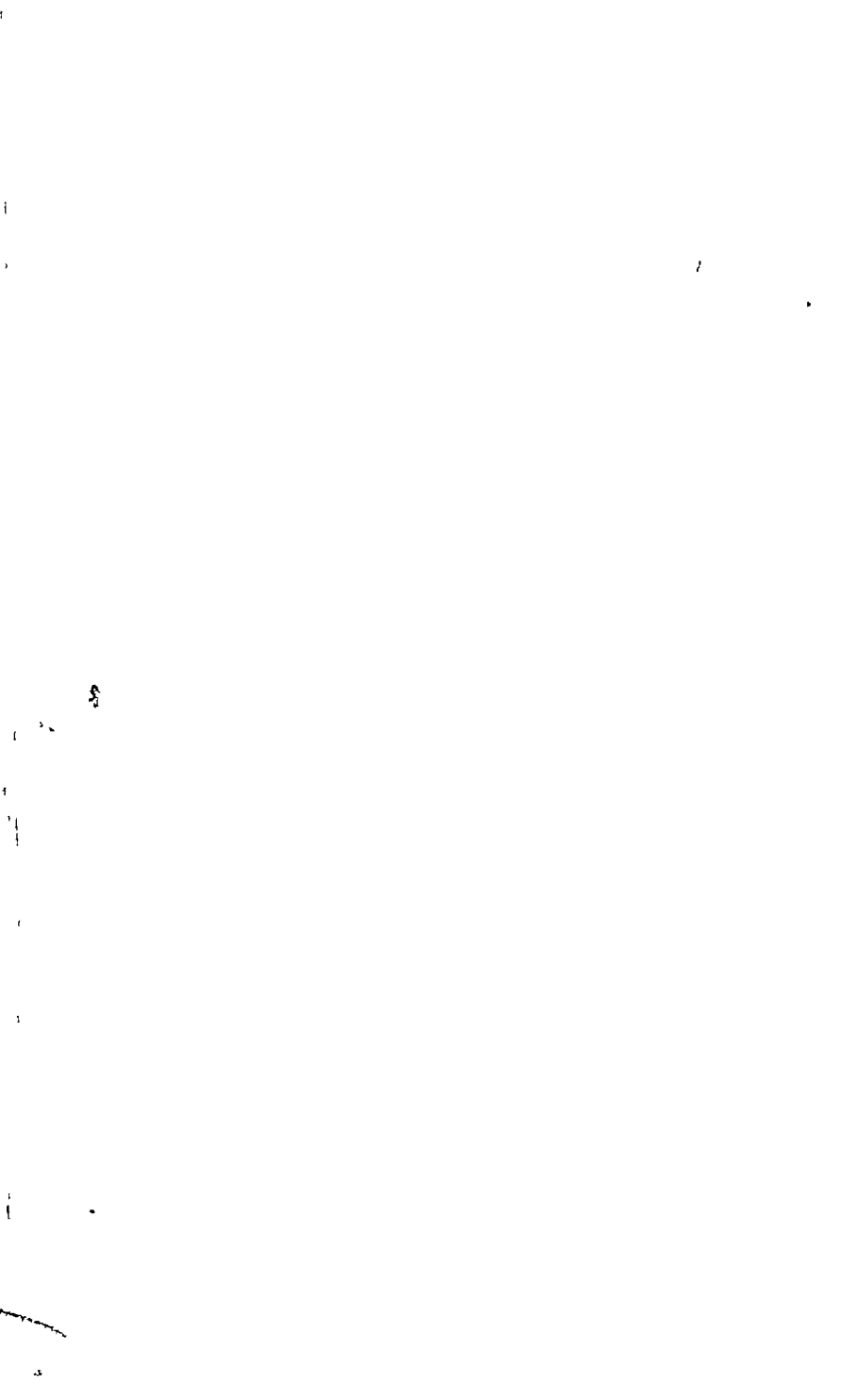
सचित्र

काव्य-वाटिका।

नाना प्रकारकी ब्रजभाषा और खड़ी बोली की
सामयिक, मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद
कविताओं का अपूर्व्व संग्रह।

संग्रहकर्त्ता : —

बाबू किशोरीलाल गुप्त,
जमीन्दार, महलखेड़ा (इन्दौर)।

प्रकाशक

हरिदास एण्ड कम्पनी।

कलकत्ता

२०१, हरिसन रोड के "नरसिंह प्रेस" में
बाबू रामप्रताप भार्गव द्वारा
मुद्रित।
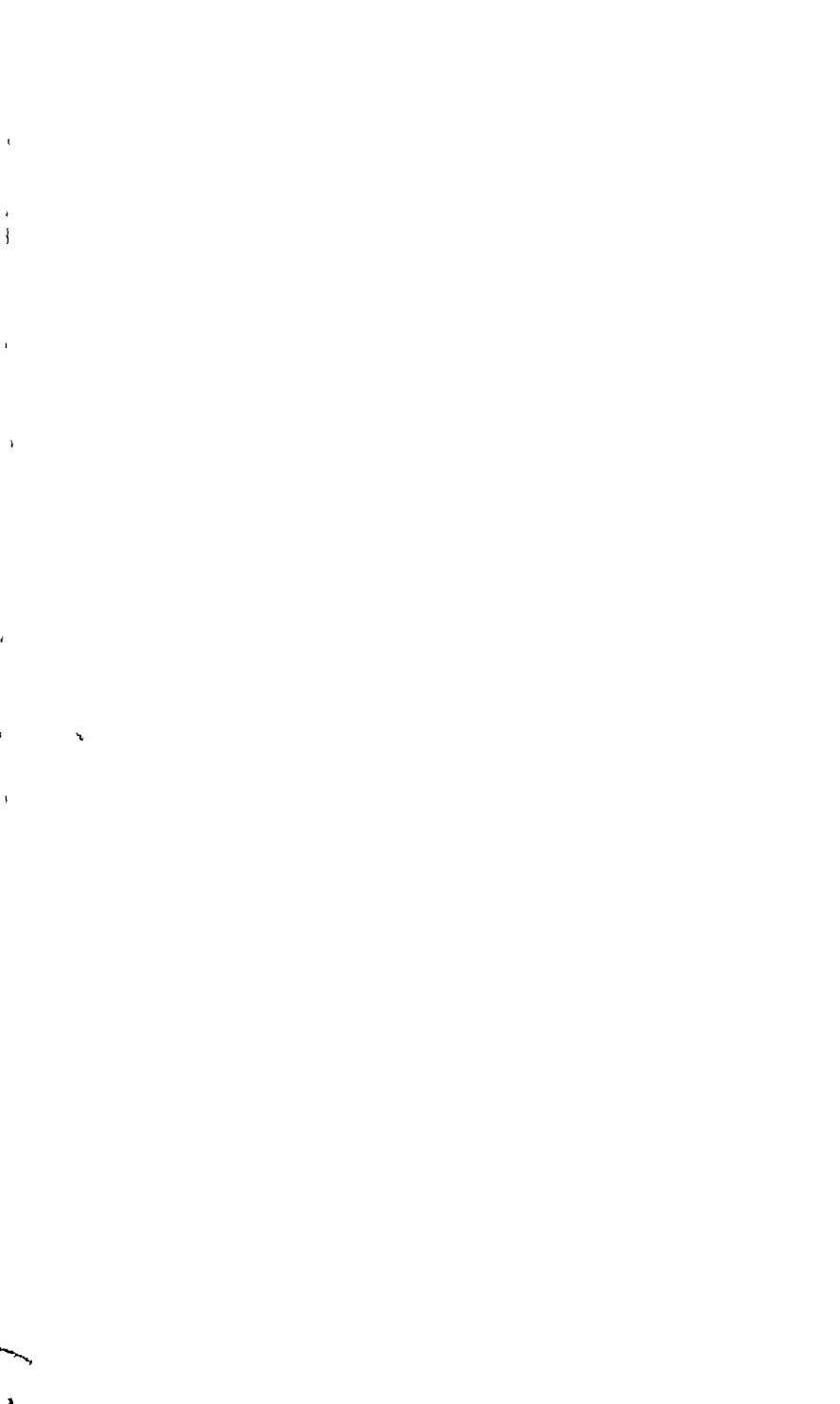
सन् १९२१. मूल्य— अजिल्द का ३)
सजिल्द का ३॥)

प्रथम आवृत्ति २००० }

प्रथम खण्ड
वन्दना-स्तुति आदि-विषयक

आज मैं सर्व दुःख-भञ्जन आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रजी की दया से एक काव्य संग्रह तय्यारकर पाठकों के करकमलोंमें अर्पण करता हूँ। कुछ समय पूर्व हिन्दी भाषाके प्रसिद्ध कवि पाण्डेय लोचन प्रसादजी संगृहीत 'कविता-कुसुम-माला' नामक पुस्तक मैंने अवलोकन की थी; उसे अत्युपयोगी जान, उसी समय एक संग्रह निकालने का निश्चय कर चुका था; किन्तु संग्रह की परिपूर्ण सामग्री न पा विवश रहा। यथावकाश अब इस संग्रह को पूर्ण कर चुका हूँ। यह उपयोगी होगा अथवा नहीं, यह बात रसिक-वृन्दों ही पर निर्भर है। इसमें भिन्न-भिन्न कवियों की सरस व चमत्कारिणी कविताएँ एकत्रित की गयी हैं।

इस संग्रह में "खड़ी बोली" और "व्रजभाषा" की कविताएं हैं, जो छः खण्डों में विभक्त हैं :—

१। प्रथम खण्ड—में ईश-स्तुति, मातृभूमि वन्दनादि-विषयक।

२। द्वितीय खण्ड—में इतिहास-विषयक।

३। तृतीय खण्ड—में प्राकृतिक शोभा एवं दृश्य-विषयक।

४। चतुर्थ खण्ड—में शिक्षा एवं उपदेश-विषयक।

५। पञ्चम खण्ड—में अन्योक्तियाँ एवं समस्या पूर्तियाँ।

६। षष्ठ खण्ड—में भारतीयों का आर्तनाद एवं उनकी शोचनीय दशा का वर्णन।

मैंने इस संग्रह में सरस्वती, मर्यादा, कमला, मनोरमा, हिन्दी चित्रमय जगत्, विद्यार्थी, औदुम्बर, प्रभा, धर्म-प्रभाकर, लक्ष्मी, धर्मकुसुमाकर, जयाजी प्रताप, रसिक वाटिका, विद्या भास्कर, कान्यकुब्ज हितकारी, रसिकमित्र, प्रताप, हिन्दी बङ्गवासी, पाटलिपुत्रादि अनेकानेक साप्ताहिक तथा मासिक पत्र-पत्रिकाओं की सहायता ली है और इस कार्य में उक्त सामयिक पत्रों के सम्पादक महोदयों ने सम्मतियाँ प्रदान कर मुझे कृतकृत्य किया है ; अतः मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

अब मैं उन कवियों की धन्यवाद-पूर्वक कृतज्ञता स्वीकार करता हूँ, कि जिनकी कविताएँ इस 'काव्य-वाटिका' में दी गयी हैं। कतिपय कवियों की आज्ञा प्राप्त कर चुका हूँ। कुछ की शरण में विनय पत्र भेजे थे ; किन्तु उत्तर से वञ्चित रहा। शेष महानुभावों का पता ज्ञात न होने से, उनसे आज्ञा माँगने में विवश रहा। आशा है दयालु कविगण मेरी इस ढिठाई पर क्षमा प्रदान कर सहानुभूति का परिचय देंगे।

प्रस्तुत संग्रह की अधिकांश कविताएँ श्रीमान् पं० महावीर प्रसादजी द्विवेदी महाराज की 'सरस्वती' नामक प्रसिद्ध पत्रिका से ली गयी हैं, अतएव मैं आपको विशेष धन्यवाद देता हूँ।

माघ शुक्ल ८
सं० १९७५

कवि-किङ्कर,
किशोरीलाल गुप्त।
ज़मींदार, मदलखेड़ा।

॥ श्रीहरिः ॥

विषयानुक्रमणिका ।

अ० न०	शीर्षक	पृष्ठ-संख्या
१	प्रथम खण्ड—(स्तुति प्रार्थना आदि विषयक)	१—५१
२	द्वितीय खण्ड—(इतिहास विषयक)	५५—१४३
३	तृतीय खण्ड—(प्राकृतिक शोभा एवं दृश्य)	१५१—१८७
४	चतुर्थ खण्ड—(शिक्षा एवं उपदेश-विषयक)	१८९—२८४
५	पञ्चम खण्ड—(अन्योक्तियाँ एवं समस्यापूर्तियाँ)	२८५—३१९
६	षष्ठ खण्ड—(वर्तमान समय पर)	३२१—३६८

कविताओं की सूची

प्रथम खण्ड।

स्तुति-प्रार्थना इत्यादि विषयक—

अ०नं०	नाम कविताएँ	लेखक	किस पत्र से उद्धृत	पृष्ठ-संख्या
१	जयगीते	श्रीयुत पं० रामनरेश त्रिपाठी	हिन्दी चि०म०जगत	१
२	भगवद् गीता	,, ठा० रामरण विजयसिंहजी	मर्यादा	३
३	सच्चिदानन्द वन्दना	,, पं० सत्कविदास	सरस्वती	८
४	विश्वेश वन्दना	,, ,,	,,	६
५	ईश्वरता	,, पं० रामचरितजी उपाध्याय	,,	११
६	मेरा प्यारा हृदयेश्वर	,, रामनरेशजी त्रिपाठी	विद्यार्थी	१४
७	विश्वदेव	,, बा० सियारामशरण गुप्त	सरस्वती	१६

अ०न०	नाम. कविताएँ	लेखक	किस पत्रसे उद्धृत	पृष्ठ-संख्या
८	भक्त की अभिलाषा	श्रीयुत "सनेही"	सरस्वती	१८
६	याचना	,, पं० मातादीन शुक्ल	*	२०
१०	वन्देमातरम्	,, पं० रामनरेश त्रिपाठी	हि० चि० म० जगत	२१
११	सरस्वती-समाराधन	,, पं० सत्कविदास	सरस्वती	२३
१२	भारत-लक्ष्मी	,, बा० सियारामशरण गुप्त	,,	२५
१३	राष्ट्रीय गीत	,, पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी	कान्यकुब्ज हितकारी	२६
१४	प्रिय स्वदेश	,, पं० अम्बिकाप्रसादजी त्रिपाठी	,,	२८
१५	जन्म-भूमि	,, पं० कामताप्रसादजी गुरु	सरस्वती	३१
१६	भारतवर्ष	,, पं० रामचरितजी उपाध्याय	,,	३३
१७	मातृभूमि-वन्दना	,, पं० शोभाचन्द्र जम्मड़	मर्यादा	३६
१८	हमारा देश	,, बा० सियारामशरण गुप्त	प्रभा	३८
१६	मातृभाषा की महत्ता	,, "सनेही"	सरस्वती	३६
२०	माता की महिमा	,, ठा० गोपालशरण सिंहजी	,,	४५
२१	जननी	,, बा० सियारामशरणजी गुप्त	,,	५१

द्वितीय खण्ड ।

इतिहास-सम्बन्धी :—

अ०न०	नाम कविताएँ	लेखक	किस पत्रसे उद्धृत	पृष्ठ संख्या
२२	राम	श्रीयुत पं० कामताप्रसादजी गुरु	प्रभा	५५
२३	कौशल्या का विलाप	श्रीयुत "सनेही"	सरस्वती	५८
२४	रामचन्द्र की प्रतिज्ञा	" पं० रामचरितजी उपाध्याय	रामचरित-चिन्तामणि	६३
२५	रावण की विचार-सभा	"	"	६८
२६	कामी और सती संवाद	"	"	७६
२७	मन्दोदरी और रावण	"	"	८४
२८	बन्धु-वियोग	" "सनेही"	सरस्वती	८६
२९	सुलोचना का चितारोहण	" बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त	"	९२
३०	रावण का अन्तिमोपदेश	" कविकुमार साहित्याचार्य्य पं० महेश्वरप्रसादजी शास्त्री	औदुम्बर	९६

अ०न०	नाम कविताएँ	लेखक	किसपत्रसे उद्धृत	पृष्ठ संख्या
३१	वेदव्यास	श्रीयुत बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त	धर्म्म कुसुमाकर	१००
३२	तुलसीदास	,, ,,	सरस्वती	१०२
३३	ध्रुव-वैराग्य	,, महावीरप्रसादजी चौधरी	विद्यार्थी	१०४
३४	महाराज शिवि	,, पं० रूपनारायणजी पाण्डेय "कमलाकर"	एक संग्रह से	१०५
३५	महारानी अहिल्याबाईका पत्र	,, बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त	पत्रावली से	१११
३६	प्रभावती का पत्र महाराणा राजसिंह के नाम	,, बाबू द्वारकाप्रसाद गुप्त	एक खण्ड काव्यसे	११६
३७	छत्रपति शिवाजी का मनोमहत्व	,, पं० लोचनप्रसादजी पाण्डेय	प्रभा	१२१
३८	राणा संग्राम सिंह	,,	औदुम्बर	१२५
३९	कौशिनी	,, पं० कामताप्रसादजी गुरू	सरस्वती	१२७

अ०न०	नाम कविताएँ	लेखक	किस पत्रसे उद्धृत	पृष्ठ-संख्या
४०	शकुन्तला की बिदा	श्रीयुत बाबू मैथिली शरणजी गुप्त	शकुन्तलासे	१३१
४१	कृष्णा कुमारी	„ लोचनप्रसादजी पाण्डेय	प्रभा	१३६
४२	श्रीसमर्थ रामदास स्वामी और छत्रपति शिवाजी	„ हरिपाल सिंहजी	„	१४३

तृतीय खण्ड ।

प्राकृतिक शोभा वर्णन :—

अ०न०	नाम कविताएँ	लेखक	किस पत्रसे उद्धृत	पृष्ठ-संख्या
४३	राम गिर्याश्रम	श्रीयुत लाला भगवानदीन	लक्ष्मी	१५१
४४	प्रातश्चिन्ता	पं० रूपनारायण पाण्डेय "कमलाकर"	एक संग्रह से	१५४
४५	प्रातःश्री	कविवर पं० सत्यनारायणजी "सनेही"	मर्यादा	१५६
४६	सन्ध्या		सरस्वती	१५७
४७	रात्रि	पं० मोतीलाल बी० ए०	,,	१६०
४८	ऋतुराज स्वागत	श्रीमती तोरन देवी "लली"	मर्यादा	१६१
४९	वसन्त वर्णन	ठा० गोपालशरण सिंह	सरस्वती	१६३
५०	मेघागम	पं० रामचरित उपाध्याय	रामचरित चिन्तामणि से	१६६

अ०न०	नाम कविताएँ	लेखक	किस पत्रसे उद्धृत	पृष्ठ-संख्या
५१	वर्षा और निर्धन	श्रीयुत पं० केशवप्रसादजी मिश्र	सरस्वती	१७०
५२	शरद्	पं० रामनरेशजी त्रिपाठी	विद्यार्थी	१७३
५३	हेमन्त ऋतु वर्णन	पं० जगन्नाथप्रसादजी भानुकवि	काव्य प्रभाकर	१७५
५४	शिशिर	ठा० गोपालशरणसिंहजी	सरस्वती	१७७
५५	शिशिर-निशा	पं० कृष्णचैतन्य गोस्वामी	"	१७६
५६	दिवाली और लक्ष्मीजीसे विनय	"रसिकेन्द्र"	मर्य्यादा	१८२
५७	होली	पं० रामनरेशजी त्रिपाठी	विद्यार्थी	१८४
५८	समय का परिवर्तन	पं० मातादीनजी शुक्ल	हितकारिणी	१८५

चतुर्थ खण्ड।

उपदेश विषयक।

अ०न०	नाम कविताएँ	लेखक	किस पत्रसे उद्धृत	पृष्ठ-संख्या
५९	सदुपदेश	श्रीयुत पं० नाथूराम शङ्करशर्म्मा	सरस्वती	१८९
६०	सत्य	“सनेही”	”	१९१
६१	शान्ति देवी	पं० मोतीलालजी बी० ए०	”	१९६
६२	क्रोध से हानि	सय्यद अमीरअली “मीर”	विद्यार्थी	२००
६३	क्षमा का अद्भुत परिणाम	पं० रामनरेश त्रिपाठी	”	२०३
६४	सुसङ्ग और कुसङ्ग	पं० रामचरितजी उपाध्याय	मनोरञ्जन	२०७
६५	निर्बलों को न्यायालयों में भी जगह नहीं	पं० रामनरेश त्रिपाठी	विद्यार्थी	२०९
६६	मतलब की दुनियां	पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय	सरस्वती	२१२
६७	दहेज की कुप्रथा	श्रीयुत सनेही	”	२१५

अ०न०	नाम कविताएँ	लेखक	किस पत्रसे उद्धृत	पृष्ठ-संख्या
६८	कुछ न किया	श्रीयुत "सनेही"	"	२१८
६९	आज कल	पं० नर्मदाप्रसादजी मिश्र	"	२१९
७०	गुण-दोषमयी सृष्टि	पं० हरिवंश मिश्र	सरस्वती	२२१
७१	कुछ उलटी सीधी बातें	पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय	हि०चि० मय जगत	२२२
७२	नीचता के मनोमोदक	पं० रामचरितजी उपाध्याय	सरस्वती	२२४
७३	धनीका संकट	पं० कुवेरदासजी	"	२२६
७४	प्रश्नोत्तरी	पं० पारसनाथसिंहजी	"	२२८
७५	बालकाल	पं० लोचनप्रसादजी पाण्डेय	"	२२९
७६	दुःख और सुख	श्रीगोपाल ब्रह्मचारी	"	२३२
७७	दासता	पं० रामचरित उपाध्याय	"	२३३
७८	मीठी बोली	पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय	विद्यार्थी	२३६
७९	सफल जन्म	पं० रामरत्न चौबे	सरस्वती	२३७
८०	जहांतक होसके नेकी करो	पंजाब की एक टेक्स्ट बुक से	"	२३९

अ०न०	नाम कविताएँ	लेखक	किस पत्रसे उद्धृत	पृष्ठ-संख्या
८१	धीरनर	श्रीयुत "सनेही"	सरस्वती	२४२
८२	अकृतज्ञता	"	"	२४४
८३	नागरी की नालिश	पं० रामचरित उपाध्याय	"	२४७
८४	प्रेम-बन्धन	पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी B A. M. R S. A. S.	हिन्दी चि०मयजगत	२५०
८५	प्रौढ़ प्रेम	पं० रामनरेशजी त्रिपाठी	सरस्वती	२५१
८६	अभिलाषा	पं० रूपनारायणजी पाण्डेय	"	२५६
८७	गली में पड़ा हुआ रत्न	ठाकुर गोपालशरण सिंहजी	"	२५७
८८	ग्रन्थ	"	"	२५९
८९	पाठकों के प्रति पुस्तकों की प्रार्थना	पं० सुखराम चौबे "गुणाकर"	"	२६१
९०	प्रणयोच्छ्वास	पं० गिरिधर शर्म्मा	विद्याभास्कर	२६४
९१	पढ़ो नहीं पछताओगे	बाबू द्वारकाप्रसादजी गुप्त	विद्यार्थी	२६६

अ०न०	नाम कविताएँ	लेखक	किस पत्रसे उद्धृत	पृष्ठ-संख्या
९२	आरम्भ शूरता	श्रीयुतपं०अयोध्यासिंहजी उपाध्याय	सरस्वती	२६९
९३	विद्यार्थी	श्री 'एक भारतीय आत्मा"	विद्यार्थी	२७२
९४	करुण कथा	"मालव मयूर"	प्रताप	२७३
९५	वृद्धावस्था	पं० बदरीनाथजी भट्ट बी० ए०	सरस्वती	२७६
९६	धिक्कार	श्रीलक्ष्मणाचार्य वाणीभूषण 'अनुज'	हि० चि० मय जगत	२७६
९७	समय पर मित्र शत्रु बन जाते हैं	पं० गणेशदत्त शर्म्मा इन्द्र	विद्यार्थी	२७७
९८	कवि-प्रशस्ति	पं० शुकलालप्रसाद पाण्डेय	प्रभा	२७८
९९	विषाद	बाबू बेनीलाल बक्षी बी० ए०	"	२८०
१००	यश	श्रीयुत श्यामसुन्दर खत्री	"	२८१

पञ्चम खण्ड ।

अन्योक्तियां एवं समस्या पूर्तियां ।

अ०न०	नाम कविताएँ	लेखक	किस पत्रसे उद्धृत	पृष्ठ-संख्या
१०१	अन्योक्तियाँ	श्रीयुत "त्रिशूल"	प्रताप	२८५
१०२	एक काठ का टुकड़ा	पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय	विद्यार्थी	२८७
१०३	छप्पय पञ्चक	पं० रामचन्द्र शुक्ल बी० ए०	सरस्वती	२८८
१०४	काव्य गुच्छ	पं० रामनरेशजी त्रिपाठी	हि०चि० मय जगत	२६०
१०५	सिन्धु और विन्दु	साहित्याचार्य्य कविकुमार महेश्वरप्रसादजी शास्त्री "सनेही"	"	२६३
१०६	तोता		सरस्वती	२६६
१०७	चमेली	पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी	"	२६८
१०८	निवेदन	पं० बद्रीनाथजी भट्ट बी० ए०	"	३००
१०९	खिला हुआ फूल	पं० रूपनारायणजी पाण्डेय	एक संग्रह से	३०१

अ०न०	नाम कविताएँ	लेखक	किस पत्रसे उद्धृत	पृष्ठ संख्या
११०	मधु मक्खी	पं० लोचनप्रसादजी पाण्डेय	विद्यार्थी	३०२
१११	अनुरोध	पं० बदरीनाथजी भट्ट बी० ए०	सरस्वती	३०४
११२	मनुष्य और संसार	"	"	३०५
११३	उदय हो	कविकुमार साहित्याचार्य्य पं० महेश्वरप्रसादजी शास्त्री	विद्यार्थी	३०६
११४	छाये हैं	राय देवीप्रसादजी पूर्ण	रसिक वाटिका	३०९
११५	माली है	"	"	३११
११६	लहर है	"	"	३१३
११७	कारेकी	"	"	३१५
११८	वाजी है	"	"	३१८

षष्ठ खण्ड।

वर्तमान समय पर (राष्ट्रीयता विषयक)

अ: न०	नाम कविताएँ	लेखक	किस पत्रसे उद्धृत	पृष्ठ-संख्या
११९	प्रार्थना	पं० बद्रीनाथजी भट्ट बी० ए०	सरस्वती	३२१
१२०	भारतीयों की पुकार	बाबू किशोरीलाल ज़मींदार	श्री कमला	३२२
१२१	जन्मभूमि भारत	पं० रामनरेशजी त्रिपाठी	सरस्वती	३२४
१२२	देश-प्रेमोन्मत्त	"सनेही"	"	३२६
१२३	हम भारतीय नव युवकगण कर्मवीर कहलायेंगे	पं० गोपीवल्लभ शर्मा उपाध्याय	हि० चि० म० जगत	३३१
१२४	वर्तमान दुर्भिक्ष	पं० केशवप्रसादजी मिश्र	सरस्वती	३३४
१२५	अछूत की आह	पं० रामचन्द्रजी शुक्ल	"	३३५
१२६	भारतीय कृषक	बाबू मैथिली शरणजी गुप्त	किसानसे उद्धृत	३३८

अ०न०	नाम कविताएँ	लेखक	किस पत्रसे उद्धृत	पृष्ठ-संख्या
१२७	हमारी भाषा हिन्दी और हमारे एम ए०बी०ए० सपूत	पं० केशवप्रसाद्जी मिश्र	सरस्वती	३३९
१२८	वृद्ध का विलाप	पं० रामचरितजी उपाध्याय	”	३४२
१२९	कर्तव्य	वावू सियारामशरण गुप्त	”	३४६
१३०	कीच और काँच	पं० रामनरेशजी त्रिपाठी	विद्यार्थी	३४७
१३१	पतन और उत्थान	“सनेही”	सरस्वती	३४९
१३२	आत्म विश्वास	ठा० गोपालशरण सिंहजी	”	३५४
१३३	देश मे ऐसे वालक हों	“एक भारतीय आत्मा”	विद्यार्थी	३५६
१३४	प्रश्नोत्तरी	पं० रामचरितजी उपाध्याय	सरस्वती	३५८
१३५	शुभ चिन्तना	पं० सिद्धनाथ मिश्र ‘मयंक”	”	३५९
१३६	विद्यार्थियों से सम्बोधन	“सनेही”	विद्यार्थी	३६०
१३७	आशा	पं० रामनरेशजीत्रिपाठी	”	३६१
१३८	हिन्दी हितैषियो से विनय	वावू द्वारकाप्रसाद्जी “रसिकेन्द्र”	इन्दु	३६२-६७

"काव्य-वाटिका" का शुद्धाशुद्धि पत्र।
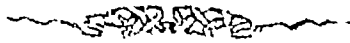
पृष्ठ	पद्य	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	·	६	दुदिन	दुर्दिन
३	१	३	जा	जो
५	११	३	संयतचित	संयम चिन
१६	६	२	शातकर	शीतकर
२३	३	१	व या	क्या
२४	६	२	से म	से तुम
३६	५	२	लग्या	लग्यो
३६	७	१	वारगण	वीरगण
४५	२०	६	मातृ ाषा	मातृभाषा
४८	१५	१	तू है	तू ही है
५०	*	*	गोपालशरणसेन सिंह	गोपालशरणसिंह
५१	३	१	सा	सो
५३	*	*	गप्त	गुप्त
५६	३	३	कङ्कड़ों	कङ्करों
"	"	४	"	"
६०	१०	४	रहता	रहते

पृष्ठ	पद्य	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६०	१२	३	पवदी	पद्वी
६७	२०	३	स्वण	स्वर्ण
७६	१	४	व्यथ	व्यर्थ
८२	२१	२	मन	मत
९३	६	१	ाशखा	शिखा
९७	८	४	रहे	रह,
१०४	*	*	चौधुरी	चौधरी
१११	१	२	मुभका	मुभको
११२	८	१	जा	जो
११४	१७	३	ापशाच	पिशाच
११६	४	१	दुर्नीति	दुर्नीति
११७	४	४	चाट	चोट
१२१	२	१	मूतिमन्त	मूर्तिमन्त
१२३	१२	१	खड्ग	खड्ग
१४०	२०	४	डरता	डरती
१४०	२४	१	धयर्य	धैर्य्य
१५३	१३	३	विविधि	विविध
१५६	...	६	नवद्रम	नवद्रुम
१८३	५	१	देश	घेरा
२००	३	३	भ्नष्ट	भ्रष्ट
२०७	१	३	जलकणा	जलकण

पृष्ठ	पद्य	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२११	११	३	अभियाग	अभियोग
२१६	...	३	खवर	खबर
२१७	..	१६	जन्माय	जन्मायें
२२३	१०	१	जा	जो
२२४	४	३	भौरत	भारत
२३८	३	२	वडाई	बड़ाई
२३९	०	१५	पडा	पड़ा
२४०		१२	खद	खुद
२५७	१	६	अवमानित	अपमान्दित
"	२	२	कङ्कुड़	कङ्कर
२६३	७	४	त्यो	त्यों
२७८	३	२	गाती	आती
२८६	६	४	क्यो	क्यों
२९१	.	५	पान्थ	पन्थ
२९२	...	३	सुवण	सुवर्ण
"	...	४	स्मण	स्मर्ण
"	...	१६	लां	लौं
३०५	३	२	खारी	खारा
३०६	३	३	करा	करो
३१६	२	७	प्रथमात	प्रभात
३१९	३	७	हरन हारा	हरनहारी

पृष्ठ	पद्य	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३२२	१	५	द्रुपद	द्रुपद
३२३	३	३	शातकर	शीतकर
३३१	२३	४	म	तुम
३३३	५	५	कीति	कीर्त्ति
३४७	*	*	गप्त	गुप्त
३४८	७	४	शाक्ति	शक्ति
३५२	११	४	लाहू	लोहू
३५४	१	२	दुविध	दुर्विध
३५५	*	*	गोपालशरण सिंह बी० ए०	गोपालशरण सिंह
३५८	६	२	कान	कौन

नोट :—जहाँ पर * चिह्न हैं वे त्रुटियाँ कवियों के नाम में देखिए।

जय गीते !

जय गीते ! जय गीते ! जय सुख-सुर-सरिते !
कर्म-तरङ्ग-प्रचारिणि, मङ्गलमय चरिते ॥ ध्रु० ॥

पाप-पङ्क-मति डूबी, मोह-निशा तममें,
'धर्म' सु-मर्म न जाना, फाँसा मन भ्रममें ;
सत्वोंकी 'स्मृति' भूले, स्थैर्य न जीवनमें,
अम्बे ! तू अवतारी, ऐसे दुर्दिनमें ॥ जय० ॥

श्रीपति-भारत-हिमगिरि-मुखकी ध्वनि-धारा,—
श्रीकृष्ण द्वैपायन भागीरथ-द्वारा,—
आगई भूमण्डलपर, सुरमण्डनकरणी,
मोह-महारिपु-मर्दिनि, खल-दल-बलहरणी ॥ जय० ॥

जय अघ-ओघ-निकन्दिनि, स्वधर्म सञ्जीवनी,
कार्य-स्फूर्त्ति प्रवाहिनि, जय जगकी जननी ;
तव-पद-रमण करे, जो तेरा मनन करे,
दृढ़कर्मी विजयी हो, विश्वोद्धार करे ॥ जय० ॥

"ज्ञानी हो मत रुकना, शुभ कर्मी होना,
अकर्मण्य मत बनना, व्यर्थ न वय खोना ;
भक्तियुक्त जन संग्रह, ज्ञानी शीघ्र करे,"
देवी ! 'कर्म' 'रहस्य' सदा यों बोध करे ॥ जय० ॥

यही रहस्य बना था अर्जुन-तम-हारी,
कर्मदोष—प्रवर्तक, महा—समर—कारी ;
सो रहस्य श्रीगीते ! पुण्य-पुरीवासी,
'तिलक' जगतसे कहता कर्मी संन्यासी ॥

"एक भारतीय आत्मा"

भगवद्गीता ।

(१२वाँ अध्याय)

स्वतन्त्र अनुवाद ।

—*—

। अर्जुन उवाच ।

भक्ति सहित सत्कार रूपकी
जो उपासना करते हैं।
वे अच्छे हैं अथवा जो
निर्गुणाराधना करते हैं ॥ १ ॥

॥ श्री भगवान उवाच ॥

करते जो इन्द्रिय-निरोध
सर्वत्र दृष्टि हैं सम रखते।
प्राणी हितकारी सज्जन बन
अनिर्दृश्य चिन्तन करते ॥ २ ॥

सर्वव्यापी रूपरहित कूटस्थ
अचल अचिन्त्यका ध्यान ।
करते ध्रुव अक्षरका, लहते
मुझको ही वे चतुर सुजान ॥ ३ ॥

मुझमें मन दे अति श्रद्धासे
सगुण ध्यान धरते जो नित्य ।
योग चतुर आराधक मेरे
मनमें वही हैं कृतकृत्य ॥ ४ ॥

निर्गुणके उपासकोंको है
कष्ट वहुत सहना होता !
देहवानका वड़े क्लेशसे
है निर्गुण मिलना होता ॥ ५ ॥

सब कामोंको मुझे समर्पण
करके जो मत्पर रहते ।
केवल भक्तियोग द्वारा जो
सदा ध्यान तत्पर रहते ॥ ६ ॥

विश्वरूप मुझ ईश्वरमें जो
भक्त चित्त यों है धरता ।
मृत्युयुक्त संसारसिन्धुसे
उसे पार सत्वर करता ॥ ७ ॥

मनको शान्ति वास दो मुझमें
बुद्धि सदा रहने दो लीन।
होगे अन्त लीन मुझमें ही
तुम होवो मत संशय दीन ॥ ८ ॥

एकवारगी तुम स्वचित्तको
मुझमें जो थिर कर न सको।
तो अभ्यास योगसे मुझको
प्राप्त करो साधो न थको ॥ ९ ॥

निभ न सके अभ्यास जो कहीं
कर्म करो निमित्त मेरे।
मम निमित्त कृत कर्म करेंगे
सिद्ध सभी अभीष्ट तेरे ॥ १० ॥

मेरे मिलन अर्थ जो तुमसे
इतना भी हो सके नहीं।
तो संयतचित हो स्वकर्म फल
त्याग एक सीखो नितही ॥ ११ ॥

अभ्यासोंसे बड़ा ज्ञान है
उससे बड़ा ध्यान गोता।
कर्मोंका फल त्याग श्रेष्ठतम
जिससे शान्ति-लाभ होता ॥ १२ ॥

द्वेष न रखता दया दिखाता
मित्र सभीका बनता है।
अहङ्कार ममता विहीन दुख
सुखमें जो सम रहता है॥ १३॥

विजितचित्त सन्तुष्ट क्षमा जो
पुन दृढ़ निश्चय होता है।
अर्पण करता मनोबुद्धि जो
मुझे वही प्रिय होता है॥ १४॥

जो न लोकसे भय रखता है.
लोक न जिससे डरता है।
विगत क्षोभ भय हर्ष शोक
वह मेरे मनको हरता है॥ १५॥

निःस्पृह शुचि सुदक्ष निर्भय
औ' उदासीन रहनेवाला।
काम्य कर्मत्यागी सो मेरा
भक्त चित्त हरनेवाला ॥ १६॥

फूल उठे जो नहीं खुशीसे
नहीं रजस्से द्वेष करे।
त्याग करे शुभ और अशुभका
और इच्छाको दूर करे॥ १७॥

शत्रु मित्र, मानापमानमें
रक्खे सदा एक बर्ताव ।
शीत-उष्ण, सुख-दुःख आदिमें
करे प्रकाश सदा सम भाव ॥ १८ ॥

सन्तोषी अरु स्तुति निन्दा
की न चाह रखनेवाला ।
भक्त मुझे स्थिरमति प्रिय है
जो न कुटी रखनेवाला ॥ १९ ॥

श्रद्धासे मम शरण प्राप्त हो
धर्मामृत जो करते पान ।
मुझे अधिक प्रिय होते हैं वे
भक्तिमान नररत्न महान ॥ २० ॥

—*रामरण विजय सिंह* ।
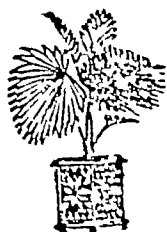
सच्चिदानन्द-वन्दना।
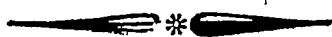
आनन्द-सिन्धु है तू, सत्-चित्, स्वभू, सनातन;
तूही नितान्त नूतन, तूही परम पुरातन ॥ १ ॥

है विश्वरूप तूही, त्रैलोक्य-भूप तूही,
तूही त्रिलोकरञ्जन, तूही निपट निरञ्जन ॥ २ ॥

सम्मान्य धर्म्म तूही, कर्त्तव्य कर्म्म तूही;
निर्मुक्ति मर्म्म तूही, मर्म्मव्यथा-निकन्दन! ॥ ३ ॥

तेरी प्रशस्ति गाना, तेरा चरित सुनाना,
भवसिन्धु-पार पाना है, तुल्य नन्दनन्दन! ॥ ४ ॥

है प्रार्थना यही अब, सुखशान्तिसे रहें सब;
हों शान्त सब उपद्रव, सद्भक्त-भीति-भञ्जन! ॥ ५ ॥

दीर्घायु हों हमारे राजाधिराज प्यारे;
अरि-वर्ग नित्य हारे, हे नित्यसुख-निकेतन! ॥ ६ ॥

तेरी सदैव जय हो, "क्षय"का तथैव क्षय हो:
"आनन्द" का उदय हो—है बस यही निवेदन ॥ ७ ॥

—सत्कामिदास।

विश्वेश-वन्दना ।

वन्दना, विश्वेश ! होती है तुम्हारी नित्य ;
नित्य सारी सृष्टि होती कर इसे कृतकृत्य ।
मूकवत् इसमें यदपि रहता म[illegible] [illegible]उडत्य,
जड़-जगत-कृत वन्दन[illegible]य है घना साहित्य ॥ १ ॥

यह धरा जिसको धरा है शेषने निश्शेष,
मानकर आदेश तव निज शीशपर विश्वेश !
वृक्षपत्र--असंख्य--रसना--राशिसे अनिमेष,
वन्दना करती तुम्हारी ही सदा सविशेष ॥ २ ॥

वारिनिधिकी वीचियोंके वीच वृत्तालाप ,
स्रोतसरिता-कृत-मधुर-सङ्गीत कीर्त्तिकलाप ।
शान्त होता है जिन्हें सुन चित्तका परिताप,
प्रध्वनित करते तुम्हारा ही सदैव प्रताप ॥ ३ ॥

रवि उदयसे नित्य होना दीप्त भू-आकाश,
दामिनीके मिष प्रकृति-कृत हाव-भाव-विकाश ।
अग्निसे तमका तथा शीतादिका भी नाश ;
हैं तुम्हराही प्रभो ! करते प्रशस्ति-प्रकाश ॥ ४ ॥

स्वच्छ, शीतल, मन्द सुरभित वायुका सञ्चार ;
　　वेग आँधीका प्रबल, घनघोर धूँआ धार।
पञ्च वायु प्रसार है जो प्राणका आधार,
　　नित्य करते हैं तुम्हारा ही यशो विस्तार ॥ ५॥

व्योम जो है जगमगाता रातमे अत्यन्त,
　　है न ऐसा और कोई विश्वमें द्युतिमन्त।
चित्र हैं सुविचित्र जिसमें, [illegible] वर्ण अनन्त,
　　वह तुम्हारे स्तोत्रका ही पत्र है भगवन्त ॥ ६॥

विश्वके आरम्भका है ज्ञात किसको काल ?
　　पर तुम्हारी वन्दनाका नित यही है हाल।
अल्प नर-जीवन ; तुम्हारे स्तव विराट विशाल ;
　　फिर करेगा क्षुद्रनर क्या, हो यदपि वाचाल ॥७॥

सुर, असुर, नर, यक्ष, किन्नर, मीन, खग, मृग, नाग,
　　सब चराचर विश्वके विधि! भुक्ति मुक्ति प्रयाग।
देशमें सीखें सभी जन स्वार्थ-सेवा-त्याग ;
　　और हो सबमें अचल तव पदकमल-अनुराग ॥८॥

तथास्तु।

—सत्कविदास।

ईश्वरता ।

दुखड़ा रोवे सती और असती सुख पावे ;
अज्ञ बनें धनवान, विज्ञ भूखों मरजावें ।
दुर्जन मक्खन चखें, सुजन हैं सत्तू खाते—
तोभी हे जगदीश ! नहीं तुम तनिक लजाते ॥ १ ॥

विविध भाँतिके गरल जगतमें हम पाते हैं ;
किन्तु सुधाका नाम मात्र सुनते आते हैं ।
रत्न सभी दुष्प्राप्य, लालकी कौन कथा है ?
पर काँचोंका ढेर, देखिए, पड़ा वृथा है ॥ २ ॥

उपकारी सब विभव-हीन दुखही सहते हैं,
अपकारीको विभव-पूर्ण सुखसे रहते हैं ।
लघु है हिमका दिवस, ग्रीष्मका दिवस बड़ा है,
भले दयामय ! हृदय खूब कर लिया कड़ा है ॥ ३ ॥

हंसोंहीका रङ्ग बकोंको ईश ! दिया क्यों ?
काकोंको भी तुल्य पिकोंके व्यर्थ किया क्यों ?
गुण-दुर्गुणपर ध्यान आपने दिया नहीं क्यों ?
सद्विवेकसे काम आपने लिया नहीं क्यों ? ॥ ४ ॥

मधुप बितावें दिवस करीरोंके भी वनमें;
चन्दन-वनमें रहें सर्प आनन्दित मनमें।
बलि पाते हैं काक, हंस सेवल खाते हैं;
दया, दयालो! खूब आप भी दिखलाते हैं! ॥ ५॥

खारा हो वारीश, गढ़ेका मीठा जल हो;
द्विज-कुलमें हो नीच, कीचमें प्रकट कमल हो।
हिन्दी हो हैरान हिन्दुओंके भी रहते;
प्रभु! तेरे अन्याय नहीं बनते हैं कहते॥ ६॥

धनी रहे निष्पुत्र, दीन अगणित सुत पावे;
न्याय परायण! निपट काट कामद कहलावे।
सूर्य-शशीके पिण्ड पड़ा है राहु अभी भी;
पलटोगे निज नीति नाथ! क्या आप कभी भी? ॥७॥

पापी जीते रहें, मरें पुण्यात्मा जगमें;
श्वान फिरें स्वच्छन्द, पड़े बेड़ी गज-पगमें।
वनमें भटके सिंह, रहें चूहे घर भीतर,
अपयशका डर नहीं तुम्हें क्या कुछ भी ईश्वर? ॥ ८॥

उत्थितका कर पतन करो उत्थान पतितका—
सुनो दयामय! काम नहीं हैं यह पण्डितका!
जल-निमग्न है मही कहीं, मरुमयी कहीं है;
काम तुम्हारा एक भूलसे बचा नहीं है॥ ९॥

जनम-मरण क्यों ईश ! नहीं देते हो क्रमसे ?
सभी तुम्हारे कार्य्य भरे हैं प्रायः भ्रमसे ।
निज-पुत्रोंका श्राद्ध पिता रो रो करता है—
सच कहना हे नाथ ! यही क्या ईश्वरता है ? ॥ १० ॥

—रामचरित उपाध्याय ।

मेरा प्यारा हृदयेश्वर ।

हृदयका ऐ हृदय मेरे सदा तू याद आता है ।
पता प्रत्येक अणु प्यारे मुझे तेरा बताता है ॥१॥

अँधेरेमें, उजेलेमें, गगनमें बीच तारोंके ।
जिधर मैं दृष्टि करता हूं खड़ा तू ही दिखाता है ॥२॥

लकीरें खींच दीं नभमें सितारोंके लिये तूने ।
उन्हींपर रात-दिन उनको नियमसे तू चलाता है ॥३॥

जगतमें रूप मैंने एक से बढ़ एक देखे हैं ।
अतुल सौन्दर्य तेरा किन्तु मेरा जी चुराता है ॥४॥

दया है दृष्टिमें तेरी भरा है प्रेम नेत्रों में ।
झलकती शान्ति है मुखपर बड़ा सुन्दर लखाता है ॥५॥

डरा मैं एकदिन, पीछे मुड़ा, तब यों कहा तूने ।
"डरो मत, साथ हूँ" तबसे न भय मुझको सताता है ॥६॥

नहीं क्या जानता हूँ मैं कि चढ़कर वायुके रथपर ।
सवेरे आ मुझे कोमल करोंसे तू जगाता है ॥७॥

सुना मैंने निशामें पल्लवोंके पास कुञ्जोंमें ।
गले में बैठ कोकिलके सदा तू गीत गाता है ॥८॥

मेरा प्यारा हृदयेश्वर ।

हृदयका ऐ हृदय मेरे सदा तू याद आता है ।
पता प्रत्येक अणु प्यारे मुझे तेरा बताता है ॥१॥

अँधेरेमे, उजेलेमें, गगनमें बीच तारोंके ।
जिधर मैं दृष्टि करता हूं खड़ा तू ही दिखाता है ॥२॥

लकीरें खींच दीं नभमें सितारोंके लिये तूने ।
उन्हींपर रात-दिन उनको नियमसे तू चलाता है ॥३॥

जगतमें रूप मैंने एक से बढ़ एक देखे हैं ।
अतुल सौन्दर्य तेरा किन्तु मेरा जी चुराता है ॥४॥

दया है दृष्टिमें तेरी भरा है प्रेम नेत्रों में ।
झलकती शान्ति है मुखपर बड़ा सुन्दर लखाता है ॥५॥

डरा मैं एकदिन, पीछे मुड़ा, तब यों कहा तूने ।
"डरो मत, साथ हूँ" तबसे न भय मुझको सताता है ॥६॥

नहीं क्या जानता हूँ मैं कि चढ़कर वायुके रथपर ।
सवेरे आ मुझे कोमल करोंसे तू जगाता है ॥७॥

सुना, मैंने निशामें पल्लवोंके पास कुञ्जोंमें ।
गले में बैठ कोकिलके सदा तू गीत गाता है ॥८॥

विश्वदेव ।

हे विश्वदेव ! दिये दिखाई आज तुम किस वेशमे,
देखा तुम्हें प्राची-गगनमें, पुण्य-पूर्ण स्वदेशमें।
आलोकसे उज्ज्वल तुम्हारा नील नभ ही भाल है,
निस्तब्ध आशिष सा अभय-कर हिमाद्रि विशाल है।
सागर चरण छूकर तुम्हारी चरण-रज है धो रहा,
हितकर हृदयपर "जाह्नवी"का हार शोभित हो रहा।
देखा हृदयको खोलकर बाहर तुम्हें सोल्लास है,
इस प्रिय सनातन देशमें पाया तुम्हारा वास है।
हमने सुना स्तवमन्त्र तव गत तपोविपिनोंमें अहा।
मथकर अमर-ऋषि-हृदय जो जगमें ध्वनित है हो रहा।
रविरूपमें प्रातः समय हे देव! उदयाकाशमें—
तुम दीखते हो जब ग्रथित कर मुख सुवर्ण-प्रकाशमें।
प्राचीन नीरव कण्ठसे उस समय गायत्री कथा—
उठती हुई सुनते यहाँ वन-विहग-रव-मय सर्वथा।
हे देव! है हमने सुना बाहर खड़े होकर अहा!
तव गान भारतवर्षमें कबसे न जाने हो रहा।

द्वग मूँदकर हमने सुना जाने न कब किस वर्षसे,
तव सुखद शङ्ख बजा रहा भारत हृदयसे, हर्षसे।
जो लीन कर देता धराका प्रबल रण-हुङ्कार है ;
जो भेद जाता बणिकगणका विपुल धन-झङ्कार है।
विरुद्धगति निर्विघ्न जिसकी उच्च और उदार है,
गुञ्जित गगन करता हुआ उठता अहा ओंकार है।
भारत-हृदय रूपी सु-विकसित विमल शुभ्र सरोजमें—
तव पदतले वाणी खड़ी है एक अद्भुत ओजमें।
आनन्दमय उल्लासमय सङ्गीतकी शुभ तानसे—
आकाश उथला जा रहा है एक अनुपम गानसे।
देखा समयको सोचकर द्वग मूँद एक निमेषमें,
तव विजयका शुभ शङ्ख है बजता हमारे देशमें * ॥

—बा० *सियारामशरण गुप्त*

* श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी एक कविताका भाव।

भक्तकी अभिलाषा ।
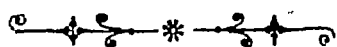
तू है गगन विस्तीर्ण तो मैं एक तारा क्षुद्र हूँ,
तू है महासागर अगम मैं एक धारा क्षुद्र हूँ ।
तू है महानंद तुल्य तो मैं एक बूँद समान हूँ,
तू है मनोहर गीत तो मैं एक उसकी तान हूँ ॥ १ ॥

तू है सुखद ऋतुराज तो मैं एक छोटा फूल हूँ—
तू है अगर दक्षिण-पवन तो कुसुमकी मैं धूल हूँ ।
तू है सरोवर अमल तो मैं एक उसका मीन हूँ—
तू है पिता तो पुत्र मैं तव अङ्कमें आसीन हूँ ॥ २ ॥

तू अगर सर्वाधार है तो एक मैं आधेय हूँ—
आश्रय मुझे है एक तेरा, श्रेय या अश्रेय हूँ ।
तू है अगर सर्वेश तो मैं एक तेरा दास हूँ—
तुझको नहीं मैं भूलता हूँ, दूर हूँ या पास हूँ ॥ ३ ॥

तू है पतितपावन प्रकट तो मैं पतित मशहूर हूँ—
छलसे तुझे यदि है घृणा तो मैं कपटसे दूर हूँ ।
है भक्तिकी यदि भूख तुझको तो मुझे तव भक्ति है
अति प्रीति है तेरे पदोंमें, प्रेम है, आसक्ति है ॥ ४ ॥

तू है दयाका सिन्धु तो मैं भी दयाका पात्र हूँ—
करुणेश तू है, चाहता मैं नाथ करुणामात्र हूँ ।
तू दीन-सिन्धु प्रसिद्ध है मैं दीनसे भी दीन हूँ—
तू नाथ ! नाथ अनाथका, असहाय मैं प्रभुहीन हूँ ॥ ५ ॥

तव चरण अशरण-शरण हैं मुझको शरणकी चाह है
तू शांतकर है दग्धको, मेरे हृदयमें दाह है ।
तू है शरद-राका-शशी ममचित्त चारु चकोर है—
तब ओर तजकर देखता यह और की कब ओर है ॥ ६ ॥

हृदयेश अब तेरे लिये है हृदय व्याकुल हो रहा—
आ आ ! इधर आ ! शीघ्र आ ! यह शोर-यह गुल होरहा
यह चित्त चातक है तृषित, कर शान्त करुणा वारिसे—
घनश्याम ! तेरी रट लगी आठों पहर है अब इसे ॥ ७ ॥

तू जानता मनकी दशा रखता न तुझसे बीच हूँ—
जो कुछ कि हूँ तेरा किया हूँ उच्च हूँ या नीच हूँ ।
अपना मुझे अपना समझ तपना न अब मुझको पड़े—
तजकर तुझे यह दास जाकर द्वारपर किसके अड़े ॥ ८ ॥

तू है दिवाकर तो कमल मैं, जलद तू मैं मोर हूँ—
सब भावनायें छोड़कर अब कर रहा यह शोर हूँ ।
मुझमें समा जा इसतरह तन प्राणका जो तौर है—
जिसमें न फिर कोई कहे मैं और हूँ तू और है ॥ ६ ॥

—"सनेही"

याचना।

जय जय भारत भूमि! जयति जय संकटहारिणि॥
जय जय अनुपम कीर्त्ति-सौख्य-सौरभ विस्तारिणि!
जय स्वतन्त्रता देवि! जयति जय जग-उपकारिणि॥
जय जय जय जय जयति दासता-शत्रु-विदारिणि।

जयति वीर सुत जन्म दे।
जयति जयति जय अभय दे!!
अंजलिबद्ध प्रणाम है,
जननी, निर्भय हृदय दे!!

—मातादीन शुक्ल।

वन्देमातरम् ।

अयि मम मातृ-भारत-धरणि !
मङ्गल-करणि, संकट-हरणि !!

चरण रत्न निवास-सेवित ।
शिर हिमाद्रि–किरीट शोभित ॥
प्रकृति-पौरुषसे —— सुरक्षित ।
शत्रु—सागर——तरणि ।
मङ्गल करणि, संकट हरणि ॥ १ ॥

विविध सुमन समूह चित्रित ।
शस्य श्यामल वसन सज्जित ॥
मलय मारुत से सुगन्धित ।
रत्नगर्भा————अवनि ।
मङ्गल करणि, संकट हरणि ॥ २ ॥

राम, अर्जुन, कृष्ण, विक्रम,
नय–निपुण चाणक्यके सम
विश्व—विजयी लोक—पूजित
वीरगण की जननि ।
मङ्गल करणि, संकट हरणि ॥ ३ ॥

अभय दुर्जय शक्ति-धारिणि।
अतुल बल अरि-उर विदारिणि।
खड्ग-हस्ता —— तेज-रूपिणि।
देवि दुर्जन दलनि।
मङ्गल करणि, संकट हरणि॥ ४॥

विमल-पय-पीयूष से निज।
मधुर रुचिकर अन्न से नित॥
मा! किया है हमें पोषित।
सकल चिन्ता-शमनि।
मङ्गल करणि, सङ्कट हरणि॥ ५॥

मातु! जीवन-पुष्प यह मम।
है समर्पित चरण पर तव॥
वीर-जननि प्रसन्न हो तुम।
सदय भूतल-भरणि।
मङ्गल करणि, संकट हरणि॥ ३॥

—पं० रामनरेश त्रिपाठी

सरस्वती-समाराधन ।

मातः सरस्वति ! कहाँ वह शक्ति मेरी
जो मैं भला कर सकूं स्तुति पूर्ण तेरी ?
मैं मन्द, मूक, जड़, कुण्ठित बुद्धिवाला,
तेरी महा महिमता विशदा, विशाला ॥ १ ॥

तेरी प्रशस्ति रचके तुझको सुनाना
है दीपसे रवि-विभा रविको दिखाना
मांको ममत्व सुतका अथवा सिखाना ;
या तोय-जह्नुतनया तन पै चढ़ाना ॥ २ ॥

माता न क्या पय स्वयं शिशुको पिलाती ?
जौं लौं उसे स्वजननी स्तुति आ न जाती ?
अत्यल्प भी क्षुधित हो जब वत्स रोता ,
मांका हिया तुरत ही करुणार्द्र होता ॥ ३ ॥

होता सदैव जब यों दिन रातही है,
वात्सल्यका गुण मुझे जब ज्ञातही है।
तो मैं तुझे तुरतही सिर क्यों न नाऊँ ?
विज्ञप्ति केवल न क्यों अपनी सुनाऊँ ? ॥ ४ ॥

जो शान्त-चित्त रहना शुभ मानते हैं;
जो शान्ति-साधन क्रिया सब जानते हैं।
वाग्देवि! वे कलह-वर्ज्जन-योग्य होवें;
संस्कार-शास्त्रगुरुवर्य्य मनोज्ञ होवें॥ ५॥

बातें विषाक्त कर जो यह सोचते हैं—
"सारा समाज-दुख तो हम मोचते हैं"
सारा मुखस्थ उनका विष दे निकाल
जाते सुनिर्विष किये जिस भाँति व्याल॥ ६॥

जो देखके प्रकृतिकी सुषमा अपार
होते विमुग्ध विधिकी कृतिको विचार।
दे तू उन्हें छवि-निदर्शन-शक्ति ऐसी
हैं चाहते हृदयसे छविकार जैसी॥ ७॥

जो दास हो कुरुचिके सबको सिखाते—
खोटी तथा प्रकृतिके विपरीत बातें।
तू दोष-पूरित महा उनके विचार—
माता! मदीय विनती सुन दे सुधार॥ ८॥

जो भक्तिके भजनमें श्रम भूलता है;
निर्वाहता नियमकी अनुकूलता है।
तेरा सदैव उसके मुखमें निवास
होवे, वहाँ नित करे निज तू विलास॥ ९॥

जो अल्प बुद्धि नर अल्प वयस्क होके
स्वेच्छानुसार बकता,—रसना न रोके।
तू दे उसे सुमति और विवेक देवी!
होके सभक्ति जिससे यह लोक-सेवी ॥१०॥

दे तू हमें स्वपद-भक्ति प्रमाद-हारी,
सारी सुषुप्ति विनसे जिससे हमारी।
है तू सुबुद्धि वरदा! सब जान जावें;
तेरी महान महिमा इस भाँति गावें ॥११॥

गुणीशगण वन्दिता, विबुध वृन्द सम्पूजिता;
सुवर्ण-समलंकृता; विशद-विश्वविद्या-स्मृता
जड़त्व-तम-नाशिनी, विमलचन्द्र संकाशिनी;
सदा सदुपदेशदा! जय सरस्वती सर्व्वदा! ॥१२॥

—*सत्कविदास।*

भारत लक्ष्मी।*

—※—

जय-जनक-जननी जननि, जय भुवन मानस हारिणी,
जय धरणि रविकर सम समुज्ज्वल विमलता विस्तारिणी।
धौत तेरा चरण तल है नील नीरधि नीरसे,
जय अनिल-कम्पित मनोरम श्याम अञ्चल-धारिणी!

---

* श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी एक कविताका भाव।

व्योमचुम्बी भाल हिमगिरि है, तुषार किरीट है,
जय जयति लक्ष्मी-स्वरूपा, दैन्य-दुःख-निवारिणी।

प्रथम तेरे ही गगनमें सु-प्रभात हुआ अहा!
प्रथम वेद-ध्वनि तुझीने की सु-पुण्य प्रसारिणी।

प्रथम तेरे वन-भवनमें ही प्रचारित थी हुई—
ज्ञान-धर्म-मयी कथायें सकल अघ-संहारिणी।

धन्य है; मङ्गलमयी, तू सतत देश विदेशको—
अन्न देकर पालती है हे भवार्णव-तारिणी!

जाह्नवी यमुना स्खलित है स्तन्य तव पीयूष सा,
जय हमारी दिव्य धात्री, पतित-पावनकारिणी!

—*बाबू सियारामशरण गुप्त।*

राष्ट्रीय गीत।

वन्दौं भारतभूमि सुहावनि।
सजल, सफल, श्यामल थल सुन्दर
मलय समीर चलै मनभावनि॥

हिमकर निकर प्रकाशित रजनी
कुसुमित लता ललित छवि वारी।

दिनमनि उदित मुदित मन-पक्षी
विकसित कमल नयन-सुखकारी ॥

तीस कोटि सुत जाके गरजत
दुगुन करन करवाल उठाये।

कौन कहत तोहि अबला जननी
प्रबल प्रताप चहूँ दिशि छाये ॥

धर्म, कर्म, अरु मर्म तुही है
शक्ति-मुक्ति दैनी जय-करनी।

तू जननी, आराध्य हमारी
बहु-बल धारिनि रिपुदल दरनी ॥

तू दुर्गा, दश आयुध धारिनि
तूही कमला कमल विहारिनि।

सुखदा, वरदा, अतुला, अमला
वानी विद्यादायिनि तारिनि ॥

सुस्मित सरला भूषित विमला
धरनी, भरनी, जननी पावनि।

जगन्नाथ कर जोरे वन्दत
जय जय भारतभूमि सुहावनि ॥

—*जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी।*

प्रिय स्वदेश ।

जिस देशकी मिट्टीसे बनी जाति हमारी।
अरु नामसे जिस देशके जाती हो पुकारी॥
जिस देशके पञ्चत्वसे हम पैदा हुए हों।
अरु जिसकी सुखद गोदमें नित फूले-फले हों॥

वह देश हमारा है. प्रिय स्वदेश हमारा।
है तन भी वही, मन भी वही, प्राण हमारा॥ १॥

सर्वोच्च शिखरयुक्त जो विख्यात देश हो।
सीमा अनन्त जिसकी व महिमा अशेष हो॥
अति वृहत् छटापूर्ण सुखद नीलाकाश हो।
अरु सूर्य चन्द्र तारागणोंका प्रकाश हो॥

वह देश हमारा है प्रिय स्वदेश हमारा।
है तन भी वही, मन भी वही, प्राण हमारा॥ २॥

पुहरी हों जिसके तीन और शैल कगारे।
धोता हो चरण सागर दक्षिणके किनारे॥
सरिता सरोंकी ठौर ठौरमें बहार हो।
अरु शस्ययुक्त भूमिकी सीमा अपार हो॥

वह देश हमारा है, प्रिय स्वदेश हमारा।
है तन भी वही, मन भी वही, प्राण हमारा ॥ ३ ॥

जिस देशसे मणि, रत्न व सोना हो निकलता।
सब धातु व उपधातु भी कोयला हो निकलता ॥
जिस देशमें सव मेवे भी फलफूल भी सव हों।
सब भाँतिके सब स्वादके मौजूद अन्न हों ॥

वह देश हमारा है प्रिय स्वदेश हमारा।
है तन भी वही, मनभी वही, प्राण हमारा ॥ ४ ॥

जिस देशमें सव भाँतिके उत्पन्न जीव हों।
चींटी से भी छोटे व वड़े हाथी-सदृश हों ॥
षड्ऋतुकी सुभग चाल, सुलभ, सुखद नीर हों।
शीतल, सुगंध, मंद भी डोलत समीर हों ॥

वह देश हमारा है प्रिय-स्वदेश हमारा।
है तन भी वही, मन भी वही, प्राण हमारा ॥ ५ ॥

इस देशमें सव भाँतिके सुख नित्य ही पाते।
जल-अन्न-वायु जिसका हों सव कालमें खाते ॥
जिस देशका नमक हो सकल तनमें समाना;
क्या जीते क्या मरे जहाँ मिलता हो ठिकाना ॥

वह देश हमारा है प्रिय-स्वदेश हमारा।
है तन भी वही, मन भी वही, प्राण हमारा ॥ ६ ॥

जिस देशने संसारको निज शिष्य बनाया।
विद्या, कलादि ज्ञान व विज्ञान सिखाया॥
सम्राट् सार्वभौम, आदि गुरू कहाया।
सब तौरसे सब ठौरमें सब जगको जगाया॥

वह देश हमारा है प्रिय स्वदेश हमारा।
है तन भी वही, मन भी वही, प्राण हमारा॥ ७॥

जिस देशमें श्रीरामसे वर वीर रहे हों।
लक्ष्मणसे तेज-पुञ्ज वरण धीर रहे हों॥
भाई भरतसे साध्वी सीता सी सुनारी।
अरु मातु सुमित्रा सी रही हों जहाँ नारी॥

वह देश हमारा है प्रिय स्वदेश हमारा।
है तन भी वही, मन भी वही, प्राण हमारा॥ ८॥

भीषमसे दृढ़-प्रतिज्ञ युधिष्ठिरसे धर्मराज।
अर्जुनसे धनुर्धर व कृष्णजीसे योगिराज॥
वर विप्र परशुरामसे, कुन्ती सी सुबाला।
जिस देशके इतिहासमें करती हों उजाला॥

वह देश हमारा है प्रिय स्वदेश हमारा।
है तन भी वही, मन भी वही, प्राण हमारा॥ ९॥

जिस देशमें रानासे विकट वीर रहे हों।
नीतिज्ञ-शिवाजीसे व रणधीर रहे हों॥

मौजूद तिलक जीसे जहाँ ज्ञानवान हों।
मिथिलेश व मालवीसे जहाँ धर्म्मवान हों।

वह देश हमारा है, प्रिय स्वदेश हमारा।
है तन भी वही, मन भी वही, प्राण हमारा॥

—पं० *अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी ।*

जन्मभूमि ।

जहाँ जन्म देता हमें है विधाता,
उसी ठौरमें चित्त है मोद पाता।
जहाँ हैं हमारे पिता, वन्धु-माता;
उसी भूमिसे है हमें सत्य नाता॥ १॥

जहाँकी मिली वायु है जीव दानी,
जहाँका भिदा देहमें अन्न पानी,
भरी जीभमें है जहाँकी सुवानी,
वही जन्मकी भूमि है भूमि रानी॥ २॥

लगी धूल थी देहमें जो हमारी,
कभी चित्तसे हो सकेगी न न्यारी।
वनाती रही देहको जो निरोगी,
किसे धूल ऐसी सुहाती न होगी? ॥ ३॥

पिला दूध माता हमें पालती है;
हमारे सभी कष्ट भी टालती है।
उसी भाँति है जन्मकी भू उदारा,
सदा सङ्कटोंमें सुतोंका सहारा॥ ४॥

कहीं जा बसें चाहता जो यही है,
रहे सामने जन्मकी जो मही है।
नहीं मूर्त्ति प्यारी कभी भूलती है;
छटा लोचनोंमें सदा झूलती है॥ ५॥

यथा इष्ट है गेह त्योंही पुरा है,
नहीं एक अच्छा न दूजा बुरा है।
पुरी प्रान्त त्यों देश भी है हमारा;
सभी ठौर है जन्म-भूका पसारा॥ ६॥

जिसे जन्मकी भूमि भाती नहीं है,
जिसे देशकी याद आती नहीं है,
कृतघ्नी महा कौन ऐसा मिलेगा?
उसे देख जी क्या किसीका खिलेगा?॥ ८॥

धनी हो बड़ा या बड़ा नाम धारी,
नहीं है जिसे जन्मकी भूमि प्यारी,
वृथा नीचने मान-सम्पत्ति पाई।
बुरेके बड़े से हुई क्या भलाई॥ ८॥

जिन्हें जन्मकी भूमिका मान होगा,
उन्हें भाईयोंका सदा ध्यान होगा।
दशा भाईयोंकी जिन्होंने न जानी,
कहेगा उन्हें कौन देशाभिमानी ॥ ९ ॥

कई देशके हेतु जी खो चुके हैं,
अनेकों धनी निर्धन हो चुके हैं।
कई बुद्धि हीसे उसे हैं बढ़ाते,
यथाशक्ति हैं वे ऋणोंको चुकाते ॥ १० ॥

दयानाथ, ऐसी हमें बुद्धि दीजे,
दशा देशकी देख छाती पसीजे।
दुखोंसे बचाते रहें देश प्यारा,
बनावें उसे सभ्य सत्कर्म-द्वारा ॥ ११ ॥

—कामताप्रसादगुरु।

भारतवर्ष।

ऋषि होते थे मनुज जहाँके करते थे कुछ पाप नहीं,
पशु पक्षीतक क्षुधा-अनल का सहते थे सन्ताप नहीं।
जहाँ आज भी पतितपावनी बहती गङ्गा-धारा है—
सब देशोंमें पूत पूज्य वह भारतवर्ष हमारा है ॥१॥

नश्वर समझ जगतको जिसने केवल दिया धर्म पर ध्यान,
यह अपनी, यह वस्तु अन्यकी, ऐसा जिसको हुआ न ज्ञान।
प्राणोंको भी देकर जिसने अपना धर्म उबारा है—
सब देशोंमें धर्म-धुरन्धर भारतवर्ष हमारा है॥२॥

पर-पीड़नको पाप समझकर, पर उपकार समझ निज धर्म,
दुष्टोंके भी साथ आजतक जिसने किया न कुत्सित कर्म।
हिंसा-रहित दयासे पूरित जिसकी नीति उदारा है—
सब देशोंमें स्वार्थ-शून्य वह भारतवर्ष हमारा है॥३॥

मानव-दानव दोनों ही का जिसने सुभग विभाग किया।
अध्यापक-अध्ययन-कार्यमें केवल जिसने भाग लिया।
विश्वोत्पत्ति प्रलयका कारण जिसने ठीक विचारा है—
सब देशोंमें ज्ञान-गेह यह भारतवर्ष हमारा है॥४॥

शिल्प-शास्त्र, कृषि-कर्म, कला-कौशलका जो है जन्मस्थान,
जगका जड़ता-तिमिर हटाकर चमका है जो सूर्य समान।
मानव जीवन का पृथ्वी पर जिसने चित्र उतारा है—
सब देशोंमें सभ्य-शिरोमणि भारतवर्ष हमारा है॥५॥

सब कामोंमें सबके आगे चलता था जो सहित विवेक,
वही आज सबके पीछे हो भोग रहा है कष्ट अनेक।
निज गौरवको तदपि चित्तसे जिसने नहीं विसारा है—
सब देशोंमें मान-धनी वह भारतवर्ष हमारा है।

दुखी देखकर अज्ञ विश्वको जिसने ज्ञान-निधान किया ;
महा असभ्योंको भी जिसने शिक्षित सभ्य-समान किया।
मुक्ति-रत्नका देनेवाला जिसने धर्म प्रचारा है—
सब देशोंका उपदेशक वह भारतवर्ष हमारा है ॥७॥

धोका देकर के परस्वका लेना आया जिसे नहीं,
चींटी तकको भी दुख देना मनमें भाया जिसे नहीं।
सदा न्यायके लिये सत्यका जिसने लिया सहारा है।
सब देशोंमें सत्य-सिन्धु वह भारतवर्ष हमारा है ॥८॥

शस्यश्यामला धरा सदा थी षट् ऋतुओंके साथ जहाँ,
पारसतक बँटते रहते थे नरनाथोंके हाथ जहाँ।
सुरपतिने भी जिसके आगे आकर हाथ पसारा है—
सब देशोंका मौलि-मुकुट वह भारतवर्ष हमारा है ॥९॥

हे जगदीश ! दीन-दुख-हारक, दुर्मतिनाशक, दया-निधान,
धर्म-ग्लानि बढ़ रही है नित, निज प्रणपर कुछ कीजे ध्यान।
आर्त्त स्वरसे आज व्यग्र हो जिसने तुम्हें पुकारा है—
सब देशोंमें दीन दुखी वह भारतवर्ष हमारा है ॥१०॥

पं० रामचरित उपाध्याय

मातृभूमि वन्दना ।
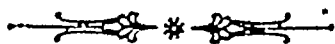
(राग बिहाग, ताल दीपचन्दी)

जय——जय——मातृ-भूमि————महान ।
जय परम पावन, पुहुमि परसिद्ध सकल जहान ॥ जय० ॥ १ ॥

विविध वर विद्या कला कौशल सुबुद्धि निधान ।
ज्ञानकी भव भूमि प्रकटित छिति कियो विज्ञान ॥ जय० ॥ २ ॥

उर्वरा, धन-धान्य पूरित, विदित वैभव-खान ।
धनवती, बहु गुणवती, अवनी न तो सम आन ॥ जय० ॥ ३ ॥

तव अतुल ऐश्वर्य समता करि सकै मघवा न ।
लख सुवर्णगार चख अलकेशके झपकान ॥ जय० ॥ ४ ॥

अन्य भुविवासिनको जब था ज्ञात नाम न ज्ञान ।
तबहिं तुम्हरो कीर्त्तिध्वज दशदिश लग्या फहरान ॥ जय० ॥ ५ ॥

सीख तुम सों सीख सुन्दर जग बन्यो मतिमान ।
है ऋणी संसार सिगरो सब प्रकार समान ॥ जय० ॥ ६ ॥

धीर पण्डित वीरगण प्रख्यात जन्मस्थान ।
विश्वमें तुम्हरे सुतन की है छिपी महिमा न ॥ जय० ॥ ७ ॥

प्रकृति-कृत सुखमा हरत मन करत पुलकित प्रान।
कछु न तव सनमुख अमरपुर सहित इन्द्रोद्यान॥ जय० ॥ ८ ॥

आर्यगण की पूजनीया पुन्य-भूमि प्रधान।
सभ्यता की पाठशाला भव्यता की सान॥ जय० ॥ ६ ॥

रत्नगर्भा, सत्य ही तव नाम दीप्त दिशान।
रत्न ऐसो कवन जो तू करि सकै न प्रदान॥ जय० ॥१०॥

मातु जो सम है तुही बस अन्य है उपमान।
चतुर निर्माता मनो भो! सिरजि अन्तर्ध्यान॥ जय० ॥११॥

है अशेष यशावली, दृश्यावली द्युतिमान।
भारती गुणगाथकी कवि हार लीनी मान॥ जय० ॥१२॥

धन्य तिनके भानु निशिदिन करत तव गुण गान।
जयति जय जननी अखंडल विश्व-मण्डल.जान॥

—*शोभाचन्द्र जम्मड़*

हमारा देश।
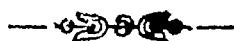
जय जयति भारत विश्वका सौन्दर्य्य सारा है वही;
उरमें बहाता बस हमारे मोद-धारा है वही।
तन, मन, सदन, धन, जन तथा जीवन हमारा है वही,
हमको हमारे बाद भी होता सहारा है वही।
उन्नत हिमालय से भव्य उसका वेश है,
हैं भारतीय सदैव हम, भारत हमारा देश है।

(२)

अवतार बहु धारण किये जगदीशने उसके लिये,
अगणित अपूर्व पदार्थ उसको हैं दयामयने दिये।
संसारके भूभाग सब उसके जिलाये हैं जिये,
उसके सुगुण कीर्त्तन सदा सानन्द सबने हैं किये।
जग को जगा कर दे चुका पहले यही उपदेश है,
हैं भारतीय सदैव हम, भारत हमारा देश है।

(३)

है वह मुकुट भूलोकका सुर-लोकका वह मित्र है,
श्रीराम-कृष्ण-पदाब्ज-रजसे वह हुआ सुपवित्र है।
वह विश्ववन्दित है विदित उसका महत्व विचित्र है,
देखा सुरों तकने अहा ! साश्चर्य्य उसका चित्र है।
इस बातका अभिमान हमको सर्वदा सविशेष है,
हैं भारतीय सदैव हम भारत हमारा देश है।

(४)

जिनके धनुष-टङ्कारसे कम्पित दिगन्त रहा सदा,
होते रहे ऐसे धनुर्धर वीर उस में सर्वदा
लज्जित हुई उसके विभव से स्वर्ग की भी सम्पदा,
बातें अलौकिक हैं सभी उसकी महामोद-प्रदा।
वह धीरताका धाम है उसमें न भयका लेश है,
हैं भारतीय सदैव हम, भारत हमारा देश है।

(५)

भागीरथी की पुण्य-धारा सतत उसमें वह रही,
उसकी यशो-गाथा अहा! कल नादसे वह कह रही।
रत्न प्रसविनी उसकी भूमि में है रह रही,
आघात पर आघात, पर वह हाय! कबसे सह रही।
धिक है हमें रहते हमारे पा रहा वह क्लेश है,
हैं भारतीय सदैव हम, भारत हमारा देश है।

बाबू सियारामशरणगुप्त !

मातृ-भाषाकी महत्ता।

निपट निर्बोध शिशु मांका हृदयसे प्यार करते हैं।
उसीके अङ्कमें आनन्दसे दिन पार करते हैं॥
बड़े होकर बड़ा गुण मानते सत्कार करते हैं।

सपूतीसे निरन्तर पितर-ऋण-उद्धार करते हैं।
उसे रखते सुखी हैं जन्म-भर मन-प्राण-अर्पण से।
मरे पर तृप्ति करते हैं गया से श्राद्ध-तर्पण से॥ १॥

हृदयमें वचन माताके अमृत का बीज बोते हैं।
उन्हीं की है कृपा नर मूकता से मुक्त होते हैं॥
मधुर ध्वनियाँ निकलती हैं वही हँसते कि रोते हैं।
खड़े हैं या कि बैठे जागते हैं या कि सोते हैं।
चलाती कार्य्य है कुल जन्म भर आराम देती है।
नहीं कुछ मातृसे कम, मातृ-भाषा काम देती है॥ २॥

न होती मातृ-भाषा लोग तो गूँगाँ किया करते,
न कह पाते कभी कुछ सिर्फ़ 'हाँ हूँ हाँ' किया करते।
कभी तो काक-कुल की भाँति ही काँ-काँ किया करते।
कभी बस धेनु-नन्दन-नाद सम बाँ-बाँ किया करते॥
अमृत-वर्षा न कर सकते मनोहर मिष्ट वाणीसे।
फिरा करते जगतमें, कष्ट सहते मूक प्राणीसे॥ ३॥

मनोंके भाव जो होते मनों ही में भरे रहते।
इशारे से कहाँ तक और किस किस बातको कहते।
व्यथा यदि चित्तमें होती उसे चुपचाप ही सहते।
पड़े अज्ञान-सागरमें निरन्तर डूबते रहते।
सुशिक्षा, सभ्यताका फिर कहीं लगता न थल बेड़ा।
लगाता पार है बस मातृ-भाषा-बाहु-बल बेड़ा॥ ४॥

मनुज को मातृ-भाषा की कृपा ऊपर उठाती है।
सुलेखक भी सुकवि भी और साहित्यिक बनाती है।
यही क्या अन्य भाषायें सरलता से सिखाती है।
पिलाती दूध जीवन-भर इसी की ऐसी छाती है।
नहीं जिस जातिमें कुछ मातृ-भाषाकी महत्ता है।
नहीं के ही बराबर इस जगतमें उसकी सत्ता है॥ ५॥

अधम है नीच है नर मातृ-भाषा से विमुख जो है।
दुखी माता को अपनी छोड़कर जो अन्य-मुख जो है।
कभी उससे नहीं आशा कि वह शठ देश-दुख जो है।
विदेशी-भाव भाषा-वेशमें जो नित्य-सुख जो है।
सपूती है यही निज मातृ-भाषाके चरण गह कर।
करें मन प्राण से सेवा पुकारें नित्य माँ कहकर॥ ६॥

हमारी मातृ-भाषा है मधुर नव रस-भरी हिन्दी।
अखाड़ा इन्द्र का रसना अगर तो है परी हिन्दी।
निवासी हिन्दके हम हैं हमें है सुख-करी हिन्दी।
परे हम क्यों न होंगे फिर अगर होगी हरी हिन्दी।
विना निज मातृ-भाषा-ज्ञान के कब ज्ञान होता है।
यही है एक कल जिससे कि देशोत्थान होता है॥ ७॥

समुन्नत जब हुई प्राकृत बनी हिन्दी हृदय भाई।
इसे चमका गया प्रतिभा प्रबल से चन्द्र वरदाई।
प्रभा भर दी अनोखी जब कि बागी सूर की आई।

सुधा की धार तुलसीदास ने भी साथ ही नारी।
अलंकृत हो गई सब भाँति संस्कृत के सहारेसे।
विधर्मी भी रहे इस पर अनेकों प्राण वारेसे॥८॥

वनाये भक्त इसने भक्ति का भण्डार वन-वन कर।
दिये रस-सिन्धु में ग़ोते वहुत शृङ्गार वन-वन कर।
घृणा उत्पन्न की वीभत्स का अवतार वन-वन कर।
कटाये वैरियों के सिर सदा तलवार वन-वन कर।
हँसाना या रुलाना खेल वायें हाथ ही का है।
प्रकट यह वात है ऐसी नहीं दरकार टीका है॥ ९॥

समय प्रतिकूल था यद्यपि कठिन इसका पनपना था।
अटल था फ़ारसी का राज्य इसका कौन अपना था।
समुन्नति-शृङ्गपर चढ़ना महा भ्रम था कि सपना था।
विहँसने का न अवसर था विलपना था कलपना था।
हृदय में किन्तु जनता के वनाया धाम हिन्दी ने।
न कर पाता कभी कोई किया जो काम हिन्दी ने॥१०॥

हुआ परिणाम यह हिन्दू-नृपति भी मोहकर इसपर।
लगे करने हृदय से मान माता के चरण पड़कर।
सुकवियों पर किये गजग्रास बहु धन धाम न्यौछावर।
सुयश उन दानवीरों का अमर है आज भी घर घर।
सुकवि हरिनाथ, भूषण आदि ने क्या-क्या नहीं पाया।
हुए निर्मोह थे धन से मिली थी इस कदर माया॥११॥

मनोंके मोहनेका मन्त्र है मालूम हिन्दीको।
नहीं सम्भव कि सुन करके न जाने झूम हिन्दीको।
इसी से दे निकलते कुछ न कुछ थे सूम हिन्दीको।
किसीने आज तक रक्खा नहीं महरूम हिन्दीको।
न होती क्यों भला उन्नति हमारी मातृ-भाषा की।
इसी के लो सहारेसे लगी है बेलि आशा की ॥१२॥

गये अन्धेर के दिन राज्य फिर सरकार का आया।
ज़माना रोशनी का वक्त फिर सुविचार का आया।
सुअवसर यह सुशिक्षाके वृहद् विस्तारका आया।
मगर हिन्दीके पैरों में असर परकारका आया।
लगाती यह रही शृङ्गार के मैदान में चक्कर।
गई उर्दू यहाँ पर बैठ भूप बनके कुर्सीपर ॥१३॥

किया हरिचन्द बाबूने बड़ा उपकार हिन्दी का।
दिया भर सामयिक साहित्य से भण्डार हिन्दीका॥
बढ़ाया लेखनीने उनकी यों सत्कार हिन्दी का।
हुआ उनकी कृपासे गर्म फिर बाज़ार हिन्दीका।
हज़ारों और भी थे लोग जो थे भक्त हिन्दीके।
प्रतापादिक रहे पद-पद्म पर आसक्त हिन्दीके ॥१४॥

उन्हींके पुण्य बलसे ईशने यह दिन दिखाया है।
वदन पर आज हिन्दीके नयाही रङ्ग आयाहै।
पड़े थे नींदमें उनको उठाया है जगाया है।

गये थे भूल जो कर्त्तव्य-पथ उनको दिखायाहै।
लगे, हैं कार्य्यमें अब लोग हिन्दीके बढ़ानेके।
सुअवसर भी उन्हें हैं प्राप्त पढ़नेके पढ़ानेके॥१५॥

न जब तक मातृ-भाषा,का यहाँ अधिकार होवेगा।
महा अज्ञान-निद्रा में पड़ा सब देश सोवेगा।
रहा जो नाम है अवशिष्ट उसको भी डुबोवेगा।
लगेगी कालिमा अपकीर्त्तिकी वह कौन धोवेगा।
बुरा व्यवहार करती जाति जो है मातृ-भाषासे।
उसे धोना पड़ेगा हाथ अपनी उच्च आशासे॥१६॥

सपूतों, हाँ! तुम्हारी बस इसीमें अब सपूती है।
दिखादो बोलना इस भाँतिसे भाषा की तूती है॥
महारानी नहीं उर्दू अजी यह एक दूती है।
चरण झुक-झुक के सौ-सौ बार यह हिन्दी के छूती है॥
नहीं है तत्व कोई और इस उर्दूके ढाँचेमें।
ढली है देखिए यह पूर्णतः हिन्दीके साँचेमें॥१७॥

न रक्खो द्वेष इससे भी इसे भी सहचरी समझो।
इसे भी मातृ-भाषाकी नई कारीगरी समझो।
मगर लिपि वस्त्र खोटी है इसे तुम मत खरी समझो।
लिखा जिसमें 'बुरी' हो और तुम पढ़कर 'बरी' समझो।
गला छिल जाय बच्चोंका कि उच्चारण ग़ज़बका है।
तमाशा स्वाद, तो, ज़ोका निराला अपने ढबका है॥१८॥

खुशीसे सीख लेवें आप दुनिया भर की भाषायें।
मगर गुण मातृ-भाषाका कभी भी भूल मत जायें।
ऋणी हैं आप इससे यह निरन्तर ध्यानमें लायें।
बने कृत-विद्य जो कुछ बन पड़े वह लाभ पहुँचायें।
नहीं तो फिर कहेंगे आप कैसा थे बुरा समझे।
कि अपनी मातृ भाषा ही न समझे हाय क्या समझे॥१६॥

किया है पान जिसका दुग्ध जिससे आज भी जीते।
निराश्रय छोड़कर उसको बनोगे तुम गये बीते।
पड़ो मत पिण्ड ह्विसकीके नहीं क्यों सोम रस पीते।
सुजनोंमें तनय होकर रहो मत बुद्धिसे रीते।
अगर मरने लगोगे रामका तो नाम आयेगा।
वहाँ भी मातृ ाषा-प्रेम ही बस काम आयेगा॥२०॥

"सनेही"

माताकी महिमा।

हे माता! अत्यन्त अपरिमित तेरी महिमा।
अतुलनीय है पुत्र-प्रेमकी तेरी गरिमा।
धन्य धन्य तू धन्य महा-मुद मङ्गलकारी,
जगजननीके तुल्य वन्द्य है विपदाहारी॥ १॥

चाहे सारा नीर नीर-निधिका चुक जावे।
चाहे अपना अन्त अनन्त गगन दिखलावे।
पर इसमें सन्देह नहीं है कुछ भी माता!
तेरा सुत-वात्सल्य कभी भी अन्त न पाता॥ २॥

तेरा पावन प्रेम जगतको पावन करता।
मद, मत्सर, मालिन्य, मोह मनका है हरता॥
नहीं कभी भी देवि! ह्रास उसका होता है।
बस तेरे ही साथ नाश उसका होता है॥ ३॥

जो कृतघ्नता सदा शूल उरमें उपजाती।
जिससी कोई वस्तु दुखमय दृष्टि न आती॥
तेरा दृढ़ वात्सल्य न वह भी हर सकती है;
तुझको सुतसे विमुख नहीं वह कर सकती है॥ ४॥

कौन कष्ट तू नहीं पुत्रके लिये उठाती।
उसे खिलाकर देवि! स्वयं भूखी रहजाती।
अपने तनका वस्त्र उसे सुखसे दे देती।
वसन-हीन रह स्वयं शीतका दुख सह लेती॥ ५॥

दासी सी तू देवि! पुत्रकी सेवा करती।
सदा मित्रकी भाँति विघ्न-बाधा सब हरती।
देती उसको सतत सुशिक्षा शिक्षक जैसी।
करती उसको देख-भाल संरक्षक जैसी॥ ६॥

लख सुतका उत्कर्ष हर्ष पाती तू वैसे,
सूर्योदयको देख कञ्जकी कलिका जैसे।
उससे ही है लगी देवि! तेरी सब आशा,
वह बन जावे भूप, यही तेरी अभिलाषा ॥ ७ ॥

मतलबसे ही यार सभीको मैं हूँ पाता।
कहीं स्वार्थसे हीन प्रेम है दृष्टि न आता ॥
बता कहाँसे देवि। प्रेम तू ऐसा पाती?
नहीं स्वार्थकी नेक गन्ध भी जिससे आती ॥ ८ ॥

यदि तेरे ढिग धूलि-धूसरित भी सुत आता,
तो भी है वह ठौर गोदमें तेरे पाता।
उसको करसे खींच गलेसे तू लिपटाती,
उसके मलिन कपोल चूमकर अति सुख पाती ॥ ९ ॥

जो तुझपर पड़ जाय देवि! विपदा भी भारी।
तोभी सुतको छोड़ नहीं तू होती न्यारी।
राहुग्रस्त जब कला, कलाधरकी हो जाती,
मृगशिशुको वह कभी न तब भी दूर हटाती ॥ १० ॥

चाहे प्यारे मित्र-बन्धु हों उससे न्यारे।
चाहे हों प्रतिकूल जगत-भरके जन सारे।
पर रहती अनुकूल सदा तू सुतके माता!
बस निश्चल है प्रेम एक तेरा सुखदाता ॥ ११ ॥

धर्म-कर्म तू सभी पुत्रके ही हित करती,
सदा उसीके लिये जोड़कर धन तू धरती।
सुखसे उसके हेतु सौख्य अपना तज देती;
उसके हित निज मान-हानि भी तू सह लेती॥ १२॥

जब वह बहुविध पाप-पङ्कमें भी सन जाता।
होकर पूरा पतित निन्द्य जगमें बन जाता।
तब भी तू निज दया-दृष्टि सुतसे न हटाती,
ऐसी दृढ़ता कहीं प्रेमकी दृष्टि न आती॥ १३॥

तू सुतके क्षेमार्थ नित्य ईश्वरको ध्याती।
भक्ति सहित करजोड़ उसे यह विनय सुनाती—
जो चाहो सो क्लेश मुझे देलो दुखकारी;
रखियो सुतको सुखी सदा हे भव-भयहारी" ॥ १४॥

सुतके सुखसे सुखी सदा तू है होती,
उसके दुखसे दुखी तथा नित तू है होती।
वह तो पाता ख्याति, गर्व पर, तू है करती,
मरती जब तब पुत्र-प्रेमसे विह्वल मरती॥ १५॥

सुतको चिन्तित देख व्यथित अति तू हो जाती,
उसे नेक भी खिन्न निरखकर तू घबराती।
तुझसे उसकी तनिक व्यथा भी सही न जाती,
छोटी भी किरकिरी आँखको विकल बनाती॥ १६॥

तू न कुपथपर कभी पुत्रको जाने देती,
बुरे व्यसनमें उसे न चित्त लगाने देती।
निन्द्य कर्मसे सदा देवि! तू उसे बचाती,
सब प्रकारसे उसे लाभ ही तू पहुँचाती॥ १७॥

तू सुत हित-कामना न चितसे कभी हटाती,
तू सदैव सम्मान प्रेमयुत उसे दिखाती।
उसके हित तू एक गगन-पाताल बनाती,
सुखसे उसके लिए सदा ही तू मरजाती॥ १८॥

सद्भावोंके बीज हृदयमें तूही बोती,
सदाचारको सीख प्राप्त तुझसे ही होती।
जो शिक्षाएँ "बाल्य"कालमें तू है देती,
अटल रूपसे जगह हृदयमें वे कर लेतीं॥ १९॥

जब अभाग्यवश मनुज आपदामें फँसजाता,
तब तेराही ध्यान उसे आता है माता!
तूही उसको देवि! उस समय धीरज देती।
उसके दुखमें भाग सदा तूही है लेती॥ २०॥

सुतपर तेरी प्रीति देवि! रहती है भारी,
पर पुत्री भी तुझे सर्वथा जीसे प्यारी।
मधुप-पंक्ति जो पुष्प-प्रेम-रसमें नित बहती,
आम्र-मञ्जरी पर क्या वह अनुरक्त न रहती?॥ २१॥

हो अयोग्य गुण-हीन भले ही तेरी सन्तति,
रहती तेरी प्रीति अटल तो भी उसके प्रति।
कृष्ण पक्षकी क्षीण शशि-कला कृश तनुधारी,
होती है क्या नहीं कमलिनी को सुखकारी॥ २२॥

तू सन्तति की सतत सुरक्षा वैसे करती,
फणकी मणिकी सदा सर्पिणी जैसे करती।
बाँका उसका नहीं बाल भी होने पाता,
तेरे रहते कौन उसे है क्षति पहुँचाता?॥ २३॥

देवी! जहां यह लोक छोड़ तू स्वर्ग सिधाती;
निरवलम्ब सन्तान तहाँ तेरी हो जाती।
ज्यों ही प्यारी नदी सूख जाती है सारी,
त्योंही आश्रय हीन मीन होती बेचारी॥ २४॥

गोपालशरण सेनासिंह
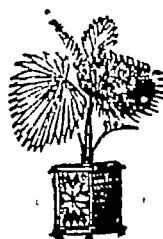
जननि।

हे जननी! हे जन्म-दायिनी-जननी, मेरी,
हो जाता मन विकल याद आते ही तेरी।
समझा तूने सदा मुझे आँखोंका तारा,
मुझे समझती रही सदा प्राणों से प्यारा।
तू ने अनेक दुख हैं सहे सुख पूर्वक मेरे लिये।
तूने मेरे कल्याण-हित क्या क्या यत्न नहीं किये! ॥१॥

कोई पीड़ा हुई ज़रा सी भी जब मुझको,
देखा गया विशेष व्यथित व्याकुल तब तुझको।
रात रात भर तुझे दृगों में नींद न आई,
जिस प्रकार हो सका उसी विध व्यथा घटाई।
मेरे सुखमें सुख तुझे दुखमें दुःख रहा सदा।
मुझसे सर्वत्र अभिन्न था तेरा तन-मन सर्वदा ॥२॥

अर्द्धरात्रिके समय सभी जब सो जाते थे,
जब अवनी-आकाश तिमिरमय हो जाते थे।
तू पंखे से व्यजन मुझे तब भी करती थी,
थपको देकर क्लान्ति सभी मेरी हरती थी।

प्रभुवरके पुण्य-प्रसादसा मुझपर तेरा स्नेह था।
पाकर मैं उसको जननि! सुकृती निस्सन्देह था ॥३॥

फुनसी-फोड़े जब कि हो गये मेरे तनमें,
मुझे देख कर घृणा हुई औरोंके मनमें।
तो भी माँ, तू मुझे हृदय से रही लगाये,
वैसा ही वात्सल्य-भाव तू रही बनाये।
तू खिल जाती चित्तमें मुझको मुदित निहारके।
तू मुझे खिलाती सर्वदा मुझपर सब कुछ वारके ॥४॥

काटा मैंने नये उठे दाँतोंसे तुझको
किया और भी अधिक प्यार तब तूने मुझको
डाल दिया जल शीतकालमें तेरे ऊपर,
तब भी तू ने प्रेम किया माँ! मेरे ऊपर।
जब इन बातोंकी याद हो मुझको आजाती कभी,
सच कहता हूँ मैं हे जननि! आँखें भर आतीं तभी ॥५॥

घोड़ा बनकर मुझे पीठ पर बैठाती थी।
आज्ञाके अनुसार घूम कर सुख पाती थी।
कभी खिझाकर मुझे मुदित तू कर देती थी,
कभी उचित उपदेश हृदयमें भर देती थी।
था'अ,आ'पढ़ाना चाहता जब मैं गुरु बनकर तुझे।
तब बनकर अति निर्बोध तू हर्षित करती थी मुझे ॥६॥

भोजन करता हुआ मचल जब मैं जाता था,
जब न एक भी ग्रास और मुझको भाता था।
तब हे जननी! विविध प्रलोभन तू दे दे कर,
करती थी अनुकूल मुझे गोदीमें लेकर।
अति ही अमूल्य थीं लोक में वे तेरी बातें सभी
उस समय हाय। इस बातका ज्ञान हुआ न मुझे कभी ॥७॥

जब मैं मनमें कभी किसी कारण दुख पाकर,
कर उठता था रुदन एक कोने में जाकर।
बहलाती थी चित्त अहा! तब तू ही मेरा,
गुण-वर्णन मैं करूँ कहाँ तक हे माँ! तेरा।
मुझपर जो तेरा भाव था वह भव-बीच अनन्य है।
हे देवी! तू स्वर्गीय थी लाख बार तू धन्य है ॥८॥

मुझपर तेरी दयादृष्टि सन्तत रहती थी,
प्रति दिन सन्ध्या-समय कहानी तू कहती थी।
मेरा कहना नहीं कभी भी तूने टाला,
प्रेमामृत ही सदा सर्वदा मुझपर डाला।
आकर अब मुझपर फेर दे, हे माँ! तू निज हाथही,
तो पड़जावे हृदयाग्निपर पानी उसके साथ ही ॥ ९॥

—*बाबू सियारामशरण गुप्त* ।

द्वितीय खण्ड
प्राचीन इतिहास-विषयक

राम ।

—※—

किसी समय में आर्य सभी बातोंमें हम थे ;
विदित हमारे सदाचारके सिद्धि-नियम थे ।
यद्यपि हमको आज सभी हिन्दू कहते हैं,
पर पहले से रमे राम हम में रहते हैं ॥ १ ॥

जन्म-जन्म में सदा राम हैं साथ हमारे ;
हम सब के आधार यही हैं जीवन प्यारे ।
भारत में जो धर्म आज भी सब पाते हैं,
हम सब उसके लिये राम का गुण गाते हैं ॥ २ ॥

जो न हमारे हेतु राम जग मे अवतरते,
हम हिन्दू किस भांति जगत में सभ्य ठहरते ।
जो न हमारा चित्त रामको धारण करता,
फिर कैसे वह उच्च भाव अपनेमें भरता ? ॥ ३ ॥

राम सच्चिदानन्द होय पुरुषोत्तम आये ;
नर-लीला कर यहां अमल आदर्श लखाये ।
कौन राम के बिना हमें कर्तव्य सिखाता ;
होने को जग-पार सहज मग कौन दिखाता ? ॥ ४ ॥

पाय राम-आधार प्रजा नृप सभी थमे हैं;
सबके मनमें राम अमल आदर्श रमे हैं।
जिसे न हो विश्वास देख लेवै निज मन में;
सुन्दर रूप कुरूप नहीं दिखता दर्पन में॥ ५॥

राज-तिलक का हर्ष जिन्होंने नहीं मनाया;
फिर सुनकर वनवास खेद भी नहीं जनाया।
उनका सुमरन सदा हमें साहस देता है;
घड़ी-घड़ी सुधि कौन बिना उसके लेता है॥ ६॥

भाई के हित राज रामने तृण सा त्यागा,
कैकेई के लिये प्रेम निज सुत सा जागा।
केवट से भी प्रेम-सहित सम्बन्ध निभाया,
ऋषियों को सब ठौर उन्होंने शीस झुकाया॥ ७॥

यौवन में शिव-धनुष भंग कर शक्ति दिखाई,
फिर हो सीता-राम जगत की रीति सिखाई;
वन-दुख सहते हुए भूप-कर्तव्य निवाहा;
सन्मुख रणमें किया नाश रिपुका अनचाहा॥ ८॥

होकर भारी भूप एक-पत्नी व्रत धारा,
फिर निजको भी भूल लोक-मतको सत्कारा।
पशु-पक्षी भी रहे न वाहर उनके जीसे;
जाति-भेद तज मिले राम वनकी शवरी से॥ ६॥

औरों के हित कौन सहज स्वारथ त्यागेगा ?
कौन उचित अधिकार नहीं अपने माँगेगा ?
जीवनके सब धर्म मिलेंगे किसमें ऐसे,
एक राममें भक्तलोग पाते हैं जैसे ? ॥१०॥

पिता-वचन यों प्रेम सहित किसने माने हैं ?
किस राजाने धर्म-हेतु यों वन छाने हैं ?
कौन रामके बिना जगत-संकट मेंटेगा ?
कौन दूसरा दास जान हमको भेंटेगा ? ॥११॥

संभाषण में विनय, बड़ोंका आदर करना ;
सब पर निर्मल प्रेम, सेवकों का मन भरना;
सदा सत्य व्यवहार, शांतता सिन्धु-सरीखी ;
किस दूजेसे राम-बिना भारतने सीखी ? ॥१२॥

पाय अमांगा राज प्रजा संपत्ति बढ़ाई ;
राज-लोभमें कभी रामने की न चढ़ाई।
राम-राज की कीर्त्ति देवता भी गाते हैं ;
अपने पुरमें राज नहीं ऐसा पाते हैं ॥१३॥

कहां रामसा हमें और गुरु-भूप मिलैगा ?
ज्ञान-प्रभा लख आन कौन हिय-कमल खिलैगा ?
एक बार विश्वास राममे जो हो जाये ;
स्वारथका अज्ञान पाप मय पास न आवे ॥१४॥

स्वारथ-वश हो, हाय, अधम हम यों फूले हैं;
जिसने सब कुछ दिया उसीके गुण भूले हैं।
इसी कपटसे हुई आज दुर्दशा हमारी,
तो भी दिखता नहीं हमें अपना अधिकारी ॥१५॥

—कामता प्रसाद गुरु।

कौशल्याका विलाप।

"तन मन जिस पै मैं वारती थी सदैव,
वह गहन वनोंमें जायगा हाय दैव।
सरसिज-तन हा! हा! कण्टकोंमें खिँचेगा;
घृत, मधु, पय-पाला स्वेद ही से सिँचेगा ॥ १ ॥

यह हृदय-विदारी दृश्य मैं देखती हूं,
नयन-सलिल-धारा सारसे भोगती हूं।
खल, पतित, अभागा प्राण जाये नहीं क्यों!
रहकर तनमें ये हैं लजाते नहीं क्यों ॥ २ ॥

मणि-महल-निवासी कन्दरामें रहेगा;
तज सुमन-बिछौने भूमि पै ही रहेगा।

मृदु-पद-तल वाला कङ्कड़ोंमें चलेगा ;
तज मखमल आला कङ्कड़ोंमें चलेगा ॥ ३ ॥

नितषट्-रसभोजी खायगा कन्द मूल,
जल तक न मिलेगा नित्य इच्छानुकूल।
वर वसन ज़रीके धारता जो सदा था ;
वह अजिन बिछावे भाग्यमें यों बदा था ॥ ४ ॥

नर-पति-सुत होके यों उदासी बनेगा ;
यह खबर किसे थी दैव ऐसा करेगा।
पल-पल भरमें मैं देख लेती उसे थी
मुख मलिन न होवे, प्राण देती उसे थी ॥ ५ ॥

वह मुझ दुखिनीके नेत्रकी ज्योति ही था ;
बस अधिक कहूं क्या, जानथा और जीथा।
वन वन फिरनेको जायगा लाल मेरा ;
विधि कुटिल करेगा हाय! क्या हाल मेरा ॥ ६ ॥

विधु-मुख न विलोके चैन कैसे पड़ेगी ;
निज सब कुछ खोके चैन कैसे पड़ेगी।
वह घन-छवि-वाला सामने जो न होगा।
वह मम पय-पाला सामने जो न होगा ॥ ७ ॥

वह मृग-दृग वाला दृष्टि से जो हटेगा ?
यह कठिन कलेजा क्यों न मेरा फटेगा ;

वह मृदु मुसकाता जो न माता कहेगा,
फिर सुख मुझको क्या प्राण रक्खे रहेगा ॥ ८ ॥

फिर मधुर मलाई मैं किसे हाय दूँगी ।
वर विविध मिठाई मैं किसे हाय दूँगी ॥
मन मृदु वचनो से कौन मेरा हरेगा ॥
यह हृदय दुखी हो धैर्य्य कैसे धरेगा ॥ ९ ॥

प्रतिपल किस पै मैं प्राण वारा करूँगी,
मुख लख किसका मैं धीर धारा करूँगी ।
हे विधि यदि जगतमें जन्म मेरा न होता ;
कुछ एक रहता क्या कार्य्य तेरा न होता ॥१०॥

दुख विषम सहानेके लिये था बनाया,
यह दिन दिखलानेके लिए था बनाया ।
गुण-गण जिसके हैं गारहा आज लोक ;
वह सुत बिछुड़ेगा शोक ! हा हन्त शोक !॥११॥

वह नृप-पद पावे मैं नहीं चाहती थी,
दुख भरत उठावे मैं नहीं चाहती थी ।
सुरपति-पदवी भी तुच्छ मैं मानती थी,
बढ़कर सब से मैं लालको जानती थी ॥१२॥

सिर मुकुट विनाही क्या न शोभा सनाथा ?
वह गुण-गरिमा से क्या न राजा बना था ?

भुज-बल समता को लोक में था न वीर ;
रण-सुभट यथा था, था तथा धर्म-धीर ॥१३॥

रति-पति-मद-हारी रूप भी था सलोना ;
वह सुरभि सना था और था मञ्जु सोना।
प्रिय सुत वह मेरा वेश धारे यतीका,
निज नयन निहारूँ, दोष है भाग्यही का ॥१४॥

उर उपल धरूँगी और क्या मैं करूंगी ;
विधि-वश दुख ऐसे देख के ही मरूँगी।
विधि! सहृदय हो तो प्रार्थना मान जाओ,
अब तुम मुझको हो मेदिनीसे उठाओ ॥१५॥

मम प्रिय "सुत" छूटा साथ ही देह छूटे ;
पल भर जननीका स्नेह-नाता न टूटे।
फल कुकृति किये का हाय। मैं पा रही हूं ;
पर, विधिपर सारा दोष मैं ला रही हूं ॥१६॥

इस विषम विपदमें ज्ञान जाता रहा है ;
सदय विधि क्षमा दे, ज्ञान जाता रहा है।
पर, विनय न मेरी हे विधाता! भुलाना ;
मम सुत वनमें भी तू न भूखा सुलाना ॥१७॥

दुख उस पर कोई और आने न पावे ;
वह कुँवर कन्हैया कष्ट पाने न पावे।

युग युग चिरजीवे लोकमें नाम होवे;
फिर घर फिर आवे रामही राम होवे ॥१८॥

किस विध दुख झेलूँ आर्त्ति कैसे घटेगी?
यह अवधि वड़ी है, हाय! कैसे कटेगी।
पल-पल युग होगा याम तो कल्प होंगे,
दिन दिन दुख दूना, कष्ट क्या अल्प होंगे ॥१९॥

फिर यह अति दीना धैर्य्य कैसे धरेगी;
सुध कर-कर प्यारे की दुखी हो मरेगी।
वह सुघर सलोना, अम्बका प्राणप्यारा।
वह सुरभित सोना, अम्बका प्राणप्यारा ॥२०॥

वह दृढ़-प्रण-पाली नीतिशाली कहाँ है?
वह हृदय लताका मञ्जु माली कहाँ है?
वह प्रवल प्रतापी हंस वंशी कहाँ है?
वह खल-गण-तापी विष्णु-अंशी कहाँ है? ॥२१॥

तन सघन घटा सा श्याम प्यारा कहाँ है?
वह अवध पुरीका राम प्यारा कहाँ है?
वह मुझ जननी का चक्षु तारा कहाँ है?
वह तन-मन मेरा प्राण-प्यारा कहाँ है? ॥२२॥

वह कलरव-केकी बोलता क्यों नहीं है?
अब मधु श्रवणोंमें घोलता क्यों नहीं है?

वन क्षण भरमें ही क्या गया हाय! प्यारा ?
अब मुझ दुखिनीको क्या रहा है सहारा! ॥ २३ ॥

फिर मम सुत कोई पास मेरे बुला दे;
शशि-मुख वन जाते देख लूँ आ दिखा दे।
निज हृदय लगालूँ, ताप सारे मिटालूँ;
फिर लख उसको मैं चित्तमें चैन पालूँ ॥ २४ ॥

घर धर-धर खाता जो कि था मोद-धाम;
मम प्रिय सुत हा! हा! राम! हा राम! राम!"
यह कहकर रानी हो गई चेतहीन।
जल तजकर जैसे खिन्न हो मीन दीन ॥ २५ ॥

—*"सनेही"*

रामचन्द्रकी प्रतिज्ञा।

नगरोंको कर पार राम जब पहुँचे वनमें,
बड़ा हर्ष तब हुआ सभी मुनियोंके मनमें।
हर्षान्वित हो राम-निकट सब दौड़े आये,
देकरके आशीश कुशल पूछा, सुख पाये ॥ १ ॥

उनके दृगसे किन्तु वही आँसू की धारा,
मानों उनके हृत्तरु पर चलता था आरा।
कहना था कुछ उन्हें, नहीं पर कहने पाये,
मूक तुल्य हो गये, कण्ठ उनके भर आये ॥ २ ॥

मुनियोंकी दुख-दशा देख रघुपति घबराये,
निज दुख मनसे तुरत उन्होंने दूर हटाये।
वज्रपातके तुल्य कभी शर-पात नहीं है,
ग्रीष्म-वातसा दुसह कभी हिम वात नहीं है ॥ ३ ॥

व्याकुलताके साथ दण्डवत किया उन्हें फिर—
बोले अति गम्भीर भावसे होकर सुस्थिर।
मेरे रहते विप्र दुखी हों, यह क्यों होगा?
रविके रहते अन्धकार दुःसह क्यों होगा? ॥ ४ ॥

मुनियो! मेरा जन्म हुआ है जिस सत्कुलमें,
दाग़ नहीं है लगा आजतक उस सत्कुलमें।
भूपर वह साम्राज्य-चक्रका सञ्चालक है,
है असुरोंका काल, साधु-गो-द्विज-पालक है ॥ ५ ॥

मुनियों! क्या श्रुति-मार्ग टूट जानेवाला है?
प्रलय-काल क्या अहो! शीघ्र आनेवाला है?
पृथ्वीतल पर पाप किसी कारण होता है;
और पाप-परिणाम महा-दारुण होता है ॥ ६ ॥

मानों कोई वीर नहीं अब बचा हुआ है;
तब तो अत्याचार महीपर मचा हुआ है।
सुयश-सुधासे स्वीय वदनको धोनेवाले—
जो थे, क्या हो गये भीरु हो रोनेवाले? ॥ ७ ॥

चिन्तामणिमें अग्नि अहो! उत्पन्न हुआ है;
अमर्याद हो जलधि क्षोभ-सम्पन्न हुआ है।
मुनि-मण्डल हो दुखी—यहाँ यह बात नई है;
तो भी धरिए धैर्य्य हवा कुछ पलट गई है ॥ ८ ॥

"मुनियो! तुम हो निखिल वेद-तत्त्वोंके ज्ञाता;
शास्त्रोंके तो धन्य तुम्हीं हो मूल-विधाता।
चतुर्वर्ग के सहित कलाओंके दाता हो;
तुम्हीं ज्ञान-आलोक-लोकके भी त्राता हो ॥ ९ ॥

उत्तमाङ्गसे प्रथम तुम्हीं उत्पन्न हुए हो;
तुम्हीं सदाके लिये वेद-व्युत्पन्न हुए हो;
सब वर्णों के इष्ट हृष्ट भू-देव तुम्हीं हो;
नर देवोंके देव धन्य गुरुदेव तुम्हीं हो ॥ १० ॥

जगती-गत धन-धान्य सभी हैं सदा तुम्हारे;
धरा धरोहर-तुल्य पड़ी है पास हमारे।
विप्र दुखी यदि रहें, राज-विस्तार न होगा;
हाय! हमारा कोटि जन्म निस्तार न होगा ॥ ११ ॥

महाराज हैं आप, राज-सुत नाम हमारा;
गो-द्विजरक्षित रहें, यही है काम हमारा।
निज कर्मोचित कर्म किया करते हैं ज्ञानी;
प्राणोंतकके दान दिया करते हैं दानी॥ १२॥

जिसने हो हत-बुद्धि द्विजोंको दुःख दिया है;
मानों उसने निज हाथों विष-पान किया है।
जलते पावक-कुण्ड बीच जो स्वयं गिरेगा;
जल-भुन करके तुरत क्यों न वह मूढ़ मरेगा ?॥ १३॥

पर उस खलको आपलोग यदि हमें दिखा दें;
दुष्कृतका फल उसे अभी हम खूब चखादें।
चाहे हो वह काल उसे भी समर सिखादें;
राजपूतके कर्म विश्वको तनिक दिखादें"॥ १४॥

मुनियोंने तब कहा धैर्य धरकर निज मनमें—
"यह जो अस्थि-समूह पड़ा है रघुवर! वनमें।
असुरोंहीने इसे यहां तय्यार किया है;
गो-विप्रोंके प्राण लिये हैं, दुःख दिया है॥ १५॥

कुछी दिनोंसे असुर यहाँ आते जाते हैं—
किन्तु राम! अविराम दुःख अब हम पाते हैं।
लोलुप हैं वे और बड़े ही मायावी हैं;
छली-बली हैं बड़े, हुए हमपर हावी हैं॥ १६॥

हम घटते हैं सदा, सदाही वे बढ़ते हैं ;
उनके करसे राम ! नहीं हम छुट सकते हैं।
उनका अत्याचार यद्यपि बढ़ता जाता है ;
बदला लेना नहीं हमें तोभी आता है॥ १७॥

हम डरते हैं सदा, निडर हो वे फिरते हैं ;
हम चूं करते नहीं, और भूखों मरते हैं।
सब कष्टोंको राम नहीं हम कह सकते हैं ;
सहते हैं पर उन्हें जहाँतक सह सकते हैं॥ १८॥

राजपुत्र ! तुम राजनीतिको खूब विचारो—
नाकों दम है, दुष्टजनोंसे हमे उबारो।
समय चूककर हाथ मलोगे, पछताओगे ;
देर करो मत राम ! काम फिर कब आवोगे ?॥ १९।

"मुनियों! तुमको डाल दिया है जिसने दुखमें,
अपयश-कालिख शीघ्र लगेगा उसके मुखमें।
तप्त स्वर्णकी कान्ति कभी क्या घटजाती है ?
पर दाहकको देह खेहसे पटजाती है॥ २०।

जिस देहीको पञ्चतत्व हैं मिले जहाँसे ;
वह कैसे निस्नेह रहेगा कभी वहाँसे ?
अर्पण करना उन्हें वहीं पर उचित उसे है ;
मानव होकर नहीं देश-अभिमान किसे है? ॥२१॥

"तपो-भूमिको निशाचरोंसे हीन करूँगा;
करके धर्मोद्धार, सभी भू-भार हरूँगा"।
यदि इस प्रणको चूर्ण-तूर्णही नहीं करूँ मैं—
स्वयं रामकी जगह 'मरा' निज नाम धरूँ मैं * ॥ २१॥

रामचरित उपाध्याय।

रावणकी विचार-सभा।

हनूमानके हाथ जली थी लङ्का जबसे,
लंकेश्वरको नींद नहीं लगती थी तबसे।
आमन्त्रित कर सभासदोंको हँसकर बोला,
चिन्तित था, पर मनका उसने भाव न खोला॥

"सभ्यो! मेरी बातको ध्यान सहित सुन लीजिये।
तदनन्तर नय युक्तिसे निज-निज सम्मति दीजिये॥ १॥

बिना विचारे कार्य्य नहीं करते हैं ज्ञानी,
करके कार्यारम्भ न उससे हटते मानी।
मैंने जो कुछ कार्य किया वह छिपा नहीं है;
लड़ने आता मनुज लाजकी बात यही है।

---

* रामचरित चिन्तामणिसे उद्धृत।

सभ्यो ! मेरे हाथसे चली गई यदि जानकी ।
दुरवस्था हो जायगी तो फिर मेरी जानकी ॥ २ ॥

ब्रह्मा, इन्द्र, कुबेर, काल भी डरता जिससे,
नर-वानर क्या युद्ध करेंगे सचमुच उससे ?
तोभी मुझे सचेष्ट सदा रहना ही होगा,
काल पालको देख कार्य्य करना ही होगा ।

जिससे मेरी विश्वमें सदा विजय होती रही ।
सावधान हो सभ्य सब पुनर्युक्ति करिए वही" ॥ ३ ॥

क्रोधासक्त प्रहस्त हाथ जोड़े बोला तब,
"नाथ ! न करिए सोच, हाल जाना मैंने सब ।
मेघनाद के हाथ सौंपिये राम-लड़ाई,
नरसे कर के युद्ध आपकी नहीं बड़ाई ।

या मैं ही रिपु-सैन्यको नष्ट करूँगा मारकर ।
किसी भाँति आजायँगे, यदि वे वारिधि पारकर" ॥४॥

ज्यों प्रहस्त चुप हुआ व्यर्थ भाषणकर भीषण,
बोल उठा गम्भीर नादसे तुरत विभीषण ।
"सामादिकसे प्रभो ! काम यदि चल सकता है,
तो फिर दण्ड-प्रयोग नहीं कोई करता है ।

बलवानोंके साथमें दण्ड नीति चलती नहीं ।
और निरीहों पर किये कर्त्ताको फलती नहीं ॥ ५ ॥

फिसका है अपराध सोचिए अपने मनमें,
नारीका अपहरण उचित क्या है निर्जनमें ?
शूर्पणखाकी नाक रामने कटवादी तब,
करना चाहा कर्म धर्म-नाशक उसने जब।

वध भी प्रभो! खरादिका उचित किया है रामने।
क्यों वे लड़नेके लिये दौड़े उनके सामने ॥ ६॥

सुनिये मेरी बात अनुज हूं नाथ! आपका,
होता है निःशङ्क विषम परिणाम पापका।
लड़ना स्त्रीके लिये कभी भी उचित नहीं है,
पर नारी से दूर रहे जो, शूर वही है।

मर्यादा-रत वीरकी नहीं अवज्ञा कीजिए,
सादर सविनय रामसे मिलकर सीता दीजिए ॥ ७॥

सुख-नाशक है क्रोध न उससे मति-गति हरिए,
यशोवृद्धिकर धर्म, उसीका पालन करिए।
छलसे परकी वस्तु हरण करना अनर्थ है,
समझाना लंकेश! आपको अधिक व्यर्थ है।

प्रिया रामकी जानकी उसे उन्हें दे दीजिए।
वीत-शोक हो आजसे राज अकण्टक कीजिए" ॥ ८॥

रावणने तब कहा, "वायु सी गति मेरी है,
राजराजसी रमा गिरा सी मति मेरी है।

सुप्त सिंह को जगा कुशलसे कौन रहेगा ?
मुझसे करके युद्ध मृत्युको कौन चहेगा ?

मुझे किसीसे भय नहीं हो सकता लय कालमें।
लिखी नहीं लङ्केशके घृणित भीरुता भालमें ॥ ९ ॥

तारात्रों का तेज नष्ट होता ज्यों रविसे,
गिरता है गिरि-शृङ्ग चोट खाकर ज्यों पविसे।
वैसे ही रिपु-पुञ्ज मरेगा मुझसे लड़कर,
या मांगेगा क्षमा स्वयं मम चरणों पड़कर॥

जब मैंने मयकी सुता लेली तो फिर जानकी—
मेरे जीते जी नहीं हो सकती है आनकी" ॥ १० ॥

कुम्भकर्ण तब क्रोध-युक्त बोला निर्भय हो—
"बात वही, जो सभी दृष्टिसे यथासमय हो।
क्यों करके अन्याय व्यर्थ बातें करते हैं ?
गया मन्त्रका समय आप नाहक डरते हैं।

भूल हुई जो आपसे उसे भूल ही जाइए।
लड़नेको अब रामसे अपनी सैन्य सजाइए॥ ११ ॥

नीति-सहित जो भूप कार्य करता है भूपर,
कभी तनिक भी कष्ट न आता उसके ऊपर।
रावण ! कभी नयज्ञ समयपर चूक न सकते,
कर दिखलाते कार्य व्यर्थ वे कभी न बकते।

सदा व्यवस्थित-चित्तसे नृपको रहना चाहिये।
कभी न बीती बातको मुखसे कहना चाहिए ॥ १२ ॥

यद्यपि अनुचित कार्य हुआ सीताका हरना,
तोभी हे लंकेश! चित्तमें खेद न करना।
करिए आप विहार, युद्धका कार्य करूँ मैं,
कपि-सेनाको मार रामका दर्प हरूँ मैं।

कभी सूर्य्यका सामना जुगनू कर सकता नहीं।
कभी स्वप्नमें भक्ष्यसे भक्षक डर सकता नहीं" ॥ १३ ॥

कुम्भकर्णकी बात श्रवणकर परुष विभीषण—
बोल उठा फिर सरुष बड़ा वाचाल उसी क्षण।
"काल-सर्पिणी जान जानकीको दशकन्धर,
दूर कीजिए शीघ्र, न मरिए उसके ऊपर॥

कुम्भकर्ण या और की बातोंमें मत आइए।
क्षुद्र मूषिकाके लिए गिरिको नहीं गिराइए ॥ १४ ॥

हानि-लाभका ज्ञान न कामीको रहता है,
करके उलटे काम सदा वह दुख सहता है।
महा विज्ञ हो अहो ज्ञानसे हीन हुए हैं,
जग-विजयी हो आप आज अति दीन हुए हैं।

भूरि भार अन्यायका कोई सह सकता नहीं।
उत्पीड़न कर लोकका कोई रह सकता नहीं ॥ १५ ॥

लङ्कावालों सहित नष्ट होगी यह लङ्का।
बन्धु मानिए सत्य, न इसमें कुछ भी शङ्का।
मान लीजिए बात, व्यर्थ अभिमान न करिए,
पुरजन परिजन-सहित नाथ! रणमें मत मरिए।

दीना क्षीणा जानकी नहीं आपके कामकी।
उसको दूर हटाइये, वह दासी है रामकी" ॥ १६ ॥

सुनकर भीषण वाक्य विभीषणके, उत्तेजित
हो बोला घननाद पिताको देख पराजित।
"वार्ता व्यर्थ अनर्थकरी तुम क्यों करते हो?
नृप-बालकसे भीरु विभीषण! क्यों डरते हो?

तुमसे दुर्बल-हृदय तो मानव भी होते नहीं।
वे भी रणकी भीतिसे हो निलज्ज रोते नहीं ॥ १७ ॥

बार बार तुम-राम बड़ाई क्यों करते हो?
हम न डरेंगे कभी, भीत बन क्यों मरते हो?
भेड़ झुण्डको देख भेड़िये कभी न डरते,
देख बटेरें श्येन प्राण उनके झट हरते।

हंस वंशमें वक हुए, लड़ो न रिपुदलके लिए।
दृढ़ कुठार बनते वृथा तुम अपने कुलके लिए ॥ १८ ॥

जिसके बलसे सदा सौख्य तुम करते आये,
हाय! उसीको आज विविध कटु वाक्य सुनाये!

धर्मज्ञोंकी बात अज्ञ होकर भी करते,
मुँहमें कालिख लगा कहीं क्यों डूब न मरते।
मत लड़ना तुम रामसे मौन हुए बैठे रहो।
व्यग्र देख लङ्केशको मत नाहक ऐंठे रहो॥ १६॥

लङ्काका कुछ लाभ न तुमसे हुआ न होगा,
यद्यपि तुमने विविध भोग लङ्कामें भोगा।
तुमसे नमकहराम आजतक हुए न जगमें,
वन्धु-वैरके भाव भरे हों जिनकी रगमें।
देख व्यसनमें,स्वजनका साथ दिया जिसने नहीं।
मानो इस संसारमें जन्म लिया उसने नहीं॥ २०॥

ये मेरे भुजदण्ड इन्द्र-मद हरनेवाले,
देवलोकमें प्रलयकाल के करनेवाले।
पहले ही से वने हुए हैं देखो अब भी,
क्यों डरते हो व्यर्थ विभीषण नरसे तब भी।

यम हूँ मैं यमके लिए मुझे न भय है कालका।
किसने देखा है नहीं वल मेरे करवालका" ॥ २१॥

मेघनादके वाद विभीषण फिर भी बोला,
"मेघनाद! तू अभी निरा वालक है भोला।
हानि-लाभका तुझे तनिक भी ध्यान नहीं है।
राम कौन हैं मूढ़! तुझे यह ध्यान नहीं है।

काल-विवश तू भी हुआ रावण ही के रूपमें।
भङ्ग किसी ने डालदी या लंकाके कूपमें" ॥ २२ ॥

अब रावणका क्रोध हुआ सीमाके बाहर,
बोल उठा वह, "मूर्ख! यहाँसे उठ जा कायर।
अनुज जानकर तुझे क्षमा फिर भी करता हूँ।
नहीं मारता दुष्ट अयशसे मैं डरता हूँ।

कुल-पासन! तू शत्रु है, यहाँ न तेरा काम है।
यदि मुझसे भी अधिकतर, तुझको प्यारा राम है" ॥ २३ ॥

रावण की अपमान-भरी बातोंको सुनकर,
भगा विभीषण तुरत वहाँसे हो भय-कातर।
गया राम थे जहाँ, मिला उनसे विनीत हो,
लगा बताने भेद बन्धु का राम-मीत हो।

जो आपसको फूटका फल है वह मिलने लगा—
लङ्केश्वरको, रामका मनो-मुकुल खिलने लगा ॥ २४ ॥ *

—पं० रामचरित उपाध्याय।

---

* रामचरित चिन्तामणिसे उद्धृत।

कामी और सतीका संवाद
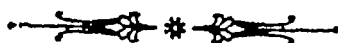
(रामचरित चिन्तामणिसे उद्धृत)

कामातुर दशशीस जानकी-निकट खड़ा हो,
डरता बोला, किन्तु प्रकट में बड़ा कड़ा हो।
"सीते! मुझको देख तुझे डरना न चाहिये।
वनवासीके लिये व्यर्थ मरना न चाहिये॥

यद्यपि रक्षोंके लिये कुछ भी नहीं अधर्म है।
तोभी तुझे प्रसन्न ही रखना मेरा कर्म है॥ १॥

सीते! मुझको मान, तुझे भी मान मिलेगा,
अपमानित कर मुझे न तेरा काम चलेगा।
भोग-भोग नृप-सुते! वृथा हठयोग न कर तू;
मुझे समझ निजदास, समझ लङ्काको घर तू।

कौन वस्तु है विश्वमें जिसे न ला दूंगा तुझे,
यदि निज सस्मित वदनको क्षणभर दिखलादे मुझे॥ २॥

जिसी अङ्गपर दृष्टि भीरु! मम झुक जाती है;
होकरके लाचार वहीं वह रुक जाती है।

कामी और सतीका संवाद।

'सीता! मुझको देख तुझे डरना न चाहिये।
वन-वासीके लिये व्यर्थ मरना न चाहिये।"

(पृष्ठ ९६)

तुझे बनाकर स्वयं स्वयम्भू धन्य हुआ है;
तेरे सम सौन्दर्य-सिन्धु क्या अन्य हुआ है?

शासक नाशक विश्वका मुझको ही तू जानजा;
राम न पा सकता तुझे मेरी बातें मानजा॥ ३॥

मैं तेरा हो चुका और तू मेरी होगी;
किसी भाँति हे भीरु! न इसमें देरी होगी।
हो सकता है राम न मेरे दास बराबर;
कर आहार-विहार रामसे चित्त हटा कर।

भारतेश मैं जनक को तुरत बना दूँगा प्रिये!
और मुझे क्या चाहिए आज्ञा दे उसके लिए॥ ४॥

अल्प कालमें नष्ट नव वयस हो जाती है;
बीत गई जो घड़ी नहीं फिर वह आती है।
अपनी अनुपम देह व्यर्थ मत मिट्टी कर तू;
छोड़ रामका ध्यान, प्रेमसे मुझको वर तू।

तेरी चेरी मय-सुता होगी सीते आजसे।
क्यों उत्तर देती नहीं? नाहक चुप है लाजसे" ॥ ५॥

दशकंधरके वचन श्रवण कर सीता बोली;
किन्तु राम-पदसे न तनिक मति उसकी डोली—
"मुझसे मनको हटा लगा उसको निज जनमें;
राजनीतिको समझ दशानन! अपने मनमें।

कभी भूलकर भूपको अनय न करना चाहिए;
ध्यान-सहित निज धर्मको मनमें धरना चाहिए ॥ ६ ॥

क्यों गिरता है मूढ़! अन्ध हो "काम"-कूपमें ?
व्यर्थ न कालिख लगा स्वयं हो भूप-रूपमें।
छल करके पर-वस्तु तुझे हरना न चाहिए;
निर्बलको बल-विवश कभी करना न चाहिए।

पाप-वृत्ति जिस भूपकी हुई अन्यके साथमें;
राज-दण्ड रहता नहीं राक्षस! उसके हाथमें ॥ ७ ॥

जिसकी है जो चीज़ उसे वह फिर मिलती है;
सदा किसीकी नहीं चालबाज़ी चलती है।
शठ! हठ मतकर कभी बड़ा धोखा खावेगा,
केवल तेरा अयश जगतमें रह जावेगा।

छल-विहीनके साथ छल करना अति अन्याय है;
राक्षसेश! तू सम्हल जा सविनय मेरी राय है ॥ ८ ॥

पलमें सब सम्पत्ति नष्ट होती है खलकी,
निर्बल दलकी आह नहीं होती है हलकी।
विमल चालको छोड़ चाल तू मत चल छलकी,
सुस्थल तज मत बैठ कोठरीमें कज्जलकी।

भूतल पर अन्यायका फल मिलता है शीघ्रही;
कुशल नहीं है दीखता तेरा, तू टलजा कहीं ॥ ९ ॥

कभी राहुसे नहीं रोहिणी मिल सकती है;
बिना कुमुदके नहीं कुमुदिनी खिल सकती है।
सदा प्रणव के साथ ऋचा शोभा पाती है;
चपला घनसे हीन नहीं देखी जाती है।

भूप नहीं भूपेन्द्र तू, तो भी राक्षसराज है;
क्रूर! दूररहो, कुछ नहीं तुझसे मेरा काज है॥ १०॥

सत्यवानके साथ रही जैसे सावित्री;
द्विज-मुख को ज्यों गेह बनाती है गायत्री।
सदा प्रभाकर साथ प्रभा जैसे रहती है,
यथा शम्भुके सङ्ग प्रेममें मग्न सती है।

वैसे ही सम्बन्ध है मेरा भी रघुराजसे;
मुझे नहीं कुछ काज है नीच निशाचर-राजसे॥ ११॥

निर्गन्धा हो भूमि, धूमसे हीन अनल हो,
स्पर्श-रहित हो वही रूपके सहित अनिल हो।
रावण! ये हो जांय सभी अघटित घटनायें;
पर मन डिगता नहीं सती का लोभ दिखाये।

राज्य, रत्न, धन साथमें आते-जाते हैं नहीं;
धर्म-हीन त्रैलोक्यमें जन सुख पाते हैं नहीं॥ १२॥

चल यौवन ही नहीं, किन्तु जीवन भी चल है,
जिसको है यह ज्ञान उसीका जन्म सफल है।

इसी लिये लंकेश! पतिव्रत मैं पालूँगी;
तेरे मुख पर राख अयशकी मैं डालूँगी।

टालूँगी जीती नहीं निगमागम-आदेशको;
देशवेश-प्रतिकूल जो धिक्कृति उस सुखलेशको॥" १३।

"सुनकर तेरे कटुक वचन मैं सुख पाता हूँ;
सीते! तनिक न क्रोध-हाथ में मैं जाताहूँ।
स्मर-पीड़ित मुझे अधिक मत व्रीड़ित कर तू;
कर जोड़े हूँ खड़ा दुःख सब मेरे हर तू।

पर सीधे पन से नहीं काम निकलता है कभी;
इसी लिए निज हाथसे दण्ड तुझे दूँगा अभी॥ १४॥

रूप-जालमें फँसा हुआ हूँ सीते! तेरे;
जो चाहे सो कहे, झुके हैं मस्तक मेरे।
और नहीं तो भला आज तू बकती ऐसे—
वश कर लेता तुझे शीघ्र ही होता जैसे।

इन्द्राणी को भी अभी चाहूँ तो वश में करूँ;
अपने मनमें सोच तू, फिर मैं क्यों तुझसे डरूँ?॥१५॥

जिसको चाहे चित्त मनोहर वस्तु वही है;
मैं तो तेरा दास हुआ बस हेतु यही है।
मेरे हाथों अन्त करावेगी यदि अपना—
तो फिर मेरे लिये सुमुखि! होगा सुख सपना

तोभी मेरी बातको जो तू मानेगी नहीं ;
कुछी दिनोंके बाद मैं तुझको मारूँगा यहीं ॥१६॥

पहले कामासक्त क्रोध के वश होता है,
फिर वह गिरकर मोह-गर्तमें स्मृति खोता है।
होता है हतबुद्धि वही फिर स्मृतिको खोकर,
हो जाता है नष्ट स्वयं फिर वह रो-रो कर।

रावण ! कामासक्त क्यों होता है मेरे लिए ?
मेरा कहना मान जा कहती हूँ तेरे लिए ॥१७॥

राक्षसेश ! क्या तुझे कालने आ घेरा है ?
इसीलिए हित-वाक्य नहीं सुनता मेरा है।
क्यों करके अन्याय कलङ्कित तू होता है ?
शीघ्र चेत जा, मोह-दिवसमें क्यों सोता है ?

पुरजन परिजन भी तुझे क्यों समझाते हैं नहीं ?
क्या वे तेरे साथमें दुख-सुख पाते हैं नहीं ? ॥१८॥

अन्यायीके निकट नहीं कोई जाता है,
दुखी देख कर उसे जगत अति सुख पाता है।
पामर होकर उच्च-वंश क्यों तू बनता है ?
होकरके वक हंस-चाल तू क्यों चलता है ?

साधुजनोंकी दृष्टिसे राक्षसेश ! तू गिर गया।
मानो इस संसारमें जीताही "तू" मरगया ॥१९॥

साधु-वेश धर प्रथम मुझे तूने फुसलाया,
वशमें करके अहो! भयङ्कर वपु दिखलाया,
क्षत्रिय करसे छीन मुझे क्यों दुख देता है?
निज प्रज्ञासे काम नहीं क्यों तू लेता है?

मूढ़! किसीकी एकसी राज्यश्री रहती नहीं,
उत्पीड़कके भारको मही सदा सहती नहीं॥२०॥

नभमे निजगति देख तनिक भी गर्व न कर तू,
राक्षसेश! मत शलभ-तुल्य उड़ करके मर तू।
शस्त्र-सुसज्जित सभी सुभट हैं तेरे तो क्या?
राज्य, सैन्यसे रहित राम मेरे हैं तो क्या?

न्यायपरायण ईश वह न्यायी जनके हाथमें—
विजय-जयन्तीको कभी देगा ही रह साथमें॥२१॥

भारतकी मैं पतिव्रता हूँ सुन दशकन्धर!
नश्वर है जब देह मृत्युका फिर क्या है डर?
धन्य धर्मके लिए निछावर जो होती हैं;
कीर्त्ति-बीजको विपुल विश्वमें वे बोती हैं।

क्षणिक काम-सुखके लिये धर्म न छोड़ूँगी कभी;
कुल मर्यादासे नहीं मैं मुख मोड़ूँगी कभी॥२२॥

मानसहीमें हंस-किशोरी सुख पाती है;
नही चन्द्रके बिना चकोरी सुख पाती है—

सिंहसुता क्या कभी स्यारसे प्रेम करेगी ?
क्या पर-नरका हाथ कुल-स्त्री कभी धरेगी ?

धर्म-पिता, मैं आजसे रावण मानूँगी तुझे,
रघुनायकके पास यदि तू पहुँचा देवे मुझे ॥२३॥

पर तू अच्छी बात कभी क्या सुन सकता है ?
मुक्ताको क्या कभी चकोरक चुन सकता है ?
पूर्व-पुण्य सब क्षीण हुए मानों अब तेरे।
सभी काम विपरीत लगे होने अब तेरे ॥

रोवेगा तू नरकमें खोवेगा निजराजको,
ईश्वर रक्खेगा सदा राक्षस मेरी लाजको ॥२४॥

—रामचरित उपाध्याय

मन्दोदरी और रावण ।
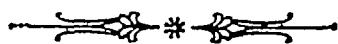
मन्दोदरी ।

बुध वही गुणसागर है वही, सकल लोक-जनेश्वर है वही।
कुछ प्रियाप्रिय है जिसको नहीं, विरतिमें रतिमें रति-तुल्य है॥१॥

पर-रमा, रमणी विष-तुल्य है, हठ नहीं करिए प्रिय! मानिए।
तनिक ताप उन्हें लगता नहीं, वृजिनका, जिनका शुभकर्म है॥२॥

नय-परायणता प्रिय हो जिसे, अरुचि हो पर-पीड़नसे जिसे।
रमण! हो फिर क्यों उसके नहीं, अहित भी हित भीतरसे सदा॥३॥

निज वधू जनमें रमिए प्रभो! सुरसुतोपम है वह जानकी।
न उनकी समता फ़बती तुम्हें; असुर हो सुर हो सकते नहीं॥४॥

रसिक हो निगमागमके सही, प्रिय! सुराऽसुरसे कर लीजिये।
पर नहीं तुममें कुछ भी हुई, सुजनता जन-ताप निवारिणी॥५॥

स्वमहिषी यदि पाकर वे लड़ें, तब नहीं हटिए रणसे कभी।
बुध नहीं पहले अरि मारते—लगुड़से गुड़से यदि कार्य हो॥६॥

प्रिय! अभी कुछ भी विगड़ा नहीं, स्वमनको अपने वश कीजिए।
अहह! क्यों मनुजा-छवि-जालमे, शकुलके कुलके सम हो फँसे?॥७॥

निज हिताहितको समझे न जो, यदि न हो जिसमें कुछ भी दया।
फिर दशानन! क्यों उसकी नहीं, मुखरता खरतापन मानिए? ॥८॥

भजन ही करिए अब ईशका, अवशता अति-तापकरी सदा।
यदि बने, निज राज्य सहर्ष हो, तनयको-नय कोविद! दीजिए ॥९॥

जनकजा-गत-चित्त न हो, प्रभो! विवश हो वश होकर कालके।
निकट ही अब अन्तिम आपका दिवस है वश है चलता नहीं ॥१०॥

रावण।

कुछ नहीं कहिए समझे विना, यह सनातन की शुभ नीति है।
इसलिये स्थिर हो करके प्रिये! पिशुनता सुन तापसकी ज़रा ॥१॥

अहह नाक विना भगनी हुई, प्रियतमे! जिसकी करतूत से।
विनय तू करती उसके लिए, न रसना रस-नाश-करी कर ॥२॥

रहित हा! खर-दूषण से किया, मयसुते! मुझको जिस रामने
फिर चखे उसको अब क्यों नहीं! तरसके रसके हम विज्ञ हैं ॥३॥

प्रकटमे वह साधु-समान है, कुटिलता पर है उसमें भरी।
सुजन है वह क्यों जिसमें प्रिये! द्विरदके रदके सम नीति है ॥४॥

समर है करना रिपुसे नहीं, कब भला हम हैं सुनते इसे।
जगतमें भटकी भट-मानिता-अचल है, चल है, अचलादि भी ॥५॥

जय यथा सुख-दायक शूरको, मरण भी रण में शुभ है उसे।
इसलिए मम निर्भय हो सदा, विजनमें जनमें मन मग्न है ॥६॥

यम अजादिक भी मम सामने, रुक नहीं सकते क्षण भी कभी।
तदपि राम भिड़ा मुझसे, अहो, न वड़वा बड़वानलको तरे॥

बल नहीं अबले ! मम जानती, भय तभी तुझको नरसे हुआ।
हम विपक्ष-निशा-तमके लिए द्युमणि हैं, मणि हैं निज वंशके॥

हर घड़ी मनमें मम कामना, बस यही अब है सुन तू प्रिये!
कब करूँ रण-ताण्डव शत्रुके, निकरमें करमें करवाल ले॥

तुम विहार करो गतचिन्त हो, सुमदिरा मदिराक्षि! पिया करो।
कर नहीं सकता मम इन्द्र भी, प्रकृतिकी कृतिकी प्रतिकूलता* ॥

—पं० रामचरित उपाध्याय।

बन्धु-वियोग।

हुआ जब युद्ध में बेहोश भाई।
उड़ी तब रामके मुख पर हवाई॥
जलद-मद-हर मुखाम्बुज मञ्जु नीला।
पलक भर में हुआ छविहीन पीला॥ १॥

---

* रामचरित चिन्तामणिसे उद्धृत।

रुधिर-गति देहमें रुकसी गई फिर।
व्यथित हो, देह कुछ झुकसी गई फिर॥
सजल-जलजात-दृग दुख देख ऊबे।
युगल खञ्जन विकल जल बीच डूबे॥ २॥

रहे सिर थाम मुखसे आह निकाली।
हृदयसे दीप्त दारुण दाह निकाली॥
उन्हें चारों तरफ सूझा अँधेरा।
लगे कहने कि "हा! हा! बन्धु मेरा॥ ३॥

अचानक आज मुझसे छुट रहा है।
अरे! सर्वस्व मेरा लुट रहा है॥
उठो प्रिय बन्धु! बोलो नेत्र खोलो।
न रसमें विष विषम यों हाय! घोलो॥ ४॥

यहाँ अब कौन है ऐसा हमारा।
विपद में पा सकें जिससे सहारा॥
भला मैं युद्ध अब कैसे करूँगा।
तुम्हारे दुःख में रो-रो मरूँगा॥ ५॥

कठिन होगा अवध में मुँह दिखाना।
तुम्हें खोके रहेगा दुःख पाना॥
तुम्ही तो बन्धुवर मम बाहुबल थे।
अचल सम युद्ध में रहते अचल थे॥ ६॥

हृदय की बात तुम अनुमानते थे।
मुझे सर्वस्व अपना जानते थे॥
न टलते पाससे दिन-रात तुम थे।
सगे सर्वस्व मेरे तात! तुम थे॥ ७॥

कभी तुमने न मेरा साथ छोड़ा।
समय असमय न पल भर हाथ छोड़ा॥
नहीं तुमको भवन-सुख-भोग भाया।
हमारे साथ वन-दुःख-भोग भाया॥ ८॥

तुम्हारे साथ वन मुझको भवन था।
सदा निश्चिन्त, निर्भ्रम, शान्त मन था॥
कभी तुमने वचन मेरा न टाला।
तुम्हारा प्रेम मुझपर था निराला॥ ९॥

निरन्तर साथ खाया साथ खेले।
चले अब तुम कहाँ तजकर अकेले॥
विभूषण वंश के तुम वीर-वर थे।
तुम्हारे कोपसे कँपते अमर थे॥ १०॥

तुम्हारे बाण काल-व्यालही थे।
स्वयं भी शत्रुको तुम कालही थे॥
कभी तुमने न रणमें पीठ मोड़ी।
नहीं रघुवंशियों की आन छोड़ी॥ ११॥

मनस्वी वीर अब तुम सा कहाँ है।
तपस्वी धीर अब तुमसा कहाँ है॥
कहाँ तुमसा बली औ' ब्रह्मचारी।
कहाँ तुमसा धरामें धैर्य्यधारी॥ १२॥

भरोसा हाय! अब किसका करूँगा।
किसे मैं देख कर धीरज धरूँगा॥
अगर यह बात पहले जानता मैं।
तुम्हारा छूटना अनुमानता मैं॥ १३॥

समर में प्राण मैं पहले गँवाता।
विधाता फिर न यह दुर्दिन दिखाता॥
महा दुर्दैव की माया प्रबल है।
कहीं इसकी कुटिलतासे न कल है॥ १४॥

छुड़ाया घर भयानक वन दिखाया।
यहाँ भी प्राणप्यारी से छुड़ाया॥
रहा था बन्धु वह भी छूटता है।
कुटिल यह दिन-दहाड़े लूटता है॥ १५॥

सुकृत जो जन्म-भर मैंने किये हों।
जगत मे दान जो मैंने दिये हों॥
जपादिक से हुआ जो पुण्य फल हो।
सहायक आज वह आकर सकल हो॥ १६॥

दिवस-पति भी दया अपनी दिखायें।
न आयें उस घड़ी तक काम आयें॥
न जबतक चेत-युत हो बन्धु मेरा।
करें तबतक न कुल-गुरु रवि सवेरा॥ १७॥

न लक्ष्मण हाय! तुम यों साथ छोड़ो।
कठिन अवसर समझकर मुँह न मोड़ो॥
उठो भाई! गले से मैं लगालूँ।
गँवाया गाँठ से निज रत्न पालूँ॥ १८॥

अकेले छोड़ मुझको जारहे हो।
किसे तुम बन्धुवर अपना रहे हो?
अचानक तात! तुम सोये समर में।
पड़ी नैया हमारी है भँवरमें॥ १९॥

सहारा हाय! प्यारे कौन देगा।
कहाँ अब हाय! थल बेड़ा लगेगा।
सुनेगी यह खबर जब हाय! सीता।
नहीं सौमित्र देवर आज जीता॥ २०॥

विकल हो शोकसे सिर पीट लेगी।
निशाना दुःखसे तज प्राण देगी।
मुझे भी प्राण रखना भार होगा।
मुझे सूना सकल संसार होगा॥ २१॥

उठो तुम, निशिचरोंको चूर कर दूँ।
तुम्हारी मैं प्रतिज्ञा पूर्ण कर दूँ।
तुम्हें यदि कालने कुछ दुख दिया हो।
बताओ बन्धु! तो मुझको बताओ॥ २२॥

उसीके दण्डसे सिर तोड़ दूँ मैं।
तुम्हारे शत्रु को क्यों छोड़ दूँ मैं?
छुटे तुम बन्धु साहस छूटता है।
हमारा हाय! दिल अब टूटता है"॥ २३॥

सुनी जब रामकी करुणा-कहानी।
हुए पत्थर पिघलकर हाय! पानी।
बली कपि-भालु धीरज खो उठे सब।
रुके रोके न आँसू, रो उठे सब॥ २४॥

हुई तब तक खबर हनुमान आये।
बने करुणा-जलधि-जल-यान आये।
जड़ी दी वैद्यको सञ्जीवनी की।
लगी होने दवा सौमित्रजी की॥ २५॥

सुँघाते ही दवाके होश आया।
जगे सोते हुएसे, होश आया।
"कहाँ है इन्द्रजित् दुश्मन कहाँ है।
कहाँ धनु-शर हमारा धन कहाँ है"॥ २६॥

वचन सुनकर हँसे रघुनाथ हरषे ।
मिले युगल, सुर फूल वरसे ।
सकल सम्पत्ति चाहे काल लूटे ।
किसीका पर न प्यारा वन्धु छूटे ॥२७॥

—"सनेही"

सुलोचनाका चितारोहण

[अनुष्टुप]

वीर लक्ष्मण के द्वारा इन्द्रजीत महावली ।
प्रसन्न रणचण्डी का हुआ आज अहा ! वली ॥ १ ॥

मिटी आज वड़ी भारी उर्वीकी अनुशोचना ।
किन्तु हाय ! हुई दीना पतिहीना सुलोचना ॥ २ ॥

सदा को सो गया स्वामी सुख-सर्वस्व खोगया ।
हुआ संसार निस्सार भार जीवन हो गया ॥ ३ ॥

शुष्कसी हो गई काया धूल में है सती हुई ।
रोती वियोगिनी जाया योगिनी सी वनी हुई ॥ ४ ॥

रुद्ध गद्गद वाणी है मुक्त केश-कलाप है ।
नेत्रों में जल-धारा है चित्तमें तीक्ष्ण ताप है ॥ ५ ॥

घेरके समझाती हैं रोती हुई सहेलियाँ ।
दीखती सब यों मानो तप-सन्तप्त बोलियाँ ॥ ६ ॥

है कराल मनोज्वाला शून्य सा भाल हो गया ।
बड़ी बेहाल है वाला हाय ! क्या हाल हो गया ॥ ७ ॥

निरालोक हुआ लोक शोक ही अब शेष है ।
दशा उन्मादकी सी है अस्त-व्यस्त सुवेश है ॥ ८ ॥

शिखा शोकाग्निकी क्याही होती अद्‌भुततामयी ।
जहाँ नेत्राम्बुधारा भी हा ! घृताहुति हो गई ॥ ९ ॥

हिमार्द्र पद्मिनी-तुल्य अश्रुपूर्ण महादृगी ।
कालकी खोजमें मानो चौंकती यह ज्यों मृगी ॥१०॥

कह "हा नाथ ! हा नाथ !" रोती या यह दीखती ।
मानो सन्तापशालामें मृत्युका पाठ सीखती ॥११॥

मुझे छोड़ यहाँ यों ही कहाँ तुम चले गये ।
सपत्नी अप्सराओंसे क्या प्राणेश ! छले गये ? ॥१२॥

"अपनाके किसी को यों छोड़ना ठीक है नहीं ।
जोड़के गहरा नाता तोड़ना ठीक है नहीं ॥१३॥

"ठहरो शीघ्रता क्या है, मुझे लेते न साथ क्यों ?
हा ! यहाँ न रहूँगी मैं होके नाथ ! अनाथ यों ॥१४॥

"देखो बुला रही हूँ मैं बोलते क्यों नहीं कहो ?
कलाई थामके मेरी क्यों नहीं हँसते अहो ! ॥१५॥

"युद्धमे देवताओं को बद्ध था तुमने किया।
काल पाके उन्होंने क्या बदला आज है लिया ? ॥१६॥

"फूला सा जिसने जाना इन्द्रके वज्रपातको।
चितानल जलादेगी तुम्हारे उस गातको ॥१७॥

"जिनको देख प्राणोंमें नित्य पीयूष सा बहा।
आज प्राण जले जाते उन्होंके ध्यानसे हा! हा! ॥१८॥

"हे दुःखो! प्रियके आगे तुम्हारी न चली कभी।
कालकी बलिहारी है घेर लो मुझको सभी ॥१९॥

"अश्रुधारा! चलो तू भी मुझको छोड़ शोकमें।
हाय रे! दुःखका साथी न कोई इस लोकमें ॥२०॥

"जलेगी देह तो मेरी साथ ही प्रिय-गातके।
क्यों न साथ गये हा! हा! प्राण धिक्कार-पात्र थे" ॥२१॥

सुलोचना यों ही रही पाती महा व्यथा।
होने चली पीछे गम्भीरा सरिता यथा ॥२२॥

स्वजनोंने उसे रोका किन्तु व्यर्थ हुआ सभी।
मृत्यु तो सह ली जाती न वैधव्य-व्यथा कभी ॥२३॥

अग्निसे भी महातीव्र होता प्रिय-वियोग है।
बन जाता वियोगीको भोग भीषण रोग है ॥२४॥

मरना मानती अच्छा विधवा कुल-नारियाँ।
पतिके सङ्ग जीते जी जल जातीं सुकुमारियाँ ॥२५॥

अन्तमें स्वर्ग वीथी सी चिताचन्दन की बनी ।
पैताने पतिके बैठी विधवा शान्ति से सनी ॥२६॥

बढ़ी चण्डाग्नि की ज्वाला पाके योग उमङ्गसे ।
मानो कृतार्थ होनेको उसके शुद्ध सङ्गसे ॥२७॥

वाद्यनाद फँसा मानो वह्नि हुङ्कार जाल में ।
सभी की दहली छाती दुःखसे उस काल में ॥२८॥

कलेजा थाम लोगोंने उसकी ओर दृष्टि की ।
हाथ जोड़े स्त्रियोंने त्यों साश्रु हो पुष्प-वृष्टि की ॥२६॥

जलती देखके आगे स्वजनोंने उसे वहाँ ।
मानो चिता बुझानेको छोड़े अश्रु जहाँ-तहाँ ॥३०॥

ध्यानमग्ना स्थिरा धीरा शान्त रूपा यथा मही ।
धन्य धन्य पति-प्राणा जीती ही जलती रही ॥३१॥

मैथिलीशरण गुप्त ।

रावणका अन्तिमोपदेश।

दश कण्ठके जब कण्ठगत थे प्राण, था मूर्च्छित पड़ा।
था मृत्यु को गिनता घड़ी, था काल सन्निधिमें खड़ा।
जब विज्ञ रावण वीरने, निज अन्त बेला जान ली।
श्रीराम करुणाधाम की, प्रभुता महत्ता मान ली॥ १॥

निश्चय हुआ उसका यही, श्रीराम पौरुष-धाम है,
ये ईश हैं अवतारमें, पावन सुधामय नाम है।
इनके करोंसे मृत्यु पाके, मुक्त मैं हूँ हो चुका,
अघभार अत्याचार का, इस पुण्यसे हूँ खो चुका॥ २॥

वह मोह-माया छोड़कर, भ्रम-जालसे मुख मोड़कर,
विद्वेष-घट को फोड़कर, कर सम्पुटोंको जोड़कर।
मनमें विनय करने लगा, ध्याता हुआ रघुवीर को।
श्रीराम सुखके धामको, नृप-केशरी रणधीरको॥ ३॥

उन विश्वदर्शी रामने, जाना हृदयसे तत्वको,
दशकण्ठका अब काल आया, प्राप्त है अब सत्व को।
बोले कि "लक्ष्मण तात! यह दशकंठ ही रणधीर है,
पौरुष प्रबल, माया जटिल, विकराल घोर शरीर है॥ ४॥

नृप नीति के सब तत्व थे, इसके भले जाने हुए,
विद्या-कलासे युक्त था, ईशत्व को माने हुए।
प्रिय तात! इसके पास जाकर, नीति-शिक्षा लीजिये,
आनुभाविक कल्पनाएँ अन्त हो सुन लीजिये॥ ५॥

आज्ञानुसारी वीर लक्ष्मण नम्रतासे चल पड़े,
शिरके निकट उसके वहाँ, जाकर हुए थे वे खड़े।
यह देखकर श्रीरामने, संकेतसे उनसे कहा,
"पदके निकट, होओ खड़े, यह मान्य मानी है महा"॥ ६॥

सुनकर तुरत पदके निकट होकर खड़े कहने लगे।
दशकंठके सब चक्षुओंसे बिन्दु-जल बहने लगे।
बोला प्रथम ही प्रेमसे, दशकंठ ज्ञानी था बड़ा।
"आज्ञा बतादो वीर! क्या है? काल मेरा है खड़ा॥ ७॥

"अनुभव-जनित नृप-नीतिके, गूढ़ार्थ कुछ कह दीजिये"--
बोले लषण "क्या सार है? कर्त्तव्य क्या? किसके लिये?"
"सुनिये महोदय! ध्यान से जो आज पश्चात्ताप है—
कर्त्तव्य कितने रहे गये, अवसन्न कार्य-कलाप है॥ ८॥

इससे हमारी नीतिका, सारांश भारी है यही—
कर्त्तव्य जो करना तुम्हें उसको तुरत करना सही।
कर्त्तव्य की करनी उपेक्षा, एक भारी भूल है।
अभिमत कभी मिलते नहीं, यह दुःख दलका मूल है॥ ९॥

थीं तीन बातें चित्तमें जो आज ज्यों की त्यों रही,
है काल आया सामने अब हाय! होनेकी नहीं।
जो बात पीछे पड़ गई, वह सिद्ध हो सकती नहीं,
कर्त्तव्यमें तत्काल-के-चूके भला बनती कहीं ? ॥ १०

स्वर्ण की लंकापुरी थी क्षार-सागर से घिरी,
क्षीर-सागर दूर था यह मूर्खता ही थी निरी।
लाकर उसे लंका-निकट करना हमारा कर्म था,
क्षार-निधिके तीर पर बसना हमारा धर्म था॥ ११

पर सोचतेही रह गये, यह बात होने की रही,
अब कौन होगा जो कभी उलटा सकेगा यह मही।
सब कष्ट अब उस क्षार जलका दूर करना दूर है,
संसार जब तक है बना तब तक सदा भरपूर है॥ १२

फिर दूसरी यह बात थी सोपान रचते स्वर्गको,
हो स्वर्ग की यात्रा सुलभ-हेतु मानव-वर्गको।
यह भी न हा! मैं कर सका मनकी चही मनही रही,
है काल का शाका बड़ा किसकी हुई मनकी चही॥ १३

फिर तीसरी यह बात थी मनमें हमारे छा रही,
यम-यातनाएं देखके करुणा नहीं जाती कही।
यम-दंड-कांड-विभागके विध्वंस करनेके लिए,
बहु बार पूर्ण विचार था यह कष्ट हरनेके लिये॥ १४

पर कर सके नहिं मोहमें संसारके हम भूलके,
मकरंद-लोभी भृङ्ग-सम हम मद्य में थे फूल के।
आज अन्तिम काल आया छूटता संसार है,
"कर्तव्य से च्युत जीवनी भी लोक में निस्सार है" ॥ १५ ॥

इतना दशाननने कहा, फिर बोल सकता था नहीं ;
थे नेत्र सम्मीलित हुए फिर खोल सकता था नहीं।
मनमें मनाता रामको सुरधामको रावण गया,
उपदेश मिलो ! आज भी उसका निराला है नया ॥ ६ ॥

कर्तव्य जो कुछ हो उन्हें जुटकर तुरत चटपट करो,
इस दोर्घसूत्री चालको अब शीघ्रही सब परिहरो।
संसार-कार्य्य-क्षेत्रमें कर्त्तव्यका ही मोल है,
कर्तव्य विन जीवन वृथा यह ढोलका सा पोल है ॥ १७ ॥

होकर मरे नर हैं सहस्रों नाम किसका शेष है ?
नाम उसका रह गया जिसने सहा कुछ क्लेश है।
मृत्युके पश्चात् उनका नाम जाना जा रहा,
जो कुछ किया कर्तव्य था वह आज माना जा रहा ॥ १८ ॥

शुभनाम लेते नित्य हैं उनकी प्रशंसा है बड़ी,
कर्तव्य अपना पालके जिनने बताई थी घड़ी,
कर्तव्यशाली सब बनो इस देशका उद्धार हो,
जननी-वदन उज्ज्वल करो तव तात ! बेड़ा पर हो ॥ १६ ॥

विनय-यही निश्चिन्त सुनिये कर रहा हूँ आपसे—
निरपेक्ष मत रहिये कभी कर्तव्य-कार्य्य-कलापसे ।
कर्तव्य होंगे पूर्ण जब ; इस देशकी उन्नति तभी,
कर्तव्यके बिन कार्य्य सारे हो सके हैं क्या कभी ? ॥ २० ॥

कविकुमार, साहित्याचार्य्य—

पं० महेश्वर प्रसाद मिश्र ।

वेदव्यास ।

धन्य नर तनुधृत सुकृत मय प्रभु-प्रकाश-विलास ।
धन्य भव-संतप्त "जन"-हित अमृत नीर-निवास ॥
धन्य धरणी मध्यकृत ध्रुव धर्म्मबीज-विकास ।
धन्य धन्य अनन्य गुरु भगवान वेदव्यास ! ॥ १ ॥

धन्य ज्ञानालोक-रवि सुख-शान्ति पारावार ।
धन्य जगदुद्धार हित अवतार गुरुतागार ।
धन्य कविताकान्त भारत-कीर्ति प्राणाधार ।
धन्य द्वैपायन दयामय भारती-भरतार ! ॥ २ ॥

वेदव्यास ।

"धन्य कविताकान्त भारत कीर्त्ति प्राणाधार ।
धन्य द्वैपायन दयामय भारती भरतार ॥"

(पृष्ठ १००)

ज्ञान-गौरव-गीत-गुम्फित धन्य गीता गान।
धन्य रामायण-कथा अध्यात्म-भाव प्रधान॥
धन्य मङ्गल-मूल मञ्जुल विधि-निषेध-विधान।
धन्य बहु पथ-गत-प्रदर्शक एक इष्ट स्थान॥ ३॥

धन्य लुप्त-प्राय ईश्वर-वाक्य वेद-त्राण।
धन्य सत सिद्धान्त तनु वेदान्त-सूत्र-प्राण॥
धन्य सालंकार शिक्षा पूर्ण पुण्य पुराण।
पूर्ण संस्थिति लक्ष्य-वेधक धन्य भारत-बाण॥ ४॥

देव! तुमने ही दिये हैं दिव्यतम उपदेश।
बन गये प्रिय भिन्न भाषण ईश के आदेश॥
सब सुखी हो बस तुम्हारा है यही उद्देश।
ज्ञान धन के हित तुम्हारे हैं ऋणी सब देश॥ ५॥

प्रेम सीमाबद्ध है निज देशतकही आज।
पर तुम्हारे निकट लघु हैं देशहितके साज॥
लोक सारा है तुम्हारा प्रेमपात्र विशाल॥
लोकहित पर ही तुम्हारा लक्ष्य है सब काल॥ ६॥

जान ग्रन्थों का तुम्हारे कुछ रहस्य न गूढ़।
हाय! कहते हैं तुम्हें अब 'पोप-लीला,' मूढ़!
जिस मलिन मनमें भरा है स्वार्थमय अनुराग।
किसतरह उसमें रहे वह उच्च आत्मत्याग? ॥ ७॥

आर्य्यजाति-चरित्र जो गाते पवित्र पुराण।
जब करेगा तब उन्हींका अनुकरण कल्याण॥
जब यहाँ होंगे पुनः वे कर्मवीर उदार।
देर कुछ होगी नहीं होते हुए उद्धार॥८॥

बाबू मैथिली शरण गुप्त।

तुलसीदास।
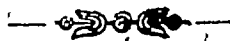
देखकर कर सहसा हमारी साधना म्रियमाण—
जिस कमण्डलु के अमृतने थे बचाये प्राण।
वह तुम्हारे हाथमें था साधु तुलसीदास!
जो उठी फिर भावना, दृढ़ हो गया विश्वास॥ १॥

जब तमोमय शून्यमें भय-दृश्य थे सब ओर,
जब अजानों की घटायें कर रही थीं घोर।
तब तुम्हीं ने था किया मानस-सरोज-विकास,
कवि कहें या रवि तुम्हें हे अमर तुलसीदास॥ २॥

हो गया जब आदि-कवि का मार्ग दुर्गमनीय।
सुगम तुमने ही किया करके उसे कमनीय।
मुक्त जीवन-धन लिये हो जायँगे हम पार।
देखता रह जायगा संसार-पारावार! ॥ ३ ॥

रम्य रामचरित्र भी तुमसे हुआ कृतकार्य्य,
आर्द्र होते हैं जिसे सुन आर्य्य और अनार्य्य।
काव्य से इतिहास है, इतिहास से हैं तन्त्र,
तन्त्र से फिर हैं तुम्हारे वाक्य वैदिक मन्त्र! ॥ ४ ॥

पैठ संस्कृत-सिन्धुमें पाये जहाँ जो रत्न—
ग्रथित करनेमें उन्हें करके अलौकिक यत्न।
हार जा तुमने दिये इस देशको उपहार—
कर सकेगा कौन उनके मूल्य का निर्धार? ॥ ५ ॥

प्रस्फुटित करके हमारा पुण्य पूर्णादर्श,
हृदयको तुमने दिया है अमृत-हस्तस्पर्श।
राम राजा ही नहीं, पूर्णावतार पवित्र;
पर न हमसे भिन्न है साकेतका गृह-चित्र ॥ ६ ॥

है हमारे अर्थ बस आदर्श ही आराध्य,
और साधन भी उसी का है हमारा साध्य।
जो हमारे सामने करदे उसे प्रतिभात,
है वही तुम-सा हमारा विश्व-कवि विख्यात ॥ ७ ॥

प्रकृति-पट पर धन्य वह अन्तर्जगतका दृश्य,
धन्य वह सङ्गीतमय सत्काव्य हृदय-स्पृश्य।
धन्य भारतवर्षका प्रतिभा-प्रकाश-विलास।
धन्य रामचरित मानस, धन्य तुलसीदास! ॥ ८ ॥

बाबू मैथिली शरण गुप्त।

ध्रुवका वैराग्य।

ध्रुवने सहा न निज अपमान ॥
क्षत्रियत्व ने कायरता को अपना शरण दिया न ॥ ध्रुव ॥

क्रूर विमाताने जो छोड़ा गर्वित-वाणी-वाण।
वह ध्रुवके कोमल मानसको छेदे विना रहा न ॥ ध्रुव ॥

अतः प्रेम-सारथी बना कर चढ़ वैराग्य-विमान।
प्रियतमसे मिलनेको उसने किया विपिन प्रस्थान ॥ ध्रुव ॥

त्यागा राजैश्वर्य्य समझकर उसने धूलि-समान।
ईश-भक्ति कर उसने अपना किया अमित कल्यान ॥ ध्रुव ॥

ध्रुव, ध्रुव हो गया पा लिया उसने यों वरदान।
लघु भी रघुपति-कृपा पायकर देखो हुआ महान ॥ ध्रुव ॥

महावीर प्रसाद चौधुरी।

महाराज शिवि ।

भूमि-भारत की सदासे सद्‌गुणों की खान है ।
धर्म-रक्षा धर्मनिष्ठा ही यहाँ की बान है ॥
दीन-दुखियों पर दया करना यहाँ की शान है ।
बस इसीसे "आजतक" सर्वत्र इसका मान है ॥ १ ॥

औरके सुखके लिये अपना सभी सुख छोड़ना ।
औरके हितके लिये सर्वस्वसे मुख मोड़ना ॥
जो शरण आवे उसे बढ़ कर बचाना भीति से ।
लोकरञ्जन प्रीतिसे करना सनातन नीति से ॥ २ ॥

है यही सिद्धान्त सच्चा आर्य्य हिन्दू-जातिका ।
उच्च यह संस्कार है अनिवार्य हिन्दू-जातिका ॥
आज भी इसके निदर्शन हैं नहीं दुर्लभ यहाँ ।
नर दयासागर गुणाकर है नहीं दुर्लभ यहाँ ॥ ३ ॥

आज भी लाखों अनाथों को मिले आश्रय यहाँ ।
आज भी करुणा, कृपा, औदार्य की है जय यहाँ ॥
किन्तु ये सद्‌भाव वैसे ही प्रबल हैं अब नहीं ।
किस तरह हो बुद्धि, विद्या, बाहुबल ही जब नहीं ॥ ४ ॥

भूपने उठकर शरणमें उस कबूतरको लिया ।
हाथ उस पर फेरकर आश्वस्त शरणागत किया ॥
बाज़ भी पहुँचा यहाँ पर काल सा तत्काल ही ।
और उसने यों कहा—"क्या धर्म है राजन् ! यही ॥१०॥

एक का तो छीन लो आहार, वह भूखों मरे ।
दूसरा होकर सुरक्षित चैन से मौजें करे ॥
न्यायके दरबारमें अन्याय है प्रत्यक्ष क्यों ?
आप राजा हैं सभीके, फिर किसी का पक्ष क्यों ॥ ११॥

धर्म मृगयाका न राजन् ! यों दुलखना चाहिये ।
यह पराया खाद्य है ; इसको न रखना चाहिये ॥
जीव ही है जीवका जीवन जगतमें जान लो ।
दो मुझे आहार मेरा ; प्रार्थना यह मान लो" ॥१२॥

श्येनकी यह उक्ति सुनकर भूपने उत्तर दियाः—
"देख, मैंने जन्म क्षत्रियवंश उज्ज्वलमें लिया ॥
जो शरण आवे उसे आश्वास देना धर्म है ।
निर्बलोंका त्राण करना क्षत्रियोंका कर्म है ॥१३॥

पक्ष लेना दुर्बलोंका कुछ नहीं अन्याय है ।
सर्वथा नृपके लिए तो यह प्रशंसित न्याय है ॥
क्रूर तुझसे, शक्ति पाकर, हैं सताते हीन को ।
किन्तु सज्जन शक्ति पाकर हैं बचाते दीन को ॥१४॥

मैं न मृगया-रत न उसका धर्म ही मैं मानता।
सब जगह सबमें उसी जगदीशको हूँ जानता॥
जीव जीवन जीवका जो शास्त्रमतसे सिद्ध है।
तो अहिंसावाद भी श्रुतिमें प्रशस्त प्रसिद्ध है॥१५॥

और जो है तू बुभुक्षित तो बहुत आहार है।
तू मरे भूखों, मुझे यह भी नहीं स्वीकार है॥
मांस दूँगा मैं तुझे तू श्येन जितना खा सके।
पर कबूतर का न पर भी, हाथ तेरे आसके" ॥१६॥

उक्ति-युक्ति नरेश की सुन कर कहा फिर बाज़ने।
"है न यह स्वीकार मुझको जो कहा महाराजने॥
हूँ शिकारी, मांस मुर्देका न मैं भोजन करूँ।
आपही आखेट कर आहार आयोजन करूँ॥१७॥

हाँ, कबूतरके बराबर मांस अपने अङ्गका।
काटकर दें आप जो आहार मेरे ढङ्गका॥
तो मुझे स्वीकार होगी सुव्यवस्था आपकी।
पर नहीं इस योग्य है नृप यह अवस्था आपकी॥१८॥

रम्यरूप, अनूप वैभव-भोग, सुख, आशा सभी।
क्या कबूतरके लिए नृप छोड़ सकते हो अभी" ॥
भूपने हँसकर कहा—"यह भी मुझे स्वीकार है।
प्राणसे प्रण पालना प्राचीन शिष्टाचार है॥१९॥

महाराज शिवि ।

"एक पल्ले पर कबूतर को बिठाया गोदसे ।
दूसरे पर मांस भी अपना चढ़ाया मोदसे ॥"

(पृष्ठ १०६)

है नहीं तनका भरोसा, किस घड़ी छुट जायगा।
एक दिन इस रूपका बाज़ार भी लुट जायगा॥
इन्द्रियाँ होंगी शिथिल तब भोग विष बन जायँगे।
मौत माँगेंगे, न पावेंगे, पड़े पछतायँगे॥२०॥

और यह ऐश्वर्य्य भी अस्थिर अनिश्चित पोच है।
छोड़नेमें फिर इसे क्या सोच या सङ्कोच है॥
दुःखमय देखे सभी सुख व्यर्थ उनकी चाह है।
औरको सुख दे, यही बस सत्य सुखकी राह है॥२१॥

जन्म लेनेका प्रयोजन आज हल हो जायगा।
धन्य हूँ मैं, जन्म मेरा यह सफल हो जायगा॥
माँस अपने अङ्गका मैं काट देता हूँ अभी।
आर्य्य लोगोंका किया प्रण टल नहीं सकता कभी"॥२२॥

इसतरह कहकर नृपतिने एक अनुचरको बुला।
मांस अपना तोलनेको शीघ्र मँगवाई तुला॥
एक पल्ले पर कबूतरको बिठाया गोदसे।
दूसरे पर मांस भी अपना चढ़ाया मोदसे॥२३॥

मांस भूपति का कबूतर के वज़न से कम हुआ।
और भी रक्खा, मगर वह भी न उसके सम हुआ॥
इस तरह नृपके वदनका मांस सारा कट गया।
किन्तु विस्मय है, कि वह भी तौलने पर घट गया॥२४॥

उस समय उत्साहसे उठकर स्वयं नृप चढ़ गये।
यज्ञ-पूर्णाहुति हुई तब देवगण भी खुश हुए॥
अग्नि, सुरपति, जो कि अबतक भक्ष्य भक्षक थे बने।
हो प्रकट तत्काल बोले यों नृपतिके सामने॥२५॥

"साधु राजन्! हो चुकी बस अब परीक्षा आपकी।
धन्य आत्मत्यागमे है दिव्य दीक्षा आपकी॥
आपके इस धैर्य्यसे हमको बड़ा सन्तोष है।
आपका सुचरित्र अनुकरणीय है, निर्दोष है॥२६॥

तुम प्रतापी प्रियप्रजाके शान्त शिक्षित शिष्ट हो।
छोड़ कर सङ्कोच हमसे माँग लो जो इष्ट हो॥"
भूप यह सुनकर बहुत ही मुदित, पुलकित तनु हुए।
वेदना जाती रही, व्रण अङ्गसे अपगत हुए॥२७॥

दे यथेप्सित वर नृपतिको देव अन्तर्हित हुए।
भूप भी उपराग-मुक्त मयङ्क से शोभित हुए॥
पाठको, हम क्या बतायें इस कथाके मर्मको।
आप सब शिक्षित स्वयं पहचानते हैं धर्मको॥२८॥

पं० रूपनारायण पाण्डेय।

रानी अहल्याबाईका पत्र।

राघोबाके प्रति।

वसन्त तिलका।

जो आप आकर यहाँ करने लड़ाई—
देने चले समरमे मुझको बड़ाई।
मैं धन्य भाग्य अपना यह जानती हूँ;
मैं भी अवश्य कुछ हूँ—यह मानती हूं॥ १॥

होता कहीं न मुझमे बलका विकास--
तो व्यर्थ आप फिर क्यों करते प्रयास ?
विख्यात वीर करते जिससे विरोध—
होता किसे फिर भला वह तुच्छ बोध ?॥ २॥

ऐसा महत्व अति दुर्लभ है सदैव;
मैं हूं कृतज्ञ इसके हित सर्वथैव।
दूं आपको अब न जो शत साधुवाद—
होगा भला न फिर क्या मुझसे प्रमाद ?॥ ३॥

लेते विचार पहले परिणाम आर्य्य;
पीछे सहर्ष करते निज इष्ट कार्य्य।

कैसे कहूँ फिर कि आप विना विचारे—
हैं आरहे समर के सज-साज सारे॥ ४॥

होते न निर्भ्रम परन्तु सभी विचार;
जो भूल हो उचित है उसका सुधार।
है भ्रान्ति-मूल बहुधा मद और स्वार्थ;
कीजे क्षमा इस यथार्थ निवेदनार्थ॥ ५॥

हां, तो बजे अब भयङ्कर युद्ध-भेरी;
हो स्वागतार्थ सब सज्जित सैन्य मेरी।
तैयार हूँ सब प्रकार सदा यहाँ मैं;
आदेश से अलग हो सकती कहाँ मैं ?॥ ६॥

जो ज्ञात हो उचित आप करें भलेही;
हो हानि-लाभ कुछ भी, न डरें भले ही।
लीजे परन्तु फिर भी इतना विचार—
हो निन्द्य कार्य्य जिसमें न किसी प्रकार॥ ७॥

जा लोभ देकर दिखाकर मोह-माया—
है आपको मम-विरुद्ध उभाड़ लाया।
क्या ज्ञात है यह कि है वह कौन व्यक्ति ?
लीजे विचार उसकी कुछ स्वामिभक्ति॥ ८॥

मेरे अमात्यवर की यह है बड़ाई!
मेरे विरुद्ध जिसको यह बुद्धि आई!

लाया चढ़ाकर यहाँ वह आपको है;
ऐसा मनुष्य डरता किस पापको है? ॥ ६ ॥

यों मन्त्रि-धर्म्म जिसने अपना निबाहा;
खाया सदैव जिसका उसको न चाहा।
ऐसे 'महापुरुष' के कथनानुसार—
हैं आप क्या कर रहे! करिये विचार ॥ १० ॥

विद्रोह जो कर रहा मुझ से अभी है;
क्या आपसे कर नहीं सकता कभी है?
जो तुच्छ बात पर छोड़ चुका स्वधर्म्म,
है क्या भला उस नराधम को अकर्म्म? ॥ ११ ॥

आश्चर्य्य है कि मति-मण्डित आप जैसे—
ऐसे कृतघ्न पर है अनुकूल कैसे!
होते प्रलोभ-वश अन्ध, अभिज्ञ भी क्या?
खोते विवेक सहसा वर विज्ञ भी क्या? ॥ १२ ॥

वीराग्रगण्य! यह भी अब सोच लीजे;
हूजे न रुष्ट कुछ और विचार कीजे।
संग्राम का प्रकट क्या परिणाम होगा?
क्या आपका कलहसे कुछ नाम होगा? ॥ १३ ॥

रक्त-प्रवाह सबसे पहले बहेगा;
दायित्व आप परही उसका रहेगा।

आरम्भ हानि-परिपूरित है सदैव ;
है जानता इति-कथा बस एक दैव ॥ १४ ॥

शोभामयी वसुमति विकराल होगी।
शान्तिस्थली रुधिर-पूरित लाल होगी।
होंगे विनष्ट बहु सैनिक लोग व्यर्थ,
यों सोचिये ; किस लिए इतना अनर्थ ? ॥ १५ ॥

होंगे न आप इसके परिणाम-भोगी ?
है हेतु अल्प, पर हानि विशेष होगी।
श्रीमान् ने उचित कार्य्य नहीं किया है ;
जो मान एक खलका कहना लिया है ॥ १६ ॥

हाँ ! सावधान ! वह साँप समीप ही है ;
दुर्योग से न दिन और न दीप ही है।
पीछे खड़ा खल पिशाच भुला रहा है ;
विश्वासघातक अनर्थ बुला रहा है ॥ १७ ॥

संग्राम में विजय एक अवश्य पाता ;
जाना परन्तु पहले कुछ भी न जाता।
मैं ही पराजित हुई यदि, मान लीजे,
होगी न कीर्त्ति फिर भी यह जान लीजे ॥ १८ ॥

श्रीमानको सब महाबलि मानते हैं ;
है नारि-जाति 'अबला' सब जानते हैं।

दैवात् परन्तु मुझसे यदि आप हारे।
तो लुप्त ही समझिये निज-गीत सारे॥ १६॥

जो हो, सचेत करदे निज शत्रुको भी;
देता हुआ उचित सम्मति हो न लोभी।
माने न वैर शुभ भाषण में किसी से।
मैंने किया यह निवेदन है इसीसे॥ २०॥

कर्तव्य, पत्र लिखकर, यह पालती हूँ।
चातुर्य्य से न अपना भय टालती हूँ॥
होना विचूर्ण उस मस्तक का भला है।
जो शत्रुसे सभय हो झुकने चला है॥ २१॥

जो योग्य था कह दिया, अब आप जानें;
है प्रार्थना मम यही कि बुरा न मानें।
जो है भविष्य वह होकर ही रहेगा;
जैसा बहे पवन निश्चयही बहेगा॥ २२॥

—बाबू मैथिली शरण गुप्त।

प्रभावतीका पत्र।

(महाराणा राजसिंहके नाम)

श्री सहित, सर्वोपमा के योग्य, वर!
हो विनय स्वीकृत प्रभा की आर्तिहर।
हो रही असहाय अवला आज है;
आप ही के हाथ में अब लाज है॥ १॥

अमृत-रसको श्वान चखना चाहता;
सिंहनीको स्यार रखना चाहता।
हंसिनी पर काग का अनुराग है;
दनुज लेना चाहता मख भाग है॥ २॥

आर्य वंशज शुद्ध रमणी-रत्न ही।
यवन लेना चाहता कर यत्न ही।
मान रक्खा जिसे शाहंशाह है—
आज उसको ही हमारी चाह है॥ ३॥

चल रही उसकी कठिन दुर्नीति है;
ईश की भी कुछ न उसको भीति है।

सैन्य उसकी से घिरा यह कोट है ;
बस हमारे धर्म ही पर चोट है ॥ ४ ॥

सत्य हो क्या वह मुझे ले जायगा ?
बेगमों के महलमें पहुँचायगा ?
नीच नर मुझको गले लिपटायगा ?
शाह क्या सुख पायगा ? मुसकायगा ? ॥ ५ ॥

भूल है, यह बात होनेकी नहीं ;
कुलवती की लाज जा सकती कहीं ?
शक्ति क्या जो मुझे जीवित पा सके ;
धर्म पर आघात वह पहुँचा सके ॥ ६ ॥

प्राण दूँगी वहाँ जाऊँगी न मैं ;
शाह की बेगम कहाऊँगी न मैं ।
प्राप्ति मेरी है उसे रक्खी कहाँ ?
पा सकेगा वह न छाया भी यहाँ ॥ ७ ॥

चित्तमें ही वर चुकी हूँ आपको ।
प्राण-पति मैं कर चुकी हूँ आपको ।
तज सकूँगी क्या कभी यह प्रण भला ?
जीव चाहे क्यों न यह जावे चला ! ॥ ८ ॥

सद्‌गुणोंकी कीर्ति सुनकर भी अहो—
क्यों न हृदयेश्वर बनाती मैं, कहो ?

पर तुम्हारे हृदय की क्या थाह है ?
चाह है मेरी न किंवा चाह है ? ॥ ९ ॥

"आपको क्या वीर-वर मेरी पड़ी"—
चित्तमें चिन्ता यही है हर घड़ी ।
किन्तु दीन-दयालु ! दासी-सम, अहो !
रख न सकते क्या मुझे ? सो तो कहो ॥१०॥

हो गया सो हो गया, क्या सोच है ?
हृदय से अब तज दिया सङ्कोच है !
आप ही प्रार्थी हुई हूँ इसलिए—
धर्म तो बचना किसी विध चाहिए ॥११॥

रुक्मिणी सा आज मेरा हाल है ;
शाह ही मेरे लिए शिशुपाल है ।
द्वारकेश समान सत्वर आइए ;
लाज, धर्म, बचाइए, अपनाइए ॥१२॥

आपने भी सुधि न ली मेरी कहीं—
"मानिए सच प्राण" रहनेके नहीं !
प्रवल आशा आपकी है लग रही ।
कामना कल्याण की है जग रही ॥१३॥

और क्या इससे अधिक अब मैं कहूँ ;
उचित है यह है कि चुप ही हो रहूँ ।

पर प्रभो ! तुम मौन व्रत लेना नहीं ;
पत्र पढ़ कर फेंक मत देना कहीं ॥१४॥

ध्यान दे कुछ वीरता की ओर भी ;
और कुलकी धीरता की ओर भी ।
भाव भय का चित्तमें "धरना" नहीं ;
शाह की गुरु सैन्य से डरना नहीं ॥१५॥

पूर्वजों की कीर्ति को फैलाइयो ;
शान्ति-सुखकी नींदमें मत आइयो ।
विमल बापा वंश की सन्तान हो ;
राज-राना, वीर, प्रतिभावान हो ॥१६॥

जानती हूँ, यवन सेना है बड़ी ;
नीति है उसकी कुटिल एवं कड़ी ।
पर यहाँ है धर्म, जय भी है वहाँ ;
पापियोंको फल न मिलता है कहाँ ॥१७॥

अन्तमें फिर भी जताती हूँ तुम्हें ;
भाव मन के फिर सुनाती हूँ तुम्हें ।
हो गई यदि देर आनेमें यहाँ—
धर्म मेरे को बचाने में यहाँ— ॥१८॥

तो प्रथम ज्यों पद्मिनी सम नारियाँ—
धर्म पर हैं मर चुकीं सुकुमारियाँ ।

हर सकूँगी उसी पथसे ताप को ;
पाप और कलङ्क होगा आपको ॥१९॥

हो गई हो धृष्टता जो कुछ कहीं—
(क्योंकि मनही इस समय स्थिर है नहीं)
तो उसे निज हृदयमें मत धारियो ;
प्रार्थना स्वीकारियो, स्वीकारियो ॥२०॥

शत्रुओंका ह्रास हो जिस नीतिसे—
दूर मेरा त्रास हो जिस नीतिसे—
वस उसी सदुपायको ले हाथमें—
नाथ ! आना वीरता के साथ में ॥२१॥

यदि न मेरी प्रार्थना स्वीकार हो ;
करुण-रस का हृदयमें सञ्चार हो ;
तो कृपाकर काम इतना कीजियो ;
"हाँ-नहीं" का शीघ्र उत्तर दीजियो ॥२२॥

पल हमारा वर्षके सम कट रहा ;
हृदय का उत्साह क्षण-क्षण घट रहा ।
और मत नैराश्य-नद में डालियो ;
त्राण करियो, धर्म अपना पालियो ॥२३॥

—*द्वारकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र'*

छत्रपति शिवाजी

का

मनोमहत्व ।
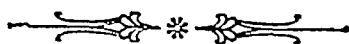
राज-भोग के साथ योग का देखो अद्भुत योग ,
प्रभुतामें संयम का है यह सुर-दुर्लभ-संयोग ।
मनोदमन का है अति निर्मल उदाहरण यह चित्र ,
सुन इसका वृत्तान्त न होंगे किसके श्रवण पवित्र ॥ १ ॥

स्वाभिमान-स्वातन्त्र्य-सत्यके मूर्तिमन्त अवतार ,
लिया शिवाजीने कर में जब सत-शासनका भार ।
उस अवसरपर 'श्री आवाजी सोन देव सरदार'
गये सदल कल्याणप्रान्त पर करने को अधिकार ॥ २ ॥

सत्य धर्मके अनुयायी हों जो नृपवर नीतिज्ञ ,
विजय-विभूषित हो कैसे नहीं उनकी सेना विज्ञ ।
अनायास ही आवाजीने जीत लिया कल्याण ,
सूबेदार वहाँ का आया वशमें, तज अभिमान ॥ ३ ॥

शीलवान स्वामीके सेवक होकर भी गुणधाम ,
कभी लोभ-वश नर कर जाते अतिशय निन्दित काम ।
पद-उन्नति की मृग-तृष्णामें पड़ "आवाजी" आज ,
क्या कर डाला तुमने तुमपर हँसता विज्ञ-समाज ॥ ४ ॥

सूबेदार को जीते-जी कर हा! हा! मृतक-समान ।
उसके कुलकी इस कन्याको छीन बने बलवान ।
होंगे इसकी सुन्दरतासे भूप शिवाजी मुग्ध ,
इस विचारसे उन्हें दे रहे यह विष-मिश्रित दुग्ध ॥ ५ ॥

अस्तु, दूत ले गुण-गण-धन्या इस कन्याको साथ ,
पहुँचे नृप-सन्मुख फिर बोले सविधि झुकाकर माथ ;
"रूप-रश्मि लावण्यलता यह बाला परम मनोज्ञ ।
महाराजके अन्तःपुरमें है रखनेके योग्य ।" ॥ ६ ॥

कौशल-पूरित आबाजी की विनती यों कर व्यक्त ,
हुए दूत भय-विकल, देख नृपको निस्तब्ध विरक्त ।
अश्रु-प्लावित नेत्र स्तब्ध हो कन्या चित्र-समान—
खड़ी हुई थी, मनमें कहते "लाज रखो भगवान" ॥ ७ ॥

सुनकर दूत-वचन भूपतिवर शील-शिष्टता-सद्म ,
देख तथा कन्याका निष्प्रभ हिम-ग्रसित मुख पद्म ।
बोले वचन वसन्त-कालके कोकिलके अनुरूप ,
ऐसे भी सेवक हैं तेरे देख शिवाजी भूप !" ॥ ८ ॥

करके फिर सम्बोधन नृपवर अपने हीको आप ,
बोले वचन सुधा-सिञ्चित यों करते पश्चात्ताप—
"यदि मेरी माता होती यों रूपवती विख्यात ,
अहा ! न होता क्या ऐसाही सुन्दर मैं भी जात ॥ ६ ॥

"धर्म-पुत्र है प्रजा नृपतिका कहती है यों नीति ;
धिक है, प्रजा-पुञ्जपर जो नृप करता व्यर्थ अनीति ।
मेरी प्रजा, सुता यह, इसका मैं हूँ सदा सहाय ,
देखो, इस पर होने पावे लेश भी न अन्याय ॥१०॥

इस साध्वीको लेकर जाओ इसी समय कल्याण ,
सौंपो इसे पिताको इसके, माँग क्षमाका दान ।
विनय युक्त तुम उससे वोलो यह मेरा सन्देश—
"होने देगा कहीं शिवाजी अत्याचार न लेश" ॥११॥

खड्ग-बाण जिस शत्रु-हृदयको-सकते कभी न जीत,
पलमें उसको वशमें करते ऐसे चरित पुनीत ।
ऐसे उपकारों को कैसे रिपु सकता है भूल,
रिपु होकर भी मित्र बनेगा वह तज वैर समूल ॥१२॥

सच्चरित्रता देख नृपति की उनके भृत्य-समूह,
भेदन करने लगे भीतिसे व्यभिचारोंके व्यूह ।
हुआ भूपके वृहत् राष्ट्रमें यह सिद्धान्त प्रधान—
"गो, द्विज, अबला-रक्षा करना देकर भी निज प्राण"॥१३॥

मर्त्यधाम को स्वर्ग बना दें पलमें प्रभुतावान ,
या चाहें तो उसको कर दें विषमय नर्क निदान ।
इस चरित्र से मित्र यही उठते हैं मनमें भाव—
बड़े जनोंके कार्यों का पड़ता है बड़ा प्रभाव ! ॥१४॥

गो, ब्राह्मण, अवला-प्रतिपालक धन्य शिवाजी वीर!
हरते हैं तुम जैसे सुत ही मातृभूमि की पीर।
अतुलनीय है मित्र ! शिवाजी का यह मनोमहत्व!
मनुष्यत्वमें देखो यह अमरत्व पूर्ण देवत्व ॥१५॥

कठिन समयमें रक्खी तुमने हिन्दूगणकी लाज,
यवन-दर्पको दल भारतमें स्थापित किया स्वराज।
महाराष्ट्र-केशरी शिवाजी ! महाराज गुणखान!
रिपु भी करते अहा ! तुम्हारे सच्चरित्र का गान ॥१६॥

मनको करना दमन सर्वथा दुष्कर है यह कार्य,
है क्या बात असम्भव जिसे न कर सकते हैं आर्य!
भूप शिवाजी का आर्योचित मनोदमन-उत्कर्ष।
अहा! प्रजा-प्रियता का है यह अत्युत्तम आदर्श ॥१७॥

यही देश है जहाँ एक दिन थे ऐसे नरपाल,
आज वहीं के भूपालोंका देख रहे हो हाल!
पूज्य पूर्वजोंके चरित्रोंको देते हम न विसार,
तो क्या "हिन्दूजाति हीन है" कहता यों संसार ॥१८॥

—पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय

राणा संग्रामसिंह ।

मुग़ल बादशाहत क्रम-क्रमसे नष्ट हो रही थी जब, भ्रात !
राणा श्रीसंग्रामसिंह तब हुए उदयपुर-पति विख्यात ।
अपने पूज्य पूर्वजोंके सम ये भी थे वर वीर महान,
रणबङ्का, निर्भीक, चतुर, नीतिज्ञ, प्रजाप्रिय सद्गुण-खान, ॥ १ ॥

प्राणोपम निज प्रजा-पुञ्जका प्रतिपालन वे करते थे,
पुत्र तुल्य रख उन्हें, यत्नसे वे उनके दुख हरते थे ।
कर सकता था प्रजा-वृन्दपर लेश न कोई अत्याचार,
निज-निज धर्मों में रत थे सब नरनारी तज विषय-विकार ॥ २ ॥

किसी दूसरेके हाथोंमें सौंप राजका सारा भार ।
था न पसन्द इन्हें नित करना नाना भाँति विलास-विहार ।
शासन-कार्य्य स्वयं करते थे ये नित न्याय-नीति-अनुसार,
प्राणोंसे भी अधिक प्रजा इनको रखती थी इन पर प्यार ॥ ३ ॥

कुटिल कर्मचारी, पाकरके बागडोर शासन की आप,
दीन प्रजापर दिखलाते हैं अपने पाशव-शक्ति-प्रताप ।
इस अनिष्ट-कारिणी प्रथाके फल थे इनको पूरे ज्ञात,
विदित इन्हें था इससे होता लाखोंपर जो-जो उत्पात ॥ ४ ॥

अतः सतर्क रहा करते थे इन बातोंपर ये दिन-रात,
वेश बदल कर देखा करते ठौर-ठौर जाकर सब बात।
प्रजा-पीड़कोंको देते थे बड़े-कड़े विधि-पूर्वक दण्ड,
नाम श्रवणकर इनका रिपुगण होते थे भयभीत प्रचण्ड॥५॥

रखकर विविध गुप्तचर उनसे गुप्त भेद करते थे ज्ञात,
निज कार्यों पर जाना करते प्रजा-हृदयकी सच्ची बात।
प्रजावृन्द की मति-गति लख, करते थे निज दोषों को दूर,
मानों प्रजा-तन्त्र-शासन के ज्ञाता थे ये खुद भरपूर॥६॥

धार्मिक, सहृदय, चतुर, शान्तचित, आत्मत्यागी, वह नीतिज्ञ,
कपट रहित, गम्भीर, प्रजाके सुख-दुःख-ज्ञाता, सज्जन, विज्ञ।
ऐसे ही मन्त्रीवर होते हैं नृपके मानो अर्द्धाङ्ग,
रक्खा था मन्त्री इतना ऐसा विचार कर साङ्गोपाङ्ग॥७॥

उच्च कर्मचारी के पदपर रखते थे न विदेशी व्यक्ति,
लूट-घूँस या कूट-नीति से थी इनको सब काल विरक्ति।
था कर दिया उन्होंने सब पर यह अपना सिद्धान्त प्रकाशः--
"कष्टोपार्जित प्रजा-ग्रास हरने से उत्तम है उपवास"॥८॥

"भीषण है निज प्रजा-वृन्द का असन्तोष नृपको सब काल,
"घिरा हुआ ही है ऐसे भूपोंपर घोर दुःखका जाल।
"राज-वृक्षकी मूल प्रजा है, फल-सम है, उनका सन्तोष,
"प्रजा-तृप्ति से बढ़कर जगमें और नहीं राजाका कोष॥९॥

"राज्य-वृद्धि से राज्य-शान्तियुत स्वतन्त्रता है श्रेष्ठ विशेष,
प्रजा-रुधिरके व्यर्थ बहानेसे प्रिय है, देशोन्नति लेश।"
धन्य-धन्य ऐसे विचारके प्रजा-देश-हित-रत संग्राम !
धन्य "बिहारी दास" सदृश तव मन्त्री नीति-निपुण गुणधाम ॥१०

—पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय ।

केशिनी ।

ब्रह्मचर्य्य प्रतिपाल, सीख विद्या व्यवहारी ;
चन्द्रकला सी बढ़ी केशिनी राजकुमारी ।
उपवर उसे विलोक पिता-माता अकुलाये ;
शीघ्र स्वयंवर ठान, पत्र सर्वत्र पठाये ॥ १ ॥

आये राजकुमार अनेकों छवि में नीके ;
मुखपर थे प्रत्यक्ष भाव सब उनके जीके ।
ऋषिकुमार भी कई वहाँ आये गुणशाली ,
जिनकी शोभा सरल सहज थी छटा निराली ॥ २ ॥

शुभ दिन और मुहूर्त्त-स्वयंवरका जब आया ,
राजाका प्रण कठिन सभामें गया सुनाया ।
जो बल, विद्या, नीति, रूपमें बढ़कर होगा ,
सो इस गुण की मूर्ति केशिनी का वर होगा ॥ ३ ॥

तब सखियोंके संग किन्तु छविमें हो न्यारी ।
आई मण्डप-मध्य प्रभासी राजकुमारी ।
रूप भारसे झुकी भूमि पर दृष्टि लगाये ,
खड़ी हुई निज भाव हिये में सहज छिपाये ॥ ४ ॥

भक्त श्रेष्ठ प्रह्लाद-पुत्र विद्वान् विरोचन ,
राज सुता के सङ्ग हुआ था जिनका पाठन ।
यद्यपि सबके तुल्य निमन्त्रण पाकर आये ,
कुल-विचारसे अलग अकेले गये बिठाये ॥ ५ ॥

दोनोंने अनलखे हुए दोनोंको देखा ।
सुमिर पुरानी प्रीति धन्य अपनेको लेखा ।
ज्यों-ज्यों परिचय तुल्य गुणोंमें अधिकाता है ,
त्यों-त्यों उसमें प्रेम प्रबल बढ़ता जाता है ॥ ६ ॥

दोनोंने गुण-रूप परस्पर जाँच लिये थे ;
अब मिलनेके लिये उमंगते उभय हिये थे ।
सो भी देशाचार उन्होंने सभी निभाये ;
सहा बहुत अपमान, प्रेमके कष्ट उठाये ॥ ७ ॥

राजकुमारी इधर रीतिवत् भवन सिधाई ;
उधर पिताके लक्ष्य-भेदकी जाँच कराई ;
केवल पाँच कुमार जाँचमें पूरे ठहरे ;
फिर विद्यामें मिले पाँचमें दो ही गहरे ॥ ८ ॥

दोनों सुन्दर, नीति-निपुण, दोनों बल धारी ;
दोनों थे विद्वान्, संयमी, शिष्टाचारी ।
एक विरोचन तत्वज्ञानमें कुशल बहुत थे ;
अपर सुधन्वा विश्व अङ्गिरा ऋषिके सुत थे ॥ ६ ॥

दोनोंने अब गूढ़ ज्ञानमें बाद बढ़ाया ;
अपना-अपना पक्ष योग्यता-सहित निभाया ।
उनके सब गुण राज-पण्डितोंने जब देखे ।
दोनों माने गये एकसे उनके लेखे ॥१०॥

हो निराश भय-भीत उचित लज्जाके मारे ;
अभिलाषी सब शेष विवश निज देश-सिधारे ।
भीड़ घटी, पर बढ़ी भूपको चिन्ता भारी ;
रानी भी अति दुखी हुई त्यों राजकुमारी ॥११॥

इधर विरोचन और सुधन्वाने अनुमाना ;
राज-सभा को बहुत कठिन है वाद मिटाना ।
तब दोनों ने कड़ी होड़ में प्राण लगाये ;
राजा, पण्डित, सचिव सभी इससे घबराये ॥१२॥

शुभ दिन और मुहूर्त्त-स्वयंवरका जब आया ,
राजाका प्रण कठिन सभामें गया सुनाया ।
जो बल, विद्या, नीति, रूपमें बढ़कर होगा ,
सो इस गुण की मूर्ति केशिनी का वर होगा ॥ ३ ॥

तब सखियोंके संग किन्तु छविमें हो न्यारी ।
आई मण्डप-मध्य प्रभासी राजकुमारी ।
रूप भारसे झुकी भूमि पर दृष्टि लगाये ,
खड़ी हुई निज भाव हिये में सहज छिपाये ॥ ४ ॥

भक्त श्रेष्ठ प्रह्लाद-पुत्र विद्वान् विरोचन ,
राज सुता के सङ्ग हुआ था जिनका पाठन ।
यद्यपि सबके तुल्य निमन्त्रण पाकर आये ,
कुल–विचारसे अलग अकेले गये विठाये ॥ ५ ॥

दोनोंने अनलखे हुए दोनोंको देखा ।
सुमिर पुरानी प्रीति धन्य अपनेको लेखा ।
ज्यों-ज्यों परिचय तुल्य गुणोंमें अधिकाता है ,
त्यों-त्यों उसमें प्रेम प्रबल बढ़ता जाता है ॥ ६ ॥

दोनोंने गुण-रूप परस्पर जाँच लिये थे ;
अब मिलनेके लिये उमंगते उभय हिये थे ।
सो भी देशाचार उन्होंने सभी निभाये ;
सहा बहुत अपमान, प्रेमके कष्ट उठाये ॥ ७ ॥

राजकुमारी इधर रीतिवत् भवन सिधाई ;
उधर पिताके लक्ष्य-भेदकी जांच कराई ;
केवल पाँच कुमार जाँचमें पूरे ठहरे ;
फिर विद्यामें मिले पाँचमें दो ही गहरे ॥ ८ ॥

दोनों सुन्दर, नीति-निपुण, दोनों वल धारी ;
दोनों थे विद्वान्, संयमी, शिष्टाचारी ।
एक विरोचन तत्वज्ञानमें कुशल बहुत थे ;
अपर सुधन्वा विज्ञ अङ्गिरा ऋषिके सुत थे ॥ ९ ॥

दोनोंने अव गूढ़ ज्ञानमें वाद बढ़ाया ;
अपना-अपना पक्ष योग्यता-सहित निभाया ।
उनके सव गुण राज-पण्डितोंने जव देखे ।
दोनों माने गये एकसे उनके लेखे ॥१०॥

हो निराश भय-भीत उचित लज्जाके मारे ;
अभिलाषी सब शेष विवश निज देश-सिधारे ।
भीड़ घटी, पर बढ़ी भूपको चिन्ता भारी ;
रानी भी अति दुखी हुई त्यों राजकुमारी ॥११॥

इधर विरोचन और सुधन्वाने अनुमाना ;
राज-सभा को वहुत कठिन है वाद मिटाना ।
तव दोनों ने कड़ी होड़ में प्राण लगाये ;
राजा, पण्डित, सचिव सभी इससे घवराये ॥१

फिर दोनों प्रह्लाद भक्तको पञ्च बनाकर।
पहुँचे उनके पास सङ्गमें सबके जाकर।
सुन विवाद प्रह्लाद भक्तने मत निर्धारा—
सब प्रकार निज पक्ष विरोचन ही है हारा ॥१३॥

तब राजाने हाथ जोड़कर कहा विनयसे।
"महाराज! हो गया बड़ा अनरथ इस जयसे।
इस मतके अनुसार एक कन्या पावेगा;
पर दूजा निर्दोष वृथा जी से जावेगा" ॥१४॥

सुन यह घटना नई नेक प्रह्लाद न बोले;
शान्त सिन्धुके तुल्य नहीं सङ्कटसे डोले।
धार पिताके धीर पुत्र भी रहे अचञ्चल;
किन्तु गर्व में हुए सुधन्वा जयसे चञ्चल ॥१५॥

तब राजा हो दीन सुधन्वासे यह बोले—
"नाथ! नहीं कुछ लाभ वृथा रसमें विष घोले।
अभी महल से आय केशनीको ले जावें;
पर निष्कारण प्राण न निर्दोषी के जावें" ॥१६॥

सोच सभ्यता निठुर पुत्रके विषय पिताकी।
मुनि कुमार के सहज प्रेरणा हुई दया की।
दान उन्हों ने दिया विरोचनको जीवनका,
फिर लेकर वैराग्य किया कन्याके मनका ॥१७॥

—कामताप्रसाद गुरु।

शकुन्तलाकी बिदा।

शान्त-हृदय वात्सल्य-करुणसे सना हुआ है;
कण्व-तपोवन आज सदनसा बना हुआ है।
शकुन्तला को बिदा आज है प्रियके घरको—
विदित हुआ सब वृत्त हर्ष पूर्वक मुनिवरको॥ १॥

वे पुत्री के लिए चाहते थे वर जैसा—
निज सुकृतों से स्वयं पा लिया उसने वैसा।
यह विचार कर तुष्ट हुए वे अपने मनमें;
साज सजाये गये विदाके पावन वन में॥ २॥

शकुन्तला क्या जाय, हाय! वल्कल ही पहने!
वनदेवों ने दिये उसे सुन्दर पट-गहने।
सखियों ने शृङ्गार किया उसका मन-माना,
जिसको अन्तिम समझ वहुत कुछ उसने जाना॥ ६॥

प्रिय-दर्शन का उसे यदपि उत्साह वड़ा था;
पर स्वजनोंका विरह-ताप भी वहुत कड़ा था।
विकल हुई वह उभय ओर को वाधा सहती;
ऊपर नीचे भूमि यथा आकर्षित रहती॥ ४॥

सखियोंके भी नेत्र आँसुओं से भर आये;
चारों ओर उदास भाव आश्रम में छाये।
किन्तु उन्होंने कहा—सखी, कुछ सोच न कीजो;
प्रिय को उनकी नाम-मुद्रिका दिखला दीजो॥५॥

शकुन्तला कुछ कह न सकी गद्गद होने से,
था पवित्र कुछ और न उसके उस रोने से।
भावी जीवन प्रेम-पूर्ण हो खिल सकता है;
यह बिछुड़ा धन किन्तु कहाँ फिर मिल सकता है?॥६॥

त्यागी थे मुनि कण्व, उन्हें भी करुणा आई;
होती है बस सुता धरोहर वस्तु पराई।
होम-शिखा की परिक्रमा उससे करवाई।
और उन्होंने स्वस्ति-गिरा यों उसे सुनाई॥७॥

"तुझको पतिके यहाँ मिले सब भाँति प्रतिष्ठा,
ज्यों ययाति के यहाँ हुई पूजित शर्मिष्ठा।
सार्वभौम पुरु-पुत्र हुआ था उसके जैसे—
तेरे भी कुल-दीप दिव्य औसर हो वैसे॥८॥

"गुरुओंको सम्मान-सहित सुश्रूषा करियो;
सखी-भाव से हृदय सदा सौतों का हरियो।
करे यदपि अपमान मान मत कीजो पति से;
हूजो अति सन्तुष्ट स्वल्प भी उसकी रति से॥९॥

शकुन्तला की विदा।
सखियों के भी नेत्र आँसुओं से भर आये।
चारों ओर उदास भाव आश्रम में छाये॥

(पृष्ठ १३२)

"परिजनको अनुकूल आचरणसे सुख दीजो;
कभी भूल कर बड़े भाग्य पर गर्व न कीजो।
इसी चालसे स्त्रियाँ सुगृहिणी-पद पाती हैं;
उलटो चल कर वंश-व्याधियाँ कहलाती हैं ॥१०॥

"शकुन्तले! निश्चिन्त आज हूँ यद्यपि तुझसे;
सहा न जाता किन्तु विरह यह तेरा मुझसे।
अहो! गृहस्थ-समान मानता हूँ अपनेको;
सच्चा सा मैं आज जानता हूँ सपनेको ॥११॥

"सुते! तव स्मृति-चिह्न तपोवनमें बहुतेरे;
देते थे जो महा मोद मानसमें मेरे।
उदासीनता बढ़ा रहे हैं आज सभी ये;
कुछके कुछ हो गये दृश्य सब अभी-अभी ये ॥१२॥

"सारा आश्रम आज शून्यसा दिखलाता है;
वनसे भी वैराग्य-भाव बढ़ता जाता है।
वनदेवीसी कौन विपिनमें अब विचरेगी,
मृग-सन्तति अब किसे घेर कर खेल करेगी? ॥१३॥

"कौन मालिनी-तीर नीर लेने जावेगी?
कौन मछलियाँ चुगा-चुगाकर सुख पावेगी?
कौन प्रेमसे पुष्प-वाटिका को सींचेगी?
कौन सखीजनोंके दृग मींचेगी?

कौन दौड़पर शीघ्र उठानेको हीरेसे—
नीड़-च्युत खग-पोत सम्हालेगी धीरेसे ?
रङ्ग-रङ्गके वन-विहङ्ग पेड़ोंसे उड़कर—
बोलेंगे मृदु वचन बैठ किसके अङ्गोंपर ? ॥१५॥

"बिना कहेही कौन अखिल आलसता त्यागे—
रक्खेगी होमोपकरण वेदी के आगे ?
मेरे पथके कौन कास-कण्टक चुन लेगी ?
कौन उचित आतिथ्य अतिथि लोगोंको देगी ? ॥१६॥

"वेदी खुदती देख हरिण-शृङ्गोंके मारे—
'बेटी' कह कर किसे बुलाऊँगा मैं द्वारे ?
किसको अपना देख शान्त वे हो जावेंगे ?
अपनी खोई हुई सम्पदा-सी पावेंगे ॥१७॥

"जाने दूँ, यह विषय और भी है दुखदायी ;
सुते ! धैर्य्यधर, बने मार्ग तेरा सुखदायी।
मेरा यह उपदेश कभी तू भूल न जाना ;
शील-सुधा से सींच जगत को स्वर्ग बनाना" ॥१८॥

यों कहकर अब मौन हुए मुनि सकरुण होकर—
शकुन्तला गिर पड़ी पदों पर उनके रोकर।
"होंगे कब हे तात ! तपोवनके दर्शन फिर ?"
इतना कह कर हुई दुःख से वह अति अस्थिर ॥१९॥

"रहकर चिरदिन भूमि-सपत्नी, नृपकी रानी,
रुके न जिसका मार्ग पुत्र पाकर कुलमानी।
करके उसका व्याह, राज-सिंहासन देकर—
आवेगी पति-सङ्ग यहाँ फिर तू यश लेकर ॥२०॥

"जब तू प्रियके यहाँ सुगृहिणी-पद पावेगी,
गुरुकार्यों में लीन सदा सुख सरसावेगी।
रविको प्राची-सदृश श्रेष्ठ सुत उपजावेगी,
तब यह मेरा विरह-दुःख सब बिसरावेगी" ॥२१॥

योंही बहु विध उसे कण्व मुनिने समझाया,
विदा किया, दो शिष्य-वरोंको सङ्ग लगाया।
गई गौतमी तपस्विनी भी पहुँचाने को;
उनका शुभ सौभाग्य देखकर सुख पानेको ॥२२॥

शकुन्तला घर गई विपिन को सूना करके,
दोनों सखियाँ फिरी किसी विध धीरज धरके।
मोरोंने निज नृत्य, मृगोंने चरना छोड़ा,
हिमगिरिने भी बाष्प-वारि-सम झरना छोड़ा ॥२३॥

—बाबू मैथिली शरण गुप्त।

कृष्णाकुमारी।

है यह घिरी चित्तौर में क्यों दुख-घटा घनघोर?
क्यों छा रहा है आज ऐसा विषम भय चहुँ ओर?
हतबुद्धि हो नर ले रहे क्यों हाय! दीर्घश्वास?
मेवाड़-माता हो रही क्यों इस प्रकार उदास? ॥ १ ॥

हैं इधर जयपुर अधिप श्री जगतसिंह नरेश।
हैं उधर श्री मानसिंह प्रसिद्ध जोधपुरेश।
ले साथमें सेना विपुल ये रोक दुर्ग-द्वार,
मेवाड़के विध्वंसका हैं कर रहे कुविचार॥ २ ॥

ये उभय राजा साथ ही हो राज-मदमें अन्ध,
राणा-सुता से चाहते हैं व्याह का सम्बन्ध।
प्रत्येक कहता है "मुझे दें जो न कन्या-दान,
राणा! समझ लें, फिर नहीं है आपका कल्याण" ॥ ३ ॥

ले साथ पिंडारी, लुटेरे, कुटिल, क्रूर अपार,
मेवाड़ चढ़ आया प्रसिद्ध अमीरखाँ सरदार।
दो शत्रु थे ही, तीसरा यह और पहुँचा एक,
आती कुदिनमें विपद हा! हा!! एकसाथ अनेक॥ ४ ॥

वर सुन्दरी कृष्णाकुमारी "कमल राजस्थानका,"
न प्राप्त वह मुझको हुई तो विषय है अपमानका।
देखें भला, राणा-सुताका ब्याहकर, राठौर ! तू,
निज भवन कैसे जा सकेगा, त्यागकर चित्तौर तू॥ ५॥

जयपुर पराजय पुर बनेगा समझ ले कछवाह तू !
घर लौट जा ले प्राण ; तज राणा-सुताकी चाह तू !
मत मानसिंह महीपसे हठ-युत लड़ाई ठान तू !
मत आप होकर मृत्युको इस भाँति कर आह्वान तू॥ ६॥

हैं सेंधिया-द्वारा निफलवा दूत जो तेरे दिये—
चित्तौर से हमने, हमारा क्या हुआ तेरे किये ?
तू साथ क्या न अमीरखाँके जोधपुरमें जा चढ़ा ?
पर प्राण लेकर घर भगा कुल-मान तू अपना बढ़ा" ॥ ७॥

यों एकही कुलके प्रकट कलहाग्नि कर दो वंश—
करने चले मेवाड़रूपी वीर-वनको ध्वंस।
अति प्रबल मारुत-तुल्य यवन अमीरखाँ दे योग—
करने लगा पर-अहित-हित निज कुटिल शक्ति-प्रयोग॥ ८॥

धन-पाशसे हो बद्ध जोधपुरेश द्वारा हाय !
यह क्रूर यवन अमीरखाँ रच रहा घृणित उपाय।
बलहीन लख मेवाड़पतिको, है दिखाता त्रास ;
हैं स्वान भी पा समय करते सिंहसे परिहास॥ ९॥

"राणा! कुशल निज चाहते हो, तो करो यह काम,
फिर अन्यथा होगा विषम इसका दुखद परिणाम।
या तो सुता दो मानसिंह नरेशको विधियुक्त,
या वध सुताका कर स्वयं होओ विपदसे मुक्त ॥१०॥

यह हुक्म वीर अमीरखाँका जो न होगा पूर्ण,
सच जान लो, मेवाड़-भू, बस हो गई फिर चूर्ण।
हैं साथ मेरे लक्ष पिण्डारी लुटेरे क्रूर,
संकेत पाते वे करेंगे गेह, गढ़ सब धूर" ॥११॥

हत बुद्धि हा! मेवाड़पति श्रीभीमसिंह नरेश हो,
चिन्ता विविध विधि कर रहे, कैसे विगत यह क्लेश हो।
"हे एकलिङ्ग! उपाय अब है क्या? हुआ असहाय मैं।
है लाज जाती पूर्वजोंकी, अधम हूँ अति हाय! मैं ॥१२॥

रे पूर्वजो! हा! हो रहा मेवाड़-गौरव अस्त है।
तजकर हमें जारहे श्री, स्वातन्त्र्य, शक्ति, समस्त हैं।
थे बन्धु जिनको मानते हम, वे बने रिपु आज हैं।
हा हन्त! स्वार्थी मानवोंके कुछ न रहती लाज है ॥१३॥

मेवाड़! तेरी यह दशा, हा! हा!! मुझे धिक्कार है!
हे मातृ-भूमे! कठिन अब इस दुःखसे उद्धार है!
निज गर्भमें मेवाड़-भू! इस अधम सुतको धार तू!
हा! हा!! हुई दुख, दुर्दशासे ग्रस्त विविध प्रकार तू! ॥१४॥

सीसोदिया-कुल-सूर्य्य वीर-प्रताप-उदित प्रताप !
निज मातृ-भू की यह दशा क्या देखते हैं आप ?
हे राजसिंह महीप अनुपम मातृ-भक्त, उदार !
इस दुःखसे आकर करो मेवाड़का उद्धार ॥१५॥

जिस रत्नके हित यत्नकर अकबर थका आजन्म,
जिस वीर मस्तकको न वह नत कर सका आजन्म ।
अति विषय, मत्सर, द्वेष, आकरके कलह, छल, पाप—
हैं सौंपते उस रत्नको, ले यवन करमें आप !! ॥१६॥

क्या अब नहीं है रक्त हममें पूर्वजोंका लेश,
जो हो रहा सीसोदियोंपर यवनका आदेश ?
होता न हममें एकताका जो विशेष अभाव,
तो क्या दिखा सकता यवन यह आज स्वीय प्रभाव ? ॥१७॥

कृष्णा ! तुम तेरे लिये दो भूप प्रार्थी साथ,
किसका करूँ मैं मान, अब किसका कटाऊँ माथ ?
किस हृदयसे मैं आत्मजाका वध करूँगा आप !
है दोष क्या तेरा ? हहा ! तू है सुते ! निष्पाप !!" ॥१८॥

इस भाँति राणा कर रहे हैं आत्म-निन्दा चित्तमें,
है घोर अपयश लग रहा स्वाधीनताके वित्तमें ।
पर यवनके आदेशकी कर श्रवण कह कर्कश कथा,
पाठक न समझें आप, कृष्णाको हुई होगी व्यथा ॥१९॥

वह वीर वंशोद्भव स्वयं थी वीरबाला षोड़शी,
वर वीरता उसकी नसोंमें धीरता-युत थी धँसी ।
फिर वह भला अस्थिर कभी इस बातसे होती कहीं ?
हैं मृत्युसे भी वीर छत्राणी कभी डरता नहीं ॥२०॥

यद्यपि अवस्था अल्प थी, निज जननि प्राणाधार थी,
कोमल कमलके कुसुम सम सुकुमारसे सुकुमार थी ;
पर धैर्य्य साहसमें बड़ोंसे भी अहा ! बढ़कर रही,
सुकुमारतामें ही अतुल दृढ़ता अहा ! उसने गही ॥२१॥

निज देश-रक्षाके लिए, निज देहका तज ध्यान,
निज देश-रक्षाके लिये, निज गेहका तज ध्यान,
निज देश-रक्षाके लिये, पति-स्नेहका तज ध्यान,
कृष्णाकुमारी कर रही यह हर्षयुत विषपान !! ॥२२॥

जननी अभागिनि देखकर निज सुताका यह हाल,
वात्सल्य-वशतः रो रही है, हो विकल, बेहाल !
निज अङ्गसे कोमल कमलको देख होता छिन्न ;
उसके विरहसे क्या न मञ्जु मृणाल होता खिन्न ? ॥२३॥

पर कह रही कृष्णा धराते धैयर्य माको स्वीय,
"यह मरण है, जननी ! कदापि न शोचनीय मदीय ।
तू रो न गद्गद कण्ठसे, मेरे लिये अब और,
मुझ पापिनीके हित, विपद सहती विपुल चित्तौर ! ॥२४॥

निज मृत्यु-द्वारा हरण कर निज मातृ-भू का क्लेश,
मैं पारही हूँ अमरता होते कृतार्थ विशेष।
होगा निरापद शीघ्र अब मम परम पूज्य स्वदेश,
मैं धन्य हूँ, है जननि! मेरा पूर्व-पुण्य अशेष!! ॥२५॥

है धन्य उसका जन्म, जिससे देशका कल्याण हो,
है धन्य वह निजधर्म-हित, जिसका विसर्जन प्राण हो।
निज तातको देना सदा सुख, धर्म है सन्तानका,
रखती सदा है ध्यान सन्तति, तातके कल्याणका ॥२६॥

रक्षा मुझे तो ध्येय है अपने पिताके मानकी,
सुखकी न मुझको चाह है, चिन्ता नहीं निज प्राणकी।
इस विपदसे अपने पिताको, मा! करूँगी त्राण मैं।
उनके लिये निर्भय हृदय हो दान दूँगी प्राण मैं ॥२७॥

लाखों नरोंके शिर कटानेकी अपेक्षा शान्तिसे—
यों मुक्त होना श्रेष्ठ है, दुख, शोकमय भव-भ्रान्तिसे।
तुझ वीर माताकी न मैं क्या वीर कन्या हूँ? अहा!
कर्त्तव्य-पालनमें मुझे इस लोकमें है भय कहाँ? ॥२८॥

तू रो न मा! मेरे लिये चिन्ता न कर अब लेश,
तज शोच, मुझको धैर्य धर दे मुदित चित आदेश।
हे जनक! हे हे जननि! यह मम लो सभक्ति प्रणाम,
अब ले रही है तव अधम यह सुता चिर विश्राम! ॥२९॥

क्षत्राणियो! मेवाड़-वासिनि! दो मुझे आशीश,
मेवाड़ ही में जन्म दे फिर भी मुझे जगदीश।
हे मातृ-भूमे! दे मुझे अपनी अलौकिक भक्ति,
निज देश-सेवा हित रहे मुझमें बनी यह शक्ति॥३०॥

ये वचन कह, रज मातृ-भू की शीश पर निजधार—
विष-पान कृष्णाने किया, कह "जयति जय मेवार"।
उत्तर प्रतिध्वनिने दिया यह "जयति जय मेवार"
घोषित जय-ध्वनिने किया, मेवारका उद्धार॥३१॥

कृष्णा! तुझे है धन्य, तेरा धन्य विमल चरित्र,
है धन्य तेरी यह अलौकिक पितृ-भक्ति पवित्र।
है धन्य तेरी शक्ति, अनुपम देश-भक्ति ललाम,
संसार में कल्पान्त तक है अमर तेरा नाम॥३२॥

आदर्श, गौरव-गेह है तू, भव्य भारतवर्षका,
तू स्थान है सीसोदिया के गर्व-संयुत हर्षका।
क्या वस्तु इस विष-पानके आगे सुधाका भाण्ड है?
कृष्णा! अतुल इस विश्वमें यह वीरताका काण्ड है॥३३॥

यह जाति—देश—हितैषिता तेरी अपूर्व अनन्य है
है नाम तेरा अमर, तू "कृष्णा कुमारी धन्य है।
तुझ सी जहाँ, जिस देशमें वर वीर बाला जात हो
वह क्यों न इस संसारमें वन्दित सदा विख्यात हो?॥३४॥

लावण्य-निधि! रतिमान मोचनि! पद्म राजस्थानका।
तूने दला सब दर्प पैतृक रिपुगणोंके मानका।
अल्पायु ही में तू गई हो। यद्यपि अमरागारको:
पर कर गई तू सौरभित निज सुयशसे संसारको ॥३५॥

—पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय।

श्री समर्थ रामदास स्वामी
और
छत्रपति शिवाजी।

दलित यवन-दल पुण्य भूमि-भारत भय-हारक।
लुप्तप्राय पवित्र आर्य्यकुल-धर्म्म-प्रचारक॥
समर-कला नृपनीति कुशल सज्जन-मनरञ्जन।
मान-मूर्ति अवरङ्ग-मान अस्माल विभञ्जन॥

श्रीमन्त 'शिवाजी' छत्रपति,
अनुपम, अनघ, उदार था।
निज देश कलेश विनाशको,
ईश-अंश अवतार था॥ ६॥

मातृ-भूमि-उद्धार-हेतु कम छोह नहीं था।
देश-कार्य्य में रञ्च प्राणका मोह नहीं था॥
व्यर्थ किसीपर कभी कोई भी कोह नहीं था॥
यवनवृन्द को छोड़ अन्य से-द्रोह नहीं था॥

गुरु-वचन वीच विश्वास था;
उर वर ज्ञान-विकाश था।
बल, साहस, मान-निवास था,
अचल कोष दल पास था॥ २॥

होता था कुछ काम दुर्गपर धूमधामसे।
आते थे मज़दूर दूरके ग्राम-ग्रामसे॥
विपुल मनुज अविराम काममें लगे जहाँ थे।
टहल रहे श्रीमन्त शिवाजी आप वहाँ थे॥

निज धन विभव विलोक मन,
लोक लोकपति-सम प्रचुर।
अंकुरित हुआ नरनाथके,
सहज इमपि अभिमान उर॥ ३॥

मैं भी जगमें शूरशिरोमणि धन्य आज हूँ।
देवराजसे अधिक अवनि राजाधिराज हूँ॥
सुनकर जिनका नाम शत्रुदल-बल गिरते हैं।
पा जिसका साहाय्य मनुज लाखों पलते हैं॥

जीविका योग्य इनके भला,
अपर ख़ज़ाना है कहाँ।
मैं लूँ न ख़बर तो फिर इन्हें—
सुलभ ठिकाना है कहाँ॥ ४॥

लगा रहे थे भूप चित्तमें जब यह लेखा।
गुरु समर्थ श्री रामदास को आते देखा॥
जटा-श्मश्रु सुविशाल भालपर तिलक लगाये।
कर तुलसी की माल भस्म सर्वांग चढ़ाये॥

वर ब्रह्मचर्य्य तपतेज-द्युति,
अङ्ग-अङ्ग प्रति कढ़ रही।
मिल देश-भक्ति हरि-भक्ति सँग,
अजब ओज छवि बढ़ रही॥ ५॥

निरानन्दके बीच ब्रह्म-आनन्द मिला था।
शान्तरूप-सर बीच वीर-रस-कञ्ज खिला था॥
वर विरागमें अमल देश-अनुराग भरा था।
निस्पृहतामें स्वाभिमान उरसे न टरा था॥

जिसके — उपदेश-प्रभावसे,
बढ़ा शिवा सरदार था।
श्रुति—धर्म्म—देश—उद्धार—हित,
रामदास अवतार था॥ ६॥

गुरुवर को अवलोक पगोंपर पड़ नरनायक।
दे आसन माँगा निदेश कुछ करने लायक॥
तब विशाल पाषाण देख संकेत बताकर।
बोले मीठे वचन आप गुरुवर मुसका कर॥

"यह पत्थर फोड़ा जायगा,
बेलदार — बुलवाइये।
परमावश्यक कार्य्य यह—है,
न पल विलम्ब लगाइये"॥ ७॥

पा निदेश झटपट नरेश ने वह फुड़वाया।
विपुल जनोंने श्रम अपार कर उसे हटाया॥
नीचे निकला एक सजीव सहित जलदादुर।
जिसको लखकर कहे वचन नृपने अचरज भर॥

"बसकर इस कठिन कुठौरमें,
इसे न कुछ टोटा हुआ।
किसने भोजन इसको दिया,
क्या खाकर मोटा हुआ?"॥ ८॥

सुनकर यों नर-पाल-कथन गुरुवर मुसकाये।
कठिन तीर से वीर-वाक्य फिर शीघ्र सुनाये॥
"एक तुम्हें तज और कौन सामर्थ्यवान है?
जो ऐसों की करै जीविकाका विधान है॥"

श्रीसमर्थ रामदास और छत्रपति शिवाजी।

बस कर इस कठिन कुठौर मे इसे न कुछ टोटा हुआ।
किसने भोजन इसको दिया क्या खाकर मोटा हुआ?

(पृष्ट १४६)

सुन लज्जा-युत भयभीत हो;
नमितशीश नृपने कहा।
"प्रभु क्षमा कीजिए, यह हुआ
मुझसे अनुचित कृत महा" ॥ ६ ॥

अल्पज्ञों की रीति यही पलमें इतराते।
महा-मोह-मद-मढ़े न फूले अङ्ग समाते॥
किन्तु समर्थ सुजान सहज सेवक हितकारी।
योग्य सुधी सर्वज्ञ सच्चिदानन्द—विहारी॥

जन-चूक क्षमाकर प्रेम-वश,
बिगड़ी बात सुधार ली।
गह बाँह, भक्त को नीति से
नौका पार उतार ली॥१०॥

बोले गुरुवर—"सुनो भूप! इस जग-संस्थापक।
है केवल परमात्म देव सर्वान्तर व्यापक॥
त्रिजग योनि जड़ जङ्गमादिका पूरण त्राता।
वही एक सामर्थ-सिन्धु जग-जीवन-दाता॥

जब जिसे जन्म जिस विधि दिया,
तभी उसी विधि वह जिया।
भरपेट खूब खाया-पिया,
सृष्टि—नियम—पालन — किया॥११॥

रामगिर्याश्रम ।

राम-शैल-शोभा अति सुन्दर वरणि सकै कवि को है ।
जाको रूप अनूप विलोकत सुरनर को मन मोहे ॥
राम, लखन, सीता-पद अङ्कित किधौं भूमितल सोहे ।
किधौं त्रिपुण्ड-सहित अति शोभित भाल विन्ध्यगिरिको है ॥ १ ॥

शीतल सुरभित मन्द पवन नित वहत हुलास उभारै ।
प्राणायाम वायु कै विन्ध्यादरी नासिकन झारै ॥
झर-झर-झर झरनन-रव गूँजत खगमृग अटत हुँकारे ।
किधौं विन्ध्य योगीश ध्यानरत प्रणव मन्त्र उच्चारे ॥ २ ॥

ऋषि-मुनि-कृत कल सामगान यह किधौं प्रमोद पसारै ।
ध्यान मगन-योगीश विन्ध्य धौं सोहम् शब्द उचारै ॥
सुकृती जन होम-धूम की किधौं सुगन्ध घटा है ।
किधौं विन्ध्यगिरि योगिराज की अनुपम जटिल जटा हैं ॥ ३ ॥

सोहत शुभ्र तुङ्ग-शिखरन पै घन विचित्र छविधारी ।
किधौं विन्ध्य-दर्शन-हित आये सुर चढ़ि विविध सवारी ॥
संकुल लता विटप छाये घन रविकर निकर न पैठे ।
किधौं विन्ध्य लोहँड़ा औंधाये मुनि लोमस वनि वैठे ॥ ४ ॥

सुन्दर, शीतल, स्वच्छ समाकृति फटिक शिला मन मोहैं।
किधौं विन्ध्य मुनिवरके अनुभव स्वच्छ सुदृढ़ ये सोहैं॥
विमल जलाशय निकट जीव सब निज-निज ताप बुझावैं।
किधौं विन्ध्यगिरि सिद्धराज से सब निज रुचि-रस पावैं॥५॥

शरद-समय दिन रैन जलाशय कमल-कुमुद-युत सोहैं।
मनो शान्तरस पूर्ण-भक्त-मन रहत सदा विकसोहैं॥
सुस्थिर विमल सरन मँहपरि निशि-नभ तरुगण प्रतिछाया।
ज्यों हरि-जनके विमल हृदय मँह वपु विराट दरसाया॥६॥

हिम ऋतु पाय तुङ्गशिखरन पै धवल हिम-छटा छावै।
मानो नभ विन्ध्यहि तपसी गुनि कंवल धवल उढ़ावै॥
अथवा प्रवल देखि कलिकालहिं निज मन भीति वढ़ावै।
राम-चरण-आश्रय-हित गिरि पै वटुरि सतोगुण आवै॥७॥

शिशिर काल मँह तृण-तरुवल्ली निज-निज पत्र गिरावैं॥
जैसे जन नव वसन धरन हित जीरण वसन वहावैं॥
रूखी वायु वहै निशि-वासर तजैं रूख चिकनाई।
ज्यौं तपसिनके हिय नित वाढ़ै जगते अमित रुखाई॥८॥

ऋतु वसन्त, तृण-तरु-वल्ली सव नव दल फूलन छावैं।
ज्यौं सुकृति जन राम कृपाते सुख सम्पति यश पावैं॥
अरुण सचिक्कन कोमल दलयुत विटप वल्लिका सोहैं।
दिनकर किरण परसि चिलकैं अति जगजन दृष्टि विमोहैं॥६

कूजत पिक गूँजति अलिमाला कलरव जन-मन-मोहै।
ज्यौं उदार जन द्वार सदाही जय-जय-ध्वनि युत सोहै॥
वनवासी खग-मृग उमग-युत दंपति भाव जनावैं।
जननी-जनक होन की इच्छा सब मन बसै बतावैं॥१०॥

ऋतु निदाघ सूखे तृण-संकुल निर्झर-जल पतराहीं।
ज्यौं हरि-हित तप करत,विषय-रत-स्रोत सकल सकुचाहीं॥
आँवा सम गिरि, शिला तवा सम, फिरैं बधूर उड़ाने।
ज्यौं हरि विमुख जीव सन्तापित कवहुँ न सुथिर थिराने॥११॥

आक-पलास-चंडकर तापित उमँगि-उमँगि उलहाते।
ज्यौं प्रेमी प्रीतम कर ताड़ित हृदय अधिक सरसाते॥
कीचक प्रथम सुनाय मधुर स्वर वहुरि दवारि लगावैं।
दीपक राग गानकारिन कहँ मानहु सीख सिखावैं॥१२॥

वर्षा पाय नीव तृण संकुल गिरि निज सिर पै धारै।
मनो प्रजापति प्रजा-समूहन निज अंकम बैठारै॥
विविधि धातु-रञ्जित वर्षाजल इत-उत बहै अपारा।
हरि रस पाय निकारैं जन जिमि राग-द्वेषकी धारा॥१३॥

सुर-धनु-सहित श्याम घन परसत तुङ्ग शिखर यों सोहै।
नंदलाल को सुभग भाल ज्यौं समुकुट लखि मन मोहै॥
गिरि अञ्चलको सब जल वहि-वहि जुरत सरोवर माँही।
जैसे सकल सुकृति फल आपुहिं आवत हरिजन पाहीं॥१४॥

लहि वर्षा-जल गूँठ ठूँठ तरु अङ्कुर नवल निकारैं।
ज्यों हरि-कृपा मुदित जन दीनहु पुनि सम्पति सुखधारैं॥
कबहुँ, अमोलक धातु, रतन कहुँ, भीलन कहमिलि. जाहीं।
जैसे साँचे रामदास कहुँ अनायास दरसाहीं॥१५॥

षट ऋतु राति दिवस जेहि अवसर जहाँ दृष्टि है जाती।
तहाँ मनोरञ्जक सामग्री विविध भाँति की पाती॥
सब सुखमय साकेत त्यागि कै रहे राम जहँ आई।
तेहि गिरि तिहि आश्रमकी महिमा कहै"दीन"किमि गाई॥१६॥

—*लाला भगवानदीन।*

प्रातःचिन्ता।

सुहावना यह समय सवेरे का शान्त मनको वना रहा है।
प्रसन्न अन्तःकरण भी प्रभु पर प्रतीति पूरी दिला रहा है॥ १॥

अनन्त आकाशमें सिंहासन उसीका शोभायमान मानो।
ये सूर्य मण्डल सुवर्ण-सुन्दर उसीका वैभव दिखा रहा है॥ २॥

प्रभात कालीन मन्द मारुत सुगन्ध फूलों की साथ लेकर।
ये देखिये पूर्वसे उसी की उपासना करता आ रहा है॥ ३॥

रसालकी डालपर ये कोकिल उसीका प्रिय पाठ पढ़ा रहो है।
हरेक भौंरा जगह-जगह पर उसीके गुन-गुन गुना रहा है ॥ ४ ॥

ये फूल फूले नहीं समाते उसीके अनुभवमें मस्त होकर ।
उसीकी धुनमें हरेक पक्षी उमङ्गसे चह-चहा रहा है ॥ ५ ॥

बढ़ी हुई यह उमड़ चली है उसोसे मिलनेको देव-सरिता ।
हरेक इसको तरङ्ग उठकर अदम्य उद्यम दिखा रहा है ॥ ६ ॥

वह सर्वव्यापो परम प्रतापी जगन्नियन्ता छिपा नहीं है ।
हरेक पत्ता उसीकी गतिसे सचेत हो सिर हिला रहा है ॥ ७ ॥

उसीका आभास यह प्रकृति भी प्रकाश प्रत्यक्ष पा रही है ।
हरेक परमाणु योगबलसे पता उसीका बता रहा है ॥ ८ ॥

—रूपनारायण पाण्डेय ।

प्रातःश्री।

जय जय जग-आश रूप ऊषे! प्रतिभा अनूप,
जागृतिमय पुण्य-प्रभा प्रिय प्रकासिनी।
शीतल सुरभित समीर सरल, सुमति-सुखद, धीर,
वर वहाय मृदुल मृदुल मुद-विकासिनी।

हृदय-कमल-कोष अमल समुदित दल नवल-नवल,
कोमल कर रुचिर खोल रुचि विलासिनी।
द्विजगन करि-करि कलोल गावत श्रुतिसुखद लोल,
बोलति सुर सरस मनहुँ मञ्जु भासिनी।

नवद्रुम पल्लव डुलाय सुमन-सुमन रज बिछाय,
स्वागत तव रचति प्रकृति पुण्य-रासिनी।
मधुप चारु चरितवान विद्यामधु करत पान,
ठौर-ठौर गुञ्जि, तिन त्रिताप-नासिनी।

आत्म-विस्मृति कराल फैलत जब तिमिरजाल,
करति ज्ञान सूर्य्य-उदय जग विभासिनी।
सुवरन रञ्जित सुरङ्ग रम्य परम प्रेमसङ्ग,
हिम-अञ्चल शीश धारि सदभिलासिनी।

सहृदय-सन्ताप-हारि भारत आरत निहारि,
ओस-अश्रु सजल युगल दृग प्रकासिनी ।
असुर-मुनि-सुजान-सेवि प्रातःश्री सत्य देवि !
दया-द्रवित अति पुनीत हृदय-वासिनी ॥

—कविरत्न पं० सत्यनारायण ।

सन्ध्या ।
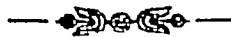
चलते बने दिन-राज पश्चिमको हुई अब शाम है ;
आकाश-मण्डलमें लसी क्या लालिमा अभिराम है।
दिन तो नहीं वह अब रहा, पर चिह्न यह अवशिष्ट है।
हा ! किन्तु वैरी कालको यह भी मिटाना इष्ट है ॥ १ ॥

* * * * *

क्षणमात्रहीमें देख लो वह रङ्ग भी जाता रहा,
अब तो तमीका राज्य है, तम-तुमुलसे नाता रहा।
यह काल क्षणभर भी कभी सम-भावसे रहता नहीं।
इसके प्रवाहोंमें भला है कौन, जो बहता नहीं ॥ २ ॥

चिड़ियाँ चलीं तरु ओर चोंचोंमें "चुगा"-चुपचाप ले,
देंगी उसे निज चेटुओंको चिबुक-चुम्बन आप ले।
किस जीवको अनुराग अविरल स्वजनसे होता नहीं?
निज तनय-अङ्गस्पर्श करके कौन दुख खोता नहीं? ॥ ३ ॥

मृगगण जलाशयके निकट निज प्यास खोने जारहे,
कुछ झाड़ियोंमें शान्त हो चुपचाप सोने जारहे।
तरु-पुञ्ज भी सुस्थिर हुए अब पत्तियाँ हिलती नहीं।
अलिगण हुए चुप कञ्ज-कलिकायें कहीं खिलती नहीं ॥ ४ ॥

मानो परिश्रम कर प्रकृति करने चली विश्राम है,
है शान्त वह, है सघन कानन या सुघर आराम है।
है किन्तु चातक चुप नहीं वह कह रहा है पी कहाँ?
पाये विना प्रियतम भला लगता किसीका जी कहाँ ॥ ५ ॥

हो रात, अथवा हो दिवस, हो प्रात, अथवा शाम हो,
आराम दिल पाये विना मुमकिन नहीं आराम हो।
घूघू निकलकर घोंसलेंासे घोर रव करने लगे—
मानों तमीचर तिमिर लखकर मोद मन भरने लगे ॥ ६ ॥

शठ श्वान और शृगाल करके शोर दुख देने लगे,
मानो अविद्या देख दम्भी दूनकी लेने लगे।
खेती हरी अवलोक कर अब कुछ हुए हैं मन हरे;
लौटे "कृषकगण" आरहे हैं लट्ठ कन्धे पर धरे ॥ ७ ॥

गाते मधुर कुछ गीत आते कुछ अभी चुपचाप हैं—
जैसे जगत्में मुदित कुछ नर कुछ भरे सन्ताप हैं।
मज़दूर मज़दूरी लिये अपने मकानोंको चले
मानो सुकर्मी स्वर्गको लेकर विमानोंको चले॥ ८॥

निज-निज भवन हैं जा रहीं रक्खे सिरोंपर झारियाँ—
करतीं परस्पर छेड़ उनमें कुछ नई पनिहारियाँ।
जिनकी प्रकृतिमें हास्य है, सिरपर यदपि दुख-भार हो
वे चाहते हैं खेलते हँसते स्वजीवन पार हो॥ ९॥

हरिभक्त हरि-हरके भजनमें हो रहे तल्लीन हैं—
जैसे अगाध सरोवरोंमें पा रहे सुख मीन हैं।
पाठक! समय है शामका अवसर नहीं अब कामका,
रखकर स्व करसे लेखनी, लूँ नाम मैं भी रामका॥१०॥

—"सनेही"
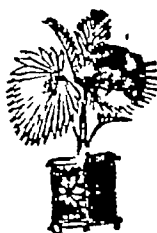
रात्रि ।

हे निशे! तुझमें रहस्यों का भरा भण्डार है ;
खेल यह कैसा अनोखा, है किया तूने खड़ा ।
सृष्टिके आरंभ में तव आगमन को देखकर ;
भर गया होगा मनुजके चित्तमें विस्मय बड़ा ॥ १ ॥

देखते ही देखते यह नील मण्डल व्योमका ,
हो गया होगा, तिमिरमें लुप्त उसके सामने ।
और ओझल हो गये होंगे कमलिनी-नाथ भी ,
देख यह क्या वह लगा होगा न थर-थर काँपने ? ॥ २ ॥

शुक्रने तारों सहित दर्शन दिये होंगे पुनः ;
सामनेसे जब मिटी होगी गगनकी लालिमा ॥
सृष्टि विस्तृत हो गई होगी मनुज की दृष्टि में ।
रह गया होगा चकित वह देख करके यह समा ॥ ३ ॥

भानु, तेरी ज्योतिमें इतना अँधेरा है छिपा ;
कौन पहिले इस अनूठे भेदको था जानता ।
फूल, पत्ते, कीट यद्यपि दृष्टि–गोचर थे सभी ।
तू अनेकों अन्य लोकों का न देता था पता ॥ ४ ॥

फिर सभी क्यों कर रहे हैं मृत्युसे इतनी घृणा ;
युद्ध जीवनके लिये क्यों हो रहा है सब कहीं ?
जब कि है रवि-दीप्ति भी धोखा भरी इस विश्वमें।
किस तरहसे मान जीवनमें भरा धोखा नहीं॥ ५॥

—मोतीलाल।

ऋतुराज-स्वागत।
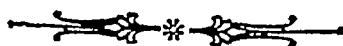
दृश्य मनोहर कै चहुँधा, छवि सृष्टि कि धन्य बनावन हारे।
घोर हिमन्त पै पाय विजै, मधुराई अनन्त दिखावन हारे॥
कौन कहै इत चेत नहीं, जड़हू को अहो! अपनावन हारे।
आओ, अनेक बधाई तुम्हें, तुम हो ऋतुराज कहावन हारे॥ १॥

धारि लिये नव पल्लव वृक्षन, देखत ही बनतो सुघराई।
ये नव पुष्प दिखावत हैं, विधना-करकी सिगरी चतुराई॥
डोलत प्यारी बयारी अहो! दरशावति मञ्जु मनोहरताई।
ये सब साज सजे अपने ऋतुराज मनावैं तुम्हारि बधाई॥ २॥

स्वागत रावरो है ऋतुराज, इती विनती, अब और सुनीजे।
छायो अज्ञानको घोर हिमन्त, हिये मँह तौनहुँको हरि लीजै॥
आश गई आलस को लखी पात नये उत्साहके दीजे।
शक्ति प्रसून सनेह बयारिन, सत्य वसन्तको नाम करीजै॥ ३॥

हाँ अब ऐक्यताकी शुभ वेलि, वसुन्धरा भारत पै प्रसरैगी।
धीरज की रमनीय नदी, अपनी गति धीर गँभीर करैगी॥
पाय सहायक साहसको, अब शक्ति सशक्ति बनी बिहरैगी।
भारती भारतमें अब आय, वसन्तहिको गुणगान करैगी॥ ४॥

चारि दिनाकी बहार दिखाय, अहो ऋतुराज! चहोगे विदाई।
कौन तुम्हार करै गुणगान, तबै लखि ग्रीषम भीषमताई॥
पै हिय मध्य निवास करे, दुहुँ ओर सबै विधि होय भलाई।
भारत सन्तति सत्य "लली" दरशे है सदैव तुम्हारी बड़ाई॥ ५॥

तोरनदेवी "लली"।

वसंत-वर्णन ।

दुःख दूर हुआ हिम-मास है ;
सुखद आगम श्रीमधु-मास है ।
अब कहीं दुख का न निवास है ;
सब कहीं बस हास-विलास है ॥ १ ॥

दिवस रम्य, निशा रमणीय है ;
सिव दिशा-विदिशा कमनीय हैं ।
सुखद-मन्द-सुगन्ध समीर है ;
चित चहे अब शीतलनीर है ॥ २ ॥

विविध पुष्प खिले छबिवन्त हैं ;
अतिमनोहर रङ्ग अनंत हैं ;
मधुपको करते मधु-दान हैं ;
अतिथिका करते सब मान हैं ॥ ३ ॥

दुखित-दीन, जिन्हें हिमकी व्यथा,
असहनीय रही नित सर्वथा ।
मुदित हैं अलि शीत विनाश से ;
छुटगये अब वे यम-पाशसे ॥ ४ ॥

खिल गये अब पङ्कज-पुञ्ज हैं,
कर रहे जिनपै अलि गुञ्ज हैं।
मिट तुषार गया अब सर्वथा;
विशद कान्ति हुई शशिकी तथा ॥ ५ ॥

भ्रमर-शब्द मनोहर गान है;
सुमनही जिनकी मुसकान है।
पवन कम्पित मञ्जु लता सब;
सुखद नृत्य मनो करती अब ॥ ६ ॥

फूल अनार, कचनार, अशोक जाल,
धारे रसाल नव पल्लव लाल-लाल।
चम्पाकली हर रही मन रूपराशी,
श्रीमद्वसन्त नृपकी वलि दीपिकासी ॥ ७ ॥

फूले-फले अब सभी द्रुम हैं सुहाते।
बैठे विहङ्ग जिनकी सुषमा बढ़ाते।
शोभा मनोज्ञ शुकके मुखकी चुराये;
लेते पलाश वनमें मनको लुभाये ॥ ८ ॥

है पृथ्वीमें अतिशय सभी ओर आनन्द छाया;
क्या पक्षी क्या पशु, तरु, लता हैंसभीमें समाया।
धीरे-धीरे अब गगन में श्री सहस्रांशु जाते;
मानो वे भी मुदित जगको देख हैं मोद-पाते ॥ ९ ॥

पुष्पोंकी ले सुरभि वहता वायु है मन्द-मन्द ;
लोनी-लोनी नवल लतिका कम्प पाती अमंद ।
मानों आता निकट लखके वायुको वे लजातीं ;
जल्दीसे वे वस इस लिए शीश नीचे नवातीं ॥१०॥

बैठी वृक्षोंपर मुदित हो कोकिलें बोलती हैं ;
मानों मीठी श्रवण-पुटमें शर्करा घोलती हैं ।
है भृङ्गोंके सहित अति ही कुन्दका फूल भाता ;
मानो मोती ललित अलकों से घिरा है सुहाता ॥११॥

स्वर्णभूषण कर्णिकार जिसका अत्यंत शोभा सना ।
धारे किंशुक रूप लाल पट जो सौन्दर्य्यशाली घना ।
भाती कज्जलसी ललाम जिसके है मञ्जुभृङ्गावली ;
लेती मोह वनस्थली न किसको यों अङ्गनासी भली ॥१२॥

—गोपाल शरण सिंह ।

मेघागम।

अन्यायी का राज्य नहीं स्थायी होता है;
दुष्कृत का परिणाम दुःखदायी होता है।
ग्रीष्म अकारण सरल जगतको जला रहा था;
मन-माना दुख-मूल चक्रको चला रहा था।

इस कारण वह शीघ्र ही नष्ट आपही हो गया।
और उसीके साथ सब ताप महीका खो गया ॥ १ ॥

किन्तु कभी हतभाग्य नहीं सुखको पाता है;
उसके सिर पर सदा दुःख आता जाता है।
कुम्भकार के पास रहे या धोबी के घर;
जहाँ रहेगा वहीं भार नित ढोवेगा खर।

उत्पीड़क यद्यपि सही, ग्रीष्म गया इस देशसे।
तदपि दुखी वह हो गया मेघागमके क्लेश से ॥ २ ॥

"ग्रीष्म-गर्व को चूर कर दिया मैं ने बल से;
भू पर अपना रङ्ग जमाया मैं ने छलसे।
मेरे सम है कौन दूसरा बली महीपर,
मेरे सम क्या सुखी गुणी है, और कहींपर।

मेघ गरज करके मनो हमसे कहते हैं यही।
प्रभुता पाकर भी कभी खल खलता तजता नहीं ॥ ३ ॥

जिस कारण से अमित खलोंको सुख होता है;
अहो! उसी से सदा भलों को दुख होता है।
नृत्य-निरत हैं मोर मलिन मेघोन्नतिसे ज्यों,
अति उदास हों भाग रहे हैं राजहंस त्यों॥

तम वाञ्छित है घूक को किन्तु चकोरक को नहीं।
जिसके जो अनुकूल हो उसको प्रियतम है वही ॥ ४ ॥

होता है उपकार खलों से सदा खलों का;
होता है अपकार खलों से सदा भलों का।
पर इसमें तिलमात्र किसी का दोष नहीं है;
समझ देखिए नित्य प्रकृति का नियम यही है।

जलनिधि से जल जलदने खारा ले मीठा दिया।
सरसे पाया मधुर जल, पर उसको गँदला किया ॥ ५ ॥

यदि अन्यायी-राज्य महा अन्यायी पावे;
क्यों न वहाँ की प्रजा और भी कष्ट उठावे।
आकर जगको प्रथम ग्रीष्मने खूब जलाया;
हा! ज्यों ही वह टला क्रूर वारिदगण आया।

सुख-साधन जो थे बचे उनको भी घनने लिया।
अपने काले हृदय का सबको परिचय दे दिया ॥ ६ ॥

दुष्टों का अधिकार जहाँ पर होजाता है;
खल-मण्डल ही वहाँ चैन करने पाता है।
देश निकाला किन्तु सज्जनों को मिलता है;
ईति-भीति का फूल वहाँ अतिशय खिलता है।

श्रुति-कटु कैसा हो रहा दादुरगणका शोर है।
जानें, सज्जन हैं कहाँ समय बड़ा यह घोर है ॥ ७ ॥

ताराओंके सहित शशीका पता नहीं है,
पर नभमें खद्योत-मण्डली चमक रही है।
हिंसक, लम्पट, चोर, सदा स्वच्छन्द सुखी हैं;
व्यापारी बलहीन दीन हैं, सन्त दुखी हैं।

नीच नृपतिकी नीतिकी रीति सिखानेके लिए।
आये हैं ये घन मनों कैसे दुखको झेलिए ॥ ८ ॥

चमक-दमक कर वशीभूत कर लिया सभीको,
वर्षा ने कर-हीन मनो कर दिया सभी को।
कर्मवीर निज कर्म नहीं करने पाते हैं;
अपने मन की तृषा नहीं हरने पाते हैं।

पर,हाँ,दुखदायक कहीं, सुस्थिर रहता है नहीं।
जो आया वह जायगा, अटल भरोसा है यही ॥ ९ ॥

यम-किङ्कर से मेघ यहाँ पर जबसे आये;
तोड़ पुराने मार्ग इन्होंने नये चलाये।

दिनकर की कमनीय कान्ति खो गई तभी से ;
जलज-जाल की प्रथा मलिन हो गई तभी से ।

आगे बढ़नेके लिए पैर ठहरते हैं नही ।
पङ्क-पिच्छिला होगई सुखद और सुन्दर मही ॥ १० ॥

अगणित उष्मज जीव महीपर घूम रहे हैं ;
अल्प कालके लिए गर्व से झूम रहे हैं ।
पर, जब तक ये बने रहेंगे दुख देवेंगे ;
स्वार्थ-निरत ये नीच हमें क्या सुख देवेंगे ।

इनका प्रादुर्भाव तो हुआ हमारे पापसे ।
पर ये स्थायी हैं नहीं, मिट जावेंगे आपसे ॥ ११ ॥

रुका हुआ है अन्य देश का आना-जाना ;
कह भी सकते नहीं किसी से कुछ मनमाना ।
दृगके आगे सदा हमारे तम छाया है ;
बहुत दिनोंके बाद समय ऐसा आया है ।

पहलीसी फिर शरदृतु कब आवेगी देशमें ?
हम निरीह कबतक विभो ! पड़े रहेंगे क्लेशमें ? ॥ १२ ॥

—*रामचरित उपाध्याय !*

---

* रामचरितचिन्तामणिसे उद्धृत ।

वर्षा और निर्धन ।

काली-काली घटा निराली घिर-घिर आती ;
बरस-बरस कर अपना-अपना रङ्ग दिखाती ।
हरी भरी धरतीने होकर पानी-पानी ;
हरियाली के मिससे धानी चद्दर तानी ॥ १ ॥

रुचिर चमेली के फूलों की सेज लगाई ;
जुगनूरूपी दीप-शिखा ने शोभा पाई ।
रङ्ग-विरङ्गे धरे धरा ने रूप मोहने ;
उत्कण्ठित हो लगी जलद की बाट जोहने ॥ २ ॥

लोनी-लोनी लोल लतायें लगीं झूलने ;
उझक-उझक कर प्रिय तरुओंके वदन चूमने ।
नील जलद को देख मोर भी पर फैलाता ;
अपना सुन्दर नाच मोरनी को दिखलाता ॥ ३ ॥

कड़े ताप से पड़े-पड़े पौधे मुरझाये ;
मुँह पर छींटे देकर मानो गये जगाये ।
नव जीवन-सञ्चार हुआ स्थावर-जङ्गममें ।
सब हो गये निहाल भूमि-नभके सङ्गममें ॥ ४ ॥

सूखे सर-वापी-तालोंने जीवन पाया ;
दौड़-धूप की ; शोर किया ; विस्तार बढ़ाया।
अनायास सम्पत्ति मिली इससे मद छाया ;
हुई स्वच्छता दूर मैलने पैर जमाया ॥ ५ ॥

नव उमङ्ग भर दिया हृदय में वर्षाने जब
तभी हुए आनन्द मनानेको आतुर सब।
सैर-सपाटे की यारोंने मिलकर ठानी ;
उद्यानों में चले मौज करने मनमानी ॥ ६ ॥

कहीं युवतियाँ-युवक हिँडोले झूल रहे हैं ;
घनानन्द में मग्न जगत को भूल रहे हैं।
कहीं कदम्ब-केकी के तरु फूल रहे हैं ;
कहीं मोर के शोर पथिक को हूल रहे हैं ॥ ७ ॥

बाबूलोग पहाड़ों पर बँगलों में बैठे ;
धन-मद, जन-मद शासन-मद, तीनोंसे ऐंठे।
खेल रहे शतरञ्ज, ताश, गंज़ीफ़ा चौसर ;
या होते कुरवान पियानो पर, जानों पर ॥ ८ ॥

इसी तरह सब ओर ज़ोरकी धूम मची है ;
मानो नूतन सृष्टि विधाता ने विरची है।
पर पाठक ! आनन्द देख कर भूल न जाओ ;
एक वार विस्तार सहित आँखें फैलाओ ॥ ६ ॥

देखो उत्तर ओर झोंपडो सड़ी खड़ी है;
उसमें दुःखित एक ईश को सृष्टि पड़ी है।
चलो, वहाँ चल कर देखें क्या-क्या होता है;
मातादीन पड़ा उसमें कैसा सोता है? ॥१०॥

हाय! हाय! छप्परमें तिनका एक नहीं है;
वह धरती छूता है उसमें टेक नहीं है।
घर पोखर हो रहा उसीमें लोट रहे सब;
शूकर उनको कहें मनुज तो वे न रहे अब ॥११॥

शूकर भी हो मस्त केलि करते पोखरमें;
यहाँ कहाँ मस्ती? दाना जब "नहीं" उदरमें।
बच्चे माथे के समान कीचड़में डूबे;
मातादीन बचा न सका, बिगड़े मनसूबे ॥१२॥

बेचारी बुढ़िया यों भी रह सकी न जीती;
निकला काला साँप, जान पर उसके बीती।
ज़रा देरमें अभी नहीं जब बढ़ आयेगी;
तब यह निर्धन प्रजा मुकुन्द! कहाँ जायेगी? ॥१३॥

बाबू साहब उठ कर जब शिकार पर टूटे;
तब बेगार पकड़ने प्यादे उनके छूटे।
दुखिया मातादीन न इससे बचने पाया;
गठरी लादे भूखों मर कर प्राण गँवाया ॥१४॥

वर्षा और निर्द्धन।

बेचारी बुढ़िया यों भी रह सकी न जीती।
निकला काला साँप, जान पर उसके बीती॥

(पृष्ठ १७२)

जब शिक्षा के लिये विश्व-विद्यालय खुलते ;
धनी ऐंठते मूँछ अधन ही दुखमें घुलते।
ऐसे भी जर्जर झोंपड़े न बचने पाते ;
वर्षा में ही हाय! अनाथ निकाले जाते ॥१५॥

अगर सभ्यता आज भरे ही को है भरना ;
नहीं भूल कर कभी ग़रीबों का हित करना।
तो सौ-सौ धिक्कार सभ्यता को है ऐसी ;
जीवमात्र को लाभ नहीं तो समता कैसी? ॥१६॥

—केशव प्रसाद मिश्र।

शरद्।

बीत गयी बरसात ; अहा! कैसी छबि छाई।
रोचकता का साज शरद ऋतु, सजकर आई॥
हुए प्रफुल्लित जीव जन्तु जड़ चेतन सारे।
सुन्दर, हरित, सचित्र, वेश धरणीने धारे॥ १॥

श्वेत रूप अति स्वच्छ काशकुल मंजुल फूले।
देख मनोहर दृश्य न उपमा सत्कवि भूले॥
"पावसमें जलधार पड़ी अविराम प्रकृति पै।
मानो वस्त्र पसार सुखाती है वह क्षिति पै" ॥ २॥

"अथवा, जगमें शरद प्रजाप्रिय भूप पधारे।
ऋतुम्भराने श्वेत चारु चामर कर धारे॥"
"अथवा अस्थि-समूह विरहिणीके बिखरे हैं।
विरह तापमें झुलस जलदने प्राण हरे हैं॥ ३॥

या पड़ते जो रङ्ग श्वेत दिखलाई अब हैं।
वे पावसमें चिह्न वृद्धता-सूचक सब हैं॥
उड़-उड़ अगणित झुण्ड खञ्जरीटोंके आये।
संदेशा सुखमूल शरद आनेका लाये॥ ४

सरिता, सागर, झील, तड़ाग जलाशय सारे।
जो थे एकाकार प्रथम अब हैं सब न्यारे।
बट जाते बटमार पाय कुप्रबन्धक नेता;
उनको सीमावद्ध प्रतापी है कर देता॥ ५॥

जलाशयों में स्वच्छ अमल दर्पण सा जल है;
बहते हुए सुमधुर शब्द होता कल-कल है।
इस प्रकार जल बढ़ा हुआ क्षण-क्षण घटता है
विषयों से मन यथा योगियों का हटता है॥ ६॥

खिले अखिल अरविंद मलिन्दवृन्द मड़राते;
पी-पी मधु मकरन्द अतुल आनन्द मनाते।
शीतल पवन सुगन्ध-सना बहता है धीरे;
मिलता है आनन्द किसी सरिताके तीरे॥ ७॥

अवनी पै रमणीय घास की है हरियाली ;
नूतन पल्लव धार छदन की छटा निराली ।
ऊपर नीला गगन हरी नीचे क्षिति सारी ;
यह शोभा क्यों लगे न इन आँखोंको प्यारी ॥ ८ ॥

कोकिल, कीर, कपोत, सारिका, सारस, श्यामा
कोक, महोक, मराल, चकोर, मयूर सवामा ।
तरु-शाखा पर बैठ मुदित हरिगुण गाते हैं ;
अनुपम ईश्वरदत्त प्राकृतिक सुख पाते हैं ॥ ९ ॥

शुभ्र चाँदनी छिटक ताप तन का हरती है ;
ओज भरी मुसकान प्रफुल्लित मन करती है ।
पर मेरा मन-कुसुद न पलभर भी खिलता है ।
शरत्काल-सुख कहाँ मरुस्थलमें मिलता है ॥ १० ॥

—पं० रामनरेश त्रिपाठी ।

हेमन्त ऋतु ।

नर कहा नारी कहा पसु कहा पच्छी मन,
काहूके न होत घर छोड़ निकरन की ।
अङ्गन-अँगोछि करैं जपतप होम दान
जात ना कही है कछू करनी करनकी ॥

कहै मणिदेव जुगुनूंलौं कढ़ि जात आसु
चरचा न हो न कहुं भानुके करनको॥
घरी-घरी बोलैं जन घरी जो न होती कहूँ
घरी तौ न होती सन्ध्या-वन्दन करनको॥ १॥

परत तुषार भार काँपै हिय हार-हार,
रजनी पहार दिन आगी जैसे फूसको।
द्वार-द्वार — परदे परे — हैं भरे तूलनके
भीतर सँवारी धरे — पलँग — जलूसको॥
राम कवि कहत हनत सीत अवतक है,
आवरे सुजान तेरी छाती आबनूसकी।
जैसे तैसे कान्ह षट मासलो वितीत कलो
निपट जवाल भई काल रैन पूसकी॥ २॥

सूर ऐसे सूरको गरूर रूरो दूर कियो
पावक खिलौना कर दियो है सवनको।
वातन की मारहीतें गातको भुलात सुधि
काँपत जगत जाको भय आन मनको॥
गिरधरदास रात लागे काल रातकीसी नाहीं
सा लगत — भूमि — राखत चरनको।
आयो है हिमन्त भूमि कंथ तेज चंत दीह
दन्तन पिसावतो दिगन्तके नरनको॥ ३॥

आयो है हिमन्त ज़ोर जाड़के प्रसङ्गनसों
रेशम के झँगनमें अङ्गन दुराये देत ।
कहैं नन्दराम त्यों हमामहू न काम सरै
धाम धाम आला पौन पालाको उसाय देत ॥
तूल पेठ पीठिन अँगोठिन में डोठी लगी
तरुनी विहीन तनकम्पा सरसाये देत ।
दोगुनो कहोतो चित्त चौगुनो चुराय लेत
नौगुनो न सौगुनो समीर सीत नाये देत ॥ ४ ॥*

—जगन्नाथ प्रसाद "भानुकवि ।"

शिशिर ।

आई शिशिर की ऋतु, हुआ हेमन्त का अब अन्त ;
साम्राज्य है बस शीत का सर्वत्र नभ-पर्यन्त ।
छूना कठिन है, हो गया इस भाँति शीतल नीर ;
हृत्कम्पकारी बह रहा हिमपूर्ण शिशिर-समीर ॥ १ ॥

तारे शशी तो दीखते ही हैं अतीव मलीन ,
है चण्डकर की चण्डता भी हो गई अब क्षीण ।

* काव्य प्रभाकरसे उद्धृत ।

संसारमें होता समय है जब कभी अति वाम ;
तेजस्वियों का भी न तब है तेज आता काम ॥ २ ॥

शत पत्र सूखे हैं सभी, पड़ता अपार तुषार ;
जाकर भ्रमर करते न अब उन पर कभी गुञ्जार।
शत वार ऐसे स्वार्थ-तत्पर मीत को धिक्कार ;
जो आपदामें साथ दे सच्चा वही है यार ॥ ३ ॥

पट-हीन दीनोंका हुआ जीवन बड़ा विकराल ;
आधार उनके इस समय बस अनल और पुआल।
गिनकर सितारे, वे बिताते हाय। सारी रात ;
हम हैं सुखी, कैसे हमें हो दुःख उनका ज्ञात ॥ ४ ॥

छिपते घरोंमें लोग हैं ज्यों ही हुई बस शाम ;
बाहर न जाते वे कभी हो भी अगर कुछ काम।
मोटे वसन हैं पहनते सब शीत का भय मान ,
तो भी कँपाता देह है जाड़ा बड़ा बलवान ॥ ५ ॥

घोर-अपार-तुषार-रूपी श्वेत पट अभिराम ;
मन मोहते हैं मनुजके गिरि-शिखर शोभा धाम।
अच्छी न लगती है ज़रा भी अब उजेली रात ;
दुखमें सुधा भी है न भाती, ख्यात है यह बात ॥ ६ ॥

—*गोपाल शरण सिंह।*

शिशिर-निशा।

दुःशासनके लिये हुआ था ज्यों कृष्णाका चीर अपार,
होता ज्यों नौका-विहीनको नदी-नीरका बहु विस्तार।
अथवा पङ्गुजनोंको गगन-स्पर्शी गिरि-शिखरोंका जाल,
दुखियोंको भी उसी भाँति यह शिशिर निशा है बड़ी विशाल ॥ १ ॥

शब्दोदधि तट पा न सके ज्यों इन्द्र रहे उसमें ही लीन,
त्योंही तमसाच्छन्न निशा यह मुझे दीखती अन्त विहीन।
अकुला कर हैं चन्द्रदेव अब गये यहांसे लाखों कोस ;
जाड़ोंसे दुःखित तारोंके नयनोंसे गिरती है ओस ॥ २ ॥

काबूमें है नहीं लेखनी कुछका कुछ लिख जाती है।
दीप-शिखासे ज़रा हटाते ही स्याही जम जाती है॥
केवल करही नहीं, किन्तु सब अङ्ग काँपता जाता है।
रजनीकी भीषणताका तुल्यत्व न कोई पाता है॥ ३ ॥

पहरे पर रख अन्धकारको—'शोर न हो' यह कर आदेश।
प्रकृति सोगई सी है, रजनीका धरकर अति अद्भुत वेश।
मानव तो मानव, पशुओंके भी रवका है पता नहीं ;
झिल्लीकी झङ्कार-ध्वनी तक सुनी न जाती आज कहीं ॥ ४ ॥

दिनभर चक्कर देनेवाले पक्षी तो चुप हैं, सो ठीक;
रजनोचर भी उलूकादि सब-नहीं घूमते हैं निर्भीक।
अजी! घूमना दूर रहा, वे निज खातोंमें बैठे दीन,
पर तक नहीं हिलाते मानों हुए सभी हैं जीव-विहीन॥५॥

पर न सभी दुःखित होंगे इस महा-निशाके आगमसे,
प्रत्युत होंगे मुदित बहुत जन इसके आज समागमसे।
शवकी शिविका, तथा देखकर उसी समयमें सजी बरात—
सब लोगोंकी रुचि न एकसी होती है, यह निश्चित बात॥६॥

तमके अति घनिष्ठ सम्बन्धी लुच्चे, चोर, उठाईगीर—
हर्षित होंगे प्रेमोदधिमें बहनेवाले विषयी वीर॥
काम-काजसे नफरत रखनेवाले शाहंशाह मिज़ाज।
घोर आलसी जन भी प्रमुदित होंगे शिशिर-निशामें आज॥७॥

मेरे ही सम सुखी जगत है, यही माननेवाले सेठ।
जो निदाघ-मध्याह्न विताते थे ख़सके पर्दों में बैठ॥
वायु-हीन गृहमें वे कमसे कम दस सेर रुईको लाद,
सुखसे सोते और सुनाते होंगे वज्र नासिका-नाद॥८॥

किन्तु न जाने कितने भिक्षुक वस्त्र हीन धरणीपर आज।
नभो रूप छतके नीचे ही अपने करका तकिया साज॥
लेम्प तुल्य तारों की धुँधली आभामें निज आँखें खोल।
भाग्य-लेख पढ़पढ़ दाँतोंका विकट सुनाते होंगे बोल॥९॥

दिन भर भीख माँग कर पाई घुने चने की दालोंको ;
रोते हुए भूखसे अपने प्राणोपम उन बालोंको।
योंही कच्चो खिला-पिलाकर निराहार वे महिलायें।
क्या सुखसे सोतो होंगी हा! महा दुःखिनी अवलायें? ॥१०॥

नहीं, किन्तु अपने बच्चोंको लगा कलेजे से भर ज़ोर,
अगणित टुकड़ों से निर्मित निज मैल भरी साड़ीका छोर।
खींच उढ़ाकर कहती होंगी, हा! हा! महा शोकके साथ ;
"हरे द्रौपदी वस्त्र नहीं तो खरके सम ही करते नाथ!" ॥११॥

इन दोनोंका ध्यान, बताओ, करनेवाले कितने लोग ;
होंगे, इस भीमा रजनीमें प्रासादोंमें सब सुख भोग॥
सच है, निज शरीरमें जबतक गड़ती है न सूई की नोक।
तबतक पर-दुखका अनुभव भी कभी नहीं होता, हा शोक! ॥१२॥

इसी निशाका तिमिर आज भारतमें है घर-घर छाया ;
उन्नति का रवि अस्त न जानी जाती है हरि की माया।
भारतवासी घोर अविद्याके जाड़ेसे ऐंठ रहे ;
जो बच रहे भ्रान्ति-सागरमें प्रायः जाते सभी बहे ॥१३॥

अन्धकार हो गया यहाँ है, घोर निशा के कारणसे ;
पर क्या उसका अन्त न होगा, सुदृढ़ धैर्यके धारणसे?
अन्तहीन जब है अनन्तही एक, नियन्ता दयानिधान।
तब होगाही धीरे-धीरे शिशिर-निशाका अन्त विधान ॥१४॥

—कृष्ण चैतन्य गोस्वामी।

दिवाली और लक्ष्मीसे विनय

(१)

पद्मा ! सिन्धु-सुता ! माँ कमला ! हरिकी प्यारी हो।
भारतकी सर्वस्व यहाँसे कहाँ सिधारी हो ?
हा ! हा ! कहाँ वह हर्ष ? कहाँ वह छटा निराली है ?
पूर्व कालकी लालीवाली, कहाँ दिवाली है ?

(२)

प्रेम परस्पर कहाँ ? फूटकी धूम दिखाती है ;
वैर कलहकी हाय ! नित्य जड़ जमती जाती है।
चिन्ता डायनने भी अपनी जीभ निकाली है।
पूर्वकालकी लालीवाली कहाँ दिवाली है ?॥

(३)

अन्न नहीं भरपूर भोग फिर कहो ! बनाऊँ क्या ?
सक्कर है अपवित्र मात ! फिर तुम्हे चढ़ाऊँ क्या ?
कैसे पूजन करूँ ? कोश-गृह भी तो खाली है ?
पूर्व्व-कालकी लालीवाली कहाँ दिवाली है ?

(४)

व्यापारीगण जहां चैन से दिवस बिताते थे;
कारीगर भी माल बनाकर मौज उड़ाते थे;
नष्ट हुए व्यापार, रही अब शेष दलाली है;
पूर्व्वकाल की लालीवाली कहाँ दिवाली है?

(५)

प्लेग, अकाल, देशमें, डाले रहते हैं डेरा;
मलेरिया हैजा भी तिसपर करते हैं फेरा।
हा! छीनी दारिद्र्-दनुजने परसी थाली है;
पूर्व्वकाल की लालीवाली कहाँ दिवाली है॥

(६)

तड़क, भड़क, ऊपरी रही है, अन्तर सूना है;
उन्नत था वह नत देशों का बना नमूना है।
वृद्धि हुई तो यही जुएमें चलती नाली है;
पूर्व्व कालकी लालीवाली कहाँ दिवाली है?॥

(७)

हे माता! कब हम दुखियों पर दया दिखाओगी?
भारतका फिर भाग्य-सितारा कब चमकाओगी?
छाय रही हर ओर, अविद्या रजनी काली है;
पूर्वकाल की लालीवाली कहाँ दिवाली है०॥

(८)

आओ, आओ, सिन्धु पारकर सत्वर आओ माँ।
दीन-दशा कर दूर दैन्य-दुख सकल मिटाओ माँ!
हर्षित हो कर सब कहें "वाह वा! हुई बहाली है।
पूर्व कालकी लालीवाली पुनः दिवाली है"!

'रसिकेन्द्र।'

होली।

ऐ ऋषि सन्तान! गन्दे गीत गाना छोड़ दो।
ग़ैर लोगों से हँसी अपनी कराना छोड़ दो॥
आगई होली मिलो सब, गाँठ दिल की खोलकर।
प्रेम आपसमें बढ़ाओ जी दुखाना छोड़ दो॥

कीजिए घरमें हवन सब रोग जिसमें दूर हों।
गन्दगी बदबू भरे कूड़े जलाना छोड़ दो॥
क्या यही है काम अच्छा स्वांग भरना भूत सा।
धूल-कीचड़ पोत काला मुँह बनाना छोड़ दो॥

देवियों को देखकर अश्लील वकना है बुरा।
सभ्य बन कर, नीचता अपनी दिखाना छोड़ दो॥
भूल अपने को न जाओ मान की रक्षा करो।
पागलों-सी लत, नशा खाना खिलाना छोड़ दो॥

मेस देशी भाव भाषा और भूषा से सजो।
भारती असली बनो बेमेल बाना छोड़ दो॥
जिस तरह नव वर्ष का उत्सव मनाते आर्य थे।
भाइयो! वैसा करो, हुल्लड़ मचाना छोड़ दो॥

—प० राम नरेश त्रिपाठी।

समयका परिवर्त्तन।

तनिक पाठकवृन्द! विचारिये।
यह समय परिवर्तनशील है॥
फिर वृथा मन को न डिगाइये।
विनय से, नय से वश कीजिये॥ १॥

जन 'प्रभात हुआ' जिसको कहें।
वह तुरन्त सुशोभित साँझ है॥

समय की गति है अति चञ्चला ।
असुर से, सुरसे रुकती नहीं ॥ २ ॥

शकट-चक्र यथा जिस रीतिसे,
सतत है विधिपूर्वक घूमता ।
बस वही गति है इस काल की ;
अचर हो चर हो, सबके लिये ॥ ३ ॥

कल जिसे कहते नृप थे सभी ।
अब वही इक प्राकृत दीखता ॥
शिखरसे तलमें इक आनमें ,
पतन है तन है किस काम का ! ॥ ४ ॥

जिमि हुआ पतन-क्रम सिद्ध है ।
बस इसी विधि उन्नति-मार्ग है ॥
अति विचित्र चरित्र सुकालके ।
सबल है ; बल है उसमें सभी ॥ ५ ॥

जब हुआ नत-उन्नत व्यक्ति यों,
समयके बस केवल योगसे ।
अतः सुस्थिर-चित्त रहो सदा ।
विकल हो ; कल हो कुछ भी सही ॥ ६ ॥

निज समुन्नतिका नित ध्यान हो ।
समयकी गति भी न बिसारिये ॥

विगतका कुछ शोक न कीजिये ।
निरस है ; रस है इसमें नहीं ॥ ७ ॥

पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ;
मत वृथैव सुकाल विताइये ।
नित करो निज कृत्य ; सुकीर्त्ति लो ।
अमर हो , मर होकर क्यों जियो ॥ ८ ॥
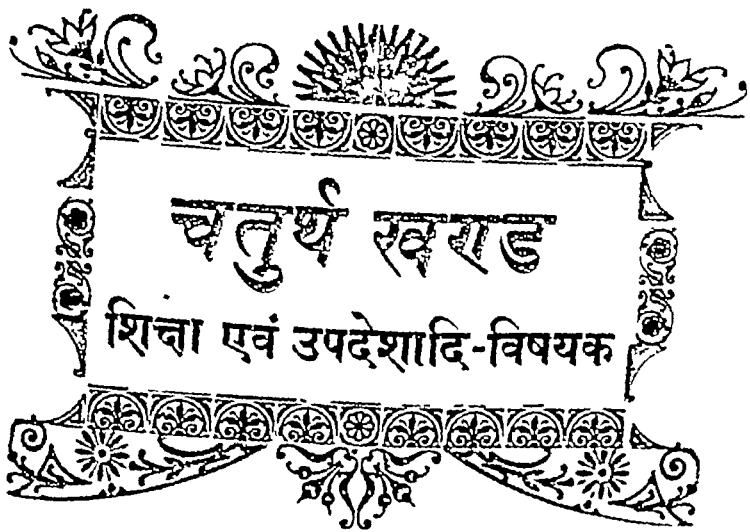
—मातादीन शुक्ल ।

चतुर्थ खण्ड

शिक्षा एवं उपदेशादि-विषयक

सदुपदेश।

(१)

महादेवको भूल जाना नहीं
किसी और से लौ लगाना नहीं॥
बनो ब्रह्मचारी सुविद्या पढ़ो
द्विजाभास कोरे कहाना नहीं।

(२)

करो प्यार पूरा सदाचार पै
दुराचार से जी जलाना नहीं।
निरालस्य विद्या पढ़ाते रहो
अविद्या नटी को नचना नहीं।

(३)

न पापिष्ठके पास बैठो कभी
खलों की प्रतिष्ठा वढ़ाना नहीं।
बड़ाई करो ज्ञान विज्ञान की
महा मोह की मार खाना नहीं।

(४)

अहिंसा न छोड़ो दया दान दो
किसी जीवको भी सताना नहीं ।
सुना के कटीली कथा जाल की
मरी मण्डली को रिझाना नहीं ।

(५)

बिना याचना और की वस्तुको
ठगीसे न लेना चुराना नहीं ।
अनाचार से जाति के मेल को
घृणाके गढ़े में गिराना नहीं ।

(६)

न छूना छड़ो राज-विद्रोह की
प्रजाकी प्रशंसा घटाना नहीं ।
महाशोक सन्ताप के सिन्धुमें,
कभी भी किसी को डुबाना नहीं ।

(७)

चलाना सदुद्योग से जीविका,
दिखा धर्म काले कमाना नहीं ।
न चूको मिलो शङ्करानन्द से
निरे तर्कके गीत गाना नहीं ।

—पं० नाथूराम शंकर शर्मा।

सत्य ।

—*—

सत्य-स्नेही सत्य का दम भरते थे;
प्राण जायँ या रहें न कुछ परवा करते थे।
किन्तु न सत्पथ त्याग असत्पथ-पद धरते थे,
जीते थे हम तभी सत्यपर जब मरते थे;

सरमें ममता धाम, धन, जनको हम धरते न थे।
एक सत्यहीके लिये क्या-क्या कृति करते न थे॥ १॥

अवलम्बित था एक सत्यपर ज्ञान हमारा;
विचलित पलभर था न सत्यसे ध्यान हमारा
और किसी भी तरह नहीं था त्राण हमारा,
जीवन, धन, सर्वस्व सत्य था प्राण हमारा॥

निश्छल थे व्यवहार सब कुटिल चाल चलते न थे।
ध्रुव टल जाता, किन्तु हम निज प्रणसे टलते न थे॥ २॥

कभी पिछड़ते थे न सत्यपर जब अड़ते थे,
ताल ठोंक कर काल बली से हम लड़ते थे।
पर न कदापि असत्य मार्गमें पद पड़ते थे,
देश-देशमें तभी सुयश झण्डे गड़ते थे

सत्यनिष्ठतामें तभी भारत का सम्मान था ।
अमरपुरी तकमें हुआ गुण-गौरवका गान था ॥ ३ ॥

दूर सत्यसे और सकल दुर्गुण भगते थे ;
चढ़ता और न रङ्ग, रङ्ग, ऐसा रँगते थे ।
दम्भ, कपट, छलसे न किसी को हम ठगते थे ॥
"वचन-भ्रष्ट" ये वचन वज्रसेही लगते थे ।

बात न जाती थी कभी सर जाना स्वीकार था ,
सत्य-व्रत प्रति पालते मर जाना स्वीकार था ॥ ४ ॥

बैरी से भी नहीं सत्यको हम तजते थे ,
परम-पूज्यमय जान इसी को हम भजते थे ।
चारों तरफ़ वितान सभ्यताके सजते थे ,
द्वार-द्वार पर सुयश-दमामें तव वजते थे ॥

हा हन्त ! वही हम अव हुए सुखद सत्यसे दूर हैं
मिथ्या प्रपञ्च से हो गये दूर-दूर मशहूर हैं ॥ ५ ॥

अगर कहो यह कि, थे सत्य-युगकी वातें थीं ;
तव थे, दिन ही और और, ही कुछ रातें थीं ।
भोले भाले लोग, न समझी ये घातें थीं ;
उनको सव थे स्वजन, न यों जातें-पाँते थीं ॥

तव "वसुधैव कुटुम्वकम्" का करते सव पाठ थे ।
स्वाभाविक ही सत्यसे पूरित आठों गाँठ थे ॥ ६ ॥

मैं कहता हूँ, "नहीं" ज़रा इतिहास उठाओ ;
दो हज़ार ही वर्ष आज से पीछे जाओ।
है सम्भव ही नहीं, अनृत ऐसा तव पाओ ;
दशा देख हो मुग्ध निज दशा पर शर्माओ ॥

छलका सुनकर नामही लोगोंको सन्ताप था।
तव समझे थे सत्यको झूठ, घृणित था, पाप था ॥ ७ ॥

अब तो है हर तरफ गर्म बाज़ार झूठ का ;
करते होकर निडर लोग व्यवहार झूठ का।
चल निकला है यहाँ वहुत व्यापार झूठ का ;
दुस्सह है, हो रहा भूमिको भार झूठ का ॥

मिला स्वाद क्या जानिए लोगों को है झूठमें।
रखते कितने ही अधम झूँठ-ऊँट भर मूठमें ॥ ८ ॥

क़दम-क़दम पर क्रूर कुटिल बन दम देते हैं ;
पयमुख उर-बिष-भरे भेद भी कम देते हैं।
छिड़क घाव पर नमक बता मरहम देते हैं ;
करते हैं फिर गर्व कि क्या दम हम देते हैं ॥

अपने इस दुष्कर्म पर लाज उन्हें आती नहीं।
इतना उरमें दम्भ है, पर फटती छाती नहीं ॥ ६ ॥

थकते ही हैं नहीं, झूँठ अपने गुण गाते ,
किया क्षुद्र उपकार, सौगुना उसे बताते।
सुन कर झूठी वाह-वाह फूले न समाते ;
चलते फिरते झूँठ, झूँठ ही पीते-खाते॥

चसका ऐसा झूठ का लगा नहीं है छूटता।
सुकृत सम्पदा हाय! है झूठ लुटेरा लूटता॥१०॥

वादा करते हुए न हरगिज़ मुँह मोड़ेंगे ;
कह देंगे झट कि हम गगन-तारे तोड़ेंगे।
पर, देकर विश्वास काम सारा गोड़ेंगे ;
घेरोगे जो अधिक धूर्त्त मिलना छोड़ेंगे॥

अपनी भाषामें इसे कह लेते ये शील हैं।
पर मम मतिमे पोतते वे निज मुखपर नील हैं॥११॥

कितने ही तो पेट झूठ ही से भरते हैं ;
लज्जित होते नहीं कुटिल करणी करते हैं॥
लगा-बुझाकर क्रूर कान ऐसे भरते हैं ;
बन्धु-बन्धु ही बिगड़ परस्पर लड़ मरते हैं॥

अभियोगी यदि वे कहीं न्यायालय द्वारा हुए।
तो फिर है क्या पूछना उनके पौबारा हुए॥१२॥

क्या शिक्षित, क्या अपढ़ झूठ सबके मनभाया ;
है बस यह दुर्दैव समय जो ऐसा आया।
हाय! झूठने प्रेम और बन्धुत्व मिटाया ;
किसको अपना कहें, किसे अब कहें पराया ॥

पक्का झूठा यदि न हो कच्चेकी दुनिया नहीं।
कहते हैं सब लोग, "अब सच्चेकी दुनिया नहीं" ॥१३॥

सच कहने से लोग रूठ मनमें जाते हैं ;
प्रकृति उग्र है, शील दुष्ट है, बतलाते हैं।
पक्षपात से पूर्ण हृदयमें झल्लाते हैं ;
अवसर पाकर हिंस्र जन्तुसे धर खाते हैं ॥

जहाँ इस तरह से मनुज अनृत-प्रेममें शूर हों ;
क्यों न प्रकृति-प्रिय कवि वहाँ यों झूठे मशहूर हों ॥१४॥

सँभलो भारत-बन्धु! अभी कुछ नहीं गया है ;
बहुत लोग हैं अभी वचन भी जिन्हें हया है!
सत्य-पूर्ण है हृदय साथ ही साथ दया है ;
चढ़ा न उन पर कभी झूठका रङ्ग नया है ॥

अभी तुम्हारे सामने वे उत्तम आदर्श हैं।
सत्य-व्रत निर्वाह से पाते मनमें हर्ष हैं ॥१५॥

गहो सत्य को मित्र ! कपट मिथ्या को त्यागो ;
छल पैशाचिक कर्म समझ कर उससे भागो ।
मायामें मत फँसो मोह-निद्राको त्यागो ;
जागो, जागो बन्धु ! भला अब तो तुम जागो ॥

हरिश्चन्द्रसे स्वर्ग में तुम्हें देख दुख पा रहे ।
उद्बोधन हैं कर रहे, अश्रु बहाते जा रहे ॥१६॥

—"सनेही ।

शान्ति देवी ।

हे देवि ! धन्य है तू, है स्वर्गधाम तेरा ;
स्वर्गीय सुख चखाना हे देवि ! काम तेरा ।
है दिव्य रूप अति ही नयनाभिराम तेरा ;
आनन्द-दान करता है, शान्ति-नाम तेरा ॥

शुभ-दृश्य स्वर्ग का है तूने हमें दिखाया ।
हे देवि ! सुखमयी है तेरी अपार माया ॥ १ ॥

तेरे प्रतापसे ही हँसती वसुन्धरा है ;
उद्यान इस जगत् का तुझसे हरा-भरा है ।
मानव-हृदय-कुसुम है तुझसे विकाश पाता ;
पाता तुझे जहाँ वह, फूला न है समाता ॥

है मार्ग आत्म-सुख का तूने हमें बताया ।
हे देवि ! सुखमयी है, तेरी, अपार माया ॥ २ ॥

वाणी-विलास तेरे मधुमें सने हुए हैं ;
प्राणी अनेक तेरे प्रेमी बने हुए हैं ।
तेरा हृदय दयाको रखता प्रगाढ़ता है ;
पर-दुःख देख करके अति ही पसीजता है ॥

शुभ नाम प्रेमका है तूने हमें पढ़ाया ।
हे देवि ! सुखमयी है तेरी अपार माया ॥ ३ ॥

संसार चल रहा है, तुझ एकके सहारे ;
तेरे बिना न चलते, उद्योग कुछ हमारे ।
जिस ओर से कभी, तू है दृष्टि फेर लेती ;
तलवारकी चमक है, लेने न चैन देती ॥

है पान शान्त रसका, तूने हमें कराया ।
हे देवि ! सुखमयी है, तेरी अपार माया ॥ ४ ॥

हे देवि ! गोद खेतों की है भरी तुझी से ;
आशा-लता सदा है रहती हरी तुझी से।
शान्ते ! सरस्वती है, भगिनी कनिष्ठ मेरी ;
लक्ष्मी सदा रही है, तेरी प्रधान चेरी॥

वदला सदैव श्रमका तूने हमें चुकाया।
हे देवि ! सुखमयी है, तेरी अपार माया॥ ५॥

जव अग्नि है किसी के घरमें प्रवेश करती ;
तव तू वहाँ तुरत है जल का स्वरूप धरती।
जव फूट भाइयों को है खूव ही लड़ाती ;
माता तुरन्त वनकर तू है उन्हें मनाती॥

क्या पाठ मेल का है तूने हमें पढ़ाया।
हे देवि ! सुखमयी है, तेरी अपार माया॥ ६॥

कलहाग्नि जातियों में है दहकती जहाँपर,
तोपें गरज-गरज हैं मुँह फाड़ती जहाँपर।
हा ! लाल धार वहती है रक्त की जहाँ पर ;
शुभ तान छेड़ती है तू सन्धि की वहाँ पर॥

दुष्कर्म से सदा है तूने हमें वचाया।
हे देवि ! सुखमयी है, तेरी अपार माया॥ ८॥

तूने जहाँ-जहाँ पर निज कूक जा सुनाई ;
ऋतुराज की वहाँ पर फिरने लगी दुहाई।
संसारमें न होता तिलमात्र भी उजाला ;
यदि शान्तिदेवि ! तेरा होता न बोलबाला॥

जञ्जालसे कलह के तूने हमें छुड़ाया।
हे देवि ! सुखमयी है, तेरी अपार माया॥ ८॥

हे देवि ! मूर्ख तुझसे सर्वत्र हो लड़े हैं ;
हा ! दुष्ट सैकड़ों ही तुझसे सदा अड़े हैं।
जिसने परन्तु सहसा मानी न बात तेरी ;
उसका विनाश होते कुछ भी लगी न देरी ;

सन्मार्ग पर सदा है तूने हमें चलाया।
हे देवि ! सुखमयी है, तेरी अपार माया॥ ९॥

जिस दम मनुष्य सद्गुण सब भूल जायँ तेरे ;
हों भक्त अल्प तेरे, पर शत्रु हों घनेरे।
तुझसे करे सभी जग चाहे विरोध जितना ;
हे देवि ! तू मुझे तो निज भक्त ही समझना॥

सब भाँतिसे सुखी है तूने हमें बनाया।
हे देवि। सुखमयी है, तेरी अपार माया॥ १०॥

—मोतीलाल।

क्रोधसे हानि ।

सुनो बन्धुवर ! बात नीतिकी, सुख पाओगे ।
हर्षित कर मन-गात, प्रीतिको अपनाओगे ॥
कभी न करना क्रोध, क्रोधसे पाप बढ़ेगा ;
खो जावेगा बोध, व्यर्थ तन ताप चढ़ेगा ॥ १ ॥

बढ़ जाता अज्ञान, क्रोधको जो सिर लेते ।
पाते हैं अपमान, भक्ति-श्रद्धा खो देते ॥
हो इच्छाकी पूर्ति, किसी कारण न तुम्हारी,
बनो न कौशिक१ मूर्ति, न तो दुख होगा भारी ॥ २ ॥

बढ़ जाता अविचार क्रोधसे, यह निश्चय है,
होता भ्रम-विस्तार, उसीसे यह भी भय है ।
भ्रमसे धीर हो भ्रष्ट कौन फिर युक्ति बतावे,
स्वयम् जीव हो नष्ट, शेष फिर क्या रहजावे ॥ ३ ॥

परशुरामने रोष किया, बहु क्षत्रिय मारे ।
भरा पापका कोष अन्तमें महिमा हारे ॥

---

(१) कौशिक—विश्वामित्र (२)धी—बुद्धि ।

क्रोधी-चरित पवित्र, कहो हो सकता कैसे,
सर्प किसीका मित्र, नहीं हो सकता जैसे ॥ ४ ॥

क्रोध पापका मूल, पड़ो मत इसके वशमें।
हो जीवन निर्मूल, लगे धब्बा शशि-यशमें ॥
वढ़ते वैरीवृन्द, कार्य्य अनुचित हैं होते।
पड़ती महिमा मन्द, वालि सम सर्वस खोते ॥ ५ ॥

क्रोध प्रीतिको नष्ट करे, अरिता उपजावे।
देता है वहु कष्ट, चैनको मार भगावे ॥
अम्बरीष पर व्यर्थ, रोष करि दुर्वासाने—
शाप दिया, इस अर्थ पड़े थे कष्ट उठाने ॥ ६ ॥

आलस उद्यम-हानि, करे पलभरमें जैसे।
प्रेम-नाश कर ग्लानि, भरे मनमें रिस वैसे ॥
क्रोध पराक्रम, नेह, वुद्धि वलको हर लेता।
कृश करता है देह, हृदय चिन्तित कर देता ॥ ७ ॥

वचो क्रोधसे तात ! वाज़से पक्षी जैसे।
कहो न अनुचित वात, क्रोध तव उपजै कैसे ?
किसी हेतुसे रोष, अगर उपजै तो मनमें।
रखो छिपाकर, दोष न होगा उससे तनमें ॥ ८ ॥

जो करते हैं क्रोध वही हैं नीच छिछोरे।
जव उनको हो वोध, पड़ें पद करें निहोरे ॥

वायुजित्‌ने नम्रतासे, शान्ति से उत्तर दिया ।
"आपने यह क्रोध तो है विप्रवर ! नाहक किया ॥
ब्रह्म व्यापक और उसमें व्याप्त सब संसार है ।
क्यों न उसका सुयश सुननेका मुझे अधिकार है ? ॥ ५ ॥

"आप जिस प्रभु की कृपासे लोक-प्रिय गायक हुए ।
गान द्वारा मुग्धकारी वंश के नायक हुए ॥
चाहिये तो वेकहे यश-गान उस कर्त्तार का ।
क्या उचित है आपको फिर पूछना अधिकारका" ?॥ ६ ॥

दुष्ट सुनते ही इसे तो लाल-पीला हो गया ।
क्रोधके आवेशमें सब ज्ञान उसका खो गया ॥
आँख कर अङ्गार सी खल द्वेष में दहने लगा ।
वक्र मुख करके अधर्मी दुर्वचन कहने लगा ॥ ७ ॥

क्रोधमें उन्मत्त होकर चित्तमें अभिमान कर ।
माथमें मारा अचानक तानपूरा तान कर ।
तानपूरा टूटने से सैकड़ों दी गालियाँ ।
रक्त-रञ्जित वायुजित्‌ को देख पीटी तालियाँ ॥ ८ ॥

धार शोणित की वही, मुख लालिमा ने छा लिया ।
नीचके उपदेशका फल वायुजित्‌ने पा लिया ॥
व्यंग से हँसता हुआ वह दुष्ट अपने घर गया ।
वायुजित्‌ का शोकसे संतोष से मन भर गया ॥ ९ ॥

क्षमाशील वायुजित् और क्रोधी गायक।

क्रोधमें उन्मत्त होकर चित्तमें अभिमान कर।
माथमें मारा अचानक तानपूरा ६

वायुजित् निर्बल न थे जो चाहते सकते सता।
थे परन्तु सुशील वे आदर्श सज्जन देवता॥
इसलिए घर आ उन्होंने मौन हो सब दुख सहा।
दूसरे ही दिन बुलाकर दाससे ऐसा कहा,— ॥१०॥

"दो रजतमुद्रा तथा लेकर मिठाई थाल भर।
तुम कथकको दे, हमारी बात कहना, ख्याल कर—
आपने जो वायुजितको दुर्वचन कल था कहा।
हो गया होगा कदाचित् आपका मुख कटु महा॥११॥

"तो दया करके मिठाई थालभर यह लीजिये।
और खाकरके सुमुखको मित्र, मीठा कीजिए॥
मारनेसे तानपूरा भी निकम्मा हो गया।
लीजिए मुद्रा, इसीसे फिर मँगा लेना नया" ॥१२॥

दो रजत मुद्रा तथा लेकर मिठाई थाल भर।
दास देनेको गया उस दुष्टके तत्काल घर॥
कह सुनाया सब सँदेशा वायुजित्का प्रेमसे।
फिर कहा,—"पूछा उन्होंने आप तो हैं क्षेमसे ?" ॥१३॥

सोचकर कलकी कथा, आश्चर्यमें होने लगा।
वेदना मनमें हुई वह पातकी रोने लगा॥
आंखसे आंसू निकलकर गालपर झड़ने लगे।
कण्ठसे उसके निकल ये शब्द सुन पड़ने लगे॥१४॥

"हाय! मैंने बिना कारण वायुजित्को दुख दिया।
पर सहजहीमें उन्होंने जीत आज मुझे लिया॥
क्या रहेगा सुखी करके पुरुष खोटे कामको।
भोगना होगा मुझे इस पापके परिणामको" ॥१५॥

कह सका इतना अधम बस कण्ठ उसका भरगया।
दौड़ता रोता हुआ वह वायुजित्के घर गया॥
"यह महा अपराध मेरा क्षमा हे प्रभु! कीजिए।
आ पड़ा अब मैं शरणमें ज्ञान-भिक्षा दीजिये" ॥१६॥

लोट कर पगपर क्षमा माँगी बुरे व्यवहार की।
शिष्टके सत्सङ्गसे सुर हो गया वह नारकी॥
युद्धसे अरि जीतना भाता न श्रेष्ठ उदारको।
किन्तु सज्जन सद्गुणोंसे जीतते संसारको॥१७॥

—*पं० रामनरेश त्रिपाठी*।

सुसंग और कुसंग।
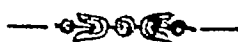
(सुसंग)

"सत्सङ्गति उन्नतिका कारण—
है कवियोंने ठीक कहा है।
पद्म-पत्रके ऊपर जलकणा
मोतीकी छवि छीन रहा है॥ १॥

अच्छेके सँगमें पड़नेसे
बुरे लोग भी भले कहाते।
जैसे हरि-करमें रहनेसे
कम्बुकको हम शीश झुकाते॥ २॥

केवल साधु सङ्गके बलसे
नीच नीचताको खोता है।
ज्यों हिल-मिलकर मलयाचलसे
निम्ब वृक्ष चन्दन होता है॥ ३॥

तुच्छ कीट भी ज्यों पङ्कजमे
रहकर हर-शिरपर चढ़ता है।
त्यों करके सत्सङ्ग, सहजमे,
नर निज उन्नतिको करता है॥ ४॥

पामर भी सुसङ्गमें पड़कर
शीघ्र साधुसा हो जाता है।
जैसे मानव-मुखसे सुनकर,
तोता हरि यशको गाता है॥ ५॥

(कुसंग)

क्षुद्र संगसे गुरुजन महिमा ;
घट जाती है पल ही भरमें ।
कपिके छूनेसे गिरि-गरिमा ;
घटी तैरते थे सागरमें ॥ १॥

अति खलकी संगति करनेसे ।
जगमें मान नहीं रहता है ।
लोहेके संगमें पड़ने से ;
घन भी मार अनल सहता है ॥ २॥

सबसे नीतिशास्त्र कहता है ।
दुष्ट संग दुख का दाता है ।
जिस पयमें पानी रहता है ;
वही खूब औंटा जाता है॥ ३॥

उनके प्राण नहीं बचते हैं ;
जिनको दुर्जन अपनाते हैं ।

जो गेहूँ के संग रहते हैं ;
वेही घुन पीसे जाते हैं ॥ ४ ॥

जहाँ एक भी दुष्ट रहेगा ;
वह समाज क्यों चल पावेगा ?
जहाँ तनिक भी तिक्त पड़ेगा ।
मनो दूध हो फट जावेगा ॥ ५ ॥

रामचरित उपाध्याय।

निर्बलों को न्यायालय में भी जगह नहीं।
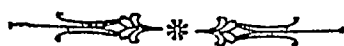
लगते ही आषाढ़ महीना, आ पहुँची बरसात।
चक्कर देने लगे गगनमें श्याम जलद दिनरात ॥
अकस्मात् यों हुआ एक दिन रहा न कहीं प्रकाश।
घेरा सबने पुरवैयाके कहनेसे आकाश ॥ १ ॥

सन्ध्या-समय सूर्य्य छिपनेसे घिर आया तम घोर।
जसे काजल कीसी वर्षा होती हो सब ओर ॥
हवा बन्द होगई, बढ़ गया गरमीका परिमाण।
उठी उष्मता, विषम विकलता लगे तड़पने प्राण ॥ २ ॥

पङ्खा लाया, बहुत डुलाया, शीतल हुई न देह।
अरे प्राण अब कौन बचावे, विना वायु या मेह ॥

घरके भीतर चैन न पाया, बाहर आया धाय।
हो अचेत गिर पड़ा खाटपर, चला न एक उपाय॥ ३॥

उसी समयमें किया आक्रमण *मशकोंने भी हाय।
विपदा ऊपर विपदा आई हे हरि! करो सहाय॥
मशकोंने आकरके घेरा हाथ, पैर, धड़, कान।
लगे काटने, रक्त चूसने और उड़ाने तान॥ ४॥

हुए पेट, पद, हाथ, गलेमें खुजलानेसे घाव।
दो हाथोंसे कहाँ कहाँका कैसे करें बचाव॥
कपड़ा ओढ़ें तो गरमीसे है सुलगाना शरीर।
हाय! नोचती है मशकोंकी घेरे भारी भीर॥ ५॥

गरमी का अभिमान देख कर पड़ा प्रकृति का ध्यान।
आया एक पवन का झोका भगे मशक ले प्राण॥
कई मरे, कइयोंके पङ्ख दिये पवनने तोड़।
जाकर छिपे आड़में वे सब, रक्त चूसना छोड़॥ ६॥

पेट नहीं भरने पाया था, बाधक वही बयार।
मशक-सभामें इस कारण से उमड़ा क्रोध अपार।
सब दल बाँध न्यायकर्ता के जाकर पहुँचे पास।
रोने टूटे पङ्ख दिखाने, लेने लगे उसास॥ ७॥

---

* मशकोंने—मच्छरोंने।

कहा "नहीं रहने देता है हमको जगमे पौन।
न्याय करो, दुख विना आपके दूर करेगा कौन?"
सुनकर विनय न्यायकर्ता ने समझा उचित विरोध।
शीघ्र बुलाया वही पवन को करके मनमें क्रोध॥ ८॥

आज्ञा सुनकर पवन वेगसे आ पहुँचा तत्काल।
निर्बल ठहर न सका उड़ गया मशक-समूह विशाल॥
पूछा कुपित न्याय कर्ताने दो उत्तर तुम पौन।
मशकोंको क्यों दुख देते हो? बोलो! क्यों हो मौन॥ ९॥

कहा पवनने विस्मित होकर—"क्या कहते हैं आप?
मशकोंने सामने आके किया असत्य प्रलाप।
आप बुला कर फिरतो पूछें मेरे आगे बात।"
आज्ञा हुई न्याय-कर्ता की—"आओ मशक-जमात" ॥१०॥

मशकों का तो वहाँ नहीं था कुछ भी पता-निशान।
भाग गये थे वे ले-ले कर अपना-अपना प्राण॥
वादी के अभाग से खारिज किया गया अभियाग।
न्यायालय में भी पाते हैं जगह न निर्बल लोग॥११॥

—पं॰ रामनरेश त्रिपाठी।

मतलबकी दुनिया ।

(चतुस्पदी)

हैं सदा सब लोग मतलब गाँठते,
यों सहारा है नहीं मिलता कहीं ।
है कलेजा ही नहीं ऐसा बना,
बीज मतलब का उगा जिसमें नहीं ॥ १ ॥

कब कहाँ पर दीजिये हमको बता,
एक भी जी की कली ऐसी खिली ।
था न जिसपर रङ्ग मतलबका चढ़ा,
बू हमें जिसमें नहीं उसकी मिली ॥ २ ॥

वह करे जितना अधिक जीमें जगह ;
हो मिठाई बातकी जितनी बढ़ी ।
लीजिये यह जान उतना ही अधिक,
मतलबों की चाशनी उस पर चढ़ी ॥ ३ ॥

प्यार-डूबे लोग कहते हैं उमग,
जो कहो अपना कलेजा काढ़ दूं

पर अगर वे निज कलेजा काट दें,
तो कहेगा वह कढ़ा मतलब से हूँ ॥ ४ ॥

और का गिरते पसीना देख कर,
जो कि अपना है गिरा देते लहू।
वे कहें कुछ, पर सदा उसमें मिली,
बूझ वालोंको किसी मतलब की बू ॥ ५ ॥

एक पर-उपकार ही के वास्ते,
था जहाँ झण्डा बहुत ऊँचा गड़ा।
जो गड़ा कर आँख देखा, तो वहीं,
था छिपा चुपचाप मतलब भी खड़ा ॥ ६ ॥

थे भलाईके जहाँ डेरे पड़े,
थी जहाँ पर हाट भलमंसी लगी।
घूम कर देखा वहीं मतलब खड़ा,
आँख करके बन्द करता था ठगी ॥ ७ ॥

देखता ही दोस्ती का रँग रहा;
जी मुरौवत का टटोला ही किया।
कब बता दो ए अँधेरेमें चली,
हाथ में जब था न मतलब का दिया ॥ ८ ॥

डूब करके दूसरों के रङ्गमें,
जो कहीं के कली हित की खिली।

फूल जो मुँहसे किसी के भी झड़ा,
मतलबों की ही महक उसमें मिली ॥ ६ ॥

दानके सामान सब देखे गये,
देख डालीं डालियाँ छुही-रँगी।
आँच हमने की चढ़ावे की वहुत,
मतलबों की थी मुहर सबके लगी ॥१०॥

जङ्गलोंमें देख ली धूनी रमी,
जोग ही में वाल कितनों का पका।
क्या हुआ घरसे किनारे हो गये,
कौन मतलबसे किनारा कर सका ॥११॥

है बताती वीर की गरदन नपी,
है सतीकी भी चिता कहती यही।
है यही धुन जौहरों से भी कढ़ी,
आँच मतलब की नहीं किसने सही ॥१२॥

जातिके हितकी सभी तानें सुनीं,
देश-हित के भी लिये सब राग सुन।
लोक-हित की गिटकिरी कानों पड़ी,
पर हमें सबमें मिली मतलबकी धुन ॥१३॥

रङ्ग-ढँग औदार्य्य का देखा गया,
रङ्गतें सारी दया की देखलीं।

साधुता के पेट की बातें सुनीं,
मतलबोंको साथ लेकर सब चलीं ॥१४॥

कौन उसके बोल पर रीझा नहीं,
कौन सुनता है नहीं उसकी कही।
सब जगह, सब काल, सारे काममें,
मतलबों की बोलती तूती रही ॥१५॥

पं० अयोध्या सिंहजी उपाध्याय।

दहेजकी कुप्रथा।

पत्थर से दिल हुए हमारे नहीं पिघलते,
कन्यायें थक रहीं आग में जलते-जलते,
शुष्क हृदय में हाय! अश्रु भी नही निकलते,
हम ऐसे खल हुए, नहीं ऐसे दुख खलते,
पातीं पावन-प्रेम पाथ प्यारे फलफलतीं।
क्यों वनाग्निमें स्नेहलता सी बेलें जलतीं॥

यह दहेज की आग सुवंशों ने दहकाई,
प्रबल-वह्नि सी वही आज चारों दिशि धाई

नीचताके मनोमोदक।

ऐक्य-सूत्रमें देश बँधे पर मैं लड़ मरूँ सभीसे ;
सभी निडर हो करें कार्य निज, पर मैं डरूँ सभीसे
विद्या-रवि हो उदित देशमें तोभी अपढ़ रहूँ मैं,
मुझको कोविद कहें सभी पर सबको मूर्ख कहूँ मैं ॥ १ ॥

सभी जातियाँ आर्योंके सम बनें, कहूँगा मैं भी।
सभा-समाजों में जा करके बैठ रहूँगा मैं भी।
सबसे सबका खाना-पीना अच्छा है, हो जावे,
पर ईश्वर मेरे चौके में कोई कभी न आवे ॥ २ ॥

कृषि वाणिज्य बढ़े भारत में, पर बैठा मैं खाऊँ ;
दुख-दारिद्र्य दूर हों सबके, मैं घर फूँक उड़ाऊँ।
हिन्दू हिन्दी लिखें हिन्दमें, कलम न पकड़ूँ पर मैं ;
हिन्दी बने राष्ट्रकी भाषा, भाषा पढ़ूँ अपर मैं ॥ ३ ॥

सब नगरोंमें विद्यालयके साथ पुस्तकालय भी—
खुल जाते तो अच्छा होता और अनाथालय भी।
यदि भारत-वासी चाहें तो यह कुछ कठिन नहीं है—
खर्च न करना पड़े मुझे कुछ सङ्कट बड़ा यही है ॥ ४ ॥

सभी उठें प्रत्यूष-कालमें धर्मवीर बन जावें,
उद्यम करें साथ साहसके कर्मवीर कहलावें।
स्वयं निकम्मा रहकर सबको सम्मति दिया करूँ मैं ?
पड़ा-पड़ा भारतके हितका चिन्तन किया करूँ मैं ॥ ५ ॥

अपने आप सभी कर लेवें ब्रह्मचर्य्यको धारण—
कर्म-योगके लिये वही है सबसे अच्छा कारण।
पर मैं लम्पट बना रहूँ यदि तोभी हानि नहीं है—
कभी एकके गिरनेसे क्या अवनति हुई कहीं है ? ॥ ६ ॥

पालन करें एक-पत्नी-व्रत प्रण करके सब कोई,
रोग शोकसे हीन दशामें तो न रहे फिर कोई।
पर मैं कलिका कुँवर-कन्हैया बना रहूँ तो क्या है? ।
भारतीय सब दुःख सहें, पर मैं न सहूँ तो क्या है? ॥ ७ ॥

गाँजा,भङ्ग, अफ़ीम आदिका यदि प्रचार रुक जावे,
तो होकर निरोग देश यह, सदा सभी सुख पावे।
छिपकर किन्तु साथ चण्डोके ब्राँडी पिया करूँ मैं ॥
हानि नहीं,जो खुलकर खण्डन इनका किया करूँ मैं ॥ ८ ॥

स्वार्थलीन मैं रहूँ, स्वार्थसे हीन सभी हो जावें ;
मैं परतन्त्र रहूँ पर सारे जन स्वतन्त्र हो जावें।
मुझे छोड़ कर सब सद्वक्ता हो जावें पल भरमें,
जाकर सब विदेश शिक्षित हों, मैं सोऊँ निज घरमें ॥ ९ ॥

है आज पाठशाला औ फीस दान कल है;
इस ओर जलघटी है उस ओर महाजल है ॥ ८ ॥

हर एक हर तरहसे हमको सता रहा है;
बातें बना बनाकर यों हो भुला रहा है।
उद्देश है यही जो हम दान खूब देवें,
फिर नाम ये हमारा चाहे कभी न लेवें! ॥ ९ ॥

सुख-चैन छोड़ अपना हम सेंत होयँ दानी।
सुनते रहें बड़ोंकी सिर चाटनी कहानी!
पर हाँ ख़िताब पावें तो दान भी सफल है।
औ दान मानका भी संयोग आजकल है ॥१०॥

—कुबेरदास।

प्रश्नोत्तर।

—※—

बालक की आँखों पर आकर, लेती जो निद्रा—विश्राम।
विदित किसीको क्या है जगमें, उस देवीका पावन धाम?
निर्जन वन है कोई होता, जहाँ सदा खद्योत प्रकाश।
किसी पुष्प की दो कलियोंके, बीच वहीं है उसका वास ॥ १ ॥

देश-प्रेमोन्मत्त।

नहीं बोलते? क्यों बोलोगे, कौन बुरे दिन का साथी।

वालकके ओठोंपर जवतक देखी जाती जो मुसकान।
वतलावेगा कोई मुझको उसके उद्गम का सस्थान?
वाल शशी की किरण हुई थी जाकर शरन्मेघ में लीन।
जहाँ, वहीं पर, सबसे पहिले उपजी वह मुसकान नवीन!
सो ले विदा निज धामसे निद्रा जगत् में घूमती।
और वह मुसकान आकर ओठ सुन्दर चूमती!

—पारसनाथ सिंह।

बालकाल।

—*—

वाल-काल क्या ही मधुमय है; जीवनका उत्कृष्ट समय है।
शान्ति सुधाका वह आकर है; शुचि स्वर्गीय सौख्यका घर है॥१॥

चिन्ता शोक वियोग नहीं है; भय,अशान्ति, दुख रोग नहीं है।
वाद,विवाद, न भ्रम संशय है; क्या ही अच्छा सुखद समय है॥२॥

तेजस्वी जिनके आनन हैं, पवित्रतामय जिनके मन हैं।
कुछ ऐसे शिशु आन मिले हैं; मानों पद्म प्रसून खिले हैं॥३॥

कौतुकमय क्रीड़ायें करना; यहाँ वहाँ स्वच्छन्द विचरना।
कभी साथियों से लड़ जाना, उन्हें मना फिर हृदय लगाना॥४॥

इस प्रकारके अभिनय नाना—करते सुखसे दिवस विताना।
लभ्य न क्या हमको अब होगा ? नवजीवन आगम कब होगा ॥५॥

वह विचित्र संसार कहाँ है! बाल-सखा-परिवार कहाँ है।
वह नाटक, हे भ्रातः कहाँ है! शेष एक स्मृतिमात्र यहाँ है ॥६॥

पवित्रता थी भरी नयनमें, था माधुर्य्य-निवास श्रवणमें।
हृदय भक्तिसे भरा हुआ था ; हास्य वदन पर धरा हुआ था ॥७॥

वही नयन, मन, वही श्रवण है, वही हृदय है, वही वदन है।
पर न रही अब वे सब बातें, दिन पलटे ; पलटी वे रातें ॥८॥

बाल्य-खेल-सुख सदन कहाँ हैं! मृदुल धूलके भवन कहाँ हैं!
आँख मिचौनी, गिल्ली दण्डा थे बचपनमें सुखका झण्डा ॥९॥

माता-पिताके सुखद गोदमें—साथ सखाओंके विनोदमें।
खेल विताना नित दिन सारा—था शैशव-सुषमाका द्वारा ॥१०॥

जाति-भेद, मतभेद बिसारे, प्रकृत सरलता उरमें धारे,
हिलमिल क्रीड़ा कौतुक करते, थे हम अपने सब दुख हरते ॥११॥

भाई भाई लड़ जाते थे, सौंह न मिलने की खाते थे ;
पलमें पर सबको विसरा कर. एक साथ खाते घर जाकर ॥१२॥

ईर्षा-द्वेष, विरोध नहीं था, लोभ, मोह,मद, क्रोध, नहीं था।
शत्रु-मित्र सब में समता थी, प्रतिपक्षी से भी ममता थी ॥१३॥

पर का उदय देख कर जलना ; प्रतिहिंसाके पथपर चलना ।
भाई पर भी खड्ग चलाना ; शैशवमें था किसने जाना ? ॥१४॥

सरल न तब किसका स्वभाव था ? लगा स्वार्थका किसे घाव था
कहाँ एकताका अभाव था ? पूर्ण प्रीतिमय भ्रातृ-भाव था ॥१५॥

निरुत्साहका नाम नहीं था ; अविश्वास मनमें न कहीं था ।
थी न घटा चिन्ता की छाई, दुख था तब न रोग था भाई । ॥१६॥

तब क्या जीवन भार हुआ था ? विषमय क्या संसार हुआ था ?
प्राणोंमें थी भरी सरसता ; सुख था आठों याम बरसता ॥१७॥

विद्यासे यदि हम वञ्चित थे ; गुण तोभी हममें सञ्चित थे ।
अब सब विद्यासे मण्डित हैं , पाखण्डों के हम पण्डित हैं ॥१८॥

ईश्वरमें अनुरक्ति अचल थी ; माता-पितामें भक्ति अचल थी ।
श्रद्धा-संयुत थी आस्तिकता, ज्ञात न थी हमको नास्तिकता ॥१९॥

बाल-काल ! आते सुधि तेरी, आँखें भर आती हैं मेरी ।
साथ न अब तेरा होना है ; इसीलिए ही यह रोना है ॥२०॥

—पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय ।

दुःख और सुख।

न सुख को है क़रार न दुःख को क़रार है।
जो चीज़ है दुनियामें वह सब बरक़रार है॥ १॥

इस घरमें चार आये चार उठ खड़े हुए।
जाने यह कबसे तार यहाँ बरक़रार है॥ २॥

हैं सब सवार किश्तिये उमरे खाँमें ह्याँ।
आता है कोई वार कोई जाता पार है॥ ३॥

इस तख़्तये हस्ती पे है चौसर बिछी हुई।
होती है कहीं जीत कहीं होती हार है॥ ४॥

है छान-बीन तेरी अबस है सिकन्दरा।
बहरे जहाँ तो दार ना पैदा क़िनार है॥ ५॥

उजड़े हैं कहीं चह-चहे नाले कहीं मचे।
वीराना है कहीं ह्यां कहीं लालज़ार है॥ ६॥

महशर कहीं बपा है कहीं शादी की है धूम।
बसती कहीं ख़िज़ाँ है कहीं पर बहार है॥ ७॥

पढ़ते कहीं क़सीदे कहीं मरसिये पढ़े।
सद रहमतें कहीं हैं कहीं मार-मार है॥ ८॥

इस गुलशने जहाँमें कहीं गुल हैं कहीं खार।
होता है कोई शाद कोई सोगवार है ॥ ९ ॥

जब है यही दस्तूर तो फिर ग़ममें क्यों मरे।
गुज़रे खिज़ाँ हैं वहाँ आनी बहार है ॥ १० ॥

रञ्जो-अलम बेसूद है तेरा ऐ शहंशाह।
ग़म होता उन्हें जिन्हें खुशियों से प्यार है ॥ ११ ॥

श्रीगोपाल ब्रह्मचारी।

दासता।

—*—

दासतामें सुख किसी को हो नहीं सकता कभी,
किन्तु उसके शीस पर हैं दुःख आपड़ते सभी।
बेच दी निज देहको जिसने धनाशा में अहो,
रात-दिन परतन्त्रताका दुःख उसको क्यों न हो ॥ १ ॥

सुख उठाने के लिए दुखको उठाता भृत्य है ?
मान बढ़ने के लिए अपमान सहता नित्य है ॥
हाथ सब जोड़ें मुझे इस हेतु वह कर जोड़ता,
गिड़गिड़ाने से कभी मुखको नहीं वह मोड़ता " २ "

* रवीन्द्र बाबूके बंगलासे।

नाथ के तीखे वचन उरमें लगे जब तीर से,
दास तब निज नेत्र को भरने न देता नीर से।
मुसकरा कर भाव अपना वह छिपाता है अहो,
कौन ऐसा कष्ट भोगे पेट पापी जो न हो॥ ३॥

दासता में धर्म का अभिमान रहता है नहीं,
हाथ से जिसके मिलें पैसे सभी कुछ है वही।
हाय जिसकी छांह भी छूकर नहाना चाहिए,
भृत्य उसकी चरण-रज को चूमता धनके लिए॥ ४॥

मान, लज्जा, कोप—ये रहते न उसके पास हैं।
हैं पड़े जिसके गले में दासताके पाश हैं।
बस इसी से शव-बराबर भृत्य को कहते सभी,
भस्ममें क्या भस्मकारक शौर्य होता है कभी॥ ५॥

नीच से भी नीच मालिक हो उसे फिर भी बड़ा,
दास कहता है ; सदा कर जोड़ कर रहता खड़ा।
दोष सब प्रभुसे छिपाता है बनाकर बात को ;
देख कर रुचि नाथ की कह डालता दिन रातको॥ ६॥

भृत्यने चलना अकड़ कर स्वप्नमें जाना नहीं,
गर्वमें आकर कभी निज नेत्र को ताना नहीं।
बात सुनकर अन-सुनी सी यह सदा करता रहा,
है युवा तोभी बुढ़ापा-दुःख ही उसने सहा॥ ७॥

स्वामिनी से भी कभी सेवक नहीं बेडर रहे ;
बात उसकी भी कड़ीसे भी कड़ी नित उठ सहे।
क्योंकि प्रायः आज कल के आढ्य जाया-भक्त हैं ;
नाममें अनुरक्त होकर काम में आसक्त हैं ॥ ८ ॥

देह ही के साथ दुख उत्पन्न होता है सही,
यह अटल सिद्धान्त है सन्देह इसमें कुछ नहीं ।
छोड़ता, आता—न रहता वह परन्तु सदा कभी;
किन्तु किङ्कर को कभी लेने न देता साँस भी ॥ ९ ॥

नींद भर सोते नहीं हैं, पेट भर खाते नहीं ;
बेधड़क अर्थी कभी भी बोल पाते हैं नहीं ।
डोल सकते हैं नहीं आज्ञा बिना निज नाथ के ;
दास भी हैं चट पटे मानों पराये हाथ के ॥१०॥

पं० रामचरित उपाध्याय ।

मीठी बोली।

चौतुका।
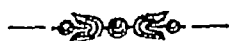
बस में जिससे हो जाते हैं प्राणी सारे।
जन जिससे बन जाते हैं आँखों के तारे॥
पत्थर को पिघला कर मोम बनानेवाली।
मुख खोलो तो मीठी बोली बोलो प्यारे॥ १॥

रगड़ों झगड़ों का कड़वापन खोनेवाली।
जी से लगी हुई काई को धोनेवाली॥
सदा जोड़ देने वाली है टूटा नाता।
मीठी बोली प्यार-बीज है बोने वाली॥ २॥

काँटों में भी सुन्दर फूल खिलाने वाली।
रखने वाली कितने ही मुखड़ों की लाली॥
निपट बना देने वाली, है बिगड़ी बातें।
होती है मीठी बाली करतूत निराली॥ ३॥

जी उमगाने वाली चाह बढ़ाने वाली।
दिलके पेचीले तालों की सच्ची ताली॥

फैलाने वाली सुगन्ध सब ओर अनूठी ।
मीठी बोली है पीछे फूलों की डाली ॥ ४ ॥

बह जाता है उरों बीच रस सुन्दर सोता ।
प्यारा बनता है वन बसनेवाल तोता ।
बुझ जाती है बैर फूट की आग धधकती ।
मीठी बोली से है जन पर जादू होता ॥ ५ ॥

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ।

सफल जन्म ।

(एक अँगरेज़ी कविता का भावार्थ)

कितना "जन्म" सफल है उसका कितनी शुभकर शिक्षा है ।
जिसने परवश हो औरों से माँगी कभी न भिक्षा है ।
शुद्ध विचारों ही को जिसने अपना कवच बनाया है,
सत्य बातही कह कर जिसने निज कौशल दिखलाया है ॥ १ ॥

कभी इन्द्रियों के वश में जो नहीं भूलकर होता है ;
और, मृत्यु के भय से अपना समय न योंही खोता है ॥
कभी जगत की इस चिन्तामें रहता है वह चूर नहीं—
लोगोंसे यश मिले, प्रशंसा हो, जावें हम जहाँ कहीं ॥ २

भाग्य और दुष्कर्मों से जो बढ़े न उनसे द्वेष किया,
नहीं और की विभव-बडाई ने उसको कुछ क्लेश दिया।
राजनीति की कूट चाल से सब दिन रहा किनारे है;
सदाचार के नियम सदाही मन में अपने धारे हैं॥ ३॥

जगमें अनुचित चर्चा उसकी कभी नहीं उड़ने पाती;
शुद्ध आत्म-चिन्तन में उसको शान्ति सर्वदा मिल जाती।
नहीं चाटुकारों का उसके धन से पालन होता है;
उसे हानि पहुँचाने वाला स्वयं एक दिन रोता है॥ ४॥

सदा नेम से नित वह विनती ईश्वर से है करे यही—
कृपा चाहिये तेरी प्रभुवर, सब कुछ मेरे लिए वही।
धर्म्म-पुस्तकों के पढ़ने में अपना समय बिताता है;
अथवा आये गये मित्र की सेवामें सुख पाता है॥ ५॥

सांसारिक उन्नति-बन्धनसे बँधता कभी न ऐसा नर,
कभी नहो ऐसे प्राणी को दुख के आजाने का डर।
धनी न हो पर परम–जितेन्द्रिय है ऐसा मनुष्य निश्चय;
महा भिखारी होने पर भी उसका ही होता है जय॥ ६॥

रामरत्न चौबे।

जहाँतक हो सके नेकी करो।

कहते हैं एक साल न बारिश हुई कहीं ;
गरमी से आफ़ताब की तपने लगी ज़मीं।
था आसमानपर न कहीं अब्रका निशाँ ;
पानी मिला न जब तो हुई खुश्क खेतियाँ।

लाले पडे थे जानके हर जानदार को ;
उजडे चमन तरससे तरसते बहार को।
मुँह तक रही थी खुश्क ज़मीं आसमानका ;
उम्मेद साथ छोड चुकी थी किसानका।

बारिश की कुछ उम्मींद न थी इस ग़रीबको
यह हालथा कि जैसे कोई सोगवार हो।
इक दिनजो अपने खेतमें आकर खड़ा हुआ;
पौदों का हाल देखके बेताब होगया।

हर बार आसमाँ की तरफ देखता था वह ;
बारिश के इन्तज़ार में घबरा रहा था वह।
नागाह एक अब्रका टुकड़ा नज़र पडा ;
लाती थी अपने साथ उड़ा कर जिसे हवा

पानी की एक बूँदने ताका इधर उधर ;
बोली यह उस किसानकी हालतको देखकर
वीरान हो गई है जो खेती ग़रीब की ;
है आसमान पर नज़र उस बद-नसीब की।

दिलमें यह आरज़ू है कि इसका भला करूँ ;
पानी बरसाके खेतको इसके हरा करूँ।
बूँदों ने जब सुनी यह सहेली की गुफ़्तगू ;
हँस कर दिया जवाब कि अल्ला रे आरज़ू।

तू एक ज़रा सी बूँद है इतना बडा यह खेत,
तेरे ज़रासे नमसे न होगा हरा यह खेत।
तेरी बिसात क्या है कि इसको हरा करे ;
है खुद जो हेच क्या वह किसीका भलाकरे ?

उस बूँदने मगर यह बिगड़कर दिया जवाब ;
बोली वह बात जिसने किया सबको लाजवाब
माना कि एक बूँद हूँ, दरिया नही हूँ मैं ;
क़तरा ज़रासा हूँ, कोई छींटा नहीं हूँ मैं।

माना कि मेरा नम कोई दरियाका नम नहीं,
हिम्मत तो मेरी बहरकी हिम्मतसे कम नहीं।
नेकी की राहमें कभी हिम्मत न हारिए,
मक़दूर हो तो उम्र इसीसे गुज़ारिए।

कुरबान अपनी जान करूँगी किसान पर;
क्या लूँगी मैं ठहर के यहाँ आसमान पर ? ॥
नेकीके काम से कभी रुकना न चाहिये;
इसमें किसी के साथ की परवा न चाहिये।

लो मैं चली" यह कहके रवाना हुई वह बूँद।
बूँदोंकी अंजुमनमें यगाना हुई वह बूँद।
टप देखो उसको नाक पै यह बूँद गिर पड़ी;
सूखी हुई किसानके दिलकी कली खिली।

देखा सहेलियोंने तो हैरान हो गईं;
हिम्मत के इस कमाल पै की सबने आफ़रीं।
बोली कि चाहिये न सहेली को छोड़ना;
अच्छा नहीं है मुँह को रिफ़ाक़त से मोड़ना;

साथी के साथ सबको बरसना ज़रूर है;
गर हम न साथ दें तो मुरौवत से दूर है।
यह कहके एक साथ वह बूँदें रवाँ हुईं;
छोटा सा बन के खेतके ऊपर बरस हुईं।

क़िस्मत खुली किसानकी बिगड़ी हुई बनी;
सूखी हुई ग़रीब की खेती हरी हुई;
फिर सामने नज़रके बँधा आसका समाँ;
थी आस आस-पास गया पास का समाँ।

उजड़ा हुआ जो खेत था आख़िर हरा हुआ;
सारा यह एक बूँद की हिम्मत का काम था।
देखी गई न उससे मुसीबत किसान की;
बेताब होके खेत पै उसके बरस गई।

नन्हीं सी बूँद और यह हिम्मत खुदाकी शान।
यह फ़ैज़, यह करम, यह मुरौवत, ख़ुदाकी शान!

पंजाबकी एक टेक्स्टबुक से उद्धृ
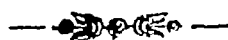
धीर नर।

पड़े विपद पर विपद किन्तु पद पीछे नहीं हटाते हैं;
अपना रोना कभी न रोते साहस नहीं घटाते हैं।
वन पड़ता है जहाँ तलक दीनों का दुःख घटाते हैं;
निज-पौरुष से समर-भूमि में अरिको धूल चटातेहैं।
वही धीर नर धरा-धाममें धवल कीर्ति नित पाते हैं॥ १

मनुज केसरी इस भव-वनमें भय-गज मार भगाते हैं;
पड़े लोह पिंजड़े में तोभी घास कदापि न खाते हैं।

दममें दम जब तक रहता है अपनी आन निभाते है ;
श्वान समान दशन दिखलाकर,वे दुम नहीं हिलाते हैं।
उनकी सूरत देख भीरु भय भूरि भरे थर्राते हैं॥ २॥

अत्याचारी की गर्दन को वे मरोड़ झट देते हैं;
अन्यायी का मुख थप्पड़ से सदा मोड़ वे देते हैं;
कोटि विघ्न आ पड़े कार्य्य निज नहीं छोड़ वे देते हैं;
लाख विफलताओंपर भी दिल नहीं तोड़ वे देते हैं।
धीर धुरन्धर वही वीरवर विश्व विदित हो जाते हैं॥ ३॥

चाल चले उनसे कोई क्या नहीं कालसे डरते हैं;
शूरोंकी संसार-समरमें सन्तत करणी करते हैं।
मार-मार कर दुष्ट दलोंको भार भूमिका हरते हैं;
हो जाते हैं अमर जगतमें कभी नहीं वे मरते हैं।
कीर्त्ति कौमुदीसे अपनी वे विमल चन्द्र बन जाते हैं॥ ४॥

अटल सदा निज प्रणपर रहते,करते सत्पथ त्याग नहीं;
अत्याचारी अधम जनोंसे उनको है अनुराग नहीं।
नहीं चाहते हलुआ पूड़ी,अशन मिले पर साग नहीं;
पर स्वतन्त्रता पर वे अपनी लगने देते दाग़ नहीं।
धृति धारण कर ध्रुवसे बनते धीर वही कहलाते हैं॥

—"सनेही।

अकृतज्ञता ।

जिसने जीवन-दान दिया जगमें उपजाया,
सुख-साधन सब दिये कहो क्या नहीं बनाया,
विमल बुद्धि दे मार्ग समुन्नति का दिखलाया,
सोच समझ सब सकें सलीका वह सिखलाया
जिसका यह संसार है, जिसने दी यह देह है।
उसके ही अस्तित्वमें कभी-कभी सन्देह है ! ॥ १ ॥

जिसकी रज में उगे बढ़े जिसका रस पीके,
जिसमे पाकर पवन प्रानदा पड़े न फीके।
पालित पोषित हुए पुत बन जिस अवनीके,
जिसने पूरे किये हौसले सारे जीके॥
उसे भूल कर भी कभी करते दिलसे याद हैं ?
हा उसकी सब नेकियाँ मुफ्त हुईं बर्बाद हैं ! ॥ २ ॥

बिलकुल था असमर्थ न चल फिर भी सकता था,
पड़ा मूक सा मौन पराया मुख तकता था।
तब जिसने मुख चूम-चूम कर हृदय लगाया,
प्रेम-मत्तहो झूम-झूम कर हृदय लगाया॥

जननी का वात्सल्य यह जाता-भूलको भूल है ;
पापिष्टे ! अकृतज्ञता तू अनर्थ को मूल है ॥ ३ ॥

जिनसे सन्तत प्रीति-रीति प्रणकर प्रतिपाली,
जिनके होकर रहे, जान जोखों में डाली ।
गिरा पसीना जहाँ, वहाँ पर रक्त गिराया,
किन्तु कुफल यह हाय ! अन्तमें उसने पाया ॥
विना वातको वातमें इस प्रकार वे फिर गये ।
जामे से बाहर हुए मनुष्यत्वसे गिर गये ॥ ४ ॥

पकड़-पकड़ कर हाथ ककहरा उन्हें लिखाया,
वेशऊर थे वातचीतका ढङ्ग सिखाया ।
पथ-दर्शक वन सदा सुपथ जिनको दिखलाया,
इति उनकी यह लखो कि अथ जिनको दिखलाया ॥
ऐसी पट्टी पढ़ गये करते उलटा पाठ हैं ।
आज हमीं से कह रहे सोलह दूने आठ हैं ॥ ५ ॥

ख़ुदा समझकर जिन्हें बहुत वन्दगी बजाई,
आत्म हनन कर "जीहुज़ूर" की झड़ी लगाई ।
बनकर श्वान-समान रहे जिनका मुख तकते,
आशाओं से रहे सदा जिनका रुख तकते ॥
वे ही बनते शत्रु हैं अन्त नहीं है रूपका ।
हे विधि ! देना था उचित रूप उन्हें बस सर्पका ॥ ६ ॥

करके खेतो विविध धान्य जो उपजाते हैं,
कष्ट सहन कर काम निरन्तर जो आते हैं।
भोले-भाले नहीं जानते छक्का पञ्जा,
करते फिर भी मार-मार उनका सर गञ्जा॥
हा! हा! गऊ बड़ भरतसे क्या न कृपाके पात्र हैं?
किन्तु जानते लोग बस इन्हें सताना मात्र हैं॥ ७॥

देख दशा यह महा हृदयको क्लेश हुआ है,
कृतघ्नता से पूर्ण हाय! यह देश हुआ है।
जहाँ दया उपकार परम कर्त्तव्य धर्म्म थे,
जहाँ शील, सौजन्य सतत स्वीकृत सुकर्म्म थे।
जहाँ शान्ति,सुख, प्रेमके भवन हुए निर्माण थे।
जहाँ स्वल्प उपकारका मूल्य एक बस प्राण थे॥ ८॥

अहो विधाता। कहो, रहो मत मौन साधके,
कार्य आजकल नहीं कुटिल हैं एक आधके।
रसाभास में तुम्हें कहो क्या रस मिलता है?
रच कर ऐसे मनुज कौन सा यश मिलता है?
माना हमने यह कि यह नीच नरोंका काम है।
किन्तु हुआ क्या आपका नाम नहीं बदनाम है? ॥९॥

अहो पितामह! इस भवके [illegible],
जो न बने तो नर न रचो कुछ[illegible]

जो मनुष्य ही करो न कुछ सम्बन्ध लगाओ,
होवे जो सम्बन्ध तो न अवसर वह लाओ ॥
साथ किसीके किसीका कोई जब उपकार हो ।
हो ऐसा "तो" साथ ही कृतज्ञतासे प्यार हो ॥१०॥

"सनेही"

नागरी की नालिश ।

आज तुम्हारे पास हुई है मेरी नालिश ;
भारत ! उसमें दुःख गीत है मेरा ख़ालिस ।
करना मेरे साथ न्याय पढ़ उसे अभी तुम ,
पक्षपातके वशीभूत होना न कभी तुम ।
होनी थी सो हो चुकी, सोचो, अगली बातको ॥
हो सचेत देखो ज़रा, भावी निठुर निपातको ॥१॥

क्यों मिश्री को छोड़ कर गुड पर राज़ी ?
छोड़ सुधा को भला प्रेम से पीते कांजी ?
कल्पद्रुम को छोड सींचते क्यों करीर हो ?
कुक्कुटको कर दूर पालते क्यों न कीर हो ?

क्या कह सकते हो कभी मैं किस भाषासे बुरी ?
हा ! अपने ही हाथसे मुझको मत मारो छुरी ॥२॥

निज आसन आसीन रही मैं भारत! जबतक,
सब देशोंके मौलि-मुकुट थे तुमभी तबतक।
पर मैं जबसे हुई औरके करकी दासी।
छाई तुमपर तात! तभीसे उग्र उदासी।
अबभी कुछ बिगड़ा नहीं, क्यों आलसमें हो पड़े।
मेरे करको पकड़कर सत्वर हो जाओ खड़े ॥३॥

औरोंकी कर नकल हाय! दुर्गुण ही सीखे;
कालकूट-फल इसीलिए चखते हो तीखे।
निज-भाषासे अन्य प्रीति करते हैं जैसी,
तुमभी मुझसे प्रीति नहीं करते क्यों वैसी ?
भारत! अपनी हानि तो तुम्हें सभी विध ज्ञात है;
तदपि बात सुनते नहीं कैसी अद्भुत बात है! ॥४॥

अबसे भी कर नियम मुझे यदि पढ़ो-पढ़ाओ;
तुमभी सबके साथ तुरत आगे बढ़ जाओ;
निज उन्नतिके लिये करो तुम उन्नति मेरी;
आया है शुभ समय भूलकर करो न देरी।
सच कहती हूँ मानलो भारत! यह मेरा वचन,
करो न मेरे साथही अब अपना भी तुम पतन ॥ ५ ॥

निगमागम पढ़ लिया हुए यदि पूरे पण्डित,
व्यर्थ परिश्रम किया, किया यदि मुझे न मण्डित।
या देकर उपदेश बने क्या देश-हितैषी?
मैं दुखिया यदि बनी रही ऐसी की तैसी।
अगुआ बनते हो वृथा रँगे पराये रङ्ग में
भारत! कुछ उपकार जो किया न मेरे सङ्ग में॥ ६॥

जो मुझसे है प्रेम, करो तो मेरी कविता,
मेरा सब दुख हरो, तुम्हीं हो मेरे सविता।
श्रीतुलसी सूरादि कहीं जो कृती न होते
मैं मर जाती कभी, प्रलय तक तुम भी रोते।
भारत! ग़ारत हो रहे क्यों मेरा अपमान कर?
अब से भी मानो मुझे माता अपनी जानकर॥ ७॥

पढ़-लिखकर हो गये सही टीचर या प्लीडर;
या बातों को बना, बने फिरते हो लीडर।
या बन भूपति भक्त हुए हो न्याय-विचारक;
भारत! सब कुछ हुए, हुए मेरे न प्रचारक!
निज भाषाकी भक्तिका करना क्या कुछ पाप है?
या मर मिटनेके लिये तुम्हें किसीका शाप है?॥ ८॥

अब भी तुमहो बने विविध सम्मान्य, महीपति?
रखलो मेरी, दयादृष्टिकर, रही-सही पति।

हिन्दूपति जो बने, बनो अब हिन्दोपति भी ।
तुमको होवे सुमति मिटे मेरी दुर्गति भी ।
हिन्द ! तुम्हारे भाग्यका वारिज-वन भी तब खिले,
सुखद स्वत्व अपना मुझे पूर्णरीतिसे जब मिले ॥ ६ ॥

—पं० राम चरित उपाध्याय ।

प्रेम-बन्धन ।
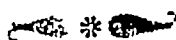
कुसुमित कमल विशाल तालमें,
दशों दिशा मे गंध हुआ ।
करता था गुंजार भ्रमर,
वह विषय-वासना-अन्ध हुआ ॥ १ ॥

रहा न ज्ञान दिवस-रजनीका,
अलि ऐसा मतिमन्द हुआ ।
कारागार प्रेमका था वह,
प्यारा उसमें बन्द हुआ ॥ २ ॥

बीतेगी वियोग की रजनी,
आशा का सञ्चार हुआ ।
चमकेंगी दिनेश की किरणें,
मनमें मञ्जु विचार हुआ ॥ ३ ॥

फूलेंगे अरविन्द वनोंमें,
चिड़ियोंका होगा चहकार ।
फिर वैसा स्वतन्त्र षटपदका,
होगा मोद-भरा गुञ्जार ॥ ४ ॥

"क्रूर" काल-कुञ्जरने आकर,
तोड़ कुसुम मुखमें डाला ।
हा ! हा ! हुआ विलीन भ्रमर,
वह मन-मोदक खानेवाला ॥ ५ ॥

—मक्खन द्विवेदी बी० ए० (गजपुरी) ।

प्रौढ़ प्रेम ।

यद्यपि हम हैं दूर क्रूर भी यद्यपि हम हैं,
किन्तु आपमें प्रेम हमारा तनिक न कम है ।
सभी भाँति सर्वदा आपके कहलाते हैं;
किये आपका ध्यान चित्तको बहलाते हैं ।
हम कभी किसी विध आपको पलभर भूलेंगे नहीं ।
मानसमें मानस लीन है, हंस रहे चाहे कहीं ॥ १ ॥

मुझको बन्धन मिले आपके लिए भले ही;
दे देते हैं प्राण प्रेम-पालनमें देही।
अपना—अपनेआप आपको मैंने माना;
सुख-सपने-सम बिना आपके मैंने जाना।
जो कुछ हो पर मैं आपको छोड़ कहीं रहता नहीं।
क्या मधुप कमलकी गोदमें, वध-बन्धन सहता नहीं? ॥ २॥

मारा मारा फिरूँ कहाँ तुमसे विहीन हो;
होकर चिन्ता-लीन, क्षीण हो, दुखी, दीन हो।
हा! ये मेरे प्राण प्राण पावेंगे कैसे?
मेरे दृगके अजिर आप आवेंगे कैसे? ॥
मैं तो आश्रित हूँ प्रेमका पर प्रेमाश्रय आप हैं।
मैं जलाधीन सा मीन हूँ, पर सलिलाशय आप हैं ॥ ३ ॥

अभी मिलें, या कभी मिलें, पर आप मिलेंगे;
मम उर-सरमें कमल अभी या कभी खिलेंगे ॥
यद्यपि आपके बिना दुःख प्रति पल पाऊँगा,
पर निज तपका सुफल अचानक ही पाऊँगा।
यदि अमित दिनोंके बाद भी मेघ-ओघ उमड़े कहीं।
तो उसे देख सुखसे शिखी नाच उठेंगे क्या नहीं? ॥ ४ ॥

दया-धाम हो निठुर आज चाहे बन जाओ;
तिरस्कारके सहित मुझे तुम मार मिटाओ।

तो भी तुममें प्रेम कभी क्या घट सकता ?
तुम्हें छोड़ मन कहीं भला क्या बँट सकता है ?
घन चाहे जल या उपल की वृष्टि सृष्टि-घातक करे।
पर प्रेम-नेमसे विमुख हो चातक क्यों पातक करे ? ॥५॥

अपने कर से आप जलाते रहिए हमको,
चाहे दुर्बल दुष्कुलीन भी कहिए हमको।
किन्तु आपको सदा समझते हम लायक हैं;
और हमारे लिए आप ही सुखदायक हैं।
प्रिय किसी भाँतिके आप हों किन्तु हमारे प्राण हैं।
क्या बिना सूर्य्यके भी कहीं सरसिज पाते त्राण हैं ? ॥६॥

दोषाकर हों आप, आप चाहे गुणवाले;
ऊपरके हों स्वच्छ, हृदयके होवें काले।
जैसे ही हों आप हमें कुछ ज्ञान नहीं है।
तदपि आपको छोड़ अन्यका ध्यान नहीं है।
हम नहीं जानते किस लिए आप हमें सुख-धाम हैं।
कैसे ही हो, पर कुमुदको एक शशीसे काम है ॥७॥

मिलें न जबतक आप क्यों न चुपचाप रहें हम ?
तब तक कैसे नहीं विरहके ताप सहें हम ?
काटेंगे हम काल, किसी विध छिपे रहेंगे;
अपने दुख की बात किसी से नहीं कहेंगे।

जगमें न हमें कुछ रम्य है न है सौख्य दाता कहीं।
जबतक बसन्त आता नहीं, तबतक पिक गाता नहीं ॥८॥

यथा नोर में क्षीर, क्षोर में दधि है जैसे,
घृत है दधिमें यथा, आप मुझ में हैं वैसे।
यथा धरा में गन्ध, व्योम में नाद भरा है,
तथा आप में मेरा प्रेमास्वाद भरा है।
पर तो भी मैं हूं आपका कभी न मेरे आप हैं।
ज्यों ऊर्मि उदधिका, सही उदधि न ऊर्मि कलाप है ॥९॥

हम मानेंगे तुम्हें, हमें मानों मत मानो;
हम वारेंगे प्राण तुम्हीं पर सचमुच जानो।
हमें जलाकर राख करो, तुमसे न जलेंगे;
तुम्हें मान निज शरण, चरण से नहीं टलैंगे।
मम नेत्र-ओट होना नहीं, हटकर कभी समीप से।
तुम हमें शलभ करना नहीं, होकर निर्दय दीपसे ॥१०॥

उच्चासन पर आप बड़े होकर बैठे हैं;
क्षुद्र जन्तु हम तदपि गर्व्वसे अति ऐंठे हैं।
उपकारी हैं आप, निरर्थक हम हैं जगमें;
सदा सुखी हैं आप, दुखी हम हैं पग पग में॥
यदि बड़े बड़ों का सामना करते हैं, करते रहें।
पर विधु-छादक-घन-छांहमें जुगनू क्यों डरते रहें? ॥११॥

अति उदार हो आप कृति, हम कृपण बड़े हैं;
हो स्वतंत्र सुभ सदा हमीं परतन्त्र पड़े हैं।
गुणग्राहक हैं आप, दुर्गुणों के गाहक हम;
आप हमारे हृदय, हृदयके हैं वाहक हम।
हैं पवन आप हम गन्ध हैं जो चाहे सो कीजिए।
मन चाहे रखिए साथमें फेंक या कहीं दीजिए॥१२॥

चाहे हमको जला गलाभी कोई डाले;
सुधावृष्टि से या कोई चाहे प्रतिपाले।
वज्रपात या करे हमारे ऊपर कोई;
या रहने दे नहीं हमें इस भू पर कोई।
परिभव भय में चाहे सहें तुम्हें कभी मिल जायँगे।
क्या शरत्काल पाकर नहीं सप्त पर्ण खिल जायँगे॥१३॥

कभी सुधासी गिरा निकालोगे स्मित मुखसे?
कभी हमारे कान सुनेंगे उसको सुखसे।
खुश हो उसके लिए निछावर हम होवेंगे।
धन्य सदा के लिए दुःखको हम खोवेंगे।
चाहे धोखा दो, आपका किन्तु हमें विश्वास है।
अतिमग्न विपञ्ची-नादमें मृगको तनिक न त्रास है॥१४॥

तुम भूलो यदि मुझे पर तुम्हें मैं क्यों भूलूँ।
मुझसे फूले रहो तुम्हीं, मैं किससे फूलूँ?

मेरे सिर उपकार आपका लदा हुआ है;
ठोकर खाना मुझे विश्वमें बदा हुआ है।
मै बिछुड़ा हूँ फिर जब मिलूँ हाल कहूँगा तब सभी।
शुक शिशु सेमरसे स्वप्नमें उऋण न होनेका कभी ॥१५॥

—*रामचरित उपाध्याय।*

अभिलाषा।

प्यारे प्रेम प्रवीन, जन्म-जन्मान्तरमें भी
रीझ रहे यह बनी, रहो तुम अन्तरमें भी।
इष्टदेव हो तुम्हीं हृदय मन्दिरके भीतर;
ध्यान धरूं मैं सदा तुम्हारा हर्षित होकर ॥ १ ॥

जो मैं होऊँ वृक्ष, लता बनकर तुम मिलना;
पाकर प्रेम-प्रमोद गोदमें खेलकर खिलना।
जो मैं होऊँ फूल कुञ्जमें सरस सुगन्धित,
तो बनकर मकरन्द सदा रहना अन्त-स्थित ॥ २ ॥

जो मैं होऊँ कर्म भोगसे काला विषधर,
तो प्राणाधिक, महामूल्य मणि होना सिरपर
जो मैं होऊँ कठिन पहाड़ी पत्थर मरकर,
तो तुम होना विमल सुशीतल झरना सुन्दर ॥ ३ ॥

जो मैं होऊँ स्वच्छ सरोवर मीठे जलका ;
तो तुम रखना रूप प्रफुल्लित अमल कमलका।
नीलाकाश अनन्त बीच जो मैं मिलजाऊँ,
निष्कलङ्क नव इन्दु-रूपमें तुमको पाऊँ ॥ ४ ॥

जो मैं होऊँ अति-गम्भीर सागर तो प्रियवर,
मुझको रहना मञ्जु मनोहर मोती बनकर।
किसी रूपमें, कहीं रहूँ, मत होना न्यारे ;
हर हालतमें तुम्हें चाहता हूँ मैं प्यारे ॥ ५ ॥

—रूपनारायण पाण्डेय।

गलीमें पड़ा हुआ रत्न !
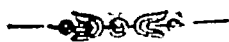
यदपि गलीमें अभी रत्न तू पड़ा यहाँ है,
और अनेकों कष्ट आज सह हाय ! रहा है।
तुझे कुचलते हुए मनुज जाते हैं सारे ;
देता तुझ पर ध्यान नहीं है कोई प्यारे।
पर इससे तेरी हीनता होती कुछ भी है नहीं।
जो अवमानित करते तुझे बुद्धिहीन वेही सही ॥ १ ॥

यदपि रत्न ! तू यहाँ धूलिमें सना हुआ है।
कङ्कड़के ही तुल्य तुच्छ तू बना हुआ है।

तुझको आदर लोग नेक भी नहीं दिखाते;
तुझ पर सेही तुच्छ जीव तक आते जाते।
पर अपनावेगा जौहरी तुझको मित्र! अवश्यही;
जो है गुणज्ञ, गुणवानका आदर करता है वही॥ २॥

अभी पड़ा रह रत्न! यहाँ तू धीरज धारे;
राज-मुकुट पर एक रोज़ बैठेगा प्यारे।
अथवा तेरा हार बना करके कल्याणी;
पहनेगी अत्यन्त चावसे नृप की रानी।
जो तुझे न अब पहचानते उनके दृग खुल जांयगे।
वे हाथ मींज कर दुःखसे फिर पीछे पछतायँगे॥ ३॥

मत हो मनमें खिन्न शीघ्र वह दिन आवेगा,
जब तू अपना रत्न उचित आसन पावेगा,
तेरा जौहर प्रगट रत्न! जब हो जावेगा;
तब तेरे हित कौन न निजकर फैलावेगा?
है बार बार आता यही मेरे तुच्छ विचारमें;
दुख सहने पर ही उच्च पद मिलता है संसारमें॥ ६॥

—पं० गोपालशरण सिंह।

ग्रन्थ ।

हे ग्रन्थ ! सदा तुम धन्य धन्य
है तुमसा जगमे कौन अन्य ?
उपकार करें जो यों अनेक,
चाहें नहीं प्रत्युपकार एक ॥ १ ॥

अनुभव जगका होता विलीन,
रहते हम सब विद्या-विहीन ।
रहता असभ्य सब जनसमाज,
होते सुग्रन्थ यदि तुम न आज ॥ २ ॥

नीतिज्ञ — कर्मचारी — अनेक,
वेदान्त — शास्त्र — धारी अनेक,
विज्ञानवान जितने विशेष,
हैं तव प्रसाद ये सब अशेष ॥ ३ ॥

पढ़कर — तुमको — कर्त्तव्य-ज्ञान
होता है सुखदायक — महान ।
मिलती शिक्षा तुमसे अमोल,
तुम देते सबका नेत्र खोल ॥ ४ ॥

हैं लाखों जगमें शुभ पदार्थ,
यद्यपि — मनुजके — मोदनार्थ।
पर है न एक भी वस्तु अन्य,
जो देती तुमसा सुख अनन्य ॥ ५ ॥

क्या — पाप-पुण्य — कर्त्तव्य-कर्म,
क्या धर्म-सार, क्या नीति-मर्म्म।
बातें सब ये तुमसे विचित्र,
होती हैं ज्ञात सदैव मित्र ॥ ६ ॥

आपत्ति में बान्धव—बन्धु सारे
दें छोड़ चाहे मन स्वार्थ धारे।
सद्भाव सन्मित्र सदा हमारे
होता नहीं भिन्न कभी तुम्हारे ॥ ७ ॥

सेवा किसीकी जगमें न भाती
है दुःखदायी वह सर्व भाँति।
आनन्द होता पर क्या न भारी,
हे ग्रन्थ! सेवा करके तुम्हारी ॥ ८ ॥

हैं ग्रन्थ वे नर जग बीच सदा धन्य,
जो प्रेम नित्य रखते तमसे अनन्य।
आपत्तिसे तुम सहसा उन्हें छुड़ाते.
दे ज्ञान-चक्षु उनको अघसे बचाते ॥ ६ ॥

पूर्वापर स्थिति सदैव तुम्हीं बताते,
सन्मार्ग मोद-कर नित्य तुम्हीं दिखाते॥
वेही यथार्थ सुख शान्ति समूह पाते,
जो प्रेम-पूर्वक तुम्हें पढ़ते पढ़ाते॥१०॥

—गोपालशरण सिंह।

पाठकोंके प्रति पुस्तक की प्रार्थना।

*

अहो भारती-भक्त! भ्रातृवर! भारत-भूषण!
नीति-रीतिकी मूर्त्ति! ज्ञान-यश-कर्ण-विभूषण!
सकल कला-सम्पन्न नागरी-नागर नरवर!
सत्साहित्य-निधान! स्नेह श्रद्धाके सर-वर!
है हम सबकी विनय यह, छुओ मलिन करसे न तुम।
आती है लज्जा हमें, हो जाती हैं मलिन हम॥१॥

हैं हम अबला जाति, अङ्ग सब अबल हमारे।
यह रखिये बस याद, मोड़िये हमें न प्यारे!
कीजे नष्ट न आप, हमें बहु चिह्न लगाकर।
है यह भारी दोष, देखिए ग्रन्थ उठाकर॥

पठित पृष्ठकी यादको, मृदुल पत्र रख दीजिए।
क़लम कटारी हूलकर, प्यारे प्राण न लीजिए! ॥ २ ॥

करो स्नेह जब आप स्नेह तब साथ न लेवो।
हैं हम सब बेदाग़ न तुम दाग़ी कर देवो॥
सौत आगको दिखा कभी मत हमें जलावो।
बैरी जलसे मिला न हमको कभी सतावो॥
कभी मूर्खके हाथमें देवो हमें न भूलकर।
प्राण हमारे व्यर्थ ही लेलेगा वह बेख़बर! ॥ ३ ॥

जब तुमको कुछ कभी किसी पर रिस है आती।
करता है वह चैन, व्यर्थ हम हैं पिट जातीं।
कभी लगा कर तान मारते हो जो ताली।
गिरती है हा! वज्र सरीखी वह विकराली!
मान हमें ढक्कन कभी रख देते हो पालपर।
होता है तन नष्ट यों करो दया हे बन्धुवर! ॥ ४ ॥

बाहर ही जब कभी छोड़ जाते हो प्यारे।
हो जाते हैं अङ्ग हमारे न्यारे-न्यारे!
रहती हैं हम पड़ी-पड़ी तब फड़-फड़ करती।
होती हैं अति विकल नहीं कल बिलकुल पड़ती।
एवं औंधो डालकर चल देते हो बन्धु तुम।
दम घुटती है यों अहो पाती हैं अति दुःख हम! ॥ ५ ॥

वतलाती हैं गूढ़ ज्ञानकी वातें हमही।
दिखलाती हैं दुःख-दलन की घातें हमही॥
देती हैं आदर्शजनों के जीवन हम ही।
लेतीं हैं पर-अर्थ मातको जीवत हमही॥
सिरहाना तिन को वना करतेहो तुम नष्ट क्यों ?
दीमक-चूहों से कटा देते हो हा! कष्ट क्यों ? ॥ ६ ॥

अपने तनको आप स्वच्छ रखते हैं जैसे।
हमभी रक्खी जायँ, यही है विनती वैसे॥
या धन की ज्यों आप किया करते हैं रक्षा।
त्यो हीं हम पर करें, यही दीजे वर भिक्षा॥
सुखी रखेंगे जो हमें आप पायेंगे सुख अमित।
सच यह"जो हित करेगा होगा उसका भी सुहित"॥ ७ ॥

अहो। हमारी विनय आप यह भी सुन लीजै—
लेकर हम से ज्ञान हमें औरों को दीजे।
कृपण-सम्पदा-तुल्य न रखिए कभी छिपाकर।
जाय व्यर्थ ही जन्म नहीं तो जगमें आकर॥
फिरभी है हम सवोंकी विनती यह कर जोड़ कर।
कीजै करुणा सर्वदा हे करुणाकर वन्धुवर! ॥ ८ ॥

सुखराम चौबे (गुणाकर)।

प्रणयोच्छ्वास।

—*—

The fountains mingle with the river
And the rivers with the Ocean,
The winds of heaven mix for ever
With——a——sweet, ——emotion ;
Nothing in the world is single
All — things — by—law——divine
In one another's being mingle,
Why not I with thine ?

(हिन्दी)

झरने मिलते हैं सरिता में
सरिता सागर में मिलती,
गगन-पवन सब मधुर भावसे—
आपसमें मिलती-जुलती,

होय अकेली ऐसी कोई
जगके भीतर वस्तु न है,
वस्तु मात्र ही दिव्य नियमसे
एक अन्य में मिश्रित है।

पूँछूँ किससे ? कौन बतावे ?
मुझसे जाना गया नहीं,
कारण क्या है अब तक तुम्से
मिलाप मेरा हुआ नहीं।

See the mountains' kiss high heaven
And the waves clasp one another;
No sister flower would be forgiven
If —is— disdain'd — its — brother

And the sunlight clasps the earth
And the moon beams kiss the sea
What are all these kissings worth
If thou kiss not me ?

Shelly.

(हिन्दी)

देख-देख चुम्बन करते हैं
ऊँचे नभको यह गिरवर,
एक दूसरी को छूती हैं
और अनन्त अनल लहर,

नहीं क्षमा करने के लायक—
सुन्दर कुसुमकली होगी,

जो वह अपने बन्धु कुसुमका
मान भंग करती होगी;

फैली रहती भूमण्डल पर
कैसी प्रथा प्रभाकर की?
चूम-चूम लेती समुद्र को
कान्ति मनोज्ञ निशाकर की।

कितने मूल्यवान हैं सारे
सत्य दृष्टिसे ये चुम्बन?
नहीं चूम ले जो मुझको तू!
(मम जीवन! मन तन मन धन!)

श्रीगिरिधर शर्मा।

पढ़ो नहीं पछताओगे।

विमल चरित मित्रपर मेरे, पढ़ो-पढ़ो सुख पाओगे।
समय निकल जावेगा करसे, फिर उसको नहीं पाओगे॥
अभी नहीं यदि पढ़ते हो तो, बढ़ने पर तुम पाओगे।
पढ़ो पढ़ो हे मेरे मित्रो! नहीं पीछे पछताओगे॥ १॥

सभी प्रेम तज देंगे तुम से, महामूर्ख कहलाओगे।
तड़प-तड़प कर रह जाओगे, आँसू-धार बहाओगे॥
सभ्य-सभाओं में जाओगे, नहीं बैठने पाओगे।
पढ़ो-पढ़ो हे मेरे मित्रो! नहिं पीछे पछताओगे॥ २॥

निर्गुण पुरुष महा सुन्दर भी कुछभी पाता मान नहीं।
पर कुरूप विद्वान् पुरुष हो सम्मानित है सभी कहीं॥
सिर नीचा ही करना होगा, अगर कहीं तुम जाओगे।
पढ़ो-पढ़ो हे मेरे मित्रो! नहीं पीछे पछताओगे॥ ३॥

नर-पशुओं में अन्तर इतना, सब नर हैं होते ज्ञानी।
नरसमान खाते सोते हैं यद्यपि वे हैं अज्ञानी॥
ज्ञान नहीं यदि तुममें है, तो तुम भी पशु कहलाओगे।
पढ़ो-पढ़ो हे मेरे मित्रो! नहिं पीछे पछताओगे॥ ४॥

जगत-बीच में कोई धन यदि है तो केवल "विद्या" है।
ख़र्च करो बढ़ता जावेगा, ऐसा केवल विद्या है॥
सर्वश्रेष्ठ विद्या-धन लेलो, इस से "नर" हो जाओगे।
पढ़ो-पढ़ो हे मेरे मित्रो! नहिं पीछे पछताओगे॥ ५॥

ऋषि, मुनि ज्ञानी, विज्ञानी भी विद्यागुण गायन करते।
जगत-बीच जो कार्य कठिन है वे भी इससे ही सरते॥
नाम तुम्हारा अमर रहेगा, परम सौख्य तुम पाओगे।
पढ़ो-पढ़ो हे मेरे मित्रो! नहिं पीछे पछताओगे॥ ६॥

बालकपन है क्याहो अच्छा, नहीं व्यर्थ इसको खोओ।
जिसमें होवे भला तुम्हारा, वही बीज क्यों ना बोओ ?॥
प्रेम करो निज पाठ-पठन से तो विशेष सुख पाओगे।
पढ़ो-पढ़ो हे मेरे मित्रो! नहिं पीछे पछताओगे॥७॥

बुड्ढे बड़े चावसे कहते "बालक पन को पा जावें"।
शोक! शोक! वह व्यर्थ गवाना, जिसकी महिमा सब गावें॥
कर्मवीर हो! कर्मवीर हो! जो चाहो हो जाओगे।
पढ़ो-पढ़ो हे मेरे मित्रो! नहिं पीछे पछताओगे॥८॥

सत्साह पुरुषार्थ सहित हो, मन को विद्या में जोड़ो।
सावधान हो, मेरे मित्रो! आलस का परदा तोड़ो॥
"पितृभक्त हो" "मातृभक्त हो" सज्जन तुम कहलाओगे।
पढ़ो पढ़ो हे मेरे मित्रो! नहिं पीछे पछताओगे॥९॥

पूर्ण होय यह कार्य हमारा, ईश्वर को यों कर जोड़ो।
कठिन परिश्रम करते जाओ, शौक-शानसे मुख मोड़ो॥
तुम मेरे भावी प्रिय बन्धो! बिगड़ी दशा सुधारोगे।
पढ़ो-पढ़ो हे मेरे मित्रो! नहिं पीछे पछताओगे॥१०॥

हरद्वार प्रसाद गुप्त।

आरम्भ शूरता।
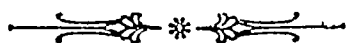
देश जातिके अधःपतनका मूल है।
उन्नतिका बाधक अपयशका कोष है।
कार्य्यसिद्धिके लिए कृतान्त-स्वरूप है।
अति निन्दित आरम्भ-शूरता दोष है॥ १॥

वह साहस है जल बुद्‌बुदसा विनसता।
वह उत्साह प्रभात-ओससे है बढ़ा॥
वह उमङ्ग है सिकता विरचित भीतसी।
जिस पर है आरम्भ-शूरता रँग चढ़ा॥ २॥

उसने देखा कभी सफलता-मुख नहीं।
कभी कामना बेलि नहीं उसकी खिली।
कभी न उसका भाग्य-गगन उज्ज्वल हुआ।
जिसकी कृति आरम्भ-शूरतासे हिली॥ ३॥

वह उद्योग-समूह मिलेगा धूलमें।
वह सम्प्रयत्नता होगी असफलता-ग्रसी।
वह प्रिय कार्य्य करेगा नहिं सम्पन्न हो।
जिसमे है आरम्भ-शूरता आ बसी॥ ४॥

डूबगया गौरव-मयङ्क निज कान्ति खो।
हुई अचानक लोप देश-शोभा कला।
किसी कालमें कहीं किसी समुदायका।
हुआ नही आरम्भ-शूरतासे भला॥ ५॥

किन्तु बात यह कहते होता हूँ व्यथित।
हम लोगोंमें यह अवगुण है अधिकतर।
इसीलिये है जगत यही अवलोकता।
सकते नहीं महान कार्य्य हम एक कर॥ ६॥

धूम धामसे खुली सभायें सैकड़ों।
सँभली नहीं अकाल-कालकवलित हुईं।
पड़कर इस आरम्भ—शूरता--पेचमें।
असमय बुझी अनेक लोकहित कर धुईं॥ ७॥

समारम्भही जिसका सिद्धि-निदान था।
पलमें जिसकी विपुल विघ्नबाधा नसी।
आज उसी जड़भूता हिन्दू जाति की।
नसनसमें आरम्भ शूरता है धँसी॥ ८॥

कभी प्रगटती है वह मिस आलस्यके।
कभी हेतु बनती है कल्पित सभ्यता।
कलह, अमूलक हिंसा, असहनशीलता।
कभी उसे उपजाती है अल्पज्ञता॥ ६॥

नहीं करते आरम्भ विघ्न-भयसे अधम ।
विघ्न हुए मध्यम जन हैं मुख मोड़ते ॥
बाधा-विघ्न सहस्रों सन्मुख आपड़े ।
उत्तम जन आरम्भ कर नहीं छोड़ते ॥ १० ॥

यह सुउक्ति है युक्तिमयी जिस जातिकी ।
क्यों उसमें आरम्भशूरता आजमी ।
और कहूँ क्या मैं इतना ही कहूँगा ।
उसमें है कर्तव्यशीलता की कमी ॥ ११ ॥

किन्तु कथन करता हूँ यह स्वर तारसे ।
सुनए, हिन्दू—जाति ज्ञान-गौरवमयी ।
बिना तेज आरम्भ-शूरता दोष को ।
कभी न होगी कर्म्म-छेत्र में तू जयी ॥ १२ ॥

पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय ।

विद्यार्थी

—०—

आर्य-भूमिकी लता खिले नव फूल सलोने,
आर्य-सिंह-कुल प्रगट प्रबल साहस धर छोने।
आर्य-धर्म-रत भरत धुरीके धरने वाले,
आर्य-भावका कोष हृदयमें भरने वाले॥
सुन्दर, कोमल, बाल, निरभिमानी, निस्वार्थी,
कैसे भूलें तुम्हें अहो! प्यारे विद्यार्थी॥ १॥

हिन्दी मानस-कमल विमल तुलसीके वंशज,
हिन्दी-सूर्य-प्रतापसिंहके प्यारे आत्मज।
हिन्दुस्थान विशाल गगनके उज्ज्वल तारे,
हिन्दी, हिन्दू, हिन्द-जिन्हें हैं प्रतिक्षण प्यारे।
ऋषि-जीवनके प्रेम और प्रणपूर्वक प्रार्थी,
आओ प्राणाधार! देश-भूषण! विद्यार्थी॥ २॥

नीच निराशा-निशा नाश हो गई बाल-रवि!
कलकलोलके ललित काव्य सुनता हूँ सत्कवि!
भयका भाण्डागार फोड़ डाला प्रणके पवि!
जयके मखके लिये हाय! क्या यह कोमल हवि?
लीला भयके रूप, भुवन-मोहन, प्रेमार्थी,
जीवन-धनकी मूर्त्ति, हमारे प्रिय विद्यार्थी॥ ३॥

भारतका सब साज तुम्हारे हाथोंमें है,
भारत-माँकी लाज तुम्हारे हाथोंमें है।
भारतकी भारती तुम्हें पथ दिखलावेगी,
भारतका विज्ञान प्रेमसे सिखलावेगी।
बस, अब झटपट उठो, बनो ऐसे शिक्षार्थी,
कहें विश्व "हैं भारतीय अद्‌भुत विद्यार्थी" ॥ ४ ॥

कहो, "कठिनतर कार्य धवल-गिरि चढ़नेवाले,
वीर-रूपमें विश्व-विजय कर बढ़नेवाले।
परिवर्त्तनका पाठ प्रेमसे पढ़नेवाले,
पाप, दोष सन्ताप खलों पर मढ़ने वाले।
रण-कर्कश श्रीराम-मूर्त्ति होके आज्ञार्थी,
भारतके सर्वस्व हमीं तो हैं—"विद्यार्थी" ॥ ५ ॥

—एक भारतीय आत्मा ।

करुणा-कथा ।

विशद नर्म्मदा-तीर विटपवटका अति उच्च मनोहर था,
घना सघन था, विस्तृत भी था, अथच महान् यशोधर था।
जटाजूट उसका लखकर थी याद महामुनि की आती,
आश्रित विहँगोंका कलरव सुन उदासीनता भी जाती ॥ १ ॥

पूर्व-पर्य्यटन को समाप्त कर ओट हुए अस्तालय की—
पश्चिम-पदार्पणोत्सुक दिनपति जिनकी रश्मिराशि झलकी।
स्वर्ण-कणोंकी भाँति प्रवाहित शीतल जलके जल ऊपर।
कनक कसीदा कढ़ी शाल ज्यों पड़ी नर्म्मदा के तन पर॥ २॥

विहँग वृन्द उड़ आ-आकर निज बच्चों को सुख देते थे,
उनको सुखी देखकर अपना श्रम सार्थक कर लेते थे।
किन्तु भले दिन सदा न रहते बात नहीं यह है झूठी—
इसी समय बस पक्षि-पुञ्जकी भली भाग्य मानो फूटी॥ ३॥

क्रूर कराल कालसा विकट व्याध शरासन लिये हुए—
असफल हो करके दिन श्रमसे रक्त नेत्र निज किये हुए।
आया, आकरके तुरन्त ही शर सन्धान किया उसने,
एक विहग विंध गया तीरसे उड़ भागे थे सब जितने॥ ४॥

अन्त समय आ गया समझ कर मरनेको तैयार हुआ,
वीर विहग वह, तनिक न उसके मनमें प्राण-प्यार हुआ।
सहसा गिरी दृष्टि पक्षी की गड़े पीठके शर ऊपर,
लखते ही हत-धैर्य्य हुआ हैरान गिरा पृथ्वीतल पर॥ ५॥

अविरल धार आँसुओं की फिर बहने लगी नेत्र नदसे,
व्यथा, मनोवेदना, झलकती थी उसके कर से पद से।
उसकी बुद्धिमती व्याकुलता देख व्याध हो विकल उठा।
आहा कठिन वज्रमें से भी स्रोत दयाका निकल उठा॥ ६॥

पूछा उसने खगवर से उसके सहसा दुख का कारण,
सुनकर जिसे हृदय में उसके छिड़ा विविध भावों का रण ।
व्याध हृदय की हृत-द्रवता को देख विहगवर यों बोला—
"नहीं मरणको भीति मुझे है—ले जा यह मेरा चोला ! ॥ ७ ॥

जिसका हुआ जन्म जग में वह काल कवल-भी होता है,
शोच मृत्यु का करने वाला वीज अयश का बोता है ॥
मुझे व्यथा होती इस शरको देख-देख दारुण मन में—
यह शरथा, पर-रूप—उगा, मम जाति बन्धु ही के तनमें ॥ ८ ॥

हा ! हा ! दुःख एक मम भ्राता मम जीवन का काल हुआ ;
"मर करके भी पर द्वारा यों जाति-बन्धु-उर शाल हुआ !
"इससे बढ़कर बात और क्या घृणा, दुःख की होवेगी ।
"ऐसी जाति सत्य ही अपनी स्थिति तक खो देवेगी ॥"

—मालव मयूर ।

वृद्धावस्था।

(समयके प्रति एक वृद्धकी उक्ति)

कालिङ्गड़ा।

लुटेरे! लूट ले गया माल।
मोह-नींदमें हमें सुलाया, मदका जादू डाल।
सुख-समृद्धि सब स्वप्न होगई, बचे न सिरपर बाल।
धीरे-धीरे उठा ले गया कैसी खेली चाल।
गिरी पड़ी झोंपड़ी खड़ी है बिगड़ा हाल हवाल।
आग लगाई उसमें भी अब विस्मृति-परदा डाल॥

—बदरीनाथ भट्ट बी०ए०।

धिक्कार।
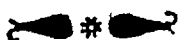
सदा है ऐसों को धिक्कार।
पाकर जिनने मानव-तनको, किया न पर-उपकार।
जननी-जनक बन्धुगणसे ही, करते कपटाचार। सदा है ०॥

भारत की सन्तान कहा कर, किया न उर सुविचार।
गह आलस्य दैन-दिन सोते, लम्बे पाँव पसार। सदा है ॥२॥

पर-पीड़न आमोद जिन्हों का, विषय-गर्त ही सार।
समय विवेक न नेक हृदय-तल, कान्ता-कंचन-यार। सदा है ॥३॥

जननी जन्म-भूमि से निश्छल, किया न पुलकित प्यार।
वंचक-वेष बनाय 'अनुज' बस, बने भूमिके भार। सदा है ॥४॥

—श्रीलक्ष्मणाचार्य वाणीभूषण 'अनुज'।

समय पर मित्र शत्रु बन जाते हैं।

"श्रीराग"

समय पर मित्र शत्रु है जात ॥
वह मलिन्द जो सदा कमलको, लखि-लखि हिय हरखात।
संध्या समय वही सम्पुट मँह, बन्द होय मरि जात ॥
समयपर मित्र शत्रु है जात ॥ १ ॥

वही सूर्य्य जो प्रात समय नित, पंकज रहा खिलात।
सरते दूर होत ही सोई, क्षण मँह ताहि जरात ॥
समय पर मित्र शत्रु है जात ॥ २ ॥

—पं० गणेशदत्त शर्मा गौड़ "इन्द्र"।

कविप्रशस्ति।
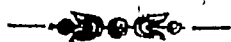
जय——हितकर-वाणी--भव्य—वक्ता—महान।
जय जय प्रतिभाब्धे! सर्वगामी! सुजान!
जय गुण निधि! सद्धी! सौम्य! सत्कीर्ति ग्राम!
जय जग उपकारी! पूज्य! माहिम्य-धाम! ॥ १ ॥

रवि, शशि, नभ, तारा-वृन्द अज्ञे' अगम्य,
जल, थल, तल, घाटी, शैल-शीर्षातिरम्य।
अति विजन-पहाड़ी बालुका-युक्त भूमि,
सु-सघन घन, कौन्धा मंजुलालोक ऊर्मि ॥ २ ॥

त्रिदिव, नरक में भी आपकी बुद्धि जाती,
कर-तल-गत जैसे सब के दृश्य गाती।
पहुँच न प्रतिभा की होय यों स्थान है न,
नहिं विषय अहो! यों है, जिसे गा सकै न ॥ ३ ॥

गत अरु भविता का तत्वतः चित्र खींच,
प्रचलित करते हो, धन्य हो विश्व-बीच।
तुम सुरस-सुधा हो काव्य-द्वारा पिलाते,
मन मुकुलित कैसे शीघ्र ही, हो खिलाते! ॥ ४ ॥

तव कृति नित होती सर्वथा चित्त-हारी,
जन-मन-भरती है सौख्य आनन्द भारी।
स-हृदय जन गाते, हो सदा ध्यान-मग्न,
दुख, भय, रुज, चिन्ता भूल तत्पाठ-मग्न ॥ ५ ॥

हित-अनहित-बातें स्पष्ट सारी बताते,
प्रषय-अनहित-बातें स्पष्ट सारी बताते।
गुण, बल, बुधि, विद्या, दिव्य प्रख्याति देते।
जग-जन तुम से यों नित्य सत्सीख लेते ॥ ६ ॥

तव कृति पढ़ होते लोग अत्यंत ज्ञानी,
चतुर, प्रचुर दर्शी, धर्म-शीलाग्र, दानी।
सदय-हृदय, न्यायी, आत्म कर्तव्य निष्ठ,
प्रभु-पद-प्रति प्रेमी, लोक-मर्मज्ञ, शिष्ट ॥ ७ ॥

कविवर ! तुम गाथा सर्वथा सत्य गाते,
नहिं निज गुण में की, बात कोई छिपाते ॥
यदि तव नहिं होता सृष्टि में जन्म देव !
जग अति दुख पाता, सर्वदा सत्यमेव ॥ ८ ॥

प्रिय सुहृद ! कहो तो आपकी लेखनी में—
अहह ! बस रही है मोहनी-शक्ति कैसी—
अति अनुपम पाके दिव्य स्वर्गीय मोद,
मन झट बन जाता भक्त प्रेमी तुम्हारा ॥ ९ ॥

यश अपर नरों के नश्य हैं सर्वथा ही;
पर जब तक पृथ्वी, सूर्य्य, चन्द्रादि ये हैं।
तब तक जगती में कीर्त्ति-माला तुम्हारी,
स्थित सतत रहेगी धर्मकी धार बीच ॥१०॥

—पं० शुकलाल प्रसाद पाण्डेय।

विषाद।

जाते हो क्या? प्राण हाय! जाते हो पलमें—
निष्ठुर अलि, क्या नहीं रहा आमोद कमलमें?
चला गया सर्वस्व, रहा क्या पृथ्वीतलमें!
करना क्या विश्वास चाहिये, सुहृद चपलमें? ॥ १ ॥

क्रीड़ा करती किरण सदा क्या नलिनी-दलमें?
करता इन्दु विहार नित्य क्या नभ-मण्डलमें?
रहती क्या चञ्चला सर्वदा व्योम-पटलमें?
करता काल विनाश हाय! सबका है पलमें ॥ २ ॥

बहती आशा हृदय भग्नकर इस दृग-जलमें।
रहता भीषण ताप अहो! इस विषम गरलमें।
आऊँगा अब नहीं, प्राण! मैं तेरे छलमें,
अविश्वास हो गया, आज जीवन चञ्चलमें ॥ ३ ॥

"तनु" भी पड़कर कुटिल कालके पाश प्रबलमें—
मर्म्माहत हो रहा, क्रूरता रहती खलमें!
रहता कैसे "प्राण" हीन जीवन निष्फलमें,
करता विवश प्रयाण, हाय! 'तनु' दीप्तानलमें ॥ ४ ॥

—*श्रीयुत बेनीलाल बक्षी बी०ए।*

——

यश।

सारवान सर्वस्व तुही यश! जगती-तलपर;
सबका ही है प्रेम-पात्र अविरल उत्तमतर,
सुकृति-वृक्ष-फल, कर्म्म-बाणका लक्ष तुही है;
आत्म-प्रशंसित करनेका वर पक्ष तुही है।
मकरन्द-भरित कुसुम स्तवक तू अलभ्य नर-भ्रमर-हित,
स्वर्गीय वस्तु, पार्थिव नहीं, अनुपम-सुख-सीमान्त नित ॥१॥

महा भयङ्कर कष्ट-प्रद भव-समर-स्थलका—
पुरस्कार-जय-लब्ध सुदुर्लभ, सौख्य मालिका।
सांसारिक संसार-क्षेत्रमें युद्ध — ठानते;
पाकर तुझको अहो! जन्म निज सफल मानते।
गत वस्तु स्मरणकारी तुही, भवनिधिकी विमला कला।
सब जीव मात्रके दोष-गुण, तुही परखने की तुला ॥ २ ॥

सर्वेश्वर की सृष्टिमध्य अचरज तू भारी
कुटिल कालकी शक्ति सदा तुझसे है हारी।
क्योंकि कृपाकी दृष्टि फिरी तेरी जिसपर है—
हुआ सदाके लिये वही नर अजर-अमर है।
वह जन समूह की दृष्टिमें उच्चासन आसीन है,
विधि-सृष्टि-रत्न वह है, तथा कर्म्म-भक्ति लव लीन है ॥ ३

यदि कोई अति पतित कर्म्म दुर्व्वह नर करते—
गोपनीय रखनेको तो क्यों चेष्टा करते ?
कहनेमें उसको क्यों नर हैं सदा हिचकते ?
भनक डालने पर उसकी क्यों वही सिसकते ?
दण्डादिकके रहते हुए तुझसे हैं डरते सभी।
यश ! तेरे पानेमें नहीं, 'बाधा' बाधा दे कभी ॥ ४

कृपा-पात्र तेरे बननेकी अभिलाषा का—
सब नर-नारीके हिय-पट पर उस आशा का—
प्रबल-वेग-युत बहु तरङ्ग-मालासे शोभित—
जलागार वह उमड़ चला, सब ओर सुपूरित।
उस प्रबल वेगको रोकते, है शक्ति भला इतनी किसे ?
वह किसके हियमें है नहीं ? नहीं सुहाता वह किसे ? ॥ ५

दुस्तर दुख-सम्पन्न कठिन कर्तव्य-कर्मको—
पालन करने हेतु और निज अटल धर्म्मको—

सतके पथमें सुदृढ़ प्रतिज्ञ होकर चलनेको—
कर्म्म-वीर हो गुण-समूह-भूषित बननेको—
करनेको भू-वेष्टित सदा, कीर्त्ति मेखला निज वही
यश! जगमें कर्म्म-प्रवीरको करता प्रोत्साहित तुही॥ ६॥

नहीं तुझे सर्वदा न्याय ही यश! है प्यारा—
सबके बाटें पड़ता नहीं सुकर्म्मों द्वारा।
जिसका है सौभाग्य-सूर्य्य जगमें उन्नततर—
पानेमें होता समर्थ है तुझे वही नर।
पर कोई नियम नहीं तुझे यश! पानेके साथ हैं,
ये हानि, लाभ, जीवन, मरण, यश,अपयश विधि हाथ हैं॥७॥

करता करुणा तू यदि किसी अयोग्य व्यक्ति पर—
छिप सकते क्या उसके हैं वे दोष अधिकतर?
सत्य राज्यमें नहिं असत्यकी है गति जानी।
अन्त दूध है दूध, और पानी है पानी।
जगदृष्टि समान न दृष्टि ही कहीं तीव्र सु-विचित है।
यह नरका सच्चा खींचती आखों आगे चित है॥ ८॥

तुझमें जो है ज़रा स्वार्थकी बूसी आती,
इसी हेतु अक्षय निर्भयता-युत मद माती—
कर्म-धर्म करते सच्चे जो कर्मवीर नर;
तेरे हित नहीं, यश! करते निज-धर्म समझकर॥

तू अपनावे चाहे नही उसको अपनावे कभी।
हैं रखते कुछ भी ध्यान नहीं तेरी गतिका वे कभी॥ ६॥

विधि-निर्मित हे यश रहस्यवर! असामान्य नित
आता है तू कर्म्म-वीरके निकट अलक्षित।
होते हैं उपकार जगतमें तुझसे सुखकर—
पापी भी तेरे हित करते धर्म निरन्तर।
चाहे विचार कुविचार हो फल मीठे होते सदा,
पर यह क्या कम उपकार है? सुखद-मूर्त्ति! सौजन्यदा॥१०॥

—श्रीयुत श्यामसुन्दर खत्री।

पंचम खण्ड
अन्योक्तियां एवं समस्या-पूर्त्तियां

अन्योक्तियाँ ।

चन्द्र ।

लोकमें कीर्तिवान होते हो,
शीतका ! प्रेम बीज बोते हो ।
जब कि कर सकते हो अमृत-वर्षा,
क्यों न अपना कलंक धोतेहो ॥ १ ॥

सूर्य्य ।

बाल्य ही से परम प्रशस्त हुए ।
खूब तप कर तपाया मस्त हुए ।
मित्र ! दो दिन न एक रंग रहा ।
शाम आते ही आते अस्त हुए ॥ २ ॥

आकाश ।

बढ़के विस्तार में कहीं तुम हो,
स्वर्ग आदर्श से यहीं तुम हो ।
किन्तु विद्वान है यही कहता,
शून्य हो यार ! कुछ नहीं तुम हो ॥ ३ ॥

पतङ्ग।

ए गुड़ी! तू न यों गुड़ी होती,
डोर मजबूत जो जुड़ी होती।
लड़के आपसमें यों न कट जाती,
तू अगर पेंच से उड़ी होती ॥ ४ ॥

दुष्ट।

बन्धुतक को लगा हुआ डर है,
स्वार्थ-रत दुष्ट, पाप-मंदर है।
श्वान, वृक, बाघ, सिंह चीते से,
जन्तु यह किस कदर भयङ्कर है! ॥ ५ ॥

श्वान।

फ़ारसी सी ये बूकते क्यों हो?
देशी होकर भी चूकते क्यों हो?
कौन समझे वलायती भाषा,
मग़ज़ खाते हो, बूकते क्यो हो? ६ ॥

यों न लड़ चारा बाँट कर खाएँ,
जो मिले मिलके बांट कर खाएँ?
पर कहां यों बिगड़ कर कुत्तोंने,
क्यों अकेले डाट कर खाएँ ॥ ७ ॥

अग्नि ।

चूर इसका घमण्ड होने दो,
काष्ठ को खण्ड खण्ड होने दो ॥
क्षार हो जायगा स्वयम् जलकर
जिस क़दर हो प्रचण्ड होने दो ॥ ७ ॥

—कविवर त्रिशूल ।

एक काठका टुकड़ा ।
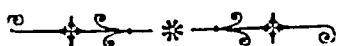
(षोडशपदी)

जल-प्रवाहमें एक काठका टुकड़ा वहता जाता था,
उसे देखकर बारबार यह मेरे जीमें आता था ।
पाहन लौं किस लिये उसे भी नहीं डुबाती जलधारा,
एक किस लिये प्रतिद्वन्द्वी है और दूसरा है प्यारा ॥ १ ॥

मैं विचारमें डूबा ही था इतनेमें यह वात सुनी,
जो सुउक्ति कुसुमावलीमेंसे गई रही रुचि साथ चुनी ।
अति कठोर पाहन होता है, महा तरल होता है जल,
उसमेंसे चिनगी कढ़ती है, इसमें खिलता है शतदल ॥ २ ॥

युगल भिन्न मति-गति रुचिवालोंमें होता है प्यार नहीं,
स्वच्छ प्रेमकी धाराएँ कव अवनि विषमता वीच वहीं ?

प्रकृति नियम-प्रतिकूल कहो क्या, चल सकता था सलिल कभी।
पाहनको वह यदि न डुबा देता विचित्रता रही तभी ॥३॥

कभी काठ भी शीतल छाया पत्र-पुष्प फलके-द्वारा,
लोक-हित-निरत रहा सलिल लौं भूल आतमगौरवसारा।
सम स्वभाव गुण शीलवानका रिक्त हुआ कब हित प्याला,
फिर जल कैसे उसे डुबाता आजीवन जिसको पाला ? ॥४॥

—*पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय।*

छप्पय पञ्चक।

—※—

(चन्द्र)

चन्द्र ! सोच लो रूप सदा क्या बना रहेगा ?
कबतक यह अभिमान तुम्हारा सूर्य्य सहेगा ?
कभी टलेगी निशा और ऊषा आवेगी।
अपने साथ अवश्य भानुको भी लावेगी।
तब सारा सौन्दर्य तव, क्षण भरमें छिन जायगा।
फिर दिनकरका सब जगतपर सहज राज्य हो आयगा ॥१॥

तिरस्कार ।

मुरझाये हैं पुष्प किसीके करको छूकर।
सखरा है नैवेद्य और को अर्पित हो कर।
वह दीपक तो प्रथम जलाया गया कहीं है।
ज्योति हो गई मलिन इसीसे नया नहीं है।
यह हृदय आपका है नहीं, इसको यहां न लाइए।
की गई प्रतिज्ञाको कृपा कर लौटा ले जाइए ॥२॥

सन्ताप ।

मेघ, कौन चातक विशेषका दुःख हरता है?
कौन, अकेला ही चकोर शशि पर मरता है?
किस विशेष गृहके तमका नाशक दिनकर है?
कौन कमलका रसिक अकेला एक भ्रमर है?
फिर क्यों सौन्दर्य-निधान भी कृपा एकही पर करे?
क्यों होकर तरल हृदय न वह, सबकी तृष्णाको हरे? ॥३॥

प्रार्थना ।

भगवन्! क्या दूँ? करूँ, तुम्हारा मैं क्या आदर?
है क्या मेरे पास, धरूँ जो सम्मुख सादर?
पतित पापमें लिप्त, मूर्ख हूँ, शक्ति हीन हूँ।
तुम तो दीनानाथ और मैं महा दीन हूँ॥
पामर चकोर क्या चन्द्रको दे सकता है कुछ कभी?
या दिनकरका उपकार कुछ, कर सकता है कमल भी? ॥४॥

प्यार।

प्यार ! कौनसी वस्तु प्यार है ? मुझे बता दो।
किसको करता कौन प्यार है, यही दिखा दो॥
पृथ्वीतलपर भटक-भटककर समय गँवाया।
ढूँढ़ा मैंने बहुत प्यारका पता न पाया।
यों खो करके अपना हृदय पाया मैंने बहुत दुख।
पर यह भी तो जाना नहीं, होता है क्या प्यार सुख॥५

—रामचन्द्र शुक्ल बी०ए

काव्य-गुच्छ।

कुसमय कौन किसका मित्र ?

एक बार एक व्याधने कुरंगका शरीर—
विद्ध तीरसे किया ; भगा कुरङ्ग हो अधीर।
जा छिपा वनान्तमें सभीत एक कुञ्ज बीच।
रक्तबिन्दु देखता चला सहर्ष व्याध नीच॥
कुञ्जमें गया जहाँ कुरङ्ग था अशक्त दीन।
व्याधके प्रहारसे हुआ कुरङ्ग प्राणहीन॥
शत्रु हो गया विपत्तिमें स्वदेह-जन्य रक्त।
मित्र वे अलभ्य, जो न हों विपत्तिमें विरक्त॥

अनित्यता।

महा घने कानन-मार्ग-मध्यमें—
पड़ी, बड़ी सुन्दर एक थी शिला॥
उसी शिला ऊपर रम्य रूपमें—
लिखा किसने यह नीति वाक्य था,
"असंख्य तृष्णाकुल पान्थ क्लान्त हो—
रुके यहाँ थे जलको, परन्तु वे—
चले गये, चिन्ह न शेष है कहीं;
अवश्य होगी, मम भी दशा यही॥"

प्रमदामुख।

प्रमदा मुख सुन्दर मैं निहार—
अति मुग्ध होगया एकबार॥
वह चली नयन से अश्रु धार;
यह देख कहा, उसने पुकार—
"सुनती थी, तुममें ईश-भक्ति;
पर देख पड़ी विषयानुरक्ति।
सामान्य रूप मेरा विलोक—
तुम सके नहीं दृग-अश्रु रोक॥"

उसकी बातें सुन इस प्रकार—
निज प्रकट किया, मैंने विचार;

"यह अभिप्राय है देवि! है न;
जिस कारणसे मम झरे नैन।
जिस से सुधांशु-मुख यह सुवर्ण—
है रचा, उसी का हुआ स्मर्ण।
उस शिल्पी का कौशल विलोक—
दृग-अश्रु नहीं मैं सका रोक।"

मिलन-सुख।

शरद के अति सुन्दर चन्द्र को—
छवि लुभा सकती कब अंधको?
भ्रमर-गुंजन की ध्वनि मोहिनी—
वधिर का मन रंजन क्या करे?
अमृत में कितना सुख-स्वाद है—
न सकता मुख जीभ बिना बता।
यदि नहीं मन में अनुराग है—
मिलनका सुखतो फिर क्या मिले?

यौवन।

जगतके कहते सब लोग हैं—सुखद है अति यौवन का समय।
पतन है अनिवार्य, परन्तु हा! रह नहीं सकता चिरकाल लों।
नर-शरीर सरोवर चारुमें, कमल जीवन का यह है खिला!
किरण से, दिन-नायक-कालके यह अवश्य कभी कुम्हलायगा।

सब एक समान नहीं होते।

सब समान नहीं होते गन्धवाले सजीले।
सुमधुर फल देते हैं नहीं वृक्ष सारे,
न सकल सरसो में कंज प्रफुल्ल होते,
न सकल सुमनों पै भौंर गुंजारते हैं।
शशि उदय न होता शर्वरी सर्व में है
सब जगह नहीं है, स्वर्णकी खान भू में।
सब मनुज न होते प्रेम-अन्वेषणार्थी।
न सकल मन होते प्रेम-पाथोधि मग्न॥

—प० रामनरेश त्रिपाठी।

सिन्धु और विन्दु।

तुम सिन्धु हो, हम विन्दु हैं, यह एक भारी भेद है।
तुमसे हुए हम हैं पृथक्, इसका हमें भी खेद है॥
पर थे कभी तुममें मिले, इसका हमे अभिमान है।
फिर भी मिले तुममे कभी, इसका हृदयमें ध्यान है॥ १॥

यह शृङ्खला जातीयता की, आप हममें एक है।
हम विन्दु हैं, तुम सिन्धु हो, यह वाह्यरूप-विवेक है॥

जो शक्ति तुममें है भरो, मुझमें वही है बह रहो।
"हम एक दोनों थे कभी," यह तत्व है बतला रही॥ २॥

सन्ताप पाने से यथा, जलता हृदय है आपका।
होता तथा मेरे हृदयपर, ताप भी सन्ताप का॥
हम शुष्क होते हैं तुरत, सन्ताप पाते ही अहा!
सत्ता हमारी लुप्त हो, यह दुःख होता है महा॥ ३॥

तुम सिन्धु हो, सन्तापसे भी दीन हो सकते नहीं।
सर्वस्व अपना शुष्क कर, तुम हीन हो सकते नहीं॥
सन्ताप की क्या बात है, वड़वाग्निने क्या कर लिया।
ज्वाला तड़पती रह गई, फिर पेट अपना भरलिया॥ ४॥

पर शोक है इस बिन्दु को घेरें सहस्रों आपदा।
सन्ताप मुख बाये हुए, उद्युक्त रहता है सदा॥
यह वायु भी मम ग्रास करने को यहाँ है फिर रहा।
हा! क्या करूँ, अति घोर दुखसे आज मैं हूँ घिर रहा॥ ५॥

सब कुछ तुम्हारे हाथ है, कुछ भी नहीं मैं कर सकूँ।
कैसे किसी प्यासे हृदयको, नीरसे मैं भर सकूँ॥
उपकार करनेके लिए सामर्थ्य मुझमें है नहीं।
मैं बिन्दु होकर क्या करूँ? कोई ठिकाना है कहीं॥ ६॥

गम्भीर नीर अगाध तुम, हम तुच्छ अतिशय हो रहे।
बढ़ती तुम्हारी है सदा, हम नित्य सत्ता खो रहे॥

किसका करूँ मैं काम हा ! जब मैं स्वयम् कुछ भी नहीं;
सूखजाने पर हमारे, क्या ? हमें कुछ भी कहीं ॥ ७ ॥

विनती हमारी मानके, हमको मिलालो आपमें ।
हम भी तुम्हारे साथही, सन्तप्त हों सन्तापमें ।
सुख-दुःख का एकत्व हो, यह भिन्नता भी दूर हो ।
पार्थक्य-दुःख जाता रहे, एकत्व प्यारा पूर हो ॥ ८ ॥

जब जीव मिलता ब्रह्ममें सारे दुखोंको छोड़कर ।
होता अटल आनन्द है, सम्बन्ध उससे जोड़ कर ॥
वैसे मिला लो तुम मुझे कितना विकल भटका किया ।
दुखमें अनाथों के सदृश मैं आज तक फटका किया ॥ ९ ॥

तुम और हो हम और हैं, यह भेद अब जाता रहे ।
हम आप दोनों एक हों, सम्बन्ध मन भाता रहे ।
यह बिन्दु भी फिर सिन्धु हो,आशा यही है लग रही ।
सत्प्रेम की आभा हृदय में, जग जगाती जग रही ॥१०॥

इस विन्दुसे क्या लाभ है यह मान कर अपमान है ।
तो विन्दुके ही योग से, यह नाम नीर-निधान है ॥
अपनी अवस्था भूलनी चहिये न सज्जन को कभी ।
तुम भी कभी थे विन्दु ही, हो होगये नीरधि अभी ॥११॥

तुम विन्दुके फिर बिन्दु ही,रह जाओगे नीरधि ! कभी ।
संसार दृश्यागार है, देखो दिखाता है सभी ॥

अभिमान तुम यह मत करो, मैं आज हूं नीरधि बना ।
इस बिन्दुके ही योगसे, तू होगया है अति घना ॥१२॥

इस से हमारी मानकर, अपनी कथा को जान कर ।
निज अङ्ग मुझको ध्यानकर, अब तू न इतनी शानकर ॥
मुझको मिलाले मेलसे मिलती सभी हैं सम्पदा ।
तुझको न मुझको सिन्धु ! है रहना यहाँ ही सर्वदा ॥१३॥

मुझको मिलाले, सिन्धु हे ! तेरा कृतज्ञ बना रहूँ ।
संयुक्त हो तुझमें मिलूँ सानंद मोद-सना रहूं ॥
जलराशि रूप अनन्त ईश्वर बिन्दु यह मिल जाऊँ मैं ।
कृतकृत्य नित्यानन्द में, सौभाग्य से खिल जाऊँ मैं ॥१४॥

—कविकुमार महेश्वरप्रसाद शास्त्री,
साहित्याचार्य्य ।

तोता ।

—०—

स्वच्छन्दता-सहित था, वनमें निवास तेरा,
अति उच्च डाल पर था, घरबार यार ! तेरा
तटिनी तरल-तरङ्गें, तव तोर ले रही थीं,
तू गीत गा रहा था, वह साथ दे रही थीं ।

अब है न पुण्य-सलिला, वे फूल हैं न फल हैं,
तू और साथ तेरे, ये दुःख-दैन्य दल हैं।

हा! पर हरे हरे थे, यह चोंच लाल तेरी,
वोली मधुर-मधुर यह, यह मन्द चाल तेरी।

क्या थीं इसी लिये वस, बन्दी तुझे बनायें,
आपत्तिमें फँसाके कुछ भी न काम आयें,

यह तेज चोंच तेरी, किस कामकी भला है,
जब कट सका न पिंजरा, जिसमें फँसा गला है।

सौन्दर्य्य पर वृथा अव, गर्वित कभी न होना,
फट जायँ कान जिससे, वह है निषिद्ध सोना।

वोली मनुष्य तक की, तू साफ़ वोलता है,
पर भाव, अर्थ कुछ भी, मनमें न तोलता है।

तेरी रटन्त ऐसी, बदनाम हो गई है,
कोशिश तमाम तेरी, बेकाम हो गई है।

हाँ और यह कि तेरी, है यह बहुत बुरी लत,
है रूप-रङ्ग अच्छा, पर है नहीं मुरव्वत।

ये गोल-गोल आँखें, रस-रङ्गसे रहित हैं,
शायद इसी कुलतसे, तेरे हुए अहित ।

तू और लोह-पिञ्जर है, कब सुखी रहा है?
बिल्ली स्वतन्त्र, पर तू परतन्त्र जी रहा है।

—"सनेही"

चमेली।

सुन्दरता की रूप राशि तुम
दयालुताकी खान, चमेली!
तुमसी कन्यायें भारतको
कब देगा भगवान, चमेली! ॥ १ ॥

चहक रहे खग-वृन्द वनोंमें
अब न रही है रात, चमेली!
अमल कमल कुसुमित होते हैं,
देखो हुआ [illegible]ात, चमेली! ॥ २ ॥

प्रेम—मग्न प्रेमी जन देखो
करें प्रभाती गान, चमेली!
जिसने तुमसा वृक्ष लगाया
कर मालीका ध्यान, चमेली! ॥ ३ ॥

जग-यात्रामें सहने होंगे
कभी कभी दुख-भार चमेली!

खिला हुआ फूल।
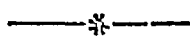
अहो ! कुसुम कमनीय ! कहो, क्यों फूले नहीं समाते हो ?
कुछ विचित्र ही रङ्ग दिखाते, मन्द-मन्द मुसकाते हो ॥ १ ॥

हम भी तो कुछ सुनें, किस लिए इतना है उल्लास तुम्हें ?
बात बातमें खिल-खिलकर, तुम किसकी हँसी उड़ाते हो ॥ २ ॥

कैसी हवा लगी यह तुमको ; क्षणिक विभवमें भूलो मत ।
अभी सवेरा है, कुछ सोचो, अवसर व्यर्थ गँवाते हो ॥ ३ ॥

रूप, रङ्ग, रस, जिसके बल पर, पैर न भू पर तुम रखते ।
है दमभरका दृश्य जगतमें, क्यों इतना इतराते हो ? ॥ ४ ॥

भौंरा रसिक पास "आ"-आकर करता है प्रार्थना अगर ;
तो क्यों नहीं प्रेमसे मिलकर, अपना उसे बनाते हो ? ॥ ५ ॥

भौंरा काला है, कुरूप है ; हम हैं सुन्दर, मत समझो ।
उस वसन्तका है वह साथी, जिसके तुम कहलाते हो ॥ ६ ॥

कर उपभोग और सब तुमको, इधर-उधर रख देते हैं ।
पर यह सिर धुनता है, जब तुम, दले-मले कुम्हलाते हो ॥ ७ ॥

"कोमल हूँ. कमनीय-कलेवर, देवोंके मन भाया हूँ ।
रसिकोंका सिंगार सहज हूँ" यह जो मनमें लाते हो ॥ ७ ॥

"रसिक और रसिकाएँ मुझको आदर से अपनावेंगी।
बना गलेका हार रहूँगा" यही सोच इतराते हो॥८॥

तो इसपर भी तुम्हें फूलना या इतराना उचित नहीं।
धन्यवाद दो झुककर उसको, जिसका रूप दिखाते हो॥१०॥

—पं० रूपनारायण पाण्डेय

मधुमक्खी।

इस परिश्रमी मधुमक्खी को मुझे देखना भाता है,
बड़े प्रेमसे ताक रहा हूँ, कैसा इसका छाता है।
सूर्योदयके पहले ही से ये सब अपनी निद्रात्याग,
लगीं काममें, कर्मयोग से, है कैसा इनका अनुराग॥१॥

ईश्वरने है बुद्धि इन्हें दी सच्चे मनसे ये किस भाँति।
प्रतिदिन काम किया करती हैं,परिश्रमी है,इनकी जाति॥
किया इन्होंने इन छत्तोंके छेदोंका कैसा निर्माण,
इनकी कला कुशलता लखके,होगा किसे न हर्ष महान॥२॥

बाहर आती, भीतर जाती, इधर उधर उड़ जाती है,
जब तक काम न पूरा होता, कभी नहीं सुसताती है।
क्या करना है मुझे? बात यह, अहा! जानती है प्रत्येक,
क्षुद्रजीव हैं, ये सब तो भी इनमें कितना भरा विवेक!॥३॥

ग्रीष्मकाल के उष्ण दिनों में घूम-घूम कर यह सवत्र,
कण-कण मधु-रस बड़े यत्नसे करती हैं, देखो एकत्र।
अपने क्षुद्र अल्पजीवनका समय न करती नाहक नष्ट,
नहीं खेल में भूली रहतीं, हो कर्त्तव्य-कर्म-पथ भ्रष्ट ॥ ४ ॥

फूल-फूल कर बड़े प्रेमसे उड़ती हैं, करती गुंजार।
इस प्रकार इनका श्रम लखकर करता हूँ मैं इनपर प्यार।
कर्मवीर सी बनी सकल ये आलससे सब नातातोड़।
रोज़-रोज़ अपनी पूंजी में, मधु कुछ थोड़ा लेती जोड़ ॥ ५ ॥

इसी भाँति मैं मन दे करके, करूँ हरघड़ी अपना काम,
करूँ घृणा आलस-निद्रासे, मधुमय हो यह मेरा धाम।
देखूँ, जो कुछ जहाँ जहाँ मैं, उनमेंसे लूँ सार निचोड़,
अपनी अल्प-ज्ञान-पूँजीमें, लूँ कुछ-कुछ मैं प्रतिदिन जोड़ ॥६॥

—पं० लोचन प्रसाद पाण्डेय।

* The Bee नामक अंग्रेजी पद्यका अनुवाद।

अनुरोध।

(प्रात:कालीन कमलके प्रति)

अब तो आँखे खोलो प्यारे !
पूर्व दिशा अब अरुण हुई है।
प्रकृति देवि पट बदल रही है॥
यमने तम को बाँह गही है।
छिप कर भागे तारे॥ १॥

प्रमुदित नलिनी विहँस खिली है।
प्रिय समीर से सुरभि मिली है॥
अति शोभामय वनस्थली है।
अलिगण हैं गुञ्जारे॥ २॥

नव-जीवन सञ्चार हुआ है,
ऐक्य-भाव-विस्तार हुआ है;
सुखमय सब संसार हुआ है,
जागे साथी सारे॥ ३॥

उषादेवि के दर्शन पाकर,
हुए प्रफुल्लित सभी चराचर,
तुम क्यों सोये शीश झुकाकर,
सुधि-बुधि सभी विसारे॥ ४॥
अब तो आँखे खोलो प्यारे॥

—बद्रीनाथ भट्ट बी०ए०

मनुष्य और संसार।

सागरमें तिनका।

सागरमें तिनका है बहता।
उछल रहा है लहरोंके बल मैं हूँ 'मैं हूँ' कहता। ॥ १ ॥
इस फिरते बड़-पीपल अभिमानी,
हुआ अज्ञानी ॥ २ ॥
नादानी,
पानी ॥ ३ ॥
ला,
॥ ४ ॥

समस्याएँ।

उदय हो।

जन्म-भूमि।

प्रभो! विश्वव्यापिन् जगदभयकारिन् प्रणत हूँ,
यही वाञ्छा मेरी, प्रभुवर! यही मैं वर चहूँ।
घटायें दुःखोंकी मिटकर दशा सौख्यमय हो,
हमारी माताका भरत-धरणीका उदय हो॥ १॥

मातृ-भाषा।

हमारी मातायें हृदय-पथ से क्षीर रसमें;
पिलातीं जो भाषा मृदुल मनमें मोहन हमें।
उसी गीर्वाणी का वर विभव पीयूषमय हो,
बढ़े हिन्दी भाषा दिन-दिन उसी का उदय हो॥ २॥

समाज।

अविद्या-विद्रोही, बन कर सजो देश अपना,
मिलो भाई-भाई चट पट तजो स्वार्थ-सपना।
करा उच्चाकांक्षा हृदय सबका प्रीत-मय हो,
तभी प्यारे मित्रो! दिन दिन तुम्हारा उदय हो॥

विवेक ।

अँधेरी घेरा है सकल जनको मोह रजनी,
सुलानी जाती है विषय-रस की संगति घनी
मिटे महावस्था अमल मन विद्योत-मय हो,
हमारे स्वान्त में विशद सविता का उदय हो ॥

आशा ।

छटासी छाई हो सरस कविता की भुवनमें ।
सदिच्छाये सारी विलसित रहें मग्न मनमें ।
यशस्वी होनेको सुकृत-सुख सौभाग्यमय हो,
दया की भिक्षा दो, प्रभुवर ! हमारा उदय हो ॥

राजभक्ति ।

प्रभो ! "जार्ज" स्वामिन् हम सब यही हैं चह रहे,
यही इच्छासे, हैं प्रति समय वाणी कर रहे ।
फटें वैरी सारे सकल बल भी अस्तमय हो,
प्रतापोंका स्वामिन् ! दिन दिन तुम्हारे उदय हो ॥

हिन्दी-सेवा ।

पढ़ो मित्रो ! हिन्दी अति सुखद साहित्य कर दो,
बढ़ाओ श्रद्धासे अटल उसका कोश कर दो ।
यहो हिन्दी भाषा प्रचलित सुधा-धारमय हो,
बनो हिन्दी-प्रेमी दिन-दिन तुम्हारा उदय हो ॥

सूर्योदय।

न तारोंकी प्यारी छबि वह रहेगी दिवसमें।
तथा चन्द्राभा भी मलिन रुचती हैं नहिं हमें।
प्रतापच्छायासे भुवन विजयानन्दमय हो,
विजेता तेजोंका दिनकर तुम्हारा उदय हो॥

ज्ञानोदय।

अविद्या भी भागे अमल मति जागे जब कभी,
तभी माया त्यागे सुकृत अनुरागे सब तभी।
मिटे अज्ञावस्था हृदय-गृह आनन्दमय हो।
प्रभो! कृष्ण! स्वामिन्! यदि तुम हमीमें उदय हो॥

प्रभात।

चले सीरी-सीरी नव पवन प्रातः समय में।
दिखाती हो आभा रवि-किरण-माला गगनमें।
मलिंदों को लाली मधुर रव झङ्कारमय हो।
खिले पद्म-श्रेणी दिनकर-छटासे उदय हो।

विद्यार्थी।

पढ़ो प्यारे छात्रो! विनय सबसे सन्तत करो,
सुधी होवो प्यारा! अखिल विपदायें तुम हरो।
बनो ज्ञानी-मानी प्रकट प्रभुता बोधमय हो,
यही इच्छा मेरी प्रतिदिन तुम्हारा उदय हो॥

—कविकुमार पं महेश्वर प्रसाद

छाये हैं।

धानी आसमानी सुलैमानी मुलतानी मूँगी
संदली सिंदूरी शुचि सौसनो सुहाये हैं।
कंजई कनैरी भूरे चंपई जंगारोरूरे
पिस्तई मजीठी सुरमई घेरि आये हैं॥
भासी नीलकंठो गुलाबासी छबिराशी तूसी
कुसुमी कपासी रङ्ग पूरण दिखाये हैं।
नारङ्गी पियाजी पोखराजी गुलनारी घने
केसरी गुलाबी सुवापंखी मेघ छाये हैं॥ १॥

आई ऋतु पावसकी पूरन रँगीली छटा
दस दिस जाके ठाट सुन्दर सुहाये हैं।
भूमि हरियारी तरुनाई द्रुम वेलिनको
त्रिविध बयारी शोर मोरन मचाये हैं॥
बरसै सलिल पूरि सरसै अनन्द भूरि
तापै रङ्ग रङ्गनके मेघचारु छाये हैं।
सांझ समै मानो नृप पावसकी सैर काज
सुरपति व्योम-पन्थ पाँवड़े बिछाये हैं॥ २॥

कोऊ कहै कज्जल गिरिनके दुधीचे गिरा
कोऊ कहै तममें अरुन जु सुहाये हैं।
कुहु रैन छूटो है अगिनवान तैसे कोऊ
लोहू भरी मैं न असीफरी ध्यान लाये हैं॥
पूरण नवीलीके सुकेश काक पच्छ बीच
वेदन विलोक यों विचार ठहराये हैं।
रूपके महल पै लगाय आड मानिकको
नीलमके छप्पर मदन राज छाये हैं॥ ३॥

सरिता घिमानी नहीं गति है जराकी मन्द,
दरसो सतोगुन न हंसदल आये हैं।
नास्यो उपदेश तन मनके विकारनको
नाहीं खंजरीट दल कोट विन खाये हैं॥
ज्ञानको उदै है नहीं चन्द चारु पूरन जू
आतमा जुड़ानी चकोर हरखाये हैं।
पावस घुढ़ाय सन्त भई ना सरद आई,
फूलो नहीं कास सेत कुन्तल ये छाये हैं॥ ४॥

आज महाभारतमें आरत-हरन श्याम
पारथको महारथ हाँकन सुहाये हैं।
देखि देखि मधुर सलोनी मंजु मूरति सो
देवगन नयन सफल करि पाये हैं॥

श्रमजल बिन्दु भगवानके बदन पर
"पूरन" जू सुखमावलित सरसाये हैं।
प्रात समै शोभाके अगार छवि सार मानो
नीलकञ्ज मंजुल पै ओसबिन्दु छाये हैं॥ ५॥

—राय देवीप्रसाद जी पूर्ण बी०ए०बी०एल०।

माली है।

तूही है सुमन तूही सुरँग प्रसूननके
सुषमा असीम तूही तूही हरियाली है।
तूही नीर-नाली घट-कुण्ड तरु-मूल तूही
तूही फल वाली, तूही पात तूही डाली है॥
जगतकी वाटिकाको सार सब भांति तूही
तूही ब्रह्म पूरन करत रखवाली है।
भृङ्ग खग सोर सैर सौरभ समीर तूही
सैरको करैया तूही स्वामी तूही माली है॥ १॥

चम्पक लताको मेल कीन्हो है तमाल सङ्ग
मानौ कोड़ बालावर पायो वनमाली है।
पूरन सुरङ्ग स्वच्छ फूलनकी क्यारी रची,
मानौ मनि चौकनको सुखमा निराली है!

द्रुमन बसाये हैं विहङ्गवर बैनवारे
मानौ गान मङ्गलको विदित प्रनाली है।
दम्पत्ति विवाहको उछाह होत देखे जाहि
आली यहि वागनको प्रवीन कोउ माली है॥ २॥

चबुक रसाल है गुलाब है कपोल चारु
नरगिस नैनगात चम्पकको डाली है।
श्रीफल उरोज कदलोकी द्रुम जङ्घपीठ
अलकै अलीगनको अवली निराली है॥
नाभि है गम्भीर कुँडवानी मृदु कोकिला है
स्वासा है सुगन्ध हरियारी हरियाली है।
राधा रमनीको रूप वाटिका मनोरमको
स्वामी वनमाली है सुमनवान * माली है॥ ३॥

गिरिनख धारो मारो पूतना वकासुरको
पान कीन्हो दावानल नाथ्यो जेहि काली है।
तो विन सयानी "वरसाने" की सुघर "श्यामा"!
ताहि "घनस्याम" को अपार विथासाली है॥
भाग भरी "पूरन" सोहाग अनुराग वारी
आपै चल देखु कैसी लालकी विहाली है।
तव मुखचन्दको चकोर व्रजचन्द प्यारो
आज वनवासी वनो वैठो वनमाली है॥ ४॥

* कामदेव।

हीरनके भूषन जड़ाऊ अङ्ग-अङ्ग सोहैं
तनकी गोराई सुधा चन्द ते अपर है ॥
रूप उजियारी वृज चन्दसों मिलन जात
जितै वन चाँदनी चमेलिनकी वर है।
चलत सुहात चाँदनीमें चन्दवदनी यौं
मानहु अमंद धीर सिन्धुमें लहर है ॥ ४ ॥

—राय देवीप्रसाद पूर्ण।

कारेकी।

कारी होत मधुकर वासना फिरै सो लेत
भांति भांति ऊँचे नीचे फूलन कतारेकी।
छोंड़ि वृजकारे कान्हे रीझै कवरी पै जौन
दासी है सदाकी कंसराजके दुवारेकी ॥
कारे तुम आये तैसे कैसे पतियैहै तुम्हैं
जैहै वलि श्याम रङ्ग दईके सवाँरेकी।
पूरन प्रतच्छ ऐसे लच्छन निहार ऊधौ
काहूको प्रतीति ह्यां रही न काहू कारेकी ॥ १ ॥

सुभर है! सागर गम्भीर आपै जलचर घोर
आपै तोर आपै आपही लहर है॥ १॥

चामरसी चन्दनसी चन्द्रिकासी चन्द ऐसी
चाँदनी चमेली चारु चांदीसों सुघर है।
कुन्दसी कुमुदसी कपूरसी कपास ऐसी
कल्पतरु कुसुमसी कीरति सी वर है॥
'पूरन' प्रकाश ऐसी कास ऐसी हास ऐसी
सेखके सुपास ऐसी सुखमाको घर है।
पापको जहर ऐसी सुखकी गहर ऐसी
सुधाकी लहर ऐसी गङ्गाकी लहर है॥ २॥

वाहन वृषभ देह मण्डन हैं व्याल वृन्द
वस्त्र गज खालमाल मुण्डनको गर है
पूरन विभूत अङ्ग छाज भूतनाथ जूके
गिरिजा विराजै अरधङ्ग नाम कर है॥
धारे हूँ त्रिशूल भवशूलके हरन हारे
ध्यान सुखमूल फल देत चार वर है।
वाल चन्द भाल नैन तीजेमें अनल ज्वाल
जालमें जटाके देव-धुनिकी लहर है॥ ३॥

धारी सेत सारी सुठ मोतिन कनारी वारी
चन्दन तिलक भाल कुन्दमाल गर है॥

भाखूँ तोहे मैनकासी रम्भासी रम्भासी किधौं
चाल कहूँ हँसके गयन्द मद वारेकी।
नीलम प्रभासी तम पुंज कालिमा सों कहौं
मावस निशासी किधौं छटा केश कारेकी ॥ ४ ॥

दरसन कीन्हें मन सरसन लागै मोद
ताप त्यों समत लागै पवन किनारेकी।
परसन कीन्हें पाप पातक कटत कोटि
पदवी न्हाये मिले भाल चन्द वारेकी॥
'पूरन' भनत वेद सुखमा विदित तेरी
महिमा कहेको महा सुधासार धारेकी।
गङ्गे! हर-प्यारी। तेरी लहर सहारे मात
रह तीन मास जमदूतन कारेकी ॥ ५ ॥

—*राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'।*

बाजी है।

——*——
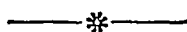
कोऊ कहै मदन महिपतिको धावन है,
जाते गुरु मानिनको घोर ताई भाजी है।
कोऊ कहे योगीव्योम साधत है योग हठ,
"ताके प्राणायाम'रेचककीसुखमा विराजीहै॥
कोऊ कहे ग्रीष्म सुपीतम वियोग-वस,
भूमि वर भामिनिको स्वासा व्योमछाजा है।
मेरे जान पूरनजू प्रबल समीर यह,
महाराज पावसको कला बाज बाजी है॥ १॥

कैधौं यह कुक्त कलाप है कलापिनको,
कैधौं पिकगनकी अलाप वन छाजी है।
भई अनुरागिनी धौंरागिनी श्रीकान्ह जूकी,
बनी रूप सोई आप कानन विराजी है।
कैधौं वन ओझा मैन मन्त्रको सुनाम पाठ,
गोपिनके हिये पीर ताजी उपराजी है।
कैधौं मनरंजन मनोहर मधुर मंजु—
काननमें बशी मनमोहन की बाजो है॥ २॥

सुन्दर मनोहर सुअङ्गसो घटा है श्याम,
दामिनि की छटा पीत अम्बरसी छाजी है।
इन्द्र धनुराजै वनमालसी रसाल चारु,
अवली बकनकी मुकतमाल भ्राजी है॥
दया कै विरंच विरहीन मन बोधकाज,
पावसकी शोभा व्रजराज हीसी साजी है।
मनकी हरनहारा तैसो मन्द गाजनीकी,
पूरन प्रशंसो धुनि वंशी मंजु बाजी है॥ ३॥

—राय देवीप्रसाद पूर्ण।

षष्ठ खण्ड

वर्त्तमान दशा पर

प्रार्थना।

—※—

(ग़ज़ल)

यह स्वार्थतमका परदा अब तो उठा दे मोहन !
अब आत्मत्याग रविकी आभा दिखा दे मोहन !

पूरबमें फैल जावे शुभ देश-भक्ति-लाली !
सुसमीर एकताको अब तो चला दे मोहन !

मृदु प्रेमकी सुरभि को पहुँचादे हर तरफ़ तू !
मन-पल्लवों पै आशा बूँदें बिछा दे मोहन !

सद्भाव पङ्कजोंको अब तो ज़रा हँसा दे !
जातीयता-नलिनिका मुखड़ा खिला दे मोहन !

द्विजवृन्द वन्दना कर तेरा सुयश सुनावें,
वैरी उलूकगणको अब तो छका दे मोहन !

यह द्वेषका निशाचर हमको सता रहा है,
सत्कर्म-शर से सकी गरदन उड़ा दे मोहन !

आलस्य-चोर भी है पीछे खड़ा हमारे,
कर्त्तव्य-दण्ड से तू उसको उड़ा दे मोहन!

अज्ञान-स्वप्नमे हा! दुख-दैन्यने सताया।
सुखकी लगाके चुटकी हमको जगा दे मोहन!

चेतें, मिलें, खड़े हों, स्वत्वोंको अपने चीन्हें,
मुरलीकी तान मीठी ऐसी सुना दे मोहन!

—पं० बद्रीनाथ भट्ट बी० ए०।

भारतीयोंकी पुकार।
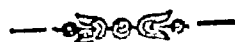
मङ्गलमय भगवान! भक्त-मन-रञ्जनहारे!
दीनबन्धु! विश्वेश! दुष्टदल-भञ्जन वारे!
करते नाथ! पुकार भारती कालान्तरसे।
त्राहि-त्राहि का शोर मचा है देशान्तरसे॥
द्रुपद-सुताकी लाजको राखनहारे आप हैं।
भारतकी लज्जा रखो, पाता वह सन्ताप है॥ १॥

जव-जब भारत अंधकूप में गिरने पाया।
तभी दौड़कर प्रभुवर! तुमने इसे बचाया॥
घोर अन्ध-सागर में भारत डूब रहा है।
उत्थतिका अब पतन हुआ, बहु क्लेश सहा है॥
व्यभिचारी, रोगी, छती बने मूढ़के दास हैं।
झूँठ व्यसनमें सन रहे, हुए इसीसे नाश हैं॥ २॥

कला, ज्ञान, विज्ञान आदिसे हीन हुए हैं।
बल-कीरति अरु धनसे भी अति दीन हुए हैं॥
शीतकालमें दीनजनोंको वस्त्र नहीं हैं।
भूखों मरकर प्राण त्यागते और कहीं हैं॥
भारतकी वह कौमुदी नष्ट-भ्रष्ट सब होगई॥
भलमंसी सब हिन्द की नाथ! धूलमें मिल गई॥ ३॥

कुटिल फूटके भाव भरे हैं सब की रग में।
छोड़ नीतिका मार्ग चले अन्यायी मग में॥
सत्वों से अति हीन हुए हैं पापी हमही।
जीते ही मर चुके नाथ! अब देखो तुमही॥
जो-जो दुःख हमको दिये शत्रूको मत दीजिये।
अभयदान देकर हमें पुनि नव जीवित कीजिये॥ ४॥

जो दीन-दयालु नहीं अब भारतको अपनावोगे।
तो हम दीन-अनाथोंके किस काम आवोगे॥

विश्व बीचमें भारत सबका मुकुट बना था।
बल, धन, विद्या, विविध कलाकी खान बना था॥
वही अभी चिल्ला रहा, सुनते क्यों नहीं आज हैं।
क्या जन्म-भूमि प्यारी नहीं? धन्य तुम्हें यदुराज है॥ ५॥

—*बाबू किशोरीलाल जमींदार*।

जन्म-भूमि भारत।

—:*:—

जिस पर गिरकर उदर-दरीसे जन्म लिया था।
जिसका खाकर अन्न सुधा-सम नीर दिया था॥
जिससे हमको प्राप्त हुए सुख-साधन सारे।
जिसपर हुए समाप्त हमारे पूर्वज प्यारे॥
वह पुण्य-भूमि भारत यही, हम इसकी सन्तान हैं।
कर इसकी सेवा हृदयसे पाय सके सम्मान हैं॥ १॥

जिसके तीनों ओर महोदधि रत्नाकर हैं।
उत्तरमें हिमराशि रूप सर्वोच्च शिखर हैं।

जिसमें प्रकृति-विकाश रम्य ऋतु-क्रम उत्तम है।
जीवजन्तु फलफूल, रम्य अद्भुत अनुपम है॥
पृथिवी पर कोई देश भी इसके नहीं समान है।
इस दिव्य देशमें जन्मका हमें बहुत अभिमान है॥ २॥

सब कुछ है, पर नहीं यहाँ अब विद्याबल है।
वर व्यवसाय-विहीन दीन-दलमें हलचल है।
लुप्त मेलका मन्त्र, भूलसी गई सुशिक्षा।
नित्य नया दुर्भिक्ष, रही भिक्षा न तितिक्षा॥
रह गई नामको हाय! अब भारतकी प्राचीनता।
हम हुए तिरस्कृत लोकमें, रुला रही है दीनता॥ ३॥

उठो, त्याग दें द्वेष; एक ही सबके मन हों।
सीख ज्ञान-विज्ञान, कला कौशल, उन्नत हों॥
सुख, सुधार, सम्पत्ति, शान्ति भारतमें भर दें।
अपना जीवन इसे सहर्ष समर्पण कर दें॥
भारतकी उन्नति-सिद्धिसे हम सबका कल्याण है।
दृढ़ समझो इस सिद्धान्तको हम शरीर यह प्राण है॥४॥

—पं० रामनरेश त्रिपाठी।

देश-प्रेमोन्मत्त ।

प्यारे भारत ! प्यारे भारत ! तुझ पर वारे जायेंगे ।
स्वर्ग-लालसा छोड़ तुझे हम अपना स्वर्ग बनायेंगे ॥
मंद मलय-मारुतके झोके मेरा मन बहलायेंगे ।
तप्त हृदयको शीतल करने हिमगिरि-हिमकर आयेंगे ॥ १ ॥

नीलाम्बरा भूमि जननी ले, गोद हमें दुलरायेगी ।
विविध फूल-फल देकर हमको मधुमय पान करावेगी ॥
मणिगण हमें वसुमति देकर चाव सदैव बढ़ायेगी ।
क्षमा, धीरता, सहनशीलताके प्रिय पाठ पढ़ायेगी ॥ २ ॥

सारे कलि-मल-कलुप हमारे सुरसरि-धारा धोयेगी ।
तरल तरङ्ग त्रिवेणीजीकी भय-तापोंको खोयेगी ॥
कलरव करके चातक-कोकिल गाना हमें सुनायेंगे ।
घर बैठेही मातु-कृपासे सुरपुर-सुख हम पायेंगे ॥ ३ ॥

* * * *

वह देखो वंशी ध्वनि सुनलो, कुँवर कन्हैया आता है ।
गीतावाले गीत आज फिर मधुर स्वरोंमें गाता है ॥
दुःख भुला दो, क्लेश भुला दो, स्वागतको तय्यार रहो ।
जय यदुनन्दन ! जय वंशीधर ! स्वागत ! स्वागत ! कहो-कहो ॥ ४ ॥

अहो ! हिमालय, नगाधिपति हो, उच्चभाव कुछ दिखलाओ ।
शामागममें रत्न-कोष सब अपना आज लुटा जाओ ॥
धर्मराजने महा-समरमें जब सर्वस्व गँवाया था ।
कञ्चनका भांडार तुम्हींसे धर्म्म-कार्य्य-हित पाया था ॥ ५ ॥

देख दरिद्र हमारा तुमको क्या न दया कुछ आयेगी ?
हरि-स्वागतको क्या यह जनता खाली हाथों जायेगी ॥
सूम-सदृश क्यों चुप हो तुम, कुछ न दो हमें परवाह नहीं ।
हैं ऋषियोंके वंशधरोंमें, हमको धनकी चाह नहीं ॥ ६ ॥

सुनते हैं पूर्वज कितने ही तव ग्रहमें तप तपते हैं ।
ध्यान-धारणामें रत रहकर, नाम श्याम का जपते हैं ॥
उनतक विनय विनीत हमारी है, गिरिवर ! तुम पहुँचाओ ।
कहो, कि अपनी मातृभूमिकी लेने ख़बर शीघ्र जाओ ॥ ७ ॥

स्वर्गेच्छा है अगर, स्वर्ग भारत ही बनने जाता है ।
दर्श-लालसा है यदि हरिकी, ब्रह्म कृष्ण बन आता है ॥
गिरी हुई सन्तानोंको तुम जाकर शीघ्र सचेत करो ।
ज्ञान-रहित तव पुत्र-पौत्र हैं, उनको ज्ञान समेत करो ॥ ८ ॥

जिसमें हरिके दरशन पायें, मन न तरसते रह जावें ।
श्याम-विरहमें अश्रुधार ही नेत्र बरसते रह जावें ॥

* * * *

ध्यान-मग्न वे अगर तुम्हारी नहीं प्रार्थना सुनते हैं।
क्यों, वस इतनी दया करो, तुम देखो हम सिर धुनते हैं॥ ९

निज तनयासे कहो कि जब वे सागरसे मिलने जायें।
सुरसरि निज प्रिय द्वारा उतनी विनती हरितक पहुँचायें।
क्षीर-सिन्धुमें कब तक स्वामी आप बे-ख़बर सोयेंगे।
कब तक हम दुनियाँके आगे अपना दुखड़ा रोयेंगे॥१०

करुणासिन्धो! कहो, तुम्हें क्या भारत-भूमि न प्यारी है।
तुमतो कहते थे, यह पृथ्वी तीन लोकसे न्यारी है॥
जो ऐसे दिन दिखलाने थे, तो क्यों फिर अपनाया था?
क्यों भूमण्डल-भरमें प्रभुवर! भारत तुमको भाया था?॥ ११

एक नहीं दस बार तुम्हींने गिरते हुए बचाया है।
दयासिन्धु! फिर दया कीजिये, कठिन समय यह आया है॥
हृदय-भूमिमें हाला-डोला हरदम आता रहता है।
'गेसर' सदृश उबल नयनोंसे तप्त-तप्तजल बहता है॥१२

वैर-विरोध-सिन्धु बढ़कर हा! हमें डुबोये देता है।
मुख बन ज्वाला-मुखी धुआँ क्यों हा! नभ छाये देता है॥
मोह-निशा अज्ञान-अँधेरा उसपर दुख-घन घेरा है।
विपदा-विद्युत् चमक रही है विकट कालका फेरा है॥१३

गिरिधर! फिर सिरधरा बनो तुम, तो लज्जा बच जायेगी।
बिना तुम्हारी दया दयानिधि! महाप्रलय मच जायेगी॥

* * * *

नहीं बोलते, क्यों बोलेगे, कौन बुरे दिनका साथी?
हो पवि-हृदय लगा दो तुम कुछ पत्थर हो हाथाहाथी॥१४॥

तुम अपनी क्रूरता न छोड़ो, हृदय कठिन भरपूर करो।
अपना भार डालकर हम पर, हमको चकनाचूर करो॥
किसी तरहसे इन दुःखोंसे हे नगनाथ! छुड़ाओगे।
कुछ न करोगे तो गिरिवर! किस काम हमारे आओगे?॥१५॥

* * * *

ओहो! आर्त्तजनोंके मन भी नहीं ठिकाने रहते हैं—
देखो तो हम जड़ पदार्थसे अपनी बीती कहते हैं।
भारतीय भाइयो। देश-दुख-दवा तुम्हीं अब बन जाओ—
बिगड़े रहे बहुत दिनतक तुम अब तो कुछ मनमें लाओ॥१६॥

प्रेम-प्रमोद-घटा बरसाओ, द्वेष-दवानल बुझ जाये—
भारत-वन फिर हरा-भरा हो, वैभव-ऋतुपति फिर आये।

* * * *

फिर यश गानकरे कवि-कोकिल चुप न रह सके चहक उठे॥१७॥

हृदय-हृदयसे मिला मिलादो, पिला पिलादो नय-प्याले—
जन्मभूमिकी करो जय-ध्वनि अवनी और गगन हाले॥

बढ़ो, करो उद्योग हृदयसे, बैठे रहना ठीक नहीं—
दिल्ली दूर अभी है भाई ! उन्नति कुछ नज़दीक नहीं ॥१८॥

कितने खाई-खन्दक तुमको पार अभी करने होंगे—
कितने नद-नाले रस्तेमें अभी तुम्हें तरने होंगे।
कला-ज्ञान नभ यान बनाकर जब ऊँचे चढ़ जाओगे—
भव्य भाग्यवाले भारतके तब तुम दर्शन पाओगे ॥१९॥

बैठा होगा वीरासन वह तेज दिवाकर सा होगा—
दृग-चकोर लख मुद पायेंगे, वदन सुधाधर सा होगा ॥
चौड़ा वक्षस्थल निहार कर चकित हुए रह जाओगे।
करुणा-दया देखकर उसकी पिघल-पिघल तुम जाओगे ॥२०॥

मुख-मण्डलसे उसके हरदम शान्ति मनोहर बरसेगी—
फिर दुनियाँ उसके दर्शनको व्याकुल होगी तरसेगी।
वहाँ बैठकर कृष्णचन्द्रजी मुरली मधुर बजायेंगे—
जनता-दुःख दूर करनेको दशरथ-नन्दन आयेंगे ॥२१॥

दृष्टि जायगी जिधर, उधर विज्ञान-ज्योति फैली होगी—
जिसे देखकर चन्द्र-चन्द्रिका झेपेगी, मैली होगी।
वह अपने कौशलसे ऐसी सुधा-धार बरसायेगा;
अमर करेगा निज पुत्रोंको, यह त्रिरतृपा मिटायेगा ॥२२॥

तुमको देख गले मिलते वह, मन्द-मन्द मुसकायेगा—
गुण-गरिमा वह देख तुम्हारी फूला नहीं समायेगा।

स्वर्ग-लालसा फिर तुम जीमें अपने कभी न लाओगे—
जो चाहोगे इसी लोकमें प्रियवर म पा जाओगे ॥२३॥

* * * *

सुन ये बातें देशभक्तकी आँसू मेरे निकल पड़े—
मानों भारत-पदस्पर्श को हृदयज बालक मचल पड़े।
मैंने कहा थामकर आँसू "हा। वह दिन कब आयेगा—
जो यह स्वप्न-समान शुभाशा सच्ची कर दिखलायेगा" ॥२४॥

उत्तर मिला, "आप जब जी से भारतको अपनायेंगे—
तभी कृपा करके वे अपना असली रूप दिखायेंगे॥"
मैंने कहा,-"सखे! आओ यह हृदय-भेंट स्वीकार करो—
देश-प्रेम-जलधि वाहित हो मुझको भी तुम पार करो" ॥२५॥

—*सनेही।*

हम भारतीय नवयुवकगण कर्मवीर कहलायेंगे।
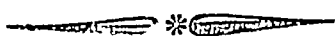
एक ईश सच्चिदानंदका ध्यान धरेंगे।
निशिदिन हम उद्योग-सुधाका पान करेंगे॥
मन-मन्दिरमें अहो। ज्ञान-विज्ञान भरेंगे।
करके देशोत्थान राष्ट्रका क्लेश हरेंगे॥
उस प्रभुकी महिमा गान कर, अक्षय सुखको पायँगे।
हम भारतीय नवयुवकगण कर्मवीर कहलायँगे॥ १॥

धैर्य, क्षमा, करुणा, उदारता, शौर्य, शील सम।
ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अहिंसा, सत्य शान्तिप्रद॥
विमल, वियोग, विराम जनता सद्गुण सारे।
होंगे यहां समस्त हृदय-सन्निमत हमारे॥
वेदोंके उपदेश शुभ प्रति सदन-सदन फैलायंगे।
हम भारतीय नवयुवकगण कर्मवीर कहलायंगे॥ २॥

विद्यालय, कालेज और गुरु-कुल खोलेंगे।
ब्रह्मचर्य व्रत-वीर बने ऋषि सम डोलेंगे॥
अखिल विश्वका शिक्षक-पद भारत को देंगे।
उन्नतिकी ऐश्वर्य्य शक्तिसे दुख हरलेंगे॥
आलस्य-असुर पर कोप कर उद्यम बाण चलायंगे।
हम भारतीय नव-युवकगण कर्मवीर कहलायंगे॥ ३॥

बन कर हम सब प्राज्ञ स्वदेश-सुधार करेंगे।
त्याग कुरीति-कुकर्म सुनीति प्रचार करेंगे॥
प्रतिदिन हम सब बन्धु समाज सुधार करेंगे।
देशोन्नतिके हेतु वाणि-विस्तार करेंगे॥
यों आपके आचरणसे प्रेम-सिन्धु उमड़ायंगे।
हम भारतीय नव-युवकगण कर्मवीर कहलायंगे॥ ४॥

दुखिया, दीन, अनाथ, वृद्ध, भिक्षुक, नर-नारी।
शक्ति-हीन, अवला, अनाथ, गोमाता प्यारी॥

इनके कठिन-कठोर शोक-सन्ताप हरेंगे।
होकर हम कटिबद्ध दिव्य आदर्श धरेंगे॥
उन्नति औ' उद्योग बल पूर्व कीर्त्तिको पायँगे।
हम भारतीय नवयुवकगण कर्मवीर कहलायेंगे॥ ५॥

प्रबल, प्रतापी, राजभक्त, प्रण ठान बनेंगे।
कवच देश-सेवा-व्रतका तन पर पहनेंगे॥
ले सुधारका कटक ऐक्यका खड्ग धरेंगे।
अवनतिका गढ़ तोड़ महा दुख-शत्रु हनेंगे॥
बल, विक्रम, साहस, शौर्य निज सर्व भ्रात दर्शायेंगे।
हम भारतीय नवयुवकगण कर्मवीर कहलायँगे॥ ६॥

कहते ही हैं नहीं, किन्तु कर दिखलायेंगे।
जिन्हें नहीं जो याद, उन्हें वह सिखलावेंगे॥
उठो! वन्धुओ!! हो तयार सब मिल बोलो जय।
जय जय आर्यावर्त! मातु-नागरी! जयति जय॥
यह बीजमन्त्र 'युवराज' जब सच करके दिखलायँगे।
तब भारतीय नव-युवकगण कर्मवीर कहलायँगे॥ ७॥

—*उपाध्याय गोपीवल्लभ शर्म्मा।*
"युवराज"

वर्त्तमान दुर्भिक्ष ।

चाहे प्यारी मातृ भूमिसे छूट जाय सम्बन्ध ;
रहे न अथवा निज शरीरमें अहम्मानका गन्ध ।
समर-भूमिमें मरना हो या करना हो अन्याय ;
पर इस उदर-दरीकी ज्वाला सहनी पड़े न हाय ! ॥ १ ॥

सभा-समाज, देशकी सेवा, एवं वाद-विवाद,
जठर-पिठरमें चारा रहते आते हैं सब याद ।
किन्तु आज ये सभी वस्तुएँ मुझे दीखती भार ;
हा ! हा !! हन्त !!! बिनाही खाये बीत गये दिन चार ॥ २ ॥

जो करता था पेट काटकर सरकारी कर-दान ;
रहता था प्रस्तुत करनेको अभ्यागतका मान ।
नहीं हुआ था जिसे धैर्य्यवश कभी दुःखका भान,
आज वही भूखों मरता है मातादीन किसान ॥ ३ ॥

हे गोपाल ! आपकी गायें बिकती हैं अब आज ;
मैं असमर्थ पालनेमें हूँ, रखिये मेरी लाज ।
वृषवाहन ! जो वृषभ आपके हो जावेंगे नष्ट,
तो पैदल चलनेसे होगा क्या न आपको कष्ट ? ॥ ४ ॥

हाहाकार मचा भूखोंका है धनिकोंके पास,
फिर कैसे ये तोंद फुलाये खाते विषमय ग्रास।
क्या जगदीश! आपके ये ही हैं सच्चे सन्तान?
बुरे सही; क्या नहीं तुम्हारे हम भी पुत्र-समान? ॥ ५ ॥

—केशव प्रसाद मिश्र।

अछूतकी आह।

(चतुष्पदी।)

एकदिन हम भी किसीके लाल थे।
आँखके तारे किसीके थे कभी॥
बूँद भर गिरता पसीना देख कर,
था वहा देता घड़ों लोहू कोई॥ १॥

देवता-देवी अनेकों पूजकर,
निर्जला रहकर कई एकादशी॥
तीरथोंमें जा द्विजोंको दान दे,
गर्भमें पाया हमें माँने कहीं॥ २॥

जन्मके दिन फूलकी थाली बजी,
दुःखकी रातें कटीं सुख-दिन हुआ॥

प्यारसे मुखड़ा हमारा चूमकर,
स्वर्ग-सुख पाने लगे माता-पिता ॥ ३ ॥

हाय ! हमने भी कुलीनों की तरह,
जन्म पाया प्यारसे पाले गये ॥
जो बचे, फूले-फले तब क्या हुआ,
कीटसे भी नीचतर माने गये ॥ ४ ॥

जन्म पाया, पूत हिन्दुस्थानमें,
अन्न खाया और यहीं का जल पिया ।
धर्म्म हिन्दूका हमें अभिमान है,
नित्य लेते नाम हैं भगवान्‌का ॥ ५ ॥

पर अजब इस लोकका व्यवहार है !
न्याय है संसारसे जाता रहा ।
श्वान छूना भी जिन्हें स्वीकार है ।
है उन्हें भी हम अभागोंसे घृणा ॥ ६ ॥

जिस गलीसे उच्च कुलवाले चलें,
उस तरफ चलना हमारा दण्ड्य है ।
धर्म्म-ग्रन्थोंकी व्यवस्था है यही,
या किसी कुलवान का पाखण्ड है ॥ ७ ॥

छोड़कर प्यारे पुराने धर्म्मको,
आज ईसाई मुसलमी हम बने ।

नाथ! कैसा यह निराला न्याय है,
तो हमें सानन्द सब छूने लगे॥ ८॥

हम अछूतों से बताते छूत हैं।
कर्म कोई खुद करें, पर पूत हैं।
हैं सगोंको ये पराया मानते,
क्या यही स्वामी! तुम्हारे दूत हैं?॥ ९॥

शासकोंसे माँगते अधिकार हैं,
पर नहीं अन्याय अपना छोड़ते।
प्यारका नाता पुराना तोड़ कर;
हैं नया नाता निराला जोड़ते॥१०॥

नाथ! तुमने ही हमें पैदा किया,
रक्त-मज्जा-मांस भी तुमने दिया।
ज्ञान दे मानव बनाया, फिर भला,
क्या हमें ऐसा अपावन कर दिया?॥११॥

जो दयानिधि! कुछ तुम्हें आये दया,
तो अछूतों की उमड़ती आहका,
यह असर होवे कि हिन्दुस्तानमें,
पाँव जमजावे परस्पर प्यारका॥१२॥

—रामचन्द्र शुक्ल बी० ए०।

भारतीय कृषक।
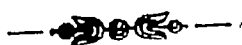
प्रभु वर ! हम क्या करें, कि कैसे दिन भरते हैं।
अपराधी की भाँति सदा सबसे डरते हैं।
याद यहाँ पर हमें नहीं यम भी करते हैं;
फ़िजी आदिमें अन्त समय जाकर मरते हैं! ॥ १ ॥

शिक्षा को हम और हमें शिक्षा रोती है;
पूरी बस, वह घास खोदनेमें होती है।
यहाँ कहाँ विज्ञान, रसायन भी सोती है;
हुआ हमारे लिये एक दाना मोती है! ॥ २ ॥

परदेशोंकी तरह नहीं कुछ कलका बल है;
वह तो अपने लिये मन्त्र, माया या छल है।
जो कुछ है, बस वही पुराना हल-वक्खल है;
और सामने नष्टसार यह पृथ्वीतल है ॥ ३ ॥

बहते हुए समीप नदी की निर्मल धारा—
खेत सूखते यहाँ, नहीं चलता कुछ चारा।
एक वर्ष भी वृष्टि विना समुदाय हमारा—
भीख माँगता हुआ भटकता मारा-मारा ॥ ४ ॥

बनता है दिन-रात हमारा रुधिर पसीना ;
जाता है सर्वस्व सूदमें फिर भी छोना ।
हा ! हा ! खाना और सर्वदा आँसू पीना ;
नहीं चाहिये नाथ ! हमें अब ऐसा जीना ॥ ५ ॥

—*बाबू मैथिली शरण गुप्त ।*

हमारी मातृभाषा हिन्दी
और
हमारे एम्० ए० बी० ए० सपूत ।

हे मातृभाषे ! आज क्यों मुख-कमल तेरा म्लान है ?
क्यों भर रही है साँस ठण्डी ? क्यों हुई तू ग्लान है ?
वह मधुर तेरी मुसकराहट, वह प्रसन्न गभीरता,
वह सहज-सुन्दर भाव तेरे, वह अलौकिक धीरता ॥ १ ॥

यह रसमयी मृदुभाषिता, वह सरल, एकाकारता,
वे हृदय-हारक वर्ण तेरे, वह असीम उदारता ।
हा ! हन्त ! सबके सब सुगुण ये, तुझे छोड़ कहाँ चले ?
क्यों आज तू दीना हुई ? क्यों आँखसे आँसू ढले ? ॥ २ ॥

थे प्रेम से सत्पुत तेरे हैं तुझे अपना रहे ;
हो कष्ट इनको—यह नियम, पर तू न कुछ संकट सहे ।

हैं वीर तेरे बहु सहायक, शरण तेरे गुप्त हैं;
मत दुःखिनी हो तू, नहीं सन्तान तेरे सुप्त हैं॥ ३॥

पर हाँ, मुझे अब विदित तेरे दुःख का कारण हुआ,
जिससे सभी सन्देह-दल का शीघ्र निस्सारण हुआ।
दस—पाँच यद्यपि पुत्र तेरे हैं लगे उपचार में;
पर न हो सकती स्थिरा, तू इन्हीं से संसार में॥ ४॥

अधिकांश तेरे पुत्र अंग्रेज़ी निरंतर पढ़ रहे;
बी०ए० तथा एम० ए० बने उन्नति शिखर पर चढ़ रहे।
इनकी कृपा से हो रहा तेरा निरादर देश में;
इससे तुझे मैं देखता हूं आज इतने क्लेश मे॥ ५।

सम्पत्ति खो कर पूर्वजों की, स्वीय जीवन-दान कर,
सारा समय अपना लगा कर, जगत का अपमान कर।
इन शिक्षितोंने है विदेशी ढंग बदले में लिया;
हा! भूलकर तुझ को, बड़ा ही घोर "पातक" है किया॥ ६

इस समय अंगरेज़ी यहाँ की राज-भाषा है बनी;
इससे सभी आसक्त उसपर हैं, दरिद्र तथा धनी।
तेरे सुतों की योग्यता यह जो उसे वश में करे;
उस नववधू के सङ्ग से सङ्कीर्णता अपनी हरे॥ ७

पर खेद! जब वे जाल में पड़ कर उसी के हो रहे;
उसके जगाये जागते, उसके सुलाये सो रहे।

सपना उसी का देखते संसार में हैं सब कहीं;
उसके सदृश कोई सुभग है, उन्हें मिलता ही नहीं॥ ८॥

जिसकी कृपासे प्रकट कर निज भाव को शिशुता-समय,
रो-रो यही नित माँगते थे प्राण-रक्षक भक्ष्य-चय।
हा। आज उसकी दुर्दशा भी देख कर ये चुप रहें,
हम एक मुखसे धृष्टता इनकी कहो, कैसे कहें! ॥ ९॥

पढ़कर विदेशी शास्त्र उनके तत्व पर जाते नहीं;
निज मातृ-भाषा-भाषियों को लाभ पहुँचाते नहीं।
ये निरे ग्रामोफ़ोन हैं, उतना कहें जितना पढ़ें;
अपनी बलाको दूसरोंके भी सदा सिरपर मढ़ें॥१०॥

हम विवश हैं, जो मातृभाषामें नहीं शिक्षा मिली;
जिससे हमारी बुद्धि-कलिका नहीं पूर्णतया खिली
पर हुए निर्मुक्त हम जिस समय उसके पाशसे;
तब बने क्यों हम मातृ-भाषा छोड़ उसके दाससे॥११॥

ये शेक्सपीयर और मिल्टनसे मनोरञ्जन करें;
पढ़कर उन्हींका प्रकृति-वर्णन मोहके मारे मरें।
पर हाय! अपने देशको यह दृश्यमान छविच्छटा;
इन योगियोंके योगको कुछ भी नहीं सकती घटा॥१२॥

जब आजकल अँगरेज़ लोग अमेरिकामें जा रहे;
वे इसी इँगलिशको सहर्ष अमेरिकन भाषा कहें।

तब पुत्र तेरे जो सदा उनकी नक़ल करते फिरें ;
हा ! उन्हींके निन्दा-वचन-शर घोरतर तुझपर गिरें ॥१३॥

चाहे विदेशी वर्णमाला आपके पीछे लगे ;
चाहे वृहस्पतिसे अधिक हों, आप इंगलिशके सगे।
जबतक नहीं निज मातृ-भाषा-प्रीति होगी आपमें ;
तबतक नहीं अन्तर पड़ेगा देशके सन्तापमें ॥१४॥

इससे हमारे भाइयो ! अब आप आँखें खोलिये।
अपने हृदयको मातृ-भाषा-प्रेम-रसमे घोलिये ॥
जो ज्ञान पाया हो, कहींसे आपने संसारमें ;
उपयोग उसका कोजिए, निजदेशके निस्तारमें, ॥१५॥

—*केशवप्रसाद मिश्र।*

वृद्धाका विलाप।

अपने-अपने कान खोलकर सुनलो तुम यह मेरी बात—
मुझसे ही पैदा होकरके करते क्यों मेरा अपघात ?
मुझसे यह वर्ताव तनय ! यह कभी तुम्हारा धर्म नहीं,
प्यारे हाय ! तुम्हारे मनमें क्या कुछ भी है शर्म नही ? ॥ १ ॥

पुत्रो ! मेरा सुभग भाग्य जब नष्ट हुआ, तुम थे अज्ञान ;
पर अपनेको अब कहते हो, जगमें वर-विज्ञान-निधान।
दुग्ध-पानकर पले हुए थे, अब क्यों पीने लगे शराब ?
पहले तो तुम बड़े सौम्य थे,अब क्यों होने लगे ख़राब ? ॥ २ ॥

जाति-पाँतिके झंझट छोड़े, उन्हें समझ करके जञ्जाल,
चन्दनका भी भार सहनकर सकता नहीं तनिक भी भाल।
कुछी दिनोंमें मेरे प्यारे! हाय! औरके और हुए !
साबुन मलकर थक जाते हो,किन्तु नहीं मुख-गौर हुए ॥ ३ ॥

हिन्दू हो, पर हिन्दूपनका कुछ भी तुम्हें न रहता ध्यान;
धन्य ! बनाते हो भारतको मानो काला इंगलिस्तान।
तुमसे तो बेटी अच्छी थी, सीता जिसका नाम रहा ;
राक्षसियोंको भी निज-शिक्षा देना उसका काम रहा ॥ ४ ॥

ब्रह्मचर्य्यका पालन करना जबसे तुम समझे हो व्यर्थ,
पुत्रो ! हाय ! तभीसे देखो, क्या-क्या होने लगे अनर्थ ?
अनायास ही अल्प कालमे दुर्बल होकर मरते हो ;
ज्ञान-हीन हो दुष्कर्मोंमे, मनमें तनिक न डरते हो ॥ ५ ॥

नर-विवेककी शक्ति क्या हुई ? तुम निज पितरोंके उपदेश,
सुनते एक न ; मारे-मारे फिरते भूल स्ववेश-स्वदेश।
चुरट, चायके बिना तुम्हें अब चैन नहीं है एक घड़ी,
बढ़ते हैं दुर्व्यसन तुम्हारे चिन्ता इसकी मुझे बड़ी ॥ ६ ॥

पर-भाषाको लिखते-पढ़ते और उसीमें करते बात,
तुम अभाग्यवश निज हिन्दीको नाहक निठुर मारते लात।
फिर भी देशोद्धारक बनते लगती तुमको लाज नहीं,
निज भाषाके द्रोही बनकर हुआ किसीका काज कहीं ? ॥ ७ ॥

मुखमें सदा एकता रहती, मनमें वैर बन्धुके साथ।
इसी बुद्धिसे तुम करलोगे, पुत्रो ! अपना देश सनाथ ॥
जिनके चेले बने हुए हो उनसे लेते ज्ञान नहीं,
चतुरोंकी चालोंके ऊपर देते कुछ भी ध्यान नहीं ॥ ८ ॥

राम-कथाको वृथा समझकर दी है प्रथा अनिष्ट निकाल ;
त्रपा-हीन होकर निशिदिन तुम चलने लगे साहबी चाल
वेदोंकी बातोंको भूले, भूल गये गीताका गान ;
अपने धर्म्म ग्रन्थ बनाये तुमने सब इञ्जील-कुरान ॥ ९ ॥

घरके भीतर जाया-जननी भूखों मरतीं वस्त्र-विहीन,
क्षुधा-क्षीण होकर शिशु सारे रोते रहते दिन भर दीन।
चोरी तक करके तुम देते वस्त्राभूषण नित्य नवीन—
वेश्याओंको मेरे प्यारे ! तुम अच्छे निकले शौकीन ॥१०॥

कैसा आलसने घेरा है तुमको, देखो आँखें खोल।
कभी स्वप्नमें भी न मिलेगा, ऐसा शुभ अवसर अनमोल ॥
कुम्भकर्ण भी जग जाता था थोड़ा शोर मचानेसे।
किस कुलग्नमें तुम सोये, जो जगे न ठोकर खानेसे ॥११॥

जलमें, स्थलमें और व्योममें क्या-क्या करने लगे सभी ;
क्या तुम भी कुछ दिखलाओगे अपना पौरुष मुझे कभी ?
वीराम्बासे पालित होकर क्यों अपनेको भूल गये ?
इधर-उधरकी डिग्री पाकर क्यों तुम इतने फूल गये ? ॥१२॥

मिली कुर्सियाँ तुम्हें इसीसे क्या मेरा दुख दूर हुआ ?
अपना पेट पालकर पुत्रो ! क्या कोई भी शूर हुआ ?
क़लम चलाकर या बक-बककर, कर लोगे मेरा उद्धार !
बिना ऐक्यके कभी नहीं तुम कर सकते हो, देशसुधार ॥१३॥

यह सच, समय देखकर प्यारे ! करना काम सभी है ठीक,
किन्तु शिखाके बिना तुम्हारा जीनेसे मरनाही ठीक।
आर्य-भूमिके तनय आर्यही हो सकते हैं, और नहीं ;
कभी स्वर्गमें महा पतित जन पासकते हैं ठौर कहीं ? ॥१४॥

वेदादिक पर धूल डालकर और पुराणोंको भी छोड़,
इतिहासोंकी हँसी उड़ाकर लेते हो उनसे मुख मोड़।
फिर भी पुत्रो ! पण्डित-मानी बनते हो अपने बलसे,
इसीलिये तुम हुए न परिचित छलियोंके जघन्य छलसे ॥१५॥

पुत्रो ! सदा तुम्हारे पूर्वज मक्खन-मिसरी खाते थे ;
जगके गुरु समझे जाते थे ; सबसे पूजा पाते थे।
किस बूते उनको असभ्य तुम कहते हो ? क्या लाज नहीं ?
ऐसा कौन दुःख है तुमको जो मिलता है आज नहीं ? ॥१६॥

कहते हो वाणिज्य बुरा है; रुपये रक्खो बङ्कोमें;
इसी बुद्धिसे हुई तुम्हारी पुत्रो! गिनती रङ्कोमें।
दत्त-चित्त हो यदि अबसे भी विक्रम-सहित करो व्यापार,
खोजावें दुख-दैन्य तुम्हारे; हो जावे मेरा उद्धार ॥१७॥

—*रामचरित उपाध्याय।*

कर्त्तव्य।

छेदना होगा हमें इस मृत्युके भय-जालको;
पुञ्ज-पुञ्जीभूत जड़ताके जटिल जञ्जाल को।

जागना होगा हमें इस दीप्त प्रातःकाल में;
इस सु-जाग्रत जगतमें, इस कर्म-धाम विशालमें।

अन्ध बन कर है नहीं बाधा कहाँ संसारमें?
धर्ममें, सत्कर्ममें आचार और विचारमें।

दूर कर संसारकी ये विघ्न, बाधाएँ सभी,
मुक्त खगका उच्च रव धरना हमें होगा अभी।

देखना होगा हमें विच्छिन्न कर तम-तापको,
विश्वमें उस पूर्ण ज्योतिर्मय तथा निष्पापको।

अग्रसर हो पुण्य-पथमें कर अघों की शोषणा,
हृदयसे करनी हमें होगी यही अब घोषणा—

हे सुरो ! हम भी तुम्हारे ही समान महान् हैं,
हीन हम कुछ भी नहीं,हम भी अमृत-सन्तान हैं ॥

—*सिया रामशरण गप्त* ।

कीच और काँच ।

पूर्वका आकाश उज्ज्वल लाल था,
अंशुमालीके उदयका काल था ।
जब निकल आया सुनहरी थाल सा,
सब चराचर उस समय खुशहाल था॥ १ ॥

देखते ही देखते क्षण एकमें,
फूट कर सब ओर किरने छा गईं ।
सामने से श्याम परदा हट गया ,
वस्तु जगके दृष्टि-पथमें आगईं ॥ २ ॥

---

* श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी एक कविताका भाव ।

आ पड़ी जब एक किरनों से निकल,
ज्योति हँसती चमचमाती कीचपर ।
कुछ नहीं उसमें झलक पैदा हुई,
बस, मलिनता ही रही उस नीचपर ॥ ३ ॥

पर पड़ी जब एक आभा काच पर,
तेजसे वह जगमगाने लग गया ।
हो प्रकाशित खींच किरनों से प्रभा,
सूर्यका टुकड़ा-सदृश वह जग गया ॥ ४ ॥

था वही आकाश, किरनें थीं वही,
सूर्य दोनोंके लिए था एक ही,
भिन्न थे, पर भाव कीचड़ काँचके,
इसलिए उनकी दशा थी भिन्न ही ॥ ५ ॥

ऐ हमारे देशके प्यारे युवक !
ठीक ऐसा ही तुम्हारा हाल है ।
दृष्टि तुम पर पड़ रही संसार की,
इस तरफ भी क्या तुम्हारा ख़्याल है! ॥ ६ ॥

शीघ्र भारतवर्ष में होगा उदय,
भानु उन्नतिका क्षितिजके पास है ।
क्या ग्रहणकर ज्योति चमकोगे युवक !
क्या हृदयकी शक्तिपर विश्वास है ? ॥ ७ ॥

देखलो अपना हृदय वह कीच ?
या कि प्रतिभा-पूर्ण निर्मल काँच है ?
वह रहेगा मलिन या देगा चमक ?
याद रक्खो, वह तुम्हारी जाँच है ॥ ८ ॥

—पं० रामनरेश त्रिपाठी ।

पतन और उत्थान ।

जो दिनेश कल नभोदेशमें अस्त हुआ था,
सन्ध्या ही के समय ग्रहणसे ग्रस्त हुआ था ।
तम का था अधिकार, तमिस्राकी शाही थी,
चोरों को था चैन, मौज में बदराही थी ।
आज वही फिर पूर्वसे मधु मुसकाता आ रहा ;
देता दीप्ति दिगन्त तक कमल खिलाता आ रहा ॥ १ ॥

जो भू कभी प्रचण्डताप से तपी हुई थी,
तृण था नष्ट समूल धूल से झँपी हुई थी,
दावाने थे दहक-दहक वन सघन उजाड़े,
आँधीने थे रहे-सहे तरु पुञ्ज उखाड़े ;
हरियाली से फिर वही नन्दन-मद हरने लगी ।
फिर बहार हर कुञ्जमें हैं विहार करने लगी ॥ २ ॥

जो विधि वश था बना, भूप से रङ्क-भिखारी,
और नहीं था मित्र साथ बस थी नाचारी।
राज-भवन क्या, नहीं कहीं पर रही कुटी थी,
प्रबल शत्रु के हाथ सकल सम्पत्ति लुटी थी।
वही आज फिर देखिए, बना नृपति-सिरमौर है,
दुनिया का है तौरही, आज और कल और है ॥ ३ ॥

अभी-अभी कल लोग घृणा जिससे करते थे,
या सन्तत औदास्य भाव ही आचरते थे।
जो था अज्ञ, अजान, मूर्ख ही समझा जाता,
जो था बस धिक्कार-भेंट ही सब से पाता।
आज उसी का लोक है देखो दम भरने लगा।
उसके गुण पर मोह कर कौन नहीं मरने लगा? ॥ ४ ॥

वे असभ्य जातियाँ गहन वन जिनके घर थे,
जिनके सारे सभ्य वली-मुख थे वनचर थे।
वन-पशु थे आहार, वस्त्र थी खालें उनकी,
जान न पड़ते मनुज़ अजब थी चालें उनकी।
ज़रा देखिये तो वही कल क्या थे, क्या आज हैं!
आकर हैं विज्ञानके, सभ्योंके सिरताज हैं! ॥ ५ ॥

उठो, होय कर सजग बेख़बर सोनेवाले,
हैं हँसते आ रहे, दुःख से रोने वाले।

काट रहे हैं नाज धूल में बोने वाले,
फिर हो गये सशक्त, पराक्रम-खोने वाले।
मौंज गई, थे जो कभी फिर विवाद करने लगे।
जो शृगाल से थे वही सिंहनाद करने लगे ॥ ६ ॥

स्वर्गोपम था कहाँ, कहाँ अब पतन हमारा,
सभी तरह से हुआ, देखिए पतन हमारा।
कभी धनद थे, किन्तु आज हम रङ्क हुए हैं,
कभी सरल थे, आज कुटिल बन वक्र हुए हैं।
प्रेम-पुरी थी जहाँ पर वहाँ नगर है द्रोह का,
जहाँ ज्ञान ही ज्ञान था, वहाँ राज्य है मोहका ॥ ७ ॥

हममें रहा न तत्व, स्वत्वसे हीन हुए हैं,
गिरे यहाँ तक, मनुष्यत्वसे हीन हुए हैं।
जो सद्गुण थे बने कभी सर्वस्व हमारा,
सबके सब हो गये आज वे नौ-दो-ग्यारा ॥
महा मूर्ख बन कर पड़े जड़ता के जंजाल में,
निरुद्योग आलस्य-रत हुए हाय! इस कालमें ॥ ८ ॥

बन्धु-बन्धु पर वैरभाव से टूट रहे हैं,
दीनों को सम्पत्तिवान् ही लूट रहे हैं।
कोटि-कोटि नर एक ओर हैं भूखों मरते,
उनके टुकड़े छीन मौज लाखों हैं करते।

पुण्य-भूमि में देखिये कैसा पापाचार है,
धन्य धरा जा सह रही, अब तक ऐसा भार है ॥ ६ ॥

दुर्जनता ही रही सुजनता विलकुल भूली,
अपना ढेढर छोड़ और की लखते फूली ।
ईर्षा से हैं हृदय हमारे निशि-दिन जलते,
जाते हैं हम सूख देख औरों को फलते ॥
इससे अपना भी अहित होता है कुछ कम नहीं ।
हो औरों का अपशकुन, नाक कटे तो ग़म नहीं ॥ १० ॥

ले अभिमान निशान दम्भ दुन्दभी बजा दी,
काम, क्रोध, मद, लोभ, आदि की सेन सजा दी ।
कड़ खेतों की जगह स्वयं अपने गुण गाये,
लाहू-हुआ सफेद, जोश में ऐसे आये ।
मार-मार का शोर कर सदाचार से लड़ गये ।
सोंटा लेकर अक्कके पीछे ही हम पड़ गये ॥११॥

इसकाही परिणाम हुआ, हम हुए अधम हैं,
'नीच-निकम्मे' नाम जहाँ तक रखिए कम हैं ।
अन्धकार, अविवेक, मूर्खताके अनुचर हैं,
दम्भ, द्वेष, दुर्भाव आदि दोषोंके घर हैं ।
हैं दरिद्रताके धनी मूढ़ोंके अधिराज हैं
आज जगतमें हीनताकी रक्खे हम लाज हैं ॥१२॥

पतन पूर्ण हो चुका, सँभलनेके दिन आये,
आशा ऊपर उठा रही है गोद उठाये।
फिर सपूत उत्पन्न किये भारत-माताने,
फिर देना आरम्भ किया हमको दाताने॥
फिर वंशी गोपालकी बजी जगानेके लिए।
फिर आये मनु-कुल-तिलक हमें उठानेके लिए॥१३॥

शिक्षाकी रोशनी लगी मनका तम हरने,
सदसद्का शुचि ज्ञान लगा हृदयोंमे भरने।
बढ़ चलनेके वचन हमारे मुख पर आये,
स्वावलम्ब के पाठ हमें जारहे पढ़ाये
जन्म-भूमिकी प्रीति फिर है दुचन्द होने लगी।
वन्दे! वन्दे! की सदा फिर बलन्द होने लगी॥१४॥

बहुत गिर चुके अब उन्नति-गिरि-शृङ्ग चढ़ेंगे,
फिर आगे की तरफ़ हमारे क़दम बढ़ेंगे।
प्रेम-भावही और भाव तज हृदय-मढेंगे,
अब तो आठोंयाम कर्मके पाठ पढेंगे।
ज्ञानार्जनमें भूरि श्रम सदा करेंगे साथ ही।
रक्खे बैठे रहेंगे न यों हाथ पर हाथ ही॥१५॥

सन्तत चढ़ता रहे प्रभो! उन्नतिका पारा,
चमके फिर इस दुखी देशका नाथ! सितारा।

अब की हो याँ उदित प्रतापादित्य हमारा,
जिससे लहे प्रकाश, प्रकाशित हो जग सारा।
हे हरि! पतितोद्धारका तुमको है अभिमान भी,
पतन तुम्हारे हाथ है वैसे ही उत्थान भी॥१८॥

—सनेही।

आत्म-विश्वास।

—:*:—

"असमर्थ हैं, किस भाँति हम निज धर्मका पालन करें?
निज दीन-दुविध बान्धवोंके दुःख कैसे हम हरें!॥"
ऐसे वचन मुखसे कभी भी हम निकालेंगे नहीं।
कर हैं हमारे क्यों भला, कर्तव्य पालेंगे नहीं॥१॥

मुझमे न कुछ सामर्थ्य है, यह मान लेना भूल है;
नरके लिये यह भावना दुर्भाग्य-दुर्गति-मूल है।
सबको विधाताने बनाया शक्तिवान् समर्थ है।
जो नर निपट-निश्चेष्ट है, केवल वही असमर्थ है॥२॥

संसारमें ऐसी न कोई वस्तु दुर्लभ है सही,
उद्योग करके भी जिसे हम प्राप्त कर सकते नहीं।
अपना अनुद्यम ही हमारी हीनताका हेतु है;
दुर्भाग्यका, दौर्बल्य का, दुख-दीनताका हेतु है॥३॥

निज तेजसे ही भानु तमको है हटाता सर्वदा।
निज बुद्धि-बलसे ही बनाता सृष्टि-विधि भी है सदा;
धरणी धरे है शीश पर निज शक्तिसे ही शेष भी,
रहते न औरोंके भरोसे भव्य सज्जन हैं कभी ॥ ४ ॥

जगमें स्वयं अपनी समुन्नति हम करेंगे सर्वथा;
अपनी व्यथा निज शक्तिसे ही हम हरेंगे सर्वथा।
हम जो नहीं ऐसा करें, तो हम मनुज हैं क्या भला?
ऐसे निकम्मे मनुजसे तो है चतुष्पद ही भला ॥ ५ ॥

हम हैं पुरुष, क्यों फिर भला पौरुष दिखावेंगे नहीं,
क्यों आप अपना मार्ग निष्कण्टक बनावेंगे नहीं।
कठिनाइयोंके सामने हम सिर झुकावेंगे नहीं;
मनमें कभी हम मृत्युकी भी भीति लावेंगे नहीं ॥ ६ ॥

हम निखिल कृत्रिम बन्धनोंको छोड़ देंगे सर्वथा;
निज हानि-पूर्ण कुरीतियोंको छोड़ देंगे सर्वथा।
अनुचित पुरानी लीक पर चलना हमें न अभीष्ट है;
हो नेत्रयुत भी अन्ध-सम रहना हमें न अभीष्ट है ॥ ७ ॥

जो सर्व-गुण सम्पन्न एवं सर्व-शक्ति-निधान हैं;
हम भी नहीं क्या बस उसी सर्वेश की सन्तान हैं?
संसारमें अप्राप्य हमको कौन उच्च स्थान है,
देवत्व भी दुर्लभ नहीं हमको महामुद-खान है ॥ ८ ॥

—गोपाल शरण सिंह बी०ए० ।

देशमें ऐसे बालक हों।

—*—
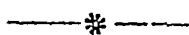
विश्वमें सब बहनोंके लाल, रहे स्वातन्त्र्य-हिंडोले झूल,
स्वर्गसे, वे देखो, सानन्द चढ़ाये जाते उनपर फूल,
अभागिनी हूँ मैं हो भगवान्। उड़ाई जाती मुझपर धूल,
चढ़ाये जाते मुझपर वज्र, गड़ाये जाते मुझको शूल,
दोष-दुख-दुर्जन-घालक और विश्व-रथके संचालक हों,
दुखी हूँ, दो, हे दीनानाथ! देशमें ऐसे बालक हों॥ १

कसक क्यों रहे कर्ममें कभी, क्रूरतर होना हो तो होयँ,
ठसक क्यों रहे धर्ममें, नित्य साधना, सेवा, जगमें बोयँ,
देवताओंमें हो निष्काम, मानवोंके मनके हों श्याम,
दानवोंका दल देखें अड़ा वहाँ हों रण-कर्कश श्रीराम,
भीरुता भागे झट भय खाय, कार्य्यसे काँपे सब संसार
मोहसे कहें 'सुनो जी विश्व! राष्ट्रकी वीणाकी झङ्कार'॥ २

शक्ति हो, हो न कभी हे दैव! दुर्बलोंके दलनेकी चाह,
ध्यान हो, कर देगी संहार सृष्टिका यह दुखियोंकी आह,
नीचतम नीति न हो स्वीकार, कपट की रहे न मारामार;
रहें यो बोदे, कायर, नहीं, सहें जो ठोकर, अत्याचार,
हृदय-मण्डल पर लेता रहे, सदा स्वातन्त्र्य-समुद्र-तरङ्ग,
प्राणतक देदेने की नित्य, चित्तमें उठती रहे उमङ्ग॥ ३॥

करें कुछ विजलीका सञ्चार, नसोंमें भूत कालके चित्र,
न विगड़े वर्त्तमानका हाय! कर्म-मय सुन्दर दृश्य विचित्र,
बने क्यों कोई बूढ़ा सिंह, भविष्यत् का यों ठीकेदार;
बनावें युवक आप भवितव्य, सँभाले भारतका सब भार,
समयके सन्देशेके वेद, सुनाई पड़ें, वढ़ावें रोष,
सजावें कोष, हटावें दोष, मिटावें तोष, जगावें जोश ॥ ४ ॥

महात्मापनका होवे नाश, दमकता हीन मानता तत्व,
देशके अङ्ग न मारे जायँ, प्राप्त हो पूरा-पूरा स्वत्व।
करेगा क्या सूखा स्वाध्याय, तपस्याके हों तीखे भाव,
न हो कुछ दाव न हो दुर्भाव, रहे सव कुछ देनेका चाव।
शीशपर घे देखो दुर्दैव, साधकर खड़ा तीक्ष्णतर बाण,
"अरे चल! साधेंगे कर्त्तव्य, तुझे लेना हो, लेले प्राण" ॥ ५ ॥

सुनावें यों विजलीके वाक्य, शीश भूपालोंके झुकजायँ,
सृष्टि कर मरनेसे बचजाय, शस्त्र चण्डालोंके रुक जायँ।
पापके पण्डे पायें दण्ड, दम्मसे दुनियाँ भर डर जाय,
भगीरथ मनकी विनती मान,स्फूर्त्तिकी गङ्गा कुछ कर जाय,
प्रेमके पालक हो, या न हों, प्रणोंके पूरे पालक हों,
भारतीने यों रोकर कहा—"देशमें ऐसे वालक हों" ॥६॥

—एक भारतीय आत्मा।

प्रश्नोत्तरी ।

आदि सभ्य है कौन महीपर ? जिसका जोड़ा नहीं कहींपर।
कौन देश है सबसे प्यारा ? हिन्द हमारा, हिन्द हमारा ॥ १ ॥

अपना अद्भुत बल दिखलाकर, सबको सकल कला सिखलाकर,
कौन बना त्रिभुवनका तारा ? हिन्द हमारा, हिन्द हमारा ॥ २ ॥

पशुवत् जब मानव रहते थे, नाना क्लेश सदा सहते थे।
कौन हुआ तब विश्व-सहारा ? हिन्द हमारा, हिन्द हमारा ॥ ३ ॥

नश्वर सी क्रीड़ा करनेको, सज्जन की पीड़ा हरनेको।
कौन ईशका बना दुलारा ? हिन्द हमारा, हिन्द हमारा ॥ ४ ॥

कौन सुरोंका भी रक्षक था ? कौन असभ्योंका शिक्षक था।
कौन न छूता था पर-दारा ? हिन्द हमारा, हिन्द हमारा ॥ ५ ॥

विद्या, विनय, दयामें नयमें. कृतज्ञतामें पुण्य-प्रणयमें।
कौन किसीसे कभी न हारा ? हिन्द हमारा, हिन्द हमारा ॥ ६ ॥

रोग-शोक घरके झगड़ोंसे, नये-नये धार्मिक रगड़ोंसे।
कौन न पाता है छुटकारा ? हिन्द हमारा, हिन्द हमारा ॥ ७ ॥

तीस कोटिका नायक होकर, निज सर्वस्व आपही खोकर।
कौन बहाता दृग-जल-धारा ? हिन्द हमारा, हिन्द हमारा ॥ ८ ॥

निज भाषासे कौन विमुख है ? कौन अनेकों सहता दुख है ?
कौन बना है अब बेचारा ? हिन्द हमारा, हिन्द हमारा ॥ ९ ॥

था जो सुर-पुरसे भी बढ़कर—वही विपत्ति-गर्त्तमें पड़कर—
फिरता है अब मारा-मारा, हिन्द हमारा, हिन्द हमारा ॥१०॥

—*रामचरित उपाध्याय।*

शुभ-चिन्तना।

देशका होगा पुनरुद्धार।
अब यह पुण्यपुरी न रहेगी बनी हुई भूभार। दे॥

होंगे रघु, अभिमन्यु और लवकुश-सम शिशु बलवान।
होंगे धर्म-प्राण हकीकतराय तुल्य धृतिमान॥

फिर भी शिवा, प्रतापसिंह-सम स्वाभिमानसे पूर्ण।
होंगे नर जो मातृभूमि के दुःख करेंगे चूर्ण॥

दानीवर दधीचि से होंगे याचक कौत्स-समान।
हरिश्चन्द्र-दशरथ-सम होंगे, सत्यशील नयवान॥

भ्रातृस्नेही भरत-तुल्य फिर होंगे भारत बीच।
सकल देशको ग्रथित करेंगे प्रेम-सूत्र में खींच॥

स्वामि-भक्त झालासे होंगे, कर्ण-तुल्य सन्मित्र।
ध्रुव-समान बालर्षि देशमें होंगे, विपुल पवित्र॥

भीष्म-समान ब्रह्मचारी फिर भारत बीच अनन्त,
होंगे, तुलसी, सूर-तुल्य फिर कविवर अगणित सन्त ॥

—प० सिद्धिनाथ मिश्र।

विद्यार्थियोंको सम्बोधन।

तुम्हीं हो इस उपवन के फूल।
बिना तुम्हारे हरित-देशमें उड़ती मानो धूल।
जनता-कुञ्ज-कलेवर सूना, जो हो तुम न दुकूल ॥ तुम्हीं हो ॥

रङ्ग-रूप प्यारे! तुम रखना सन्तत ऋतु-अनुकूल।
सहज-सुगन्ध सुरससे अपने हरना मनके शूल ॥ तुम्हीं हो।

ग्रीष्म-ताप हेमन्त-शीतसे घबराना न फ़ुज़ूल।
विमल-वसन्त-प्रतीक्षा हीमे सब दुख जाना भूल ॥ तुम्हीं हो।

ऐसे फल लाना निज बलसे मधुमय मङ्गल-मूल।
जिनपर गर्व करे यह भारत, जाय हर्षसे फूल ॥ तुम्हीं हो।

—सनेही।

आशा।

—:०:—

धरोरे मन और कई दिन धीर।
दिवस नहीं वे दूर, वहेगी, जब अनुकूल समीर।
विकसेंगी हृदयोंकी कलियाँ जाग उठेंगे वीर॥
धरोरे मन और कई दिन धीर॥ १॥

शिक्षाके प्रचार की होगी, सफल सभी तदबीर।
अपढ़ एकजन भी न रहेगा, बदलेगी तक़दीर॥
धरोरे मन और कई दिन धीर॥ २॥

उद्योगी-उद्यमी बनेंगे फिर आलसी अमीर।
लक्ष्मीका निवास फिर होगा, सुखमय शान्ति-कुटीर॥
धरोरे मन और कई दिन धीर॥ ३॥

लोह और चुम्बककी होगी, जन-जनमें तासीर।
प्रेम-प्रवाह बहेगा घर-घर वैर-बाँधको चीर॥
धरोरे मन और कई दिन धीर॥ ४॥

धर्म देश-हितको समझेंगे, तोड़ स्वार्थ जंजीर।
जन्म-भूमिके लिये तजेंगे कितने युवा शरीर॥
धरोरे मन और कई दिन धीर॥ ५॥

अंध-प्रथाका तिमिर हरेगा भानु ज्ञान-गम्भीर।
'रामनरेश' तुम्हारे मनकी निकलेगी तब पीर॥
धरोरे मन और कई दिन धीर॥ ६॥

—रामनरेश त्रिपाठी।

हिन्दी-हितैषियोंसे प्रार्थना।*

(१)

मङ्गल-कर शुभ समय उपस्थित हुआ आज है भाई!
यह हिन्दी-साहित्य सम्मिलन हो सबको सुखदाई।
सबसे प्यारी अहो! हमारी है यह हिन्दी भाषा;
पूजनीय मातासम पूरी करती जो अभिलाषा।

(२)

आओ हम सब मिलकर उसपर पूरा प्रेम दिखावें;
तन, मन, धनसे, माताकी सेवामें हृदय लगावें।
पूर्ण समुन्नतिकी हम इसको पहिली सीढ़ी जानें;
और प्रेमका बीजारोपण, इससे ही अनुमानें॥

(३)

बिना एक भाषा होनेके कैसे प्रेम बढ़ेगा?
उन्नतिका मार्त्तण्ड बिना हित क्यों कर उच्च चढ़ेगा!
इससे हम सब मिल हिन्दीका खूब प्रचार बढ़ावें;
मनो-भाव इसके द्वारा ही अपने लिखें, जनावें।

---

* प्रथम-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके उपलक्षमें लिखित।

(४)

सोचो तो। इसने कैसा हम पर उपकार किया है!
शैशव-पनमें साथ हमारा किसने कहो दिया है?
माँके निकट उस समय भाषा यही काम थी आती;
'पप्पा' 'दुद्धू' कहला माँसे खानेको दिलवाती।

(५)

जो भाषाएँ अन्य आज हो रहीं हमें हैं प्यारी;—
ध्यान धरो! उस बाल्यकालमें काम न आतीं सारीं।
¶वाटर, †आब, *मिल्क, यदि उस क्षण मातासे हम कहते;
तो क्या क्षुधा निवारण होती? निश्चय भूखे रहते।

(६)

फिर देखो किसतरह ठीक यह लिखी-पढ़ी जाती है;
उच्चारणमें नहीं भूल मात्रातक की आती है।
* गेरुको गुरु, गरी, सेठ, शठ इसमें पढ़ा न जाता;
‡ किस्तीको कुस्ती, या कसवी पढ़नेमें नहिं आता॥

(नोट) ४ तथा ५वें पद्यका कुछ भाव, बाबू मैथिलीशरण गुप्त जीके एक पद्यसे लिया गया है। ले०।

¶ Water, (पानी) † आब (पानी) * Milk (दूध)

* मुड़िया, या महाजनी भाषा।

‡ उर्दू शिकिस्ता लिपि।

(७)

साइलेन्ट-टी, डोटज़ इसमें डीज़ न कहलाता है;
'फोघट' लिखकर,'फ़ाइट' इसमें कहा नहीं जाता है।
तीन वर्ण एकत्रित जब हों, तब "छ"वर्ण हो उसका;
सोन तथा सन,कभी वही'ज़न'बनता है इँगलिशका।

(८)

बङ्गलादिक भाषाएँ यद्यपि बनीं इसीसे मिलकर;
पर देखो साहित्य बङ्गका है कितना उन्नतिपर!
अल्पकालमें कैसा इसने नाम, मान, है पाया,
गुरु गुड़ ही रह गये, किन्तु चेला चीनी कहलाया।

(९)

है कुछ भी आश्चर्य न इसमें यह सिद्धान्त अटल है,
"वही जाति उन्नति कर सकती,जिसमें भाषा-बल है।"
तनमन-धनसे जिस बङ्गलाके हैं सपूतगण तत्पर;
तो फिर सब भाषाओंसे वह बढ़े न आगे क्योंकर?

(१०)

उसीतरह इँगलिश भाषाका है साहित्य समुज्ज्वल;
और कहाँतक कहें, देख लीजे उर्दूका ही बल।
बढ़ते-बढ़ते इसने अपना ऐसा थाप जमाया,—
जो प्रयत्न करने पर भी है हटता नहीं हटाया।

(११)

न्यायालयों-मध्य उर्दू ही सबसे बढ़ी-चढ़ी है;
हाय! हमारी हिन्दी जिससे हो मृतप्राय पड़ी है।
कारण क्या! सपूत इसके जब इसको भूल रहे हैं;
कुछ केवल उर्दू ही पढ़, निज मनमें फूल रहे हैं।

(१२)

शुद्ध न संस्कृत कहें, 'संसकीरत' ही लिखते-कहते,
है हिन्दी क्या वस्तु बने उससे विरक्तसे रहते।
क्या ऐसा व्यवहार कहो! निज माँसे हमें उचित है!
क्या सर्वत्र उसीसे सोचा, मित्रो! अपना हित है?॥

(१३)

हिन्दीकी प्रतिकूल दशा हो रही किसतरह भाई!
घर भी पत्र अन्य भाषामें लिखते लाज न आई।
हस्ताक्षरमें भी प्रायः लिपि काम दूसरी लावें;
बातचीत तक भी हिन्दीमें करनेमें सकुचावें।

(१४)

मैं यह कहता नहीं, कि सीखो न तुम अन्य भाषायें;
बिना अन्य भाषायें समझे फल न सकें आशायें।
अतः अवश्य सीखिये मित्रो! भाषायें सुखकारी;
पर निज हिन्दी भूल न जाना, है प्रार्थना हमारी।

(१५)

शिक्षित जन ही बहुधा इससे विमुख दृष्टि आते हैं ;
सीख अन्य भाषाएँ, हिन्दी हाय ! भूल जाते हैं ।
मातासे इस भाँति विमुखता क्या शोभित होती है !
अब भी चेतो, देखो, हिन्दी विलख-विलख-रोती है ।

(१६)

दृढ़-प्रतिज्ञ हो आओ, माँको दे सान्त्वना मनाओ ;
भटक चुके हो बहुत, किन्तु अब तो सत्पथ पर आओ;
करो पूर्ण सर्वाङ्ग, बढ़े हिन्दी-साहित्य तुम्हारा ;
होता जाये जिससे उज्ज्वल मुख भी नित्य तुम्हारा ।

(१७)

वैज्ञानिक पुस्तकें ऐतिहासिक भी लिखो-लिखाओ ;
शिक्षा-प्रद लिख उपन्यास हिन्दू-समाजमें लाओ ।
बंकिम बाबूका करके अनुकरण मित्र दिखलाना ;
माँका शुष्क-कमल नव-जलके सिञ्चनसे हरपाना ।

(१८)

भारतेन्दु सम नाटक लिखिए, जो प्रभाव निज डालें ;
हैं समाजमें जो कुरीतियाँ उनको दूर निकालें ।
राजकृष्ण, कविवर रवीन्द्र से काव्य-कार कहलाओ;
भ्रमण-खोज की शीघ्र पुस्तकें मित्रो ! प्रकट कराओ ।

(१९)

हैं दूषित जो अङ्ग काव्यके उनको ठीक बनाओ;
भली भाँतिसे "काव्य वाटिका" का सौरभ फैलाओ।
लिख 'भारत-भारती' काव्य-सम जगमें नाम कमाओ;
कर अनुकरण गुप्तजीका माताको सुख पहुचाओ।

(२०)

आपसके सब द्वेष-फूटको कूट भगाओ सत्वर;
ऐक्य भावको भरो, प्रेम दिखलाते रहो परस्पर!
बने जहाँतक हिन्दी ही मे लिखना-पढ़ना कीजे;
पत्र-आदि अर्ज़ियाँ इसी भाषामें लिखकर दीजे।

(२१)

कर प्रस्ताव पास, केवल सन्तोष न करना चहिए!
योग्य यही है सदा उसी पथ पर पग धरना चहिए;
तभी पूर्ण सार्थकता अपनी वे प्रस्ताव दिखावें;
देखो। कहीं हवा लगनेसे उड़ न क्षणकमें जावें;

(२२)

हुआ हर्ष सौभाग्य! सु-लेखक कवि-वरश्रेष्ट हमारे;
*पाठकजी,जो आज सभापति होकर यहाँ पधारे।
सुनकर शुचि–उपदेश हिन्दहित हो जाओ सब तन्मय!
बोलो जय! हिन्दी माताकी जय। सम्मेलनकी जय।

—द्वारिकाप्रसाद गुप्त रसिकेन्द्र

समाप्त।